मनोविज्ञान

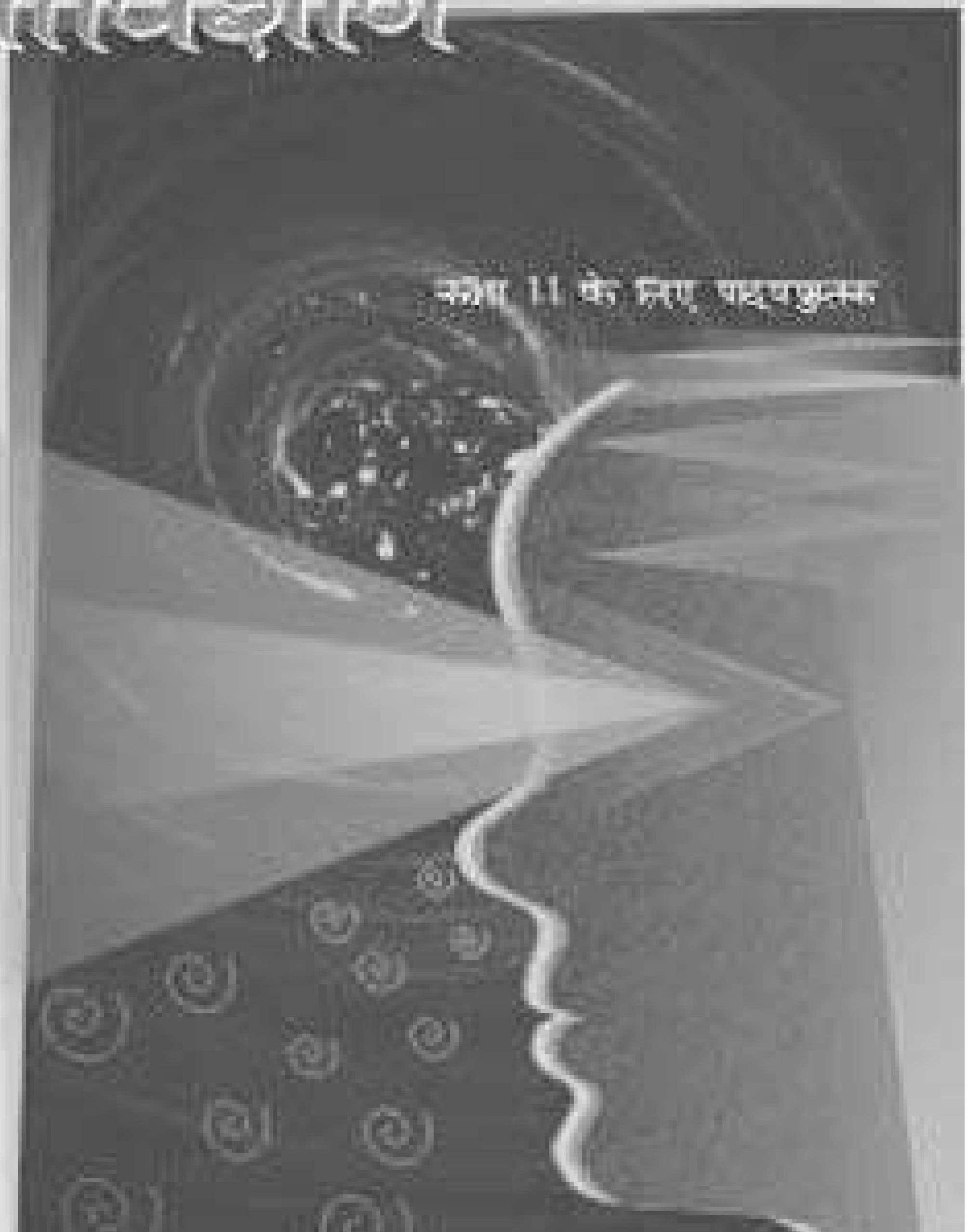

मनोविज्ञान

कक्षा 11 के लिए पाठ्यपुस्तक

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
अप्रैल 2006 वैशाख 1928
पुनर्मुद्रण
दिसंबर 2006 पौष 1928
मई 2008 ज्येष्ठ 1930
जून 2009 आषाढ़ 1931
PD 3T NSY

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2006

ISBN 81-7450-555-5

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

रु 115.00

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग : *पेय्येटि राजाकुमार*
मुख्य उत्पादन अधिकारी : *शिव कुमार*
मुख्य संपादक : *श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक : *गौतम गांगुली*
संपादक : *नरेश यादव*
सहायक उत्पादन अधिकारी : राजेन्द्र चौहान

आवरण एवं चित्रांकन
निधि वाधवा

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, ए-95, सैक्टर-5, नोएडा 201 301 द्वारा मुद्रित।

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास हैं। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और सीखने के दौरान अपने अनुभव पर विचार करने का कितना अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन करते हैं। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

यह उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है, जितना वार्षिक कैलेंडर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक स्कूल में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में बातचीत एवं बहस और हाथ से की जानेवाली गतिविधियों को प्राथमिकता देती है।

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तक सलाहकार समिति के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर हरि वासुदेवन, इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय, कोलकाता और इस पाठ्यपुस्तक के मुख्य सलाहकार प्रोफ़ेसर आर.सी. त्रिपाठी, *निदेशक,* जी.बी.पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद की विशेष आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के विकास में कई शिक्षकों ने योगदान किया, इस योगदान को संभव बनाने के लिए हम उनके प्राचार्यों के आभारी हैं। हम उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ हैं, जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री तथा सहयोगियों की मदद लेने में हमें उदारतापूर्वक सहयोग दिया। हम माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे की

अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित एन.सी.ई.आर.टी. टिप्पणियों एवं सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
20 दिसंबर 2005

प्रस्तावना

मनोविज्ञान एक नवीनतम किंतु तीव्र गति से विकसित होने वाला विज्ञान है। बहुत से लोगों का विश्वास है कि इक्कीसवीं सदी मनोवैज्ञानिक विज्ञान के साथ-साथ जैविक विज्ञानों की सदी होने वाली है। तंत्रिका विज्ञान तथा भौतिक विज्ञानों के क्षेत्र में हो रहे विकास मानव व्यवहार एवं मन के रहस्यों को हल करने के नए रास्ते खोल रहे हैं। नवसर्जित ज्ञान से मानव प्रयास का कोई रूप ऐसा नहीं है जो अप्रभावित रहने जा रहा है। केवल यह आशा की जा सकती है कि इससे लोग अपना जीवन अधिक सार्थक ढंग से जी सकेंगे तथा मानव व्यवस्था को ठीक ढंग से व्यवस्थित कर सकेंगे। परिणामस्वरूप वास्तव में बड़ी संख्या में रोजगार के नए अवसर प्रकट हुए हैं। मनोविज्ञान ने बहुत सारे नए क्षेत्रों में अपनी पैठ बना ली है।

इस पाठ्यपुस्तक का लेखन एक सामूहिक प्रयास की देन है। इसमें विभिन्न रूपों में विषय विशेषज्ञों, महाविद्यालयों एवं विद्यालय अध्यापकों तथा विद्यार्थियों से भी निविष्टियाँ प्राप्त की गई हैं। इस पाठ्यपुस्तक के लेखन में, इस पाठ्यपुस्तक के पूर्व संस्करण के मूल्यांकन करने वालों द्वारा उठाए गए कुछ मुद्दों के समाधान को भी समाहित करने का प्रयास किया गया है तथा कुछ भागों का उपयोग भी किया गया है। यह पाठ्यपुस्तक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 का अनुसरण करती है। सामान्य दिशानिर्देशों को ध्यान में रखते हुए हमने विद्यार्थियों का बोझ कम करने का प्रयास तो किया ही है साथ ही विषय को अधिक बोधगम्य बनाने का प्रयास भी किया है। ऐसा करने में हमने मनोवैज्ञानिक संप्रत्ययों को दैनंदिन मानव व्यवहारों तथा विविध जीवन अनुभवों से जोड़ने का प्रयास किया है। हम इसमें कितना सफल हुए हैं, यह विद्यार्थियों एवं अध्यापकों के निर्णयन हेतु छोड़ते हैं। एक मुख्य चुनौती जिसका मनोविज्ञान के अध्यापक सामना करते हैं, वह है अपने विद्यार्थियों को मानव व्यवहार के विश्लेषण को वैज्ञानिक ढंग से करने तथा सामान्य बोध से अलग व्याख्याओं का उपयोग करने के लिए तैयार करना। किसी अन्य वैज्ञानिक विद्याशाखा से अधिक मनोविज्ञान में घिसी पिटी बातों का खतरा रहता है। हमारी आशा है कि इस पाठ्यक्रम के विद्यार्थी दूसरों के तथा अपने स्वयं के व्यवहार के विश्लेषण के लिए उपयुक्त वैज्ञानिक अभिवृत्ति विकसित करेंगे तथा इनका उपयोग वैयक्तिक संवृद्धि के लिए करेंगे।

इस पाठ्यपुस्तक को विद्यार्थियों एवं अध्यापकों के हाथों में सौंपते हुए हमें प्रसन्नता है तथा हम उन सभी लोगों के प्रति, जिन्होंने इसके लेखन एवं प्रकाशन में आशातीत सहयोग प्रदान किया है, आभार ज्ञापित करते हैं।

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**
प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सबमें** व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हज़ार छह विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

शिक्षकों के लिए निर्देश

एक शिक्षक के रूप में हम सर्वदा विद्यार्थियों के शिक्षण तथा पाठ्यपुस्तक के बाहर भी उनकी समझ में वृद्धि से संबंधित होते हैं। वर्तमान की कक्षाओं में ज्ञान एवं सूचना प्रदान करने पर विशेष ध्यान दिया जाता है। हमें यह जानते रहना चाहिए कि अध्यापन का अर्थ क्या है, हम किस प्रकार अध्यापन करते हैं तथा हमारे अध्यापन का समेकित अग्रगामी प्रभाव क्या है?

अनुसंधानों से पता चला है कि शैक्षिक अभ्यास विषय या विद्याशाखा की अंतर्वस्तु एवं स्वरूप से प्रभावित होता है। मनोविज्ञान का विषय, जो मानव मन, व्यवहार एवं मानव संबंधों की व्याख्या करता है, अध्यापन करने के मानवतावादी परिदृश्य में सहायता कर सकता है। इस प्रकार के परिदृश्य से विद्यार्थियों के ज्ञान संवर्धन के साथ-साथ उनकी उत्सुकता, सकारात्मक भावनाओं, सीखने की इच्छा, खुलापन, स्वयं के तथा दूसरों के विषय में खोज इत्यादि को प्रेरित एवं जागृत करने में सहायता मिलती है। इस प्रकार के उपागम उनके वैयक्तिक विकास तथा विषय के प्रति सकारात्मक अभिवृत्ति एवं स्नेह के अंतर्निवेशन के लिए प्रेरक होते हैं।

इस पाठ्यपुस्तक की अभिकल्पना इस प्रकार की गई है कि विद्यार्थियों को अपने पूर्ववर्ती ज्ञान एवं अनुभवों के उपयोग का पर्याप्त अवसर मिल सके। सार्थक संदर्भ दिए गए हैं जिससे विषयवस्तु को दिन-प्रतिदिन के जीवन से जोड़ा जा सके। अध्यापन-अधिगम प्रक्रिया को आनंदमय बनाने के लिए हम सलाह देंगे कि आप अंत:क्रियात्मक विधि का उपयोग करते हुए विद्यार्थियों को तल्लीन रखें तथा उनकी अभिरुचि तथा उत्साह को बनाए रखें। कहानी, परिचर्चा, उदाहरण, प्रश्नातुरता, सादृश्य, समस्या-समाधान स्थिति, भूमिका-निर्वाह आदि युक्तियाँ प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक के सन्निहित अंग हैं। यह और अच्छा होगा जब विद्यार्थी अपनी कहानियों एवं उदाहरणों का उपयोग करें। सूचनाओं की सघनता को कम करने का विशेष प्रयास किया गया है जिससे कि कक्षा में प्राप्त ज्ञान को विद्यार्थी अपने व्यक्तिगत अनुभवों के साथ-साथ अपने भौतिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिवेश से जोड़ सकें। विषयवस्तु का व्यवहृत स्वरूप विद्यार्थियों की सहायता करेगा कि वे अपने संदर्भों में ज्ञान के अनुप्रयोग को जान सकें। हमारी आपको सलाह है कि आप विद्यार्थियों को उत्साहित करें कि वे रुचिकर घटनाओं/प्रसंगों, जिनमें वे स्वयं संलग्न रहे हों अथवा जिन्हें उन्होंने देखा हो, का एक अभिलेख बनाएँ। वे इन प्रसंगों को इस पुस्तक से अधिगत चीज़ों के उपयोग द्वारा अर्थवान बनाने का प्रयास कर सकते हैं। इसे आप अधिगम डायरी कह सकते हैं।

चूँकि ग्यारहवीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए मनोविज्ञान एक नया विषय है, इसलिए विषय की क्षमता, दिन-प्रतिदिन के जीवन में उसके महत्त्व तथा जीवन-वृत्ति की विविध संभावनाओं पर सम्यक् ध्यान देना होगा। यह आशा की जाती है कि मनोविज्ञान के आनुभविक स्वरूप तथा मानव व्यवहार के अध्ययन में वैज्ञानिक उपागम को अपनाने के विषय से विद्यार्थियों को अवगत कराया जाएगा।

इस पाठ्यपुस्तक में नौ अध्याय हैं। ये उन विषयों से संबंधित हैं जो मनोविज्ञान में प्रवेश-पाठ्यक्रम के लिए महत्वपूर्ण समझे जाते हैं। प्रत्येक अध्याय सीखने के उद्देश्य से प्रारंभ हुआ है। अध्याय में सम्मिलित की जाने वाली विषयवस्तु की रूपरेखा अध्याय की एक समग्र दृष्टि प्रस्तुत करती है। प्रत्येक अध्याय के प्रारंभ में दिया गया परिचय विद्यार्थियों के पूर्ववर्ती ज्ञान को बढ़ाने के लिए सूचनापरक एवं चुनौतीपूर्ण है। प्रत्येक अध्याय में मुख्य विषयवस्तु, उदाहरणों, दृष्टांतों, सारणियों, क्रियाकलापों एवं बॉक्सों से युक्त है जो संप्रत्ययों को अच्छी तरह समझने में विद्यार्थियों की सहायता करेगा। ये पाठ्यपुस्तक के अभिन्न अंग हैं एवं इनका उपयोग करना चाहिए। प्रत्येक अध्याय के अंत में प्रस्तुत सारांश, जो कुछ पढ़ा अथवा पढ़ाया गया है, उसको पुनर्बलित एवं सुदृढ़ करता है। कोई अध्याय विशेष प्रारंभ करने से पहले विद्यार्थियों को प्रोत्साहित कीजिए कि वे अध्याय का

सारांश पढ़ लें। अध्याय के अंत में समीक्षात्मक प्रश्नों से समझ, अनुप्रयोग तथा कौशल को बढ़ावा मिलेगा और उच्च स्तरीय चिंतन में वृद्धि होगी। प्रत्येक अध्याय के अंत में दिए गए परियोजना विचार का उद्देश्य विद्यार्थियों को क्षेत्र-कार्यों तथा अनुभव प्राप्त करने के लिए जागृत करना है। इससे विद्यार्थी अमूर्त संप्रत्ययों को अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन की घटनाओं से जोड़कर अधिक सार्थक ढंग से समझ सकेंगे। हम आशा करते हैं कि आप इनका उपयुक्त उपयोग करेंगे तथा नवीन अधिगम के अवसरों का सर्जन करेंगे।

यद्यपि पाठ्यपुस्तक की विषयवस्तु को विभिन्न शीर्षकों में व्यवस्थित किया गया है; जैसे - अधिगम, चिंतन, स्मृति, अभिप्रेरणा एवं संवेग, आदि तथापि सभी अध्यायों में उनके अंतर्गत भी संयोजन रखने का प्रयास किया गया है जिससे सातत्य एवं समग्रतावादी परिदृश्य बनाए रखा जा सके। पाठ्यपुस्तक में दिए गए क्रियाकलापों का चयन सावधानीपूर्वक किया गया है जिससे कि कक्षा में विद्यार्थियों की सहभागिता को अधिकाधिक रूप से बढ़ाया जा सके। बहुत-से क्रियाकलाप ऐसे हैं जिन्हें सरलतापूर्वक किया जा सकता है एवं कोई विशेष सामग्री भी आवश्यक नहीं होती है। इन्हें कक्षा में ही संपन्न किया जा सकता है अथवा गृहकार्य के रूप में दिया जा सकता है। जहाँ कुछ क्रियाकलाप समूह-केंद्रित हैं, वहीं कुछ वैयक्तिक स्वरूप के हैं। समूह-केंद्रित क्रियाकलाप टीम निर्माण के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, जिससे साथ-साथ भागीदारी के आनंद का अनुभव होता है तथा एक-दूसरे के विचारों के प्रति सम्मान व्यक्त करने का अवसर मिलता है। क्रियाकलापों के सत्र संचालित करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि कक्षा का वातावरण ऐसा बना रहे जो पारस्परिक सम्मान, विश्वास तथा सहयोग के लिए प्रेरक हो। चूँकि हर कक्षा भिन्न होती है तथा प्रत्येक अध्यापक अलग होता है, अत: इन क्रियाकलापों को परिवर्तनीय आवश्यकताओं एवं संदर्भों से अनुकूलित होना चाहिए।

यह विशेष रूप से ध्यातव्य है कि इस पाठ्यपुस्तक को पढ़ाते समय हमें वैज्ञानिक एवं आनुभविक उपागमों में संतुलन बनाए रखने के लिए प्रयास करते रहना चाहिए।

विद्यार्थियों के लिए निर्देश

इस पाठ्यपुस्तक का विकास आपको मनोविज्ञान की मूल विषयवस्तु से परिचित कराने हेतु किया गया है। मूल विषय का ज्ञान देने के अतिरिक्त, लोगों के एवं स्वयं के व्यवहार को समझना एवं आपकी जिज्ञासा बढ़ाना इसका मूल ध्येय है। पाठ्यपुस्तक का अंत:क्रियात्मक स्वरूप होने के कारण यह मनोविज्ञान को एक विद्याशाखा के रूप में समझने के साथ ही साथ दिन-प्रतिदिन के जीवन में मनोविज्ञान के व्यावहारिक अनुप्रयोग को भी समझने में आपकी सहायता करेगी। इसके लिए आवश्यक है कि आप कक्षा के क्रियाकलापों में भाग लें तथा अपनी सोच प्रदर्शित करें।

प्रारंभ में आप विषय के कथ्य से परिचित होइए जिससे आपको इस बात की जानकारी हो जाएगी कि कौन से शीर्षकों को लिया गया है तथा अध्यायों का क्रम क्या है। प्रत्येक अध्याय का उद्देश्य एवं विषयवस्तु की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। उद्देश्य-वर्णन से आपको ज्ञात हो सकेगा कि उक्त अध्याय पढ़ने के बाद आप क्या जान सकेंगे। प्रत्येक अध्याय के प्रारंभ में परिचय दिया गया है जिससे आपको 'आगे क्या है' की संक्षिप्त झाँकी मिल सकेगी। विषयवस्तु में बॉक्स एवं क्रियाकलाप भी हैं। इन बॉक्सों में नवीनतम सिद्धांतों एवं किए गए प्रयोगों से संबंधित तथा दिन-प्रतिदिन की परिस्थितियों में इनके अनुप्रयोग की सूचनाएँ प्राप्त होंगी। ये पुस्तक के अभिन्न अंग हैं तथा आपको चाहिए कि आप इन्हें पढ़ें जिससे आपका दृष्टिक्षेत्र वृहत्तर हो तथा ज्ञान की ललक जागृत हो सके। पाठ्यपुस्तक में दिए गए उदाहरण जीवन की वास्तविक घटनाओं एवं अनुभवों से संबंधित हैं। जो कुछ पढ़ाया एवं समझा गया है, उसको सुदृढ़ करने के लिए प्रत्येक अध्याय के अंत में सारांश दिया गया है। फिर इसके बाद समीक्षात्मक प्रश्न दिए गए हैं। संभवत: इन प्रश्नों से आलोचनात्मक चिंतन उत्पन्न होगा तथा आपमें प्रश्न पूछने एवं तर्क करने की शक्ति का विकास होगा। इन प्रश्नों को हल करने के लिए हम आपको उत्साहित करते हैं। आपकी इन प्रश्नों के प्रति अनुक्रियाओं से पढ़ाए गए संप्रत्ययों पर आपकी महारत प्राप्त करने की मात्रा तथा आपके ज्ञान की गहराई दोनों का संकेत मिलेगा।

यह आवश्यक है कि प्रत्येक अध्याय के अंत में दिए गए प्रमुख पदों को तथा उनकी परिभाषाओं को सीखें। पाठ्यपुस्तक के अंत में दी गई शब्दावली विषय के प्रतिपाद्यों को स्पष्ट करने के लिए एक अति उत्तम साधन सिद्ध होगी।

आइए, अध्यायों के अंत में दिए गए विभिन्न क्रियाकलापों एवं परियोजना विचारों पर बात करें। इनका उद्देश्य आनुभविक अधिगम को बढ़ावा देना है। इन क्रियाकलापों को करते समय आपका अनुभव स्वयं एवं दूसरों के विषय में जानने में आपकी सहायता करेगा। इनसे एक सहायता यह मिलेगी कि आप कक्षा में पढ़ाए गए संप्रत्ययों को वास्तविक जीवन दशाओं से जोड़कर देख सकेंगे। जितने अधिक क्रियाकलापों के साथ संभव हो सके उतना अधिक उनसे जुड़िए क्योंकि इससे आप मनोवैज्ञानिक संप्रत्ययों को और अच्छी तरह समझ सकेंगे। परियोजना विचार भी करके कुछ सीखने को महत्त्व देते हैं। आपको अपनी कक्षा से बाहर निकलकर लोगों से साक्षात्कार करना पड़ सकता है अथवा सूचनाएँ एकत्रित करनी पड़ सकती हैं। संभव है कि आप सभी परियोजनाओं पर कार्य न कर सकें परंतु जो आपकी रुचि के हों उन पर कार्य कीजिए।

आप इस विषय के विविध क्षेत्रों की खोज यात्रा प्रारंभ करने जा रहे हैं। जैसे आप आगे बढ़ेंगे, आपको पाठ्यपुस्तक में कुछ पड़ाव ऐसे मिलेंगे जहाँ आप अपने 'स्व' तथा जिस दुनिया के एक भाग के रूप में आप रह रहे हैं - उसके विषय में जान सकेंगे। इसके लिए मनोविज्ञान के द्वारपट खुले हैं, इसका उपयुक्त उपयोग कीजिए। यदि आप इंटरनेट पर कार्य करना जानते हैं तो अपने अध्यापक की सहायता से ऐसी साइट देखें जो इस पुस्तक की विषयवस्तु से संबंधित सूचनाएँ देती हैं।

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51 क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके; और

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य को शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

मुख्य सलाहकार

आर.सी. त्रिपाठी, *प्रोफेसर एवं निदेशक*, जी.बी. पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान, झूसी, इलाहाबाद

सदस्य

आर.सी. मिश्र, *प्रोफेसर*, मनोविज्ञान विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

ऊषा आनंद, *अध्यापिका*, सेंट थॉमस गर्ल्स सीनियर सेकेंडरी स्कूल, मंदिर मार्ग, नयी दिल्ली

ए.के. मोहंती, *प्रोफेसर*, जाकिर हुसैन शैक्षिक अध्ययन केंद्र, एस.एस.एस. II, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

ए.के. श्रीवास्तव, *प्रवाचक*, शैक्षिक अनुसंधान और नीतिगत संदर्श विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

नमिता पाण्डेय, *प्रोफेसर*, मनोविज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

नंदिता बाबू, *प्रवाचक*, मनोविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

नीलम श्रीवास्तव, *अध्यापिका*, वसंत वैली स्कूल, वसंत कुंज, नयी दिल्ली

बी.एन. पुहाण, *प्रोफेसर (अवकाशप्राप्त)* उत्कल विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर

बी.डी. तिवारी, *प्रोफेसर*, मनोविज्ञान विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

मानस कुमार मंडल, *निदेशक*, रक्षा मनोवैज्ञानिक अनुसंधान संस्थान, तिमारपुर, दिल्ली

शकुंतला एस. जैमन, *प्राचार्या*, सी.एस.के.एम. विद्यालय, सतबरी, छतरपुर, नयी दिल्ली

सी. सुवासिनी, *प्रवक्ता*, गार्गी कॉलेज, नयी दिल्ली

सुनीता अरोड़ा, *वरिष्ठ परामर्शदाता*, राजकीय कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय नंबर 1, रूप नगर, दिल्ली

सुषमा गुलाटी, *प्रोफेसर एवं अध्यक्ष*, शैक्षिक मनोविज्ञान और शिक्षा आधार विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

हिंदी अनुवाद

अंजलि, *प्रवाचक*, इलाहाबाद डिग्री कॉलेज (कन्या), इलाहाबाद

आदेश अग्रवाल, *प्रोफेसर (अवकाशप्राप्त)*, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

बब्बन मिश्र, *प्रोफेसर*, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

राकेश पांडेय, *प्रवाचक*, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

सदस्य-समन्वयक

प्रभात कुमार मिश्र, *प्रवक्ता*, शैक्षिक मनोविज्ञान और शिक्षा आधार विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

अंजुम सिबिया, *प्रवाचक*, शैक्षिक मनोविज्ञान और शिक्षा आधार विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

आभार

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली प्रोफ़ेसर सुषमा गुलाटी, *अध्यक्ष,* शैक्षिक मनोविज्ञान और शिक्षा आधार विभाग को इस पाठ्यपुस्तक के निर्माण के विभिन्न चरणों में सहयोग देने के लिए धन्यवाद देती है। पाठ्यपुस्तक के सुधार में सुझाव एवं प्रतिप्राप्ति देने के लिए एल.बी. त्रिपाठी, *प्रोफ़ेसर* (अवकाशप्राप्त), दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर; सागर शर्मा, *प्रोफ़ेसर* (अवकाशप्राप्त), हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला, कैलाश तुली, *प्रवाचक,* जाकिर हुसैन कॉलेज, नयी दिल्ली तथा सरला जावा, *प्रवाचक* लेडी श्रीराम कॉलेज, नयी दिल्ली का हम आभार व्यक्त करते हैं।

डी.डी. नौटियाल, *सचिव (अवकाशप्राप्त),* वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, नयी दिल्ली के प्रति तकनीकी शब्दावली तैयार करने में सहयोग के लिए और पुष्पा मिश्र, *प्रोफ़ेसर,* लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ के प्रति हिंदी अनुवाद के पुनरीक्षण हेतु हम आभारी हैं। पांडुलिपि को देखने एवं सार्थक परिवर्तनों के सुझाव के लिए, वंदना सिंह, *परामर्शदाता संपादक* को हम विशेष रूप से धन्यवाद देते हैं।

परिषद्, पुस्तक निर्माण के विभिन्न चरणों में सहयोग के लिए पवनेश वर्मा, सीमा मेहमी, *डी.टी.पी. ऑपरेटर;* राधा, प्रमोद कुमार झा, *कॉपी एडीटर;* रेखा शर्मा, राकेश कुमार, *प्रूफ रीडर;* तथा पंकज कक्कड़, *कंप्यूटर स्टेशन इंचार्ज* के प्रति पाठ्यपुस्तक को रूपायित करने के लिए सादर आभार व्यक्त करती है। अंत में परंतु कम नहीं, प्रकाशन विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा हमें पूर्ण सहयोग एवं सुविधाएँ प्राप्त हुईं; इसके लिए हम आभारी हैं।

विषयसूची

आमुख *iii*

शिक्षकों के लिए निर्देश *vii*

विद्यार्थियों के लिए निर्देश *ix*

अध्याय 1
मनोविज्ञान क्या है ? 1

अध्याय 2
मनोविज्ञान में जाँच की विधियाँ 22

अध्याय 3
मानव व्यवहार के आधार 43

अध्याय 4
मानव विकास 65

अध्याय 5
संवेदी, अवधानिक एवं प्रात्यक्षिक प्रक्रियाएँ 87

अध्याय 6
अधिगम 111

अध्याय 7
मानव स्मृति 137

अध्याय 8
चिंतन 155

अध्याय 9
अभिप्रेरणा एवं संवेग 176

शब्दावली 196

पठनीय पुस्तकें 210

भारत का संविधान

भाग-3 (अनुच्छेद 12-35)
(अनिवार्य शर्तों, कुछ अपवादों और युक्तियुक्त निर्बंधन के अधीन)
द्वारा प्रदत्त

मूल अधिकार

समता का अधिकार

- विधि के समक्ष एवं विधियों के समान संरक्षण;
- धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर;
- लोक नियोजन के विषय में;
- अस्पृश्यता और उपाधियों का अंत।

स्वातंत्र्य-अधिकार

- अभिव्यक्ति, सम्मेलन, संघ, संचरण, निवास और वृत्ति का स्वातंत्र्य;
- अपराधों के लिए दोष सिद्धि के संबंध में संरक्षण;
- प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण;
- छः से चौदह वर्ष की आयु के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा;
- कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण।

शोषण के विरुद्ध अधिकार

- मानव के दुर्व्यापार और बलात श्रम का प्रतिषेध;
- परिसंकटमय कार्यों में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध।

धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार

- अंतःकरण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार की स्वतंत्रता;
- धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता;
- किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय के संबंध में स्वतंत्रता;
- राज्य निधि से पूर्णतः पोषित शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के संबंध में स्वतंत्रता।

संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार

- अल्पसंख्यक-वर्गों को अपनी भाषा, लिपि या संस्कृति विषयक हितों का संरक्षण;
- अल्पसंख्यक-वर्गों द्वारा अपनी शिक्षा संस्थाओं का स्थापन और प्रशासन।

सांविधानिक उपचारों का अधिकार

- उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के निर्देश या आदेश या रिट द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रवर्तित कराने का उपचार।

अध्याय 1

मनोविज्ञान क्या है?

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- मन एवं व्यवहार को समझने में मनोविज्ञान के स्वरूप और उसकी भूमिका को जान सकेंगे,
- इस विद्याशाखा के विकास का वर्णन कर सकेंगे,
- मनोविज्ञान के विविध क्षेत्रों और अन्य विद्याशाखाओं तथा व्यवसायों से उसके संबंध को जान सकेंगे, तथा
- दैनंदिन जीवन में अपने तथा अन्यों को ठीक से समझने में मनोविज्ञान के महत्त्व को जान सकेंगे।

विषयवस्तु

परिचय
मनोविज्ञान क्या है?
मनोविज्ञान एक विद्याशाखा के रूप में
मनोविज्ञान एक प्राकृतिक विज्ञान के रूप में
मनोविज्ञान एक सामाजिक विज्ञान के रूप में
मन एवं व्यवहार की समझ
मनोविज्ञान विद्याशाखा की प्रसिद्ध धारणाएँ
मनोविज्ञान का विकास
आधुनिक मनोविज्ञान के विकास में कुछ रोचक घटनाएँ (बॉक्स 1.1)
भारत में मनोविज्ञान का विकास
मनोविज्ञान की शाखाएँ
अनुसंधान एवं अनुप्रयोग के कथ्य
मनोविज्ञान एवं अन्य विद्याशाखाएँ
कार्यरत मनोवैज्ञानिक
दैनंदिन जीवन में मनोविज्ञान

प्रमुख पद
सारांश
समीक्षात्मक प्रश्न
परियोजना विचार

परिचय

संभवत: आपसे आपके अध्यापक ने कक्षा में पूछा होगा कि अन्य विषयों को छोड़कर आपने मनोविज्ञान क्यों लिया। आप क्या सीखने की आशा करते हैं? यदि आपसे यह प्रश्न पूछा जाए तो आप क्या प्रतिक्रिया देंगे? सामान्यतया, जिस तरह की प्रतिक्रियाएँ कक्षा में मिलती हैं वे विस्मयकारी होती हैं। अधिकांश विद्यार्थी निरर्थक प्रतिक्रिया देते हैं, जैसे वे जानना चाहते हैं कि दूसरे लोग क्या सोच रहे हैं। परंतु ऐसी भी प्रतिक्रियाएँ हो सकती हैं; जैसे- स्वयं को जानना, दूसरों को जानना अथवा विशेष प्रतिक्रियाएँ; जैसे- लोग स्वप्न क्यों देखते हैं, लोग क्यों आगे बढ़कर दूसरों की सहायता करते हैं अथवा एक दूसरे को पीटते हैं। समस्त प्राचीन परंपराओं में मानव स्वभाव से संबंधित प्रश्न अवश्य होते हैं। भारतीय दार्शनिक परंपराएँ विशेष रूप से ऐसे प्रश्नों का सामना करती हैं कि लोग जिस तरह का व्यवहार करते हैं वैसा वे क्यों करते हैं। लोग अधिकतर अप्रसन्न क्यों होते हैं? यदि वे अपने जीवन में प्रसन्नता चाहते हैं तो उन्हें अपने विषय में कैसे परिवर्तन लाने चाहिए। सभी ज्ञान की तरह, मनोवैज्ञानिक ज्ञान भी मानव कल्याण के लिए बहुत योगदान देना चाहता है। यदि संसार दुखागार है तो यह अधिकतर मनुष्यों के ही कारण है। संभवत: आप यह पूछना चाहेंगे कि 11 सितंबर (9/11) अथवा इराक में युद्ध की घटना क्यों हुई? दिल्ली, मुंबई, श्रीनगर अथवा पूर्वोत्तर में निर्दोष लोगों को बम एवं गोलियों का सामना क्यों करना पड़ता है? मनोवैज्ञानिक यह पूछते हैं कि युवा मन में कैसे अनुभव होते हैं जो बदला लेने वाले आतंकवादियों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं? परंतु मानव स्वभाव का एक दूसरा रूप भी है। आपने संभवत: मेजर एच.पी.एस. अहलूवालिया का नाम सुना होगा जिन्हें पाकिस्तान के साथ युद्ध के समय एक चोट के कारण कमर के नीचे लकवा मार गया था और वे माउंट एवरेस्ट पर चढ़े थे। उनमें इतनी ऊँचाई पर चढ़ने का भाव कहाँ से जागृत हुआ? मानव स्वभाव के विषय में ऐसे ही प्रश्न नहीं होते हैं जिन्हें मनोविज्ञान एक मानव विज्ञान के रूप में देखता है। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि आधुनिक मनोविज्ञान अस्पष्ट सूक्ष्मस्तर गोचरों जैसे चेतना, शोरगुल के मध्य अवधान पर ध्यान केंद्रित करने अथवा अपने पारंपरिक विरोधी से फुटबाल के खेल में विजयी होने पर उस टीम के समर्थकों द्वारा व्यावसायिक प्रतिष्ठान को जलाने का प्रयास करने आदि बातों का भी अध्ययन करता है। मनोविज्ञान इस बात का दावा नहीं कर सकता कि वह ऐसे सभी जटिल प्रश्नों का उत्तर दे सकता है। परंतु इसने हमारी समझ को बढ़ाया है और इन गोचरों का अर्थ हम समझने लगे हैं। इस विद्याशाखा की सबसे अधिक आकर्षित करने वाली बात यह है कि, अन्य विज्ञानों के विपरीत, मनोविज्ञान में आंतरिक एवं स्वयं मनुष्यों द्वारा अपने प्रेक्षण में समाहित मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

मनोविज्ञान क्या है?

ज्ञान की किसी भी विद्याशाखा को परिभाषित करना कठिन होता है। प्रथम, क्योंकि यह सर्वदा विकसित होता रहता है। द्वितीय, क्योंकि गोचरों का जिस सीमा तक अध्ययन किया जाता है उन्हें किसी एक परिभाषा में नहीं लाया जा सकता है। यह बात मनोविज्ञान के विषय में और अधिक सही है। बहुत पहले, आप जैसे विद्यार्थी को बताया गया होगा कि मनोविज्ञान (Psychology) शब्द दो ग्रीक शब्दों *साइकी* (Psyche) अर्थात आत्मा और *लॉगोस* (Logos) अर्थात विज्ञान अथवा एक विषय के अध्ययन से बना है। अत: मनोविज्ञान आत्मा अथवा मन का अध्ययन था। परंतु तब से इसका केंद्रीय बिंदु बहुत अधिक बदल चुका है तथा यह अपने को एक वैज्ञानिक विद्याशाखा के रूप में स्थापित कर चुका है जो मानव अनुभव एवं व्यवहार में निहित प्रक्रियाओं की विवेचना करता है। इसमें जिन तथ्यों का अध्ययन किया जाता है, उनका कार्य क्षेत्र कई स्तरों तक फैला है; जैसे- वैयक्तिक, द्विजन (दो व्यक्ति) समूह तथा संगठनात्मक। इनमें से कुछ

का वर्णन हमने पहले किया है। इनके जैविक तथा सामाजिक आधार भी होते हैं।

इसलिए, स्वभावत: इनके अध्ययन की विधियाँ अलग-अलग होती हैं, क्योंकि वे उस तथ्य पर निर्भर करती हैं जिसका अध्ययन करना है। किसी भी विद्याशाखा की परिभाषा इस बात पर निर्भर करती है कि वह किन बातों का तथा कैसे उनका अध्ययन करती है। वास्तव में, वह कैसे अथवा किन विधियों का उपयोग करती है। इसी बात को ध्यान रखते हुए, *औपचारिक रूप से मनोविज्ञान को मानसिक प्रक्रियाओं, अनुभवों एवं विभिन्न संदर्भों में व्यवहारों का अध्ययन करने वाले विज्ञान के रूप मे परिभाषित किया जाता है*। ऐसा करने के लिए मनोविज्ञान जैविक तथा सामाजिक विज्ञानों की विधियों का उपयोग व्यवस्थित ढंग से प्रदत्त प्राप्त करने के लिए करता है। यह प्रदत्तों की अर्थवत्ता बताता है जिससे वे ज्ञान के रूप मे संगठित किए जा सकें। आइए, परिभाषा में प्रयुक्त तीन पदों - मानसिक प्रक्रियाएँ, अनुभव एवं व्यवहार को समझ लिया जाए।

जब हम कहते हैं कि अनुभव, अनुभव करने वाले व्यक्ति के लिए आंतरिक होता है तो हमारा आशय चेतना अथवा **मानसिक प्रक्रियाओं** (mental processes) से होता है। जब हम किसी बात को जानने या उसका स्मरण करने के लिए चिंतन करते हैं अथवा समस्या का समाधान करते हैं तो हम मानसिक प्रक्रियाओं का उपयोग करते हैं। मस्तिष्क की क्रियाओं के स्तर पर ये मानसिक प्रक्रियाएँ परिलक्षित होती हैं। जब हम किसी गणितीय समस्या का समाधान करते हैं तो हमें दिखता है कि मस्तिष्क किस प्रकार की तकनीकों का उपयोग करता है। हम मानसिक क्रियाओं एवं मस्तिष्क की क्रियाओं को एक नहीं मान सकते हैं, यद्यपि वे एक दूसरे पर आश्रित होती हैं। मानसिक क्रियाएँ एवं कोशिकीय क्रियाएँ एक दूसरे से आच्छादित लगती हैं परंतु वे समरूप नहीं होती हैं। मस्तिष्क से भिन्न मन की कोई भौतिक संरचना अथवा अवस्थिति नहीं होती है। मन का आविर्भाव एवं विकास होता है। ऐसा तब होता है जब इस संसार में हमारी अंत:क्रियाएँ एवं अनुभव एक व्यवस्था के रूप में गतिमान होकर संगठित होते हैं जो विविध प्रकार की मानसिक प्रक्रियाओं के घटित होने के लिए उत्तरदायी होते हैं। मस्तिष्क की क्रियाएँ इस बात का संकेत देती हैं कि हमारा मन कैसे कार्य करता है। परंतु हमारे अपने अनुभव एवं मानसिक प्रक्रियाओं की चेतना कोशिकीय अथवा मस्तिष्क की क्रियाओं से बहुत अधिक होती है। जब हम सोते हैं तब भी हमारी मानसिक क्रियाएँ चलती रहती हैं। हम स्वप्न देखते हैं और सूचनाएँ भी ग्रहण करते हैं, जैसे दरवाजे का खटखटाया जाना हम सोते समय भी जान जाते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि हम सोते समय सीखते और स्मरण भी करते हैं। मनोवैज्ञानिक स्मरण करने, सीखने, जानने, प्रत्यक्षण करने एवं अनुभूतियों में रुचि लेते हैं। वे इन प्रक्रियाओं का अध्ययन यह जानने के लिए करते हैं कि हमारा मन कैसे कार्य करता है तथा हमारी सहायता करने के लिए करते हैं जिससे हम अपनी मानसिक क्षमताओं के उपयोग एवं उसके अनुप्रयोग में सुधार कर सकें।

मनोवैज्ञानिक लोगों के **अनुभवों** (experiences) का भी अध्ययन करते हैं। अनुभव स्वभाव से आत्मपरक होते हैं। हम प्रत्यक्षत: न तो दूसरों के अनुभव का प्रेक्षण कर सकते हैं और न ही उसके विषय में जान सकते हैं। अनुभव करने वाला व्यक्ति ही अपने अनुभवों को जान सकता है अथवा उसके प्रति सचेतन हो सकता है। इसलिए अनुभव हमारी चेतना में रचा-बसा रहता है। मनोवैज्ञानिकों ने लोगों की उस पीड़ा पर ध्यान दिया है जो अंतिम साँसें गिन रहे रोगियों में दिखाई देती है अथवा उस मनोवैज्ञानिक पीड़ा पर जो शोकार्त्त होने पर होती है, साथ ही साथ धनात्मक अनुभूतियों का भी जो हम रोमांस करते समय अनुभव करते हैं। कुछ गूढ़ अनुभव भी होते हैं जिन पर मनोवैज्ञानिक ध्यान देते हैं जैसे जब कोई योगी ध्यानावस्थित होता है तो वह चेतना के एक भिन्न धरातल पर पहुँचता है तथा एक नवीन अनुभव को उत्पन्न करता है अथवा जब कोई नशेड़ी किसी नशीली दवा का सेवन हवा में उड़ने के लिए करता है, यद्यपि ऐसी दवाइयाँ हानिकारक होती हैं। अनुभव अनुभवकर्ता की आंतरिक एवं बाह्य दशाओं से प्रभावित होते हैं। यदि गर्मी में किसी दिन आप भीड़ वाली बस में यात्रा करते हैं, तो आपको वैसी असुविधा की अनुभूति नहीं होती है क्योंकि आप अपने मित्रों के साथ पिकनिक के लिए जा रहे होते हैं। इस प्रकार, अनुभव के स्वरूप को आंतरिक एवं बाह्य दशाओं के जटिल परिदृश्य का विश्लेषण करके समझा जा सकता है।

व्यवहार (behaviours) हमारी क्रियाओं, जिसमें हम संलग्न होते हैं, की अनुक्रियाएँ अथवा प्रतिक्रियाएँ होते हैं। जब कुछ आपकी तरफ आता है तो पलकें सामान्य प्रतिवर्त क्रिया में खुलती-बंद होती हैं। आप परीक्षा देते समय यह अनुभव कर सकते हैं कि आपका हृदय धड़कता है। आप सुनिश्चित करते हैं कि आप एक चलचित्र विशेष अपने मित्र के साथ देखेंगे। व्यवहार सामान्य अथवा जटिल, कम समय तक अथवा देर

तक बना रहने वाला हो सकता है। कुछ व्यवहार प्रकट होते हैं। एक प्रेक्षक इन्हें बाह्य जगत में देख सकता है अथवा अनुभव कर सकता है। कुछ आंतरिक या अप्रकट होते हैं। शतरंज का खेल खेलते समय जब आप कठिन परिस्थिति में पड़ते हैं तो आपको अपने हाथ की मांसपेशियाँ फड़कने जैसी लगती होंगी कि एक खास चाल चल सकें। समस्त व्यवहार, प्रकट एवं अप्रकट, वातावरण के कुछ उद्दीपकों अथवा आंतरिक धरातल पर होने वाले परिवर्तनों द्वारा त्वरित रूप से संचलित होने से संबद्ध होते हैं। आप एक बाघ देखते हैं और दौड़ते हैं अथवा सोचते हैं कि बाघ है और भाग जाना चाहिए। कुछ मनोवैज्ञानिक व्यवहार के उद्दीपक (S) एवं अनुक्रिया (R) के मध्य साहचर्य के रूप में अध्ययन करते हैं। उद्दीपक एवं अनुक्रिया दोनों ही आंतरिक अथवा बाह्य हो सकते हैं।

मनोविज्ञान एक विद्याशाखा के रूप में

जैसा कि हमने ऊपर पढ़ा है, मनोविज्ञान व्यवहार, अनुभव एवं मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है। वह यह समझने का प्रयास करता है कि मन कैसे कार्य करता है एवं विभिन्न मानसिक क्रियाएँ विविध व्यवहारों के रूप में कैसे उत्पन्न होती हैं। जब हम लोगों को अनाड़ी अथवा सामान्य रूप में देखते हैं तो हमारे अपने विचार बिंदु अथवा जगत को समझने के हमारे अपने तरीके उनके व्यवहारों एवं अनुभवों की हमारी व्याख्या को प्रभावित करते हैं। मनोवैज्ञानिक व्यवहार एवं अनुभव की व्याख्या से ऐसी अभिनतियों को अनेक तरीकों से कम करने का प्रयास करते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक अपने विश्लेषण को वैज्ञानिक एवं वस्तुनिष्ठ बनाकर ऐसा करते हैं। अन्य लोग व्यवहार की व्याख्या उसके अनुभवकर्ता की दृष्टि से करते हैं क्योंकि वे मानते हैं कि व्यक्तिपरकता मानव अनुभव का महत्वपूर्ण अंग है। भारतीय परंपरा में आत्म-परावर्तन एवं सचेतन अनुभव का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक समझ का एक महत्वपूर्ण स्रोत माना जाता है। कई पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक भी आत्म-परावर्तन (self-reflection) एवं आत्मज्ञान की भूमिका को मानव व्यवहार एवं अनुभव को समझने के लिए महत्वपूर्ण मानने लगे हैं और अब इन पर बल देने लगे हैं। व्यवहार, मानसिक प्रक्रियाओं एवं अनुभव के अध्ययन में मतांतर के बाद भी वे इनको व्यवस्थित एवं सत्यापन करने योग्य शैली में समझने एवं व्याख्या करने का प्रयास करते हैं।

मनोविज्ञान, जो यद्यपि एक बहुत पुरानी ज्ञान विद्याशाखा है, फिर भी यह एक आधुनिक विज्ञान है क्योंकि 1879 में ही लिपज़िग (Leipzig), जर्मनी में इसकी प्रथम प्रयोगशाला की स्थापना हुई थी। तथापि, मनोविज्ञान किस प्रकार का विज्ञान है, यह अभी भी बहस का विषय है, विशेष रूप से उन रूपों पर जो वर्तमान समय में उभरे हैं। मनोविज्ञान को सामान्यतया सामाजिक विज्ञान की श्रेणी में रखा जाता है। लेकिन आपको आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि अन्य देशों में ही नहीं बल्कि भारत में भी स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर पर यह विज्ञान संकाय के अंतर्गत ही एक पाठ्य विषय है। विद्यार्थी विश्वविद्यालयों में स्नातक विज्ञान एवं स्नातकोत्तर विज्ञान की उपाधियाँ प्राप्त करने जाते हैं।

वास्तव में दो प्रसिद्ध उभर रही विद्याशाखाएँ - तंत्रिका विज्ञान और कंप्यूटर विज्ञान बहुत कुछ मनोविज्ञान से लगातार उधार लेती हैं। हममें से बहुत से लोग तीव्रगति से विकसित हो रही मस्तिष्क प्रतिमा तकनीक; जैसे- एफ.एम.आर.आई., ई.ई. जी इत्यादि से परिचित होंगे जिनसे मस्तिष्क की प्रक्रियाओं को वास्तविक समय, अर्थात जब वे वास्तव में हो रही हों, में समझना संभव होता है। इसी प्रकार, सूचना तकनीक के क्षेत्र में, मानव-कंप्यूटर अंत:क्रिया तथा कृत्रिम बुद्धि का विकास संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं में मनोवैज्ञानिक ज्ञान के बिना संभव नहीं हो सकता है। इसलिए, एक विद्याशाखा के रूप में मनोविज्ञान की दो समानांतर धाराएँ हैं। पहली जो अनेक मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक तथ्यों के अध्ययन में भौतिक एवं जैविक विज्ञान की विधियों का उपयोग करती है एवं दूसरी जो उनके अध्ययन में सामाजिक और सांस्कृतिक विज्ञान की विधियों का उपयोग करती है। ये धाराएँ कभी-कभी एक दूसरे में मिलकर भी अपने अलग-अलग मार्गों से जाती हैं। पहली दशा में मनोविज्ञान अपने को मानव व्यवहार की व्याख्या के लिए अधिकतर जैविक सिद्धांतों पर निर्भर रहने वाली विद्याशाखा मानता है। इसकी मान्यता है कि समस्त व्यवहारपरक गोचरों के कारण होते हैं जिनकी खोज नियंत्रित दशा में व्यवस्थित रूप से प्रदत्त संग्रह करके की जा सकती है। यहाँ अनुसंधानकर्ता का लक्ष्य कारण-प्रभाव संबंध को जानना होता है जिससे व्यवहारपरक गोचरों का पूर्वकथन किया जा सके तथा आवश्यकता पड़ने पर व्यवहार को नियंत्रित भी किया जा सके। दूसरी ओर, सामाजिक विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान इस बात पर ध्यान देता है कि व्यवहारपरक गोचरों की व्याख्या अंत:क्रिया के रूप में किस प्रकार की जा सकती है। यहाँ अंत:क्रिया व्यक्ति एवं उसके सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में घटित होती है जिसका कि वह एक हिस्सा होता है। प्रत्येक

व्यवहारपरक गोचर के कई कारण हो सकते हैं। आइए, इन दोनों धाराओं की अलग-अलग व्याख्या करें।

मनोविज्ञान एक प्राकृतिक विज्ञान के रूप में

पूर्व में बताया गया है कि मनोविज्ञान की जड़ें दर्शनशास्त्र में होती हैं। हालाँकि, आधुनिक मनोविज्ञान का विकास मनोवैज्ञानिक गोचरों के अध्ययन में वैज्ञानिक विधियों के अनुप्रयोग के कारण हुआ है। विज्ञान वस्तुनिष्ठता पर सर्वाधिक बल देता है जो एक संप्रत्यय की परिभाषा एवं वह कैसे मापा जा सकता है, के विषय में सहमति बनने पर प्राप्त की जा सकती है। देकार्त (Descartes) से प्रभावित तथा बाद में भौतिकी में हुए विकास से मनोविज्ञान में परिकल्पनात्मक-निगमनात्मक प्रतिरूप का अनुसरण हुआ। इस प्रतिरूप के अनुसार, यदि आपके पास किसी गोचर की व्याख्या हेतु सिद्धांत उपलब्ध है तो वैज्ञानिक उन्नति हो सकती है। उदाहरण के लिए, भौतिकविदों के पास महाविस्फोट सिद्धांत है जो विश्व निर्माण (समष्टि-निर्माण) के होने की व्याख्या करता है। सिद्धांत और कुछ नहीं है बल्कि कुछ कथन होते हैं जो यह बतलाते हैं कि कतिपय जटिल गोचरों की व्याख्या कतिपय प्रतिज्ञप्तियों जो एक-दूसरे से संबंधित होती हैं, की सहायता से किस प्रकार की जा सकती है। एक सिद्धांत पर आधारित वैज्ञानिक निगमन अथवा एक परिकल्पना का प्रस्ताव करता है जो एक काल्पनिक व्याख्या प्रदान करता है कि कोई निश्चित गोचर कैसे घटित होता है। उसके बाद परिकल्पना का परीक्षण किया जाता है और संग्रहीत प्रदत्तों के आधार पर उसे सही अथवा गलत सिद्ध किया जाता है। यदि संग्रहीत प्रदत्त परिकल्पना द्वारा बताए गए तथ्य के विपरीत दिशा की सूचना देते हैं तो सिद्धांत की पुनर्समीक्षा की जाती है। उपर्युक्त उपागम के उपयोग द्वारा मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम, स्मृति, अवधान, प्रत्यक्षण, अभिप्रेरणा एवं संवेग आदि के सिद्धांतों को विकसित किया है तथा सार्थक प्रगति की है। आज तक मनोविज्ञान के अधिकांश अनुसंधान इस उपागम का उपयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त, मनोवैज्ञानिक विकासात्मक उपागम से भी बहुत प्रभावित हुए हैं जो जैविक विज्ञानों में प्रबल है। इस उपागम का उपयोग लगाव तथा आक्रोश जैसे विविध मनोवैज्ञानिक गोचरों की व्याख्या में भी किया गया है।

मनोविज्ञान एक सामाजिक विज्ञान के रूप में

हमने ऊपर चर्चा की है कि मनोविज्ञान की पहचान एक सामाजिक विज्ञान के रूप में अधिक है क्योंकि यह मानव व्यवहार का उसके सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में अध्ययन करता है। मानव मात्र अपने सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों से ही प्रभावित नहीं होते हैं बल्कि वे उनका निर्माण भी करते हैं। मनोविज्ञान एक सामाजिक विज्ञान की विद्याशाखा के रूप में मनुष्यों को सामाजिक प्राणी के रूप में देखता है। रंजीता एवं शबनम की निम्न कहानी देखें।

रंजीता एवं शबनम एक ही कक्षा में थीं। यद्यपि वे एक ही कक्षा में थीं और एक दूसरे से परिचित थीं फिर भी उनका जीवन काफी भिन्न था। रंजीता किसान परिवार से थी। उसके दादी-दादा, माता-पिता एवं बड़े भाई अपने खेतों में काम करते थे। वे गाँव के अपने घर में एक साथ रहते थे। रंजीता एक अच्छी खिलाड़ी थी तथा लंबी दौड़ में अपने विद्यालय में सर्वोत्तम थी। उसे लोगों से मिलना तथा मित्र बनाना पसंद था।

उसके विपरीत, शबनम उसी गाँव में अपनी माँ के साथ रहती थी। उसके पिता पास के एक कस्बे के कार्यालय में काम करते थे और छुट्टियों में घर आते थे। शबनम एक अच्छी कलाकार थी और घर पर रहना तथा अपने छोटे भाई का ध्यान रखना उसे पसंद था। वह शर्मीली थी तथा लोगों से मिलने जुलने से बचती थी।

विगत वर्ष बहुत वर्षा हुई तथा पास की नदी में आई बाढ़ गाँव में आ गई। निचले हिस्से में बने बहुत से घरों में पानी भर गया था। गाँव वालों ने एक साथ मिलकर जो लोग दुखी थे उन्हें आश्रय दिया था। शबनम के घर में भी बाढ़ आई थी तथा वह अपनी माँ एवं भाई के साथ रंजीता के घर रहने आई थी। रंजीता परिवार की सहायता करने तथा उन्हें सुख की अनुभूति कराने में प्रसन्न थी। जब बाढ़ कम हुई तो रंजीता की माँ एवं दादी ने शबनम की माँ का घर बसाने में सहायता की थी। दोनों परिवार एक दूसरे के बहुत निकट हो गए। रंजीता एवं शबनम भी एक दूसरे की घनिष्ठ मित्र हो गई थीं।

रंजीता एवं शबनम के इस उदाहरण में दोनों बिलकुल भिन्न व्यक्ति हैं। जटिल सामाजिक एवं सांस्कृतिक दशाओं में दोनों भिन्न परिवारों में पली-बढ़ी हैं। आप उनके स्वभाव, अनुभव एवं मानसिक प्रक्रियाओं में उनके सामाजिक एवं भौतिक वातावरण के साथ संबंध में कुछ नियमितता देख सकते हैं। परंतु उसी के साथ उनके व्यवहारों एवं अनुभवों में अंतर भी है, जिसका पूर्वकथन ज्ञात मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों से बहुत कठिन होगा। यहाँ यह समझा जा सकता है कि क्यों और कैसे समुदायों में लोग एक दूसरे की कठिनाई के समय सहायता करते हैं तथा त्याग करते हैं, जैसाकि रंजीता एवं शबनम के उदाहरण में देखने को मिला। परंतु उनकी स्थिति में

भी सभी ग्रामीणों ने समान रूप से सहायता नहीं की थी तथा ऐसी समान स्थिति में सभी समुदाय इतना आगे नहीं आते हैं; वास्तव में, कभी-कभी, उसका उलटा ही सही होता है - लोग समान परिस्थितियों में असामाजिक हो जाते हैं तथा विपदा में लूटने तथा शोषण करने में संलग्न हो जाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि मनोविज्ञान मानव व्यवहार एवं अनुभव का उनके समाज तथा संस्कृति के संदर्भों में अध्ययन करता है। अत: मनोविज्ञान एक सामाजिक विज्ञान है जो व्यक्तियों एवं समुदायों पर उनके सामाजिक-सांस्कृतिक एवं भौतिक वातावरण के संदर्भ में ध्यान केंद्रित करता है।

मन एवं व्यवहार की समझ

आपको स्मरण होगा कि मनोविज्ञान को मन के विज्ञान के रूप में परिभाषित किया गया था। कई दशकों तक मनोविज्ञान में मन को अछूत माना गया था क्योंकि यह पूर्ण व्यवहारपरक शब्दावली में न ही परिभाषित हो पाया था, न ही इसकी स्थिति ज्ञात हो पाई थी। यदि मन शब्द का मनोविज्ञान में पुनरागमन हुआ है तो हमें उसके लिए स्पेरी (Sperry) जैसे तंत्रिका वैज्ञानिक एवं पेनरोज़ (Penrose) जैसे भौतिकविद का आभारी होना चाहिए जिन्होंने उसे वह सम्मान दिया जो उसके लिए वांछित था तथा जो सम्मान अब है। मनोविज्ञान सहित विविध विधाओं में वैज्ञानिक हैं जो यह सोचते हैं कि मन का एक एकीकृत सिद्धांत संभव है, यद्यपि यह वर्तमान में नहीं है।

मन क्या है? क्या यह मस्तिष्क के समान है? जैसाकि हमने ऊपर उल्लेख किया, यह सत्य है कि मन मस्तिष्क के बिना नहीं रह सकता, फिर भी मन एक पृथक सत्ता है। अनेक प्रलेखित और रुचिकर उदाहरणों के आधार पर आप सभी इसकी प्रशंसा कर सकते हैं। कुछ रोगियों में दृष्टि के लिए उत्तरदायी पश्चकपाल पालि को शल्य-चिकित्सा द्वारा हटा दिया गया था, तब भी उन्होंने चाक्षुष (आँखों से होने वाला प्रत्यक्ष प्रमाण) संकेतों की स्थिति एवं स्वरूप के विषय में सही उत्तर दिए। इसी प्रकार एक अनाड़ी खिलाड़ी मोटरसाइकिल दुर्घटना में अपनी बाँह गँवा बैठा परंतु बाँह का अनुभव वह बराबर करता रहा तथा उसकी गति का भी अनुभव करता रहा। जब उसे कॉफी दी गई तो उसकी छायाभासी बाँह कॉफी के कप तक पहुँची और जब किसी ने कप हटा दिया तो उसने विरोध किया। तंत्रिका वैज्ञानिकों द्वारा और भी बहुत से उदाहरण दिए गए हैं। एक व्यक्ति जिसे एक दुर्घटना में मस्तिष्क आघात हुआ था, जब वह अस्पताल से घर लौट आया, तो उसने बताया की उसके अभिभावक प्रतिरूपों द्वारा बदल दिए गए हैं। वे पाखंडी हैं। ऐसी प्रत्येक घटना में, व्यक्ति मस्तिष्क के किसी भाग की क्षतिग्रस्तता का शिकार हुआ था परंतु उसका मन बिल्कुल ठीक-ठाक था। वैज्ञानिक पहले यह मानते थे कि मन एवं शरीर में कोई संबंध नहीं है और वे एक दूसरे के समानांतर हैं। भावपरक तंत्रिका विज्ञान में आधुनिक अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि मन एवं व्यवहार में संबंध है। यह दर्शाया गया है कि धनात्मक चाक्षुषीय तकनीकों तथा धनात्मक संवेगों की अनुभूतियों द्वारा शारीरिक प्रक्रियाओं में सार्थक परिवर्तन लाया जा सकता है। ऑर्निश (Ornish) ने अपने रोगियों पर किए गए अनेक अध्ययनों में यह दिखाया है। इन अध्ययनों में जिस व्यक्ति की धमनियों में रुकावट थी उसे यह अनुभव कराया गया कि उसकी अवरुद्ध धमनियों में रक्त प्रवाह हो रहा है। कुछ समय तक इसका अभ्यास करने के बाद इन रोगियों को सार्थक रूप से आराम हुआ क्योंकि धमनियों की अवरुद्धता कम हो गई थी। मानसिक प्रतिमा उदय अर्थात किसी व्यक्ति द्वारा मन में प्रतिमा उत्पन्न करने से भयग्रस्तता (वस्तुओं एवं परिस्थितियों से अतार्किक भय) के कई रूपों का निदान किया गया है। एक नयी विद्याशाखा, जिसे मनस्तंत्रिकीय रोग प्रतिरोधक विज्ञान कहा जाता है, विकसित हो रही है जो रोगप्रतिरोधक तंत्र को सशक्त करने में मन की भूमिका पर बल देती है।

क्रियाकलाप 1.1

आप अपने आपको दी गई परिस्थितियों में कल्पना कीजिए एवं देखिए। प्रत्येक दशा में समाहित तीन मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को बताइए।

1. *आप किसी प्रतिस्पर्धा के लिए निबंध लिख रहे हैं।*
2. *आप किसी रोचक विषय पर अपने मित्र से गपशप कर रहे हैं।*
3. *आप फुटबाल खेल रहे हैं।*
4. *आप टेलीविजन पर सोप ओपेरा देख रहे हैं।*
5. *आपके अच्छे मित्र ने आपको दुख पहुँचाया है।*
6. *आप किसी परीक्षा में भाग ले रहे हैं।*
7. *आप एक महत्वपूर्ण व्यक्ति के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।*
8. *आप अपने विद्यालय में देने के लिए एक भाषण तैयार कर रहे है।*
9. *आप शतरंज खेल रहे हैं।*
10. *आप एक कठिन गणितीय समस्या का समाधान ढूँढ़ने का प्रयास कर रहे हैं।*

आप अपने उत्तरों पर अपने अध्यापक तथा सहपाठियों से चर्चा कीजिए।

मनोविज्ञान विद्याशाखा की प्रसिद्ध धारणाएँ

हम पहले भी बता चुके हैं कि प्रतिदिन, हम सभी लोग एक मनोवैज्ञानिक की तरह कार्य करते हैं। हम यह जानने का प्रयास करते हैं कि कोई व्यक्ति जिस रूप में व्यवहार कर रहा है वह वैसा क्यों कर रहा है और उसका तैयार व्याख्यान देते हैं। मात्र यही नहीं, हममें से सभी ने मानव व्यवहार के लिए अपने-अपने सिद्धांत बनाए हैं। यदि हम किसी कार्यकर्ता से चाहते हैं कि वह अपने विगत कार्य से अच्छा कार्य करे तो हम जानते हैं कि हमें उसे उत्साहित करना पड़ेगा। आपको संभवत: छड़ी का प्रयोग करना पड़े क्योंकि लोग आलसी होते हैं। सामान्य ज्ञान सामान्य बोध पर आधारित मानव व्यवहार के ऐसे सिद्धांतों का वैज्ञानिक अध्ययन करने पर वे सही तथा सही नहीं भी हो सकते हैं। वास्तव में, आप पाएँगे कि मानव व्यवहार की सामान्य बोध आधारित व्याख्याएँ अंधकार में तीर चलाने जैसी होंगी एवं बहुत कम व्याख्या कर पाएँगी। उदाहरण के लिए, यदि आपका प्रिय मित्र कहीं दूर चला जाए तो उसके प्रति आपके आकर्षण में क्या परिवर्तन आएगा? दो बातें कही जाती हैं जो आप अपने उत्तर के रूप में देख सकते हैं। उनमें से एक है 'दृष्टि ओझल मन ओझल'। दूसरी बात 'दूरी से हृदय में प्रेम और प्रगाढ़ होता है'। दोनों बयान एक दूसरे के विपरीत हैं। प्रश्न है कि इनमें कौन सही है। इसकी चयनित व्याख्या इस बात पर निर्भर करेगी कि अपने मित्र के जाने के बाद आपके जीवन में क्या घटित हुआ। मान लीजिए कि आपको एक नया मित्र मिल जाता है तो आप 'दृष्टि ओझल मन ओझल' की बात व्यवहार की व्याख्या के लिए उपयोग में लाएँगे। यदि आपको कोई नया मित्र नहीं मिलता है तो आप व्यग्रता से अपने मित्र को याद करेंगे। इस दशा में 'दूरी से हृदय में प्रेम और प्रगाढ़ होता है' से आप व्यवहार की व्याख्या करेंगे। सामान्य बोध अंधकार में तीर चलाने जैसा होगा। मनोविज्ञान एक विज्ञान के रूप में व्यवहार के स्वरूप को देखता है जिसका पूर्वकथन किया जा सके न कि घटित होने के पश्चात की गई व्याख्या को।

मनोविज्ञान द्वारा उत्पादित वैज्ञानिक ज्ञान सामान्य बोध के प्राय: विरुद्ध होता है। इसका एक उदाहरण ड्वेक (Dweck) का एक अध्ययन है। यह अध्ययन उन बच्चों से संबंधित है जो कठिन समस्या आने अथवा अनुत्तीर्ण होने पर सरलता से उसे छोड़ देते हैं। उसने सोचा कि उनकी सहायता कैसे की जा सकती है। सामान्य बोध के अनुसार हमें उन्हें सरल प्रश्न देना चाहिए जिससे उनके अनुत्तीर्ण होने की दर घट सके तथा उनका विश्वास बढ़ सके। इसके बाद ही उन्हें कठिन समस्याएँ देनी चाहिए जिनको वे अपने नए विश्वास के साथ हल कर सकेंगे। ड्वेक ने इसका परीक्षण किया। उसने विद्यार्थियों के दो समूहों को लिया जिन्हें गणित के प्रश्नों को हल करने के लिए 25 दिनों तक प्रशिक्षण दिया गया था। प्रथम समूह को सरल समस्याएँ दी गई थीं जो वे सहजतापूर्वक हल करने में सक्षम थे। द्वितीय समूह को जटिल एवं सरल दोनों ही प्रकार की समस्याएँ हल करने को दी गई थीं। स्पष्टतया वे जटिल समस्याओं को नहीं हल कर सके। जब कभी ऐसा हुआ तो ड्वेक ने विद्यार्थियों से कहा कि वे समस्याओं को इसलिए नहीं हल कर पाए क्योंकि उन्होंने कठिन प्रयास नहीं किए तथा उन्हें ड्वेक ने पलायन के बदले प्रयास करते रहने को कहा। प्रशिक्षण काल समाप्त होने के बाद ड्वेक ने दोनों समूहों को समस्याओं का एक नया सेट दिया। जो लोग हमेशा सफल हुए थे क्योंकि उन्हें सरल समस्याएँ दी गई थीं वे असफल होने पर बहुत जल्दी पलायन कर गए, तुलना में उनके जिन्होंने सफलता और असफलता दोनों को देखा था तथा जिन्हें यह बताया गया था कि असफलता का कारण प्रयास की कमी रही है।

अन्य बहुत सी सामान्य बोध धारणाएँ हैं जिन्हें आप सत्य नहीं पाएँगे। अभी कुछ ही समय पूर्व कुछ संस्कृतियों के लोगों का विश्वास था कि पुरुष महिलाओं से अधिक बुद्धिमान होते हैं अथवा पुरुषों की तुलना में महिलाएं अधिक दुर्घटना करती हैं। आनुभाविक अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि ये दोनों धारणाएँ गलत हैं। सामान्य बोध यह भी बताता है कि यदि किसी व्यक्ति से अधिक श्रोताओं के समक्ष अपनी बात करने को कहा जाए तो उसका निष्पादन सर्वोत्तम नहीं होता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से पता चलता है कि यदि आपने अच्छा अभ्यास किया है तो वास्तव में आप अच्छा निष्पादन कर सकेंगे क्योंकि अधिक श्रोताओं के रहने से आपका निष्पादन बढ़ेगा।

यह आशा है कि जैसे-जैसे आप इस पाठ्यपुस्तक को पढ़ते जाएँगे आप में अनेक विश्वास एवं मानव व्यवहार की समझ परिवर्तित होती जाएगी। आप यह भी जान सकेंगे कि मनोवैज्ञानिक ज्योतिषियों, तांत्रिकों एवं हस्तरेखा विशारदों जैसा नहीं होता है क्योंकि वह प्रदत्तों पर आधारित बातों का व्यवस्थित अध्ययन करता है और मानव व्यवहार एवं अन्य मनोवैज्ञानिक गोचरों के विषय में सिद्धांत विकसित करता है।

क्रियाकलाप 1.2

विद्यार्थियों के एक प्रतिनिध्यात्मक समूह से पूछिए कि वे क्या समझते हैं कि मनोविज्ञान क्या है? आप तुलना कीजिए कि वे क्या कहते हैं और पाठ्यपुस्तक में क्या कहा गया है। आप उससे क्या निष्कर्ष निकालेंगे।

मनोविज्ञान का विकास

आधुनिक विद्याशाखा के रूप में मनोविज्ञान, जो पाश्चात्य विकास से एक बड़ी सीमा तक प्रभावित है, का इतिहास बहुत छोटा है। इसका उद्भव मनोवैज्ञानिक सार्थकता के प्रश्नों से संबद्ध प्राचीन दर्शनशास्त्र से हुआ है। हमने उल्लेख किया है कि आधुनिक मनोविज्ञान का औपचारिक प्रारंभ 1879 में हुआ जब विलहम वुण्ट (Wilhelm Wundt) ने लिपज़िग, जर्मनी में मनोविज्ञान की प्रथम प्रायोगिक प्रयोगशाला को स्थापित किया। वुण्ट सचेतन अनुभव के अध्ययन मे रुचि ले रहे थे और मन के अवयवों अथवा निर्माण की इकाइयों का विश्लेषण करना चाहते थे। वुण्ट के समय में मनोवैज्ञानिक **अंतर्निरीक्षण** (introspection) द्वारा मन की संरचना का विश्लेषण कर रहे थे इसलिए उन्हें संरचनावादी कहा गया। अंतर्निरीक्षण एक प्रक्रिया थी जिसमें प्रयोज्यों से मनोवैज्ञानिक प्रयोग में कहा गया था कि वे अपनी मानसिक प्रक्रियाओं अथवा अनुभवों का विस्तार से वर्णन करें। यद्यपि, अंतर्निरीक्षण एक विधि के रूप में अनेक मनोवैज्ञानिकों को संतुष्ट नहीं कर सका। इसे कम वैज्ञानिक माना गया क्योंकि अंतर्निरीक्षणीय विवरणों का सत्यापन बाह्य प्रेक्षकों द्वारा संभव नहीं हो सका था। इसके कारण मनोविज्ञान में एक नया परिदृश्य उभर कर आया।

एक अमरीकी मनोवैज्ञानिक, विलियम जेम्स (William James) जिन्होंने कैम्ब्रिज, मसाचुसेट्स में एक प्रयोगशाला की स्थापना लिपज़िग की प्रयोगशाला के कुछ ही समय बाद की थी, ने मानव मन के अध्ययन के लिए **प्रकार्यवादी** (functionalist) उपागम का विकास किया। विलियम जेम्स का विश्वास था कि मानस की संरचना पर ध्यान देने के बजाय मनोविज्ञान को इस बात का अध्ययन करना चाहिए कि मन क्या करता है तथा व्यवहार लोगों को अपने वातावरण से निपटने के लिए किस प्रकार कार्य करता है। उदाहरण के लिए, प्रकार्यवादियों ने इस बात पर ध्यान केंद्रित किया कि व्यवहार लोगों को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने योग्य कैसे बनाता है। विलियम जेम्स के अनुसार वातावरण से अंत:क्रिया करने वाली मानसिक प्रक्रियाओं की एक सतत धारा के रूप में चेतना ही मनोविज्ञान का मूल स्वरूप रूपायित करती है। उस समय के एक प्रसिद्ध शैक्षिक विचारक जॉन डीवी (John Dewey) ने प्रकार्यवाद का उपयोग यह तर्क करने के लिए किया कि मानव किस प्रकार वातावरण के साथ अनुकूलन स्थापित करते हुए प्रभावोत्पादक ढंग से कार्य करता है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में, एक नयी धारा जर्मनी में **गेस्टाल्ट मनोविज्ञान** (gestalt psychology) के रूप में वुण्ट के **संरचनावाद** (structuralism) के विरुद्ध आई। इसने प्रात्यक्षिक अनुभवों के संगठन को महत्वपूर्ण माना। मन के अवयवों पर ध्यान न देकर गेस्टाल्टवादियों ने तर्क किया कि जब हम दुनिया को देखते हैं तो हमारा प्रात्यक्षिक अनुभव प्रत्यक्षण के अवयवों के समस्त योग से अधिक होता है। दूसरे शब्दों में, हम जो अनुभव करते हैं वह वातावरण से प्राप्त आगतों से अधिक होता है। उदाहरण के लिए, जब अनेक चमकते बल्बों से प्रकाश हमारे दृष्टिपटल पर पड़ता है तो हम प्रकाश की गति का अनुभव करते हैं। जब हम कोई चलचित्र देखते हैं तो हम स्थिर चित्रों की तेज़ गति से चलती प्रतिमाओं को अपने दृष्टिपटल पर देखते हैं। इसलिए, हमारा प्रात्यक्षिक अनुभव अपने अवयवों से अधिक होता है। अनुभव समग्रतावादी होता है- यह एक गेस्टाल्ट होता है। हम गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के विषय में प्रत्यक्षण के स्वरूप की चर्चा करते हुए अध्याय 5 में अधिक विस्तार से पढ़ेंगे।

संरचनावाद की प्रतिक्रिया स्वरूप एक और धारा **व्यवहारवाद** (behaviourism) के रूप में आई। सन् 1910 के आसपास जॉन वाट्सन (John Watson) ने मन एवं चेतना के विचार को मनोविज्ञान के केंद्रीय विषय के रूप में अस्वीकार कर दिया। वे दैहिकशास्त्री इवान पावलव (Ivan Pavlov) के प्राचीन अनुबंधन वाले कार्य से बहुत प्रभावित थे। उनके लिए मन प्रेक्षणीय नहीं है और अंतर्निरीक्षण व्यक्तिपरक है क्योंकि उसका सत्यापन एक अन्य प्रेक्षक द्वारा नहीं किया जा सकता है। उनके अनुसार एक विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान क्या प्रेक्षणीय तथा सत्यापन करने योग्य है, इसी पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। उन्होंने मनोविज्ञान को व्यवहार के अध्ययन अथवा अनुक्रियाओं (उद्दीपकों की) जिनका मापन किया जा सकता है तथा वस्तुपरक ढंग से अध्ययन किया जा सकता है, के रूप में परिभाषित किया। वाट्सन के

व्यवहारवाद का विकास अनेक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों द्वारा आगे बढ़ाया गया जिन्हें हम व्यवहारवादी कहते हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध स्किनर (Skinner) थे जिन्होंने व्यवहारवाद का अनुप्रयोग विविध प्रकार की परिस्थितियों में किया तथा इस उपागम को प्रसिद्धि दिलाई। हम स्किनर के कार्य का इस पुस्तक में आगे वर्णन करेंगे।

वाट्सन के बाद यद्यपि व्यवहारवाद मनोविज्ञान में कई दशकों तक छाया रहा परंतु उसी समय मनोविज्ञान के विषय में एवं उसकी विषयवस्तु के विषय में कई अन्य विचार एवं उपागम विकसित हो रहे थे। एक व्यक्ति जिसने मानव स्वभाव के विषय में अपने मौलिक विचार से पूरी दुनिया को झंकृत कर दिया वे सिगमंड फ्रायड (Sigmund Freud) थे। फ्रायड ने मानव व्यवहार को अचेतन इच्छाओं एवं द्वंद्वों का गतिशील प्रदर्शन बताया। मनोवैज्ञानिक विकारों को समझने एवं उन्हें ठीक करने के लिए उन्होंने **मनोविश्लेषण** (psycho-analysis) को एक पद्धति के रूप में स्थापित किया।

बॉक्स 1.1 आधुनिक मनोविज्ञान के विकास में कुछ रोचक घटनाएँ

1879 *विलहम वुण्ट (Wilhelm Wundt) ने लिपज़िग, जर्मनी में प्रथम मनोविज्ञान प्रयोगशाला को स्थापित किया।*

1890 *विलियम जेम्स (William James) ने 'प्रिंसिपल ऑफ साइकोलॉजी' प्रकाशित की।*

1895 *मनोविज्ञान की एक व्यवस्था के रूप में प्रकार्यवाद की स्थापना।*

1900 *सिगमंड फ्रायड (Sigmund Freud) ने मनोविश्लेषणवाद का विकास किया।*

1904 *इवान पावलव (Ivan Pavlov) को नोबल पुरस्कार पाचन व्यवस्था के कार्य के लिए मिला जिससे अनुक्रियाओं के विकास के सिद्धांत को समझा जा सका।*

1905 *बीने (Binet) एवं साइमन (Simon) द्वारा बुद्धि परीक्षण का विकास।*

1916 *कलकत्ता विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान का प्रथम विभाग खुला।*

1920 *जर्मनी में गेस्टाल्ट मनोविज्ञान का उदय हुआ।*

1922 *मनोविज्ञान को इण्डियन साइंस कांग्रेस एसोसिएशन में सम्मिलित किया गया।*

1924 *भारतीय मनोवैज्ञानिक एसोसिएशन की स्थापना हुई।*

1924 *जॉन बी. वाट्सन (John B. Watson) ने व्यवहारवाद पुस्तक लिखी जिससे व्यवहारवाद की नींव पड़ी।*

1928 *एन.एन. सेनगुप्ता (N.N. Sengupta) एवं राधाकमल मुकर्जी (Radhakamal Mukerjee) ने सामाजिक मनोविज्ञान की प्रथम पुस्तक लिखी (लंदन : एलन और अनविन)।*

1949 *डिफेंस साइंस आर्गेनाइजेशन ऑफ इंडिया में मनोवैज्ञानिक शोध खण्ड की स्थापना।*

1951 *मानववादी मनोवैज्ञानिक कार्ल रोजर्स (Carl Rogers) ने रोगी-केंद्रित चिकित्सा प्रकाशित की।*

1953 *बी.एफ. स्किनर (B F. Skinner) ने 'साइंस एंड ह्यूमन बिहेविअर' प्रकाशित की जिससे व्यवहारवाद को मनोविज्ञान के एक प्रमुख उपागम के रूप में बढ़ावा मिला।*

1954 *मानववादी मनोवैज्ञानिक अब्राहम मैस्लो (Abraham Maslow) ने 'मोटिवेशन एंड पर्सनॉलटी' प्रकाशित की।*

1954 *इलाहाबाद में मनोविज्ञानशाला की स्थापना।*

1955 *बंगलौर में नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ मेंटल हेल्थ एंड न्यूरोसाइंसेस (NIMHANS) की स्थापना।*

1962 *रांची में हॉस्पिटल फॉर मेंटल डिज़ीज़िज की स्थापना।*

1973 *कोनराड लारेंज़ (Konrad Lorenz) तथा निको टिनबर्गेन (Niko Tinbergen) को उनके कार्य पशु व्यवहार की उपजाति विशिष्टता की अंतर्निर्मित शैली जो बिना किसी पूर्व अनुभव अथवा अधिगम के होती है, पर नोबल पुरस्कार मिला।*

1978 *निर्णयन पर किए गए कार्य के लिए हर्बर्ट साइमन (Herbert Simon) को नोबल पुरस्कार प्राप्त।*

1981 *डेविड ह्यूबल (David Hubel) एवं टार्स्टेन वीसल (Torsten Wiesel) को मस्तिष्क की दृष्टि कोशिकाओं पर शोध के लिए नोबल पुरस्कार प्राप्त।*

1981 *रोजर स्पेरी (Roger Sperry) को मस्तिष्क विच्छेद अनुसंधान के लिए नोबल पुरस्कार प्राप्त।*

1989 *नेशनल अकेडमी ऑफ साइकोलॉजी (NAOP) इंडिया की स्थापना।*

1997 *गुड़गाँव, हरियाणा में नेशनल ब्रेन रिसर्च सेंटर (NBRC) की स्थापना।*

2002 *अनिश्चितता में मानव निर्णयन के अनुसंधान पर डेनियल कहनेमन (Daniel Kahneman) को नोबल पुरस्कार मिला।*

2005 *आर्थिक व्यवहार में सहयोग एवं द्वंद्व की समझ में खेल सिद्धांत के अनुप्रयोग के लिए थामस शेलिंग (Thomas Schelling) को नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ।*

फ्रायड की मनोविश्लेषण पद्धति ने मानव स्वभाव को आनंद प्राप्ति की (बहुधा लैंगिक) इच्छाओं की संतुष्टि के लिए अचेतन इच्छाओं द्वारा अभिप्रेरित बताया। जबकि **मानवतावादी परिदृश्य** (humanistic perspective) ने मानव स्वभाव को एक धनात्मक विचारधारा बताया। मानवतावादी, जैसे कार्ल रोजर्स (Carl Rogers) तथा अब्राहम मैस्लो (Abraham Maslow) ने मानव की स्वतंत्र कामनाओं तथा उनके विकसित होने की उद्दाम लालसाओं एवं अपने आंतरिक विभवों के मुखरित होने की इच्छाओं पर अधिक बल दिया। उनका तर्क था कि व्यवहारवाद वातावरण की दशाओं से निर्धारित व्यवहार पर बल देता है जो मानव स्वतंत्रता एवं गरिमा का न्यूनानुमान करता है तथा मानव स्वभाव के विषय में एक यांत्रिक विचार रखता है।

इन विविध उपागमों ने आधुनिक मनोविज्ञान का इतिहास रचा तथा उसके विकास के विविध पक्षों को प्रस्तुत किया। इनमें से प्रत्येक पक्ष की अपनी केंद्रीयता है तथा वे मनोवैज्ञानिक जटिलताओं की तरफ हमारा ध्यानकर्षण करते हैं। प्रत्येक उपागम के अपने गुण एवं दोष हैं। इनमें से कुछ उपागमों का इस विद्याशाखा के विकास में आगे भी सहयोग रहा है। गेस्टाल्ट उपागम के विविध पक्ष तथा संरचनावाद के पक्ष संयुक्त होकर **संज्ञानात्मक परिदृश्य** (cognitive perspective) का विकास करते हैं जो इस बात पर केंद्रित होते हैं कि हम दुनिया को कैसे जानते हैं। **संज्ञान** (cognition) ज्ञान होने की प्रक्रिया होता है। इसमें चिंतन, समझ, प्रत्यक्षण, स्मरण करना, समस्या समाधान तथा अन्य अनेक मानसिक प्रक्रियाएँ आती हैं जिससे हमारा दुनिया का ज्ञान विकसित होता है- हम दुनिया को जान सकते हैं। यह हमें इस योग्य बनाता है कि हम वातावरण के साथ विशिष्ट ढंग से रह सकें। कुछ संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक मानव मन को कंप्यूटर की तरह एक सूचना प्रक्रमण तंत्र के रूप में देखते हैं। इस विचारधारा के अनुसार मन एक कंप्यूटर की तरह का होता है जो सूचना को प्राप्त करता है, प्रक्रमण करता है, रूपांतरण करता है, संचित करता है तथा आवश्यकता पड़ने पर उसकी पुनर्प्राप्ति करता है। आधुनिक संज्ञानात्मक मनोविज्ञान मनुष्यों को उनके सामाजिक एवं भौतिक वातावरण के अन्वेषणों के द्वारा अपने मन की सक्रिय रचना करने वाले के रूप में देखता है। इस विचारधारा को कभी-कभी **निर्मितिवाद** (constructivism) कहते हैं। बाल-विकास के विषय में पियाजे (Piaget) का सिद्धांत, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे, को मानव मन के विकास का निर्मितिपरक सिद्धांत कहा जाता है। रूस के एक अन्य मनोवैज्ञानिक व्यगाट्स्की (Vygotsky) ने आगे बढ़ कर सुझाव दिया है कि मानव मन का विकास सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रक्रियाओं के माध्यम से होता है जिसमें मन को वयस्कों एवं बच्चों के मध्य होने वाली अंत:क्रियाओं द्वारा सांस्कृतिक निर्मितियों के रूप में देखा जाता है। दूसरे शब्दों में, जहाँ पियाजे मानते हैं कि बच्चे अपने मन का निर्माण सक्रिय रूप से करते हैं वहीं व्यगाट्स्की का मत है कि मन एक संयुक्त सांस्कृतिक निर्मिति है तथा वयस्कों एवं बच्चों की अंत:क्रिया के परिणामस्वरूप उद्भूत होती है।

भारत में मनोविज्ञान का विकास

भारतीय दार्शनिक परंपरा इस बात में धनी रही है कि वह मानसिक प्रक्रियाओं तथा मानव चेतना, स्व, मन-शरीर के संबंध तथा अनेक मानसिक प्रकार्य; जैसे- संज्ञान, प्रत्यक्षण, भ्रम, अवधान तथा तर्कना आदि पर उनकी झलक के संबंध में केंद्रित रही है। दुर्भाग्य से भारतीय परंपरा की गहरी दार्शनिक जड़ें भारतवर्ष में आधुनिक मनोविज्ञान के विकास को नहीं प्रभावित कर सकी हैं। भारत में इसके विकास पर पाश्चात्य मनोविज्ञान का भी प्रभुत्व निरंतर बना हुआ है, यद्यपि यहाँ एवं विदेश में भी इसकी एक अलग पहचान के लिए कुछ प्रयास किए गए हैं और कुछ बिंदु सुनिश्चित किए गए हैं। इन प्रयासों ने वैज्ञानिक अध्ययनों के माध्यम से भारतीय दार्शनिक परंपरा की बहुत सी मान्यताओं की सत्यता स्थापित करने का यत्न किया है।

भारतीय मनोविज्ञान का आधुनिक काल कलकत्ता विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र विभाग में 1915 में प्रारंभ हुआ जहाँ प्रायोगिक मनोविज्ञान का प्रथम पाठ्यक्रम आरंभ किया गया तथा प्रथम मनोविज्ञान प्रयोगशाला स्थापित हुई। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने 1916 में प्रथम मनोविज्ञान विभाग तथा 1938 में अनुप्रयुक्त मनोविज्ञान का विभाग प्रारंभ किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय में आधुनिक प्रायोगिक मनोविज्ञान का प्रारंभ भारतीय मनोवैज्ञानिक डॉ. एन.एन. सेनगुप्ता, जो वुण्ट की प्रायोगिक परंपरा में अमेरिका में प्रशिक्षण प्राप्त थे, से बहुत प्रभावित था। प्रोफेसर जी. बोस फ्रायड के मनोविश्लेषण में प्रशिक्षण प्राप्त थे- एक ऐसा क्षेत्र जिसने भारत में मनोविज्ञान के आरंभिक विकास को प्रभावित किया। प्रोफेसर बोस ने 'इंडियन साइकोएनेलिटिकल एसोसिएशन' की स्थापना 1922

में की थी। मैसूर विश्वविद्यालय एवं पटना विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान के अध्यापन एवं अनुसंधान के प्रारंभिक केंद्र प्रारंभ हुए। प्रारंभ से मनोविज्ञान भारत में एक सशक्त विद्याशाखा के रूप में विकसित हुआ। मनोविज्ञान अध्यापन, अनुसंधान तथा अनुप्रयोग के अनेक केंद्र हैं। मनोविज्ञान में उत्कृष्टता अथवा वैशिष्ट्य के दो केंद्र उत्कल विश्वविद्यालय, भुवनेश्वर तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सहायता प्राप्त हैं। करीब 70 विश्वविद्यालयों में मनोविज्ञान के पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं।

दुर्गानन्द सिन्हा ने अपनी पुस्तक *'साइकोलॉजी इन ए थर्ड वर्ल्ड कन्ट्री : दि इंडियन एक्सपीरियन्स'* (1986 में प्रकाशित) में भारत में सामाजिक विज्ञान के रूप में चार चरणों में आधुनिक मनोविज्ञान के इतिहास को खोजा है। उनके अनुसार, प्रथम चरण स्वतन्त्रता की प्राप्ति तक एक ऐसा चरण था जब प्रयोगात्मक, मनोविश्लेषणात्मक एवं मनोवैज्ञानिक परीक्षण अनुसंधान पर बहुत बल था जिससे पाश्चात्य देशों का मनोविज्ञान के विकास में योगदान परिलक्षित हुआ था। द्वितीय चरण में 1960 तक भारत में मनोविज्ञान की विविध शाखाओं में विस्तार का समय था। इस चरण में भारतीय मनोविज्ञानिकों की इच्छा थी कि भारतीय पहचान के लिए पाश्चात्य मनोविज्ञान को भारतीय संदर्भों से जोड़ा जाए। उन्होंने ऐसा प्रयास पाश्चात्य विचारों द्वारा भारतीय परिस्थितियों को समझने के लिए किया। फिर भी, भारत में मनोविज्ञान 1960 के बाद भारतीय समाज के लिए समस्या-केंद्रित अनुसंधानों द्वारा सार्थक हुआ। मनोवैज्ञानिक भारतीय समाज की समस्याओं के प्रति अधिक ध्यान देने लगे। पुनश्च, अपने सामाजिक संदर्भ में पाश्चात्य मनोविज्ञान पर अतिशय निर्भरता का अनुभव किया जाने लगा। महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिकों ने उस अनुसंधान की सार्थकता पर अधिक बल दिया जो हमारी परिस्थितियों के लिए सार्थक हों। भारत में मनोविज्ञान की नयी पहचान की खोज के कारण चतुर्थ चरण के रूप में 1970 के अंतिम समय में देशज मनोविज्ञान का उदय हुआ। पाश्चात्य ढाँचे को नकारने के अतिरिक्त भारतीय मनोवैज्ञानिकों ने एक ऐसी समझ विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया जो सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से सार्थक ढाँचे पर आधारित हो। इस रुझान की झलक उन प्रयासों में दिखी जिनसे पारंपरिक भारतीय मनोविज्ञान पर आधारित उपागमों का विकास हुआ, जो हमने प्राचीन ग्रंथों एवं धर्मग्रंथों से लिए थे। इस प्रकार इस चरण की विशेषता को देशज मनोविज्ञान के विकास, जो भारतीय सांस्कृतिक संदर्भ से उत्पन्न हुआ था तथा भारतीय मनोविज्ञान एवं समाज के लिए सार्थक था और भारतीय पारंपरिक ज्ञान पर आधारित था, द्वारा जाना जाता है। अब ये विकास सतत रूप से हो रहे हैं, भारत में मनोविज्ञान विश्व में मनोविज्ञान के क्षेत्र में सार्थक योगदान कर रहा है। यह बहुत ही संदर्भगत है जिसमें मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के विकास की आवश्यकता है जिनकी जड़ें हमारे सामाजिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ में पाई जाएँ। इसी के साथ हम देखते हैं कि नए अनुसंधान अध्ययन, जिसमें तंत्रिका-जैविक तथा स्वास्थ्य विज्ञान के अन्तरापृष्ठीय स्वरूप समाविष्ट हैं, किए जा रहे हैं।

भारत में मनोविज्ञान का अनुप्रयोग अनेक व्यावसायिक क्षेत्रों में किया जा रहा है। मनोवैज्ञानिक मात्र विशिष्ट समस्याओं वाले बच्चों के साथ ही कार्य नहीं कर रहे हैं, वे चिकित्सालयों में नैदानिक मनोवैज्ञानिक के रूप में नियुक्त हो रहे हैं, मानव संसाधन विकास विभाग एवं विज्ञापन विभागों जैसे कंपनी संगठनों में, खेलकूद निदेशालयों में, विकास क्षेत्रक तथा सूचना प्रौद्योगिकी उद्योगों में नियुक्त हो रहे हैं।

मनोविज्ञान की शाखाएँ

वर्षों में मनोविज्ञान के विविध विशिष्ट क्षेत्रों का प्रादुर्भाव हुआ है जिनमें से कुछ का वर्णन इस खंड में किया जा रहा है।

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान अर्जन, संग्रह, प्रहस्तन तथा सूचनाओं के रूपांतरण में, जो वातावरण से प्राप्त होती हैं, उनके उपयोग तथा संप्रेषण के साथ मानसिक प्रक्रियाओं की खोज करता है। प्रमुख संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ अवधान, प्रत्यक्षण, स्मृति, तर्कना, समस्या समाधान, निर्णयन एवं भाषा हैं। आप इन विषयों को इस पाठ्यपुस्तक में आगे पढ़ेंगे। इन प्रक्रियाओं के अध्ययन के लिए मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में प्रयोग करते हैं। इनमें से कुछ पारिस्थितिक उपागम का भी उपयोग करते हैं अर्थात वह उपागम जो संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को उनके प्राकृतिक स्वरूप में अध्ययन करने के लिए पर्यावरणी कारकों पर ध्यान देते हैं। संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिक तंत्रिकावैज्ञानिक एवं कंप्यूटर वैज्ञानिकों के साथ भी सहयोग करते हैं।

जैविक मनोविज्ञान व्यवहार तथा शारीरिक व्यवस्था के मध्य संबंधों, मस्तिष्क तथा अन्य तांत्रिका तंत्र, प्रतिरोधक व्यवस्था, एवं आनुवंशिकी सहित, पर ध्यान केंद्रित करते हैं। जैविक

मनोवैज्ञानिक तंत्रिकावैज्ञानिकों, प्राणिवैज्ञानिकों तथा मानवशास्त्रियों के साथ भी कार्य करते हैं। **तंत्रिका मनोविज्ञान** (neuro-psychology) अनुसंधान के एक क्षेत्र के रूप में उभरा है जहाँ मनोवैज्ञानिक एवं तंत्रिकावैज्ञानिक मिल-जुलकर कार्य करते हैं। अनुसंधानकर्ता तंत्रिका संचारकों की भूमिका, जो मस्तिष्क के विभिन्न क्षेत्रों में तंत्रिका संचार के लिए उत्तरदायी होते हैं और इसीलिए साहचर्ययुक्त मानसिक प्रकार्यों में इनका अध्ययन करते हैं। वे अपना अनुसंधान प्रकृत रूप में कार्य करने वाले मस्तिष्क के व्यक्तियों तथा शल्य मस्तिष्क वाले लोगों के प्रकार्यो का विकसित तकनीकों यथा ई.ई.जी., पी.ई.टी. तथा एफ.एम.आर.आई. आदि की सहायता से, जिसके विषय में आप आगे पढ़ेंगे, अध्ययन करते हैं।

विकासात्मक मनोविज्ञान गर्भधारण से लेकर वृद्धावस्था तक के जीवन विस्तार के विभिन्न आयु एवं अवस्थाओं में होने वाले भौतिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों का अध्ययन करता है। विकासात्मक मनोवैज्ञानिकों का प्राथमिक लक्ष्य यह जानना होता है कि जो हम हैं वह कैसे हुए। बहुत वर्षों तक बच्चों एवं किशोरों के विकास पर ध्यान केंद्रित था। यद्यपि आजकल वयस्कों एवं काल-प्रभावन के विषय में विकासात्मक मनोवैज्ञानिक बहुत अधिक रुचि ले रहे हैं। वे जैविक, सामाजिक-सांस्कृतिक तथा पर्यावरणी कारकों जो मनोवैज्ञानिक विशेषताओं यथा बुद्धि, संज्ञान, संवेग, मिज़ाज, नैतिकता एवं सामाजिक संबंधों को प्रभावित करते हैं, पर अधिक ध्यान केंद्रित करते हैं। विकासात्मक मनोवैज्ञानिक मानवशास्त्रियों, शिक्षाविदों, तंत्रिकावैज्ञानिकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, परामर्शदाताओं तथा ज्ञान की सभी शाखाओं, जो मनुष्य की संवृद्धि एवं विकास से संबद्ध हैं, के साथ मिलकर कार्य करते हैं।

सामाजिक मनोविज्ञान यह समन्वेषण करता है कि लोग अपने सामाजिक वातावरण से कैसे प्रभावित होते हैं, लोग दूसरों के विषय में कैसा सोचते हैं तथा उन्हें कैसे प्रभावित करते हैं। सामाजिक मनोवैज्ञानिक अभिवृत्ति, समरूप तथा अधिकारियों के प्रति आज्ञाकारिता, अंतर्वैयक्तिक आकर्षण, सहायतापरक व्यवहार, पूर्वाग्रह, आक्रोश, सामाजिक अभिप्रेरणा, अंतर्समूह संबंध आदि विषयों में रुचि लेते हैं।

अंतःसांस्कृतिक एवं सांस्कृतिक मनोविज्ञान व्यवहार, विचार तथा संवेग को समझने में संस्कृति की भूमिका का अध्ययन करता है। इसकी मान्यता है कि मानव व्यवहार मात्र मानव-जैविक विभवों की प्रस्तुति न होकर संस्कृति का भी उत्पाद होता है। इसलिए, व्यवहार का अध्ययन उसके सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में किया जाना चाहिए। जैसाकि आप इस पुस्तक के विभिन्न अध्यायों में पढ़ेंगे, संस्कृति मानव व्यवहार को विविध रूपों एवं विभिन्न सीमाओं तक प्रभावित करती है।

पर्यावरणी मनोविज्ञान तापमान, आर्द्रता, प्रदूषण तथा प्राकृतिक आपदा जैसे भौतिक कारकों का मानव व्यवहार के साथ अंतःक्रियाओं का अध्ययन करता है। कार्य करने के स्थान पर भौतिक चीज़ों की व्यवस्था के स्वरूप का स्वास्थ्य, सांवेगिक अवस्था तथा अंतर्वैयक्तिक संबंधों पर पड़ने वाले प्रभावों का अन्वेषण करता है। इस क्षेत्र में नवीन विषय के रूप में किस सीमा तक, उत्सर्ग प्रबंधन, जनसंख्या विस्फोट, ऊर्जा संरक्षण, सामुदायिक संसाधनों का सक्षम उपयोग आदि जुड़े हैं जो मानव व्यवहार के प्रकार्य होते हैं।

स्वास्थ्य मनोविज्ञान रोगों के विकास, बचाव एवं निदान में मनोवैज्ञानिक कारकों (उदाहरण के लिए, दबाव, दुश्चिंता) की भूमिका पर केंद्रित होता है। स्वास्थ्य मनोवैज्ञानिकों की रुचि के क्षेत्र दबाव तथा समायोजी व्यवहार, मनोवैज्ञानिक कारकों एवं स्वास्थ्य के बीच संबंध, डॉक्टर-रोगी संबंध तथा स्वास्थ्य वृद्धि के कारकों को बढ़ावा देने वाले उपाय हैं।

नैदानिक एवं उपबोधन मनोविज्ञान दुश्चिंता, अवसाद, खानपान व्यतिक्रम तथा चिरकालिक पदार्थ दुरुपयोग जैसे मनोवैज्ञानिक व्यतिक्रमों के निदान एवं बचाव से संबंधित होता है। एक संबंधित क्षेत्र उपबोधन का होता है जिसका लक्ष्य लोगों के दैनंदिन प्रकार्यों में लोगों की रोजमर्रा की समस्याओं को हल करने तथा चुनौतीपूर्ण स्थितियों में सामंजस्य बनाने में सहायता करके सुधार लाना होता है। नैदानिक मनोवैज्ञानिकों का कार्य उपबोधन मनोवैज्ञानिकों के कार्य से भिन्न नहीं होता है, यद्यपि उपबोधन मनोवैज्ञानिक कभी-कभी ऐसे लोगों का अध्ययन करते हैं जिनकी समस्याएँ कम गंभीर रहती हैं। बहुत सी स्थितियों में उपबोधन मनोवैज्ञानिक छात्रों को उनकी व्यक्तिगत समस्याओं एवं जीवनवृत्ति योजना के विषय में अपनी सलाह भी देते हैं। नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की तरह मनोरोगविज्ञानी भी मनोवैज्ञानिक व्यतिक्रमों के कारणों, उपचारों तथा उनसे बचाव का अध्ययन करते हैं। नैदानिक मनोवैज्ञानिक एवं मनोरोगविज्ञानी एक दूसरे से कैसे भिन्न होते हैं? नैदानिक मनोवैज्ञानिक के पास मनोविज्ञान की एक उपाधि होती है जिसमें वह कठिन प्रशिक्षण प्राप्त करता है तथा वह लोगों के मनोवैज्ञानिक

व्यतिक्रमों का उपचार करता है। इसके विपरीत, मनोरोगविज्ञानी के पास चिकित्सा विज्ञान की उपाधि होती है जो मनोवैज्ञानिक व्यतिक्रम के निदान हेतु वर्षों का विशिष्ट प्रशिक्षण प्राप्त किए हुए हाते हैं। एक महत्वपूर्ण अंतर यह होता है कि मनोरोगविज्ञानी ही दवाइयों का सुझाव दे सकता है तथा विद्युत आघात उपचार प्रदान कर सकता है जबकि नैदानिक मनोरोगवैज्ञानिक ऐसा नहीं कर सकता है।

औद्योगिक/संगठनात्मक मनोविज्ञान कार्यस्थल व्यवहार का अध्ययन करता है तथा कार्मिकों एवं उन्हें नियुक्त करने वाले संगठनों पर ध्यान देता है। औद्योगिक/संगठनात्मक मनोवैज्ञानिक कर्मचारियों के प्रशिक्षण, कार्यदशा में सुधार तथा कर्मचारियों की नियुक्ति के मानक से संबंधित होता है। उदाहरण के लिए, संगठनात्मक मनोवैज्ञानिक इस बात का सुझाव दे सकता है कि कंपनी एक नयी प्रबंध संरचना तैयार करे जो कर्मचारियों तथा प्रबंधक के मध्य के संवाद में वृद्धि कर सके। औद्योगिक एवं संगठनात्मक मनोवैज्ञानिक की पृष्ठभूमि में संज्ञानात्मक तथा सामाजिक मनोविज्ञान में प्राप्त प्रशिक्षण होता है।

शैक्षिक मनोविज्ञान इस बात का अध्ययन करता है कि विभिन्न आयुवर्ग के लोग कैसे सीखते हैं। शैक्षिक मनोवैज्ञानिक मूलत: शैक्षिक और कार्यदशा दोनों में लोग निर्देशात्मक विधियों एवं सामग्रियों के उपयोग से कैसे प्रशिक्षित किए जाते हैं, से संबंधित होते हैं। वे शिक्षा, उपबोधन और अधिगम की समस्याओं के लिए सार्थक पक्षों के अनुसंधानों से भी संबंधित होते हैं। एक संबंधित क्षेत्र, **विद्यालय मनोविज्ञान** (school psychology) बच्चों के बौद्धिक, सामाजिक एवं सांवेगिक विकास के कार्यक्रमों को तैयार करने में ध्यान देता है, जिसमें विशेष आवश्यकता वाले बच्चे भी सम्मिलित होते हैं। वे मनोविज्ञान के ज्ञान का स्कूल परिवेश में अनुप्रयोग करते हैं।

क्रीड़ा मनोविज्ञान क्रीड़ा निष्पादन का अभिप्रेरणा स्तर बढ़ाकर मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों द्वारा सुधार लाने का प्रयास करता है। क्रीड़ा मनोविज्ञान तुलनात्मक रीति से नया क्षेत्र है परंतु विश्व स्तर पर स्वीकृति पा रहा है।

मनोविज्ञान की अन्य उद्भूत शाखाएँ : मनोविज्ञान के अनुसंधान एवं अनुप्रयोग में अंतर्विषयक ध्यान के कारण अन्य अनेक क्षेत्र उत्पन्न हुए हैं; जैसे- वैमानिकी मनोविज्ञान, अंतरिक्ष मनोविज्ञान, सैन्य मनोविज्ञान, न्यायालयिक मनोविज्ञान, ग्रामीण मनोविज्ञान, अभियांत्रिकी मनोविज्ञान, प्रबंधकीय मनोविज्ञान, सामुदायिक मनोविज्ञान, महिला मनोविज्ञान, तथा राजनैतिक मनोविज्ञान कुछ उदाहरण हैं। नीचे दिए गए क्रियाकलाप 1.3 से मनोविज्ञान में अपनी रुचि का क्षेत्र पहचानिए।

क्रियाकलाप 1.3

पुस्तक में पढ़े गए मनोविज्ञान के क्षेत्रों के विषय में सोचिए। नीचे दी गई सूची देखिए तथा 1 (अत्यंत रुचिकर) से 11 (अल्प रुचिकर) की कोटि प्रदान कीजिए।

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान
जैविक मनोविज्ञान
विकासात्मक मनोविज्ञान
सामाजिक मनोविज्ञान
अंत:सांस्कृतिक एवं सांस्कृतिक मनोविज्ञान
पर्यावरणी मनोविज्ञान
स्वास्थ्य मनोविज्ञान
नैदानिक एवं उपबोधन मनोविज्ञान
औद्योगिक/संगठनात्मक मनोविज्ञान
शैक्षिक मनोविज्ञान
क्रीड़ा मनोविज्ञान

इस पाठ्यपुस्तक को पढ़ने और पाठ्यक्रम को पूरा करने के बाद, आप इस क्रियाकलाप की ओर लौटना और अपनी कोटि में परिवर्तन करना चाहेंगे।

अनुसंधान एवं अनुप्रयोग के कथ्य

पिछले अनुभाग में आपने मनोविज्ञान की विविध शाखाओं के विषय में जानकारी प्राप्त की। यदि आपसे एक सरल प्रश्न पूछा जाए कि 'मनोवैज्ञानिक क्या करते हैं?' तो आपका चिरपरिचित उत्तर होगा कि वे विविध परिवेशों में कार्य करते समय बहुत-सी क्रियाएँ करते हैं। यदि आप उनके कार्यों का विश्लेषण करने का प्रयास करें तो आप पाएँगे कि वे मूलत: दो प्रकार के कार्यों में संलग्न रहते हैं, एक मनोविज्ञान में **अनुसंधान** (research) तथा दूसरा मनोविज्ञान के **अनुप्रयोग** (application)।

मनोविज्ञान के अनुसंधान एवं अनुप्रयोग को दिशा प्रदान करने वाले कथ्य (themes) क्या होते हैं? ऐसे बहुत से कथ्य हैं। हम उनमें से कुछ पर सकेंद्रण करेंगे।

कथ्य 1 : *अन्य विज्ञानों की भाँति मनोविज्ञान व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं के सिद्धांतों का विकास करने का प्रयास करता है।*

अनुसंधान में मुख्य बात व्यवहार एवं मानसिक घटनाओं तथा प्रक्रियाओं की समझ एवं व्याख्या की होती है। मनोवैज्ञानिक, जो अनुसंधान करना चाहते हैं, अन्य वैज्ञानिकों की तरह ही कार्य करते हैं। उन्हीं की भाँति वे निष्कर्ष निकालते हैं जो प्रदत्तों द्वारा समर्थित होता है। वे प्रयोगों की अभिकल्पना करते हैं तथा उनको संपादित करते हैं अथवा वृहत्तर आयाम के मनोवैज्ञानिक गोचरों का नियंत्रित दशा में अध्ययन करते हैं। इसका उद्देश्य व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं के सामान्य सिद्धांतों का विकास करना होता है। ऐसे अध्ययनों के आधार पर लिए गए निष्कर्ष चूँकि सभी के ऊपर लागू होते हैं इसलिए सार्वभौमिक होते हैं। प्रायोगिक, तुलनात्मक, शरीरक्रिया, विकासात्मक, सामाजिक, विभेद एवं अपसामान्य मनोविज्ञान आदि क्षेत्रों को प्राथमिक मनोविज्ञान का क्षेत्र कहा जाता है।

इन क्षेत्रों में अनुसंधान की विषयवस्तु एक दूसरे से भिन्न होती है। उदाहरण के लिए, प्रायोगिक मनोवैज्ञानिक प्रत्यक्षण, अधिगम, स्मृति, चिंतन एवं अभिप्रेरणा आदि प्रक्रियाओं का प्रयोगात्मक विधि द्वारा अध्ययन करते हैं जबकि शरीरक्रिया मनोवैज्ञानिक इन व्यवहारों के शरीरक्रियात्मक आधारों का परीक्षण करने का प्रयास करते हैं। विकासात्मक मनोवैज्ञानिक मानव जीवन के प्रारंभ से लेकर अंत तक के व्यवहार में गुणात्मक एवं मात्रात्मक परिवर्तनों का अध्ययन करते हैं, जबकि सामाजिक मनोवैज्ञानिक सामाजिक सदर्भों में लोगों के व्यवहार एवं अनुभव के अध्ययन पर ध्यान केंद्रित करते हैं।

कथ्य 2 : *मानव व्यवहार व्यक्तियों एवं वातावरण के लक्षणों का एक प्रकार्य है।*

कुर्ट लेविन (Kurt Lewin) ने सर्वप्रथम प्रसिद्ध समीकरण $B=f(P,E)$ का प्रतिपादन किया था जो यह बताता है कि व्यवहार व्यक्ति एवं उसके वातावरण का उत्पाद है। यह समीकरण साधारण ढंग से यह बताता है कि लोगों के व्यवहार में जो अंतर हम पाते हैं वह बड़ी सीमा तक इस तथ्य के कारण पाते हैं कि लोग अपने गुणों के कारण एक दूसरे से भिन्न होते हैं और ऐसा उनके आनुवंशिक निधि तथा विविध अनुभवों एवं इसी प्रकार उनके अपने वातावरण द्वारा हो पाता है। यहाँ वातावरण का सम्प्रत्ययन, जिस रूप में उसका प्रत्यक्षण होता है उसी रूप में अथवा जिस रूप में वह व्यक्ति के लिए अर्थवान होता है उस रूप में, किया जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने बहुत पहले यह कहा था कि कोई भी दो व्यक्ति एकसमान नहीं होते हैं, यदि उनके मनोवैज्ञानिक गुणों को देखा जाए तो वे बुद्धि, अभिरुचि, मूल्य, अभिक्षमता तथा अन्य बहुत से व्यक्तित्व संबंधी कारकों के आधार पर एक दूसरे से भिन्न होते हैं। वास्तव में, मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का निर्माण इन्हीं भिन्नताओं के मापन के लिए किया गया था। एक विद्याशाखा, जिसे विभेद मनोविज्ञान कहा जाता है जो उन्नीसवीं सदी के अंतिम समय एवं बीसवीं सदी के आरंभ में प्रारंभ हुई, वैयक्तिक विभेद पर बल देती है।

इसकी बहुत सी बातें व्यक्तित्व मनोविज्ञान के रूप में आज भी दिखाई देती हैं। मनोवैज्ञानिक विश्वास करते हैं कि यद्यपि मूल मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ सार्वभौमिक होती हैं तब भी वे वैयक्तिक गुणों के प्रति संवेदनशील होती हैं। वैयक्तिक विभेद के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक यह भी विश्वास करते हैं कि पर्यावरणी कारकों के कारण भी व्यवहार में भिन्नता दिखाई देती है। मनोवैज्ञानिकों ने यह विचारधारा मानवशास्त्रियों, विकासवादी सिद्धांतकारों तथा जीववैज्ञानिकों से ग्रहण की है। मनोवैज्ञानिक विविध मनोवैज्ञानिक गोचरों की व्याख्या व्यक्ति–वातावरण की अंत:क्रियाओं के आधार पर करता है। यद्यपि ऐसा कर पाना कठिन होता है, तथापि मनोवैज्ञानिक मानव व्यवहार की व्याख्या करते समय आनुवंशिकता एवं वातावरण के सापेक्ष महत्त्व की जानकारी करते हैं।

कथ्य 3 : *मानव व्यवहार उत्पन्न किया जाता है।*

अधिकांश मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि समस्त मानव व्यवहारों की व्याख्या वातावरण के बाहर की स्थिति तथा आंतरिक (प्राणी के लिए) कारणों के आधार पर की जा सकती है। कारणपरक व्याख्याएँ समस्त विज्ञानों की केंद्रीयता हैं क्योंकि बिना उनको समझे कोई भी पूर्वकथन संभव नहीं होगा। यद्यपि मनोवैज्ञानिक व्यवहार के कारणों की तरफ भागते हैं परंतु वे यह भी जानते हैं कि मात्र रेखीय व्याख्याएँ, जैसे एक्स (X) के कारण वाई (Y), हमेशा सही नहीं होती हैं। व्यवहार का कोई एक ही कारण नहीं होता है। मानव व्यवहार के बहुत से कारण होते हैं। इसलिए, मनोवैज्ञानिक कारणपरक प्रतिरूपों को खोजते हैं जहाँ अन्योन्याश्रित परिवर्त्यों के सेट द्वारा व्यवहार की व्याख्या की जा सके। जब यह कहा जाता है कि व्यवहार के कई कारण होते हैं तो उसका अर्थ होता है कि व्यवहार के किसी एक ही कारण का सुनिदेशन कर पाना कठिन होता है क्योंकि संभव है कि उसका स्वयं कोई परिवर्त्य कारण हो जिसका पुन: कोई अन्य कारण हो सकता है।

कथ्य 4 : *मानव व्यवहार की समझ संस्कृति निर्मित होती है।*

यह कथ्य अभी हाल ही में सामने आया है। कुछ मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि अधिकांश मनोवैज्ञानिक सिद्धांत एवं प्रतिरूप स्वभाव से यूरो-अमेरिकन हैं, इसलिए व्यवहार को दूसरी सांस्कृतिक स्थितियों में समझने में सहायता नहीं करते हैं। यूरो-अमेरिकन उपागम जिसे सार्वभौम स्वरूप में प्रचारित किया गया है, एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका के मनोवैज्ञानिक उसकी आलोचना करते हैं। इसी प्रकार की आलोचना नारी अधिकारवादियों द्वारा की जाती है और उनका तर्क है कि मनोविज्ञान मात्र पुरुष पक्षों की वकालत करता है तथा स्त्रियों के पक्षों की अनदेखी करता है। वे द्वंद्वात्मक उपागम की पक्षधरता करते हैं जिसमें स्त्रियों एवं पुरुषों दोनों के पक्षों को समाहित करते हुए मानव व्यवहार को समझा जाता है।

कथ्य 5 *: मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के अनुप्रयोग द्वारा मानव व्यवहार को नियंत्रित एवं परिवर्तित किया जा सकता है।*

कतिपय भौतिक अथवा मनोवैज्ञानिक घटनाओं के विषय में वैज्ञानिक क्यों यह सोचते हैं कि उन्हें कैसे नियंत्रित किया जा सकता है। वे ऐसा इसलिए सोचते हैं क्योंकि उनकी इच्छा ऐसी तकनीकों अथवा विधियों को विकसित करने की होती है जिससे मानव व्यवहार में गुणात्मक सुधार लाया जा सके। जब मनोवैज्ञानिक अपने द्वारा अर्जित ज्ञान का उपयोग करना चाहते हैं तो भी वे वैसा ही सोचते हैं।

इसके लिए आवश्यक होता है कि जीवन के विविध धरातलों पर लोग जिन कठिनाइयों अथवा विपरीत परिस्थितियों का अनुभव करते हैं उन्हें दूर किया जाए। परिणामस्वरूप, मनोवैज्ञानिक आवश्यकता वाले लोगों के जीवन में हस्तक्षेप करते हैं। एक ओर, मनोवैज्ञानिकों की यह अनुप्रयुक्त भूमिका विषय (मनोविज्ञान) को सामान्य लोगों के निकट लाती है तुलना में अन्य सामाजिक विज्ञान के विषयों के तथा उसके सिद्धांतों की व्यावहारिकता की सीमा की जानकारी प्राप्त करता है। दूसरी तरफ, अपने आप में मनोविज्ञान को एक विषय के रूप में प्रसिद्धि दिलाने में यह भूमिका बहुत सहायक रही है। इसलिए मनोविज्ञान की अनेक शाखाएँ उत्पन्न हुई हैं जो औद्योगिक एवं संगठनात्मक स्थितियों, नैदानिक सेवाओं, शिक्षा, पर्यावरण, स्वास्थ्य, सामुदायिक विकास तथा अन्य से जुड़ी समस्याओं की जानकारी करने एवं उनका निदान खोजने की पहल करती हैं। औद्योगिक मनोविज्ञान, संगठनात्मक मनोविज्ञान, नैदानिक मनोविज्ञान, शैक्षिक मनोविज्ञान, अभियांत्रिकी मनोविज्ञान तथा क्रीड़ा मनोविज्ञान कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें मनोवैज्ञानिक व्यक्तियों, समूहों अथवा संस्थाओं को अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं।

मूल बनाम अनुप्रयुक्त मनोविज्ञान

यह ध्यातव्य है कि अनेक क्षेत्र जिन्हें 'मूल' एवं 'अनुप्रयुक्त' मनोविज्ञान शीर्षक में रखा गया है, उनके द्वारा अध्ययन किए जाने वाले विषय एवं वृहत्तर सरोकारों के आधार पर उनकी पहचान की जाती है। मनोविज्ञान के अनुसंधान एवं अनुप्रयोग में कोई स्पष्ट भेद नहीं होता है। उदाहरण के लिए, मूल मनोविज्ञान हमें वह सिद्धांत एवं नियम प्रदान करता है जो मनोविज्ञान के अनुप्रयोग के आधार बनते हैं और अनुप्रयुक्त मनोविज्ञान हमें वे संदर्भ देता है जिनमें अनुसंधान से प्राप्त सिद्धांतों एवं नियमों को सार्थक ढंग से प्रयोग में लाया जा सकता है। दूसरी ओर, अनुसंधान मनोविज्ञान के उन क्षेत्रों का भी मूल भाग होता है जो 'अनुप्रयोग' श्रेणी में आते हैं अथवा इन्हीं के द्वारा जाने जाते हैं। विभिन्न क्षेत्रों में मनोविज्ञान की लगातार होती मांग के कारण बहुत से क्षेत्र जो पिछले दशकों में 'अनुसंधान-केंद्रित' माने जाते थे, वे भी धीर-धीरे 'अनुप्रयोग-केंद्रित' होने लगे हैं। नयी उभरती विद्याशाखाएँ जैसे अनुप्रयुक्त प्रायोगिक मनोविज्ञान, अनुप्रयुक्त सामाजिक मनोविज्ञान, तथा अनुप्रयुक्त विकासात्मक मनोविज्ञान यह बतलाते हैं कि वास्तव में सभी मनोविज्ञान अनुप्रयोग का विभव रखते हैं तथा स्वभाव से अनुप्रयुक्त होते हैं।

इसलिए, मनोविज्ञान के अनुसंधान एवं अनुप्रयोग में कोई मौलिक अंतर नहीं होता है। ये क्रियाएँ बहुत अधिक अंतर्संबंधित होती हैं तथा एक दूसरे को पुनर्बलित करने वाली होती हैं। इनकी एक दूसरे से पारस्परिक अंत:क्रियाओं तथा वृहत्तर प्रभाव इतने विशिष्ट हो गए हैं कि वर्तमान में अनेक प्रशाखाएँ (शाखाएँ) उत्पन्न हो गई हैं जो अपनी विषयवस्तु पर विशिष्ट बल देती हैं। इस प्रकार, पारिस्थितिक मनोविज्ञान, पर्यावरणी मनोविज्ञान, अंत:सांस्कृतिक मनोविज्ञान, जैविक मनोविज्ञान, अंतरिक्ष मनोविज्ञान, संज्ञानात्मक मनोविज्ञान आदि कुछ महत्वपूर्ण नाम हैं। ये अनुसंधान तथा अनुप्रयोग के नए एवं सीमांत क्षेत्र हैं जो उसके पूर्व मनोविज्ञान के दूसरे क्षेत्रों से संबद्ध थे। पूर्व की तुलना में अनुसंधानकर्ताओं को इन नए विकास के क्षेत्रों में विशिष्ट अनुसंधान कौशल एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।

मनोविज्ञान एवं अन्य विद्याशाखाएँ

कोई भी विद्याशाखा, जो लोगों का अध्ययन करती है, वह निश्चित रूप से मनोविज्ञान के ज्ञान की सार्थकता को मानेगी। इसी प्रकार मनोवैज्ञानिक भी मानव व्यवहार को समझने में अन्य विद्याशाखाओं की सार्थकता को स्वीकारते हैं। इसी रुझान के कारण मनोविज्ञान में अंतर्विषयक उपागम का उदय हुआ। अनुसंधानकर्ताओं एवं विज्ञान, सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी में विद्वानों ने एक विद्याशाखा के रूप में मनोविज्ञान की सार्थकता के अनुभव किए। चित्र 1.1 स्पष्ट रूप से मनोविज्ञान के अन्य विद्याशाखाओं से संबंध को प्रदर्शित करता है। मस्तिष्क एवं व्यवहार का अध्ययन करने में मनोविज्ञान अपने ज्ञान को तंत्रिका विज्ञान, शरीरक्रियाविज्ञान, जीवविज्ञान, आयुर्विज्ञान तथा कंप्यूटर विज्ञान के साथ बाँटता है। एक सामाजिक-सांस्कृतिक के संदर्भ में मानव व्यवहार को समझने के लिए (उसका अर्थ, संवृद्धि, तथा विकास) मनोविज्ञान अपने ज्ञान को मानव विज्ञान, समाजशास्त्र, समाजकार्य विज्ञान, राजनीति विज्ञान एवं अर्थशास्त्र के साथ भी मिलकर बाँटता है। सहित्यिक पुस्तकों, संगीत एवं नाटक के निर्माण में निहित मानसिक क्रियाओं का अध्ययन करने में मनोविज्ञान अपना ज्ञान साहित्य, कला एवं संगीत के साथ बाँटता है। कुछ प्रमुख विद्याशाखाएँ जो मनोविज्ञान से जुड़ी हैं उनकी चर्चा नीचे की जा रही है :

दर्शनशास्त्र : उन्नीसवीं सदी के अंत तक कुछ चीज़ें जो समसामयिक मनोविज्ञान से संबंधित हैं, जैसे मन का स्वरूप क्या है अथवा मनुष्य अपनी अभिप्रेरणाओं एवं संवेगों के विषय में कैसे जानता है, वे बातें दार्शनिकों की रुचि की थीं। उन्नीसवीं सदी में आगे चलकर वुण्ट एवं अन्य मनोवैज्ञानिकों ने इन प्रश्नों के लिए प्रायोगिक उपागम का उपयोग किया तथा समसामयिक मनोविज्ञान का उदय हुआ। विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान के उदय के बाद भी यह दर्शनशास्त्र से बहुत कुछ लेता है, विशेषकर ज्ञान की विधि तथा मानव स्वभाव के विविध क्षेत्रों से संबंधित बातें।

आयुर्विज्ञान : चिकित्सकों ने यह मान लिया है कि यह उक्ति 'स्वस्थ शरीर के लिए स्वस्थ मन की आवश्यकता होती है', वास्तव में सही है। बहुत से चिकित्सालय आज मनोवैज्ञानिक नियुक्त करते हैं। लोगों को स्वास्थ्य के लिए हानिकारक व्यवहारों से दूर रखने में मनोवैज्ञानिकों की भूमिका एवं चिकित्सकों की अन्वय के प्रति संसक्ति कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ दोनों विद्याशाखाएँ साथ-साथ कार्य करती हैं। कैंसर से पीड़ित रोगियों का उपचार करते समय, एड्स, शारीरिक चुनौतियों से जूझते लोगों, अथवा गहन चिकित्सा इकाई में भर्ती रोगियों की देखभाल तथा शल्यचिकित्सा के पश्चात रोगियों का ध्यान रखना आदि ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ चिकित्सकों ने मनोवैज्ञानिकों की आवश्यकता का अनुभव किया है। एक सफल चिकित्सक रोगियों के शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक कल्याण का ध्यान रखता है।

अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान एवं समाजशास्त्र : सहभागी सामाजिक विज्ञान विद्याशाखाओं के रूप में इन तीनों ने मनोविज्ञान से बहुत कुछ प्राप्त किया है तथा उसको भी समृद्ध किया है। मनोविज्ञान ने आर्थिक व्यवहारों के सूक्ष्म स्तरों के अध्ययन, विशेष रूप से उपभोक्ताओं के व्यवहारों को समझने में तथा बचत व्यवहारों एवं निर्णय की कला में बड़ा योगदान किया है। अमेरिका के अर्थशास्त्रियों ने उपभोक्ताओं की भावुकताओं के प्रदत्तों के आधार पर आर्थिक विकास का पूर्वकथन किया है। एच. साइमन, डी. केहनेमन एवं टी. शेलिंग जैसे तीन विद्वानों को ऐसी ही समस्याओं पर कार्य करने के कारण अर्थशास्त्र में नोबल पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। अर्थशास्त्र की तरह, राजनीति विज्ञान भी मनोविज्ञान से बहुत कुछ ग्रहण करता है, विशेष रूप से शक्ति एवं प्रभुत्व के उपयोग, राजनैतिक द्वंद्व के स्वरूप एवं उनके समाधान, तथा मतदान आचरण को समझने में। मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र एक दूसरे के साथ मिलकर विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में व्यक्तियों के व्यवहारों को समझने एवं उनकी व्याख्या को व्यक्त करते हैं। समाजीकरण, सामूहिक एवं संग्रहपरक व्यवहारों तथा अंत:समूह द्वंद्वों से संबंधित बातें इन दोनों विद्याशाखाओं से जुड़ी होती हैं।

कंप्यूटर विज्ञान : प्रारंभ से ही कंप्यूटर मानव स्वभाव का अनुभव करने का प्रयास करता रहा है। कंप्यूटर की संरचना, उसकी संगठित स्मृति, सूचनाओं के क्रमवार एवं साथ-साथ प्रक्रमण आदि में ये बातें देखी जा सकती हैं। कंप्यूटर वैज्ञानिक तथा इंजीनियर केवल बुद्धिमान से बुद्धिमान कंप्यूटर का निर्माण नहीं कर रहे हैं बल्कि ऐसी मशीनों को बना रहे हैं जो संवेद एवं अनुभूति को भी जान सकें। इन दोनों विद्याशाखाओं में हो रहे विकास संज्ञानात्मक विज्ञान के क्षेत्र में सार्थक योगदान कर रहे हैं।

विधि एवं अपराधशास्त्र : एक कुशल अधिवक्ता तथा अपराधशास्त्री को मनोविज्ञान के ज्ञान की जानकारी ऐसे

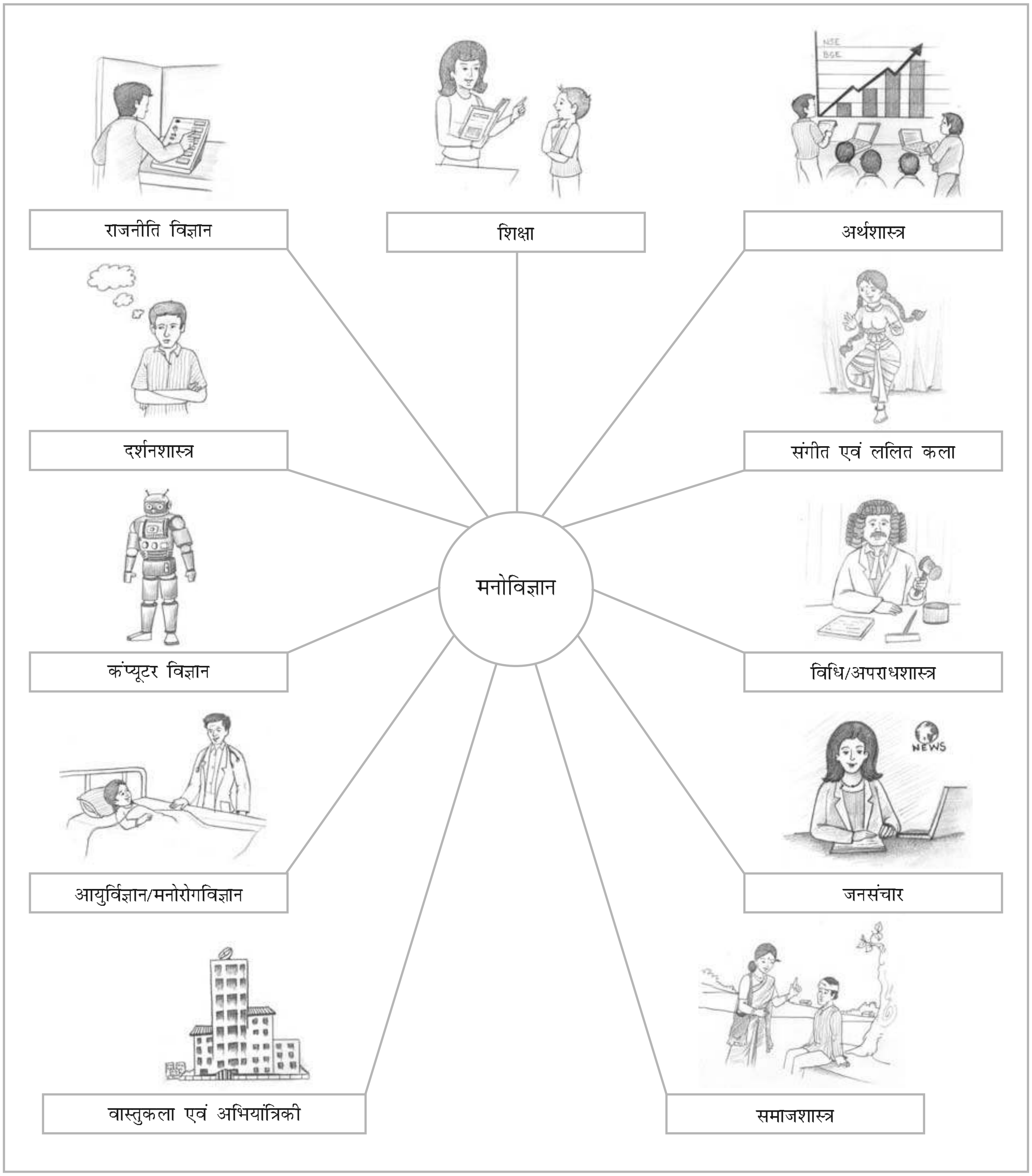

चित्र 1.1 : मनोविज्ञान एवं अन्य विद्याशाखाएँ

प्रश्नों–कोई गवाह एक दुर्घटना, गली की लड़ाई अथवा हत्या जैसी घटना को कैसे याद रखता है? न्यायालय में गवाही देते समय वह इन तथ्यों का कितनी सत्यता के साथ उल्लेख करता है? जूरी के निर्णयों को कौन से कारक प्रभावित करते हैं? झूठ एवं पश्चाताप के क्या विश्वसनीय लक्षण हैं? किन कारकों के आधार पर किसी अभियुक्त को उसके कार्यों के लिए उत्तरदायी

माना जाए? किसी आपराधिक कार्य के लिए दंड की किस सीमा को उपयुक्त माना जाए? का उत्तर देने के लिए आवश्यक होती है। मनोवैज्ञानिक ऐसे प्रश्नों का उत्तर देते हैं। आजकल बहुत से मनोवैज्ञानिक ऐसी बातों पर अनुसंधान कार्य कर रहे हैं जिसके उत्तर देश में भावी विधि व्यवस्था की बड़ी सहायता करेंगे।

जनसंचार : प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक संचार-साधन हमारे जीवन में बहुत ही वृहत्तर स्तर पर प्रवेश कर चुके हैं। वे हमारे चिंतन, अभिवृत्तियों एवं संवेगों को बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित कर रहे हैं। यदि वे हमें निकट लाए हैं तो साथ ही साथ सांस्कृतिक असमानताएँ भी कम किए हैं। बच्चों के अभिवृत्ति निर्माण एवं व्यवहार में संचार-साधनों का प्रभाव ऐसा क्षेत्र है जो दोनों विधाओं को साथ रखता है। मनोविज्ञान संचार को अच्छा एवं प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक युक्तियों के निर्माण में सहायता करता है। समाचार कहानियों को लिखते समय पत्रकारों को पाठकों की रुचियों का ध्यान रखना चाहिए। चूँकि अधिकांश कहानियाँ मानवीय घटनाओं से संबंधित होती हैं, अत: उनके अभिप्रेरकों एवं संवेगों का ज्ञान आवश्यक होता है। यदि कहानी मनोवैज्ञानिक ज्ञान एवं अंतर्दृष्टि पर आधारित होती है तो वह अंदर तक छू जाती है।

संगीत एवं ललित कला : संगीत एवं मनोविज्ञान का कई क्षेत्रों में मिलन हुआ है। मनोवैज्ञानिकों ने संगीत के उपयोग से कार्य निष्पादन स्तर बढ़ाने का कार्य किया है। संगीत एवं संवेग एक और क्षेत्र है जिसमें अनेक अध्ययन किए गए हैं। भारतवर्ष में संगीतज्ञों ने वर्तमान में एक प्रयोग करना प्रारंभ किया है जिसे 'संगीत चिकित्सा' (music therapy) कहते हैं। इसमें वे रागों के माध्यम से कतिपय शारीरिक व्याधियों का निदान करना प्रारंभ करते हैं। संगीत चिकित्सा की क्षमता का सिद्ध होना शेष है।

वास्तुकला एवं अभियांत्रिकी : प्रथम दृष्टि में मनोविज्ञान, वास्तुकला एवं अभियांत्रिकी के मध्य संबंध ठीक नहीं लगेगा। परंतु ऐसी बात नहीं है। किसी वास्तुकार से पूछिए, वह अपने ग्राहकों को अपने अभिकल्प एवं सौंदर्यशास्त्रीय विवेचना से भौतिक एवं मानसिक संतुष्टि प्रदान कर देगा। सुरक्षा की योजना बनाते समय अभियंताओं को, उदाहरण के लिए, गलियों एवं राजमार्ग के विषय में, मानवीय आदतों का ध्यान रखना चाहिए। यांत्रिक तकनीकों एवं सजावटों की अभिकल्पना में मनोवैज्ञानिक ज्ञान बहुत सहायता करता है।

संक्षेप में, मानवीय प्रकार्यों से संबंधित ज्ञान के विविध क्षेत्रों के चौराहे पर मनोविज्ञान खड़ा मिलता है।

कार्यरत मनोवैज्ञानिक

आजकल मनोवैज्ञानिक ऐसी अनेक स्थितियों में कार्य करते हैं जहाँ वे मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की सहायता से लोगों को अपने जीवन की समस्याओं का दक्षतापूर्वक सामना करने के लिए भिज्ञ बनाते हैं एवं प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। इन्हें हम प्राय: **'मानव सेवा क्षेत्र'** कहते हैं। इनमें नैदानिक, उपबोधन, समुदायिक, विद्यालय तथा संगठनात्मक मनोविज्ञान आते हैं।

नैदानिक मनोवैज्ञानिक व्यावहारिक समस्याओं वाले रोगियों की सहायता करने की विशिष्टता रखते हैं। वे अनेक मानसिक व्यतिक्रमों तथा दुश्चिंता, भय या कार्यस्थल के दबावों के लिए चिकित्सा प्रदान करते हैं। वे या तो प्राइवेट प्रैक्टिस करते हैं अथवा चिकित्सालयों, मानसिक संस्थानों अथवा सामाजिक संगठनों के साथ कार्य करते हैं। रोगियों की समस्याओं को जानने के लिए वे साक्षात्कार करते हैं एवं मनोवैज्ञानिक परीक्षण देते हैं, तथा उनके उपचार एवं पुनर्वास के लिए मनोवैज्ञानिक विधियों का उपयोग करते हैं। नौकरी पाने के अवसर ने नैदानिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में लोगों को अधिक आकर्षित किया है।

उपबोधन मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरणात्मक एवं संवेगात्मक समस्याओं वाले व्यक्तियों के लिए कार्य करते हैं। इनके रोगियों की समस्या नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की तुलना में कम घातक होती है। एक उपबोधन मनोवैज्ञानिक व्यावसायिक पुनर्वास कार्यक्रमों अथवा व्यावसायिक चयन में सहायता करने अथवा जीवन की नयी एवं जटिल परिस्थितियों में समायोजन के लिए कार्य करता है। उपबोधन मनोवैज्ञानिक पब्लिक एजेन्सियों; जैसे- मानसिक स्वास्थ्य केंद्र, चिकित्सालय, विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय के लिए कार्य करते हैं।

सामुदायिक मनोवैज्ञानिक प्राय: सामुदायिक मानसिक स्वास्थ्य पर अधिक ध्यान देते हैं। वे मानसिक स्वास्थ्य एजेंसियों, प्राइवेट संगठनों तथा राज्य सरकारों के लिए कार्य करते हैं। वे समुदाय एवं उनके संस्थानों की शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं के संबंध में सहायता करते हैं। ग्रामीण परिवेश में वे मानसिक स्वास्थ्य केंद्र की स्थापना कर सकते हैं। शहरी परिवेश में वे औषधि पुनर्वास कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार कर सकते हैं। अनेक सामुदायिक मनोवैज्ञानिक

कुछ विशिष्ट समष्टियों पर कार्य करते हैं; जैसे- वयोवृद्ध अथवा शारीरिक अथवा मानसिक रूप से अशक्त लोग। विविध कार्यक्रमों एवं योजनाओं को नयी दिशा देने तथा मूल्यांकन करने के अलावा, समुदाय-आधारित पुर्नवास में सामुदायिक मनोवैज्ञानिकों की अधिक रुचि होती है।

विद्यालय मनोवैज्ञानिक शैक्षिक व्यवस्था में कार्य करते हैं तथा उनकी भूमिका उनके प्रशिक्षण स्तर के अनुसार बदलती रहती है। उदाहरण के लिए, कुछ विद्यालय मनोवैज्ञानिक मात्र मनोवैज्ञानिक परीक्षण देते हैं, जबकि कुछ अन्य परीक्षण के परिणामों की व्याख्या करते हैं तथा छात्रों की समस्याओं में उनकी सहायता करते है। वे विद्यालय की नीतिनिर्धारण में भी सहायता करते हैं। वे अभिभावकों, अध्यापकों तथा प्रशासकों के मध्य संवाद बढ़ाते हैं तथा छात्रों की शैक्षिक प्रगति के विषय में अध्यापकों एवं अभिभावकों को सूचना प्रदान करते हैं।

संगठनात्मक मनोवैज्ञानिक संगठन में अधिकारियों एवं कर्मचारियों की भूमिका निर्वहन में आने वाली समस्याओं को समझने में अपनी महत्वपूर्ण सहायता प्रदान करते हैं। वे संगठनों में परामर्श की सेवाएं प्रदान करते हैं तथा उनकी दक्षता एवं प्रभावोत्पादकता में वृद्धि करने के लिए कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करते हैं। कुछ संगठनात्मक मनोवैज्ञानिक मानव संसाधन विकास में जबकि कुछ अन्य संगठनात्मक विकास एवं परिवर्तन प्रबंधन कार्यक्रमों में विशिष्टता अर्जित करते हैं।

दैनंदिन जीवन में मनोविज्ञान

ऊपर की गई चर्चा से स्पष्ट हो चुका है कि मनोविज्ञान मात्र एक विषय के रूप में हमारे मन की उत्सुकताओं को ही नहीं संतुष्ट करता है बल्कि यह एक ऐसा विषय है जो अनेक प्रकार की समस्याओं का समाधान करता है। ये समस्याएँ पूर्णत: व्यक्तिगत (उदाहरण के लिए, किसी लड़की का अपने मद्यप पिता से सामना अथवा किसी माँ का अपने समस्याग्रस्त बच्चे से सामना) अथवा पारिवारिक पृष्ठभूमि में अंतर्ग्रथित (उदाहरण के लिए, पारिवारिक सदस्यों में संवाद एवं अंत:क्रिया की कमी) अथवा बड़े समूह या सामुदायिक परिवेश में (उदाहरण के लिए, आतंकवादी समूह या सामाजिक रूप से एकांतिक कर दिए गए समुदाय) होती हैं अथवा राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय विमाओं वाली होती हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण, सामाजिक न्याय, महिला विकास, अंतर्समूह संबंध आदि समस्याएँ बड़ी होती हैं। इन समस्याओं के समाधान राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक सुधार तथा वैयक्तिक स्तर पर हस्तक्षेप आदि से परिवर्तन लाकर किए जाते हैं। इनमें से अधिकांश समस्याएँ मनोवैज्ञानिक होती हैं तथा उनका उदय हमारे अस्वस्थ चिंतन, लोगों तथा स्व के प्रति ऋणात्मक अभिवृत्ति तथा व्यवहार की अवांछित शैली के कारण होता है। इन समस्याओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण इन समस्याओं को गहराई से समझने तथा उसके प्रभावी समाधान को खोजने में सहायता करता है।

जीवन की समस्याओं के निदान में मनोविज्ञान के विभव को अधिक से अधिक महत्त्व दिया जा रहा है। इस संबंध में संचार-साधनों की भूमिका महत्वपूर्ण है। बच्चों, किशोरों, वयस्कों तथा वयोधिक लोगों की समस्याओं के संबंध में दूरदर्शन पर एवं मनोचिकित्सकों द्वारा दी जाने वाली सलाह आप देखते होंगे। आप उन्हें सामाजिक परिवर्तन तथा विकास, जनसंख्या, गरीबी, अंत:वैयक्तिक एवं अंत:सामूहिक हिंसा तथा पर्यावरणी गिरावट से संबंधित केंद्रीय सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण करते हुए भी देखते होंगे। बहुत से मनोवैज्ञानिक लोगों के गुणात्मक रूप से अच्छे जीवन के लिए हस्तक्षेपी कार्यक्रमों की अभिकल्पना एवं संचालन में भी सक्रिय भूमिका का निर्वहन करते हैं। इसलिए इस बात पर आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि मनोवैज्ञानिकों को हम विविध परिस्थितियों में कार्य करते हुए देखते हैं; जैसे- विद्यालयों, चिकित्सालयों, उद्योगों, कारागारों, व्यावसायिक संगठनों, सैन्य प्रतिष्ठानों तथा प्राइवेट प्रैक्टिस में परामर्शदाता के रूप में जहाँ वे लोगों की अपने क्षेत्र में समस्याओं के समाधान में सहायता करते हैं।

दूसरों के लिए समाज सेवा प्रदान करने में सहायता के अतिरिक्त, मनोविज्ञान का ज्ञान व्यक्तिगत रूप से आपके दिन प्रतिदिन के जीवन के लिए सार्थक होता है। मनोविज्ञान के सिद्धांत एवं विधियाँ जो आप इस पाठ्यक्रम में पढ़ेंगे, उसका उपयोग दूसरों के परिप्रेक्ष्य में स्वयं के विश्लेषण एवं समझने के लिए उपयोग में लाया जाना चाहिए। ऐसा नहीं है कि हम अपने विषय में सोचते नहीं हैं। परंतु प्राय: हम लोगों में कुछ लोग अपने विषय में बहुत ऊँचा सोचते हैं तथा कोई विचार/ सूचना जो हमारे विषय में अपने मत का विरोध करती है उसे हम नकार देते हैं, क्योंकि हम रक्षात्मक व्यवहार में लग जाते हैं। कुछ अन्य दशाओं में लोग ऐसी आदतें सीख लेते हैं जो उन्हें स्वयं नीचे ले जाती हैं। दोनों ही दशाएँ हमें आगे नहीं बढ़ने देती हैं। हमें अपने विषय में सकारात्मक तथा संतुलित समझ रखनी चाहिए। आपको मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का उपयोग

सकारात्मक ढंग से करना चाहिए जिससे आप अपने अधिगम एवं स्मृति में सुधार के लिए अध्ययन की अच्छी आदतें विकसित कर सकें तथा व्यक्तिगत एवं अंतर्वैयक्तिक समस्याओं का निर्णय लेने की उपयुक्त युक्तियों द्वारा समाधान कर सकें। इसको आप परीक्षा के दबाव को भी कम अथवा समाप्त करने में सहायक पाएँगे। इस प्रकार, मनोविज्ञान का ज्ञान, हमारे दिन प्रतिदिन के जीवन में बहुत उपयोगी है तथा व्यक्तिगत एवं सामाजिक दृष्टि से भी लाभप्रद है।

प्रमुख पद

व्यवहार, व्यवहारवाद, संज्ञान, संज्ञानात्मक उपागम, चेतना, निर्मितिवाद, विकासात्मक मनोविज्ञान, प्रकार्यवाद, गेस्टाल्ट, गेस्टाल्ट मनोविज्ञान, मानवतावादी उपागम, अंतर्निरीक्षण, मन, तंत्रिका मनोविज्ञान, शरीरक्रिया मनोविज्ञान, मनोविश्लेषण, समाजशास्त्र, उद्दीपक, संरचनावाद

सारांश

- *मनोविज्ञान आधुनिक विद्याशाखा है जो मानसिक प्रक्रियाओं, अनुभवों तथा लोगों के व्यवहारों की जटिलताओं को विविध संदर्भों में समझने का लक्ष्य रखती है। इसे प्राकृतिक विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान दोनों माना जाता है।*
- *मनोवैज्ञानिक विचारधाराओं के प्रमुख संप्रदाय संरचनावाद, प्रकार्यवाद, व्यवहारवाद, गेस्टाल्ट स्कूल, मनोविश्लेषण, मानवतावादी मनोविज्ञान, तथा संज्ञानात्मक मनोविज्ञान हैं।*
- *समसामयिक मनोविज्ञान बहुआयामी है क्योंकि इसको बहुत से उपागमों अथवा बहुविध विचारों द्वारा जाना जाता है जो विभिन्न स्तरों पर व्यवहार की व्याख्या करता है। ये उपागम पारस्परिक रूप से एक दूसरे से अलग नहीं होते हैं। प्रत्येक उपागम मानव प्रकार्य की जटिलताओं में महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। मनोवैज्ञानिक प्रकार्यों के लिए संज्ञानात्मक उपागम चिंतन प्रक्रियाओं को केंद्रीय महत्त्व का मानता है। मानवतावादी उपागम के अनुसार मानव प्रकार्य विकसित होने की इच्छा, उत्पादन करने की इच्छा एवं मानव क्षमताओं को पूर्ण करने की इच्छा से संचालित होता है।*
- *आज मनोवैज्ञानिक बहुत से विशिष्ट क्षेत्रों में कार्य करते हैं जिनके अपने सिद्धांत एवं विधियाँ होती हैं। वे सिद्धांत के निर्माण का प्रयास तथा क्षेत्र विशेष की समस्याओं के समाधान का प्रयास करते हैं। मनोविज्ञान के कुछ प्रमुख क्षेत्र हैं- संज्ञानात्मक मनोविज्ञान, जैविक मनोविज्ञान, स्वास्थ्य मनोविज्ञान, विकासात्मक मनोविज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान, शैक्षिक एवं विद्यालय मनोविज्ञान, नैदानिक एवं उपबोधन मनोविज्ञान, पर्यावरणी मनोविज्ञान, औद्योगिक/संगठनात्मक मनोविज्ञान, तथा क्रीड़ा मनोविज्ञान।*
- *आजकल वास्तविकता की अच्छी समझ के लिए बहु/अंतर्विषयक पहल की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। इससे विद्याशाखाओं में आपसी सहयोग का उदय हुआ है। मनोविज्ञान की रुचि सामाजिक विज्ञानों में परस्पर रूप से व्याप्त है (जैसे- अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र), जैव विज्ञानों (जैसे- तंत्रिकाविज्ञान, शरीरक्रियात्मक, आयुर्विज्ञान), जनसंचार, तथा संगीत एवं ललित कला। ऐसे प्रयासों से फलदायी अनुसंधानों एवं अनुप्रयोगों को बढ़ावा मिला है।*
- *मनोविज्ञान मात्र ऐसी विद्याशाखा नहीं है जो केवल मानव व्यवहार के विषय में सैद्धांतिक ज्ञान का विकास करती है बल्कि विभिन्न स्तरों पर समस्याओं का समाधान करती है। मनोवैज्ञानिक विभिन्न परिस्थितियों में विविध क्रियाओं की सहायता के लिए नियुक्त होते हैं; जैसे- विद्यालय, चिकित्सालय, उद्योग, प्रशिक्षण संस्थान, सैन्य एवं सरकारी प्रतिष्ठान। इनमें बहुत से मनोवैज्ञानिक प्राइवेट प्रैक्टिस करते हैं तथा परामर्शदाता होते हैं।*

समीक्षात्मक प्रश्न

1. व्यवहार क्या है? प्रकट एवं अप्रकट व्यवहार का उदाहरण दीजिए।
2. आप वैज्ञानिक मनोविज्ञान को मनोविज्ञान विद्याशाखा की प्रसिद्ध धारणाओं से कैसे अलग करेंगे?
3. मनोविज्ञान के विकास का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत कीजिए।

4. वे कौन सी समस्याएँ होती हैं जिनके लिए मनोवैज्ञानिकों का अन्य विद्याशाखा के लोगों के साथ सहयोग लाभप्रद हो सकता है? किन्हीं दो समस्याओं की व्याख्या कीजिए।
5. अंतर कीजिए (अ) मनोवैज्ञानिक एवं मनोरोगविज्ञानी में, तथा (ब) परामर्शदाता एवं नैदानिक मनोवैज्ञानिक में।
6. दैनंदिन जीवन के कुछ क्षेत्रों का वर्णन कीजिए जहाँ मनोविज्ञान की समझ को अभ्यास रूप में लाया जा सके।
7. पर्यावरण के अनुकूल मित्रवत् व्यवहार को किस प्रकार उस क्षेत्र में ज्ञान द्वारा बढ़ाया जा सकता है?
8. अपराध जैसी महत्वपूर्ण सामाजिक समस्या का समाधान खोजने मे सहायता करने के लिए आपके अनुसार मनोविज्ञान की कौन सी शाखा सबसे उपयुक्त है। क्षेत्र की पहचान कीजिए एवं उस क्षेत्र में कार्य करने वाले मनोवैज्ञानिकों के सरोकारों की व्याख्या कीजिए।

परियोजना विचार

1. यह अध्याय मनोवज्ञान के क्षेत्र में अनेक उद्यमियों के विषय में बतलाता है। वर्गीकरणों में से किसी एक मनोवैज्ञानिक से संपर्क कीजिए एवं उस व्यक्ति का साक्षात्कार कीजिए। पहले से प्रश्नों की एक सूची तैयार रखिए। संभावित प्रश्न होंगे : (1) आपके कार्य विशेष के लिए किस प्रकार की शिक्षा आवश्यक है? (2) इस विद्याशाखा के अध्ययन के लिए आप किस महाविद्यालय/विश्वविद्यालय की सलाह देंगे? (3) क्या आपके कार्य-क्षेत्र में आजकल नौकरी के अधिक अवसर उपलब्ध हैं? (4) अपने लिए आपकी पसंद का अतिविशिष्ट कार्य दिवस कैसा-कैसा होगा - अथवा अतिविशिष्ट जैसी कोई चीज़ नहीं होती है? (5) इस तरह के कार्य में आने के लिए आपको कौन सी चीज़ ने अभिप्रेरित किया?
   अपने साक्षात्कार की एक रिपोर्ट लिखिए तथा अपनी विशिष्ट प्रतिक्रियाओं को भी सम्मिलित कीजिए।
2. किसी पुस्तकालय अथवा पुस्तक की दुकान पर जाइए अथवा इंटरनेट पर देखिए कि कौन सी पुस्तक (कथा साहित्य/कथा साहित्य के अतिरिक्त अथवा फिल्म) मनोविज्ञान के अनुप्रयोग का संदर्भ देती है।
   संक्षिप्त सारांश प्रस्तुत करते हुए एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।

अध्याय 2

मनोविज्ञान में जाँच की विधियाँ

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- मनोवैज्ञानिक जाँच के लक्ष्य एवं स्वरूप की व्याख्या कर सकेंगे,
- मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रयुक्त विविध प्रकार के प्रदत्तों को समझ सकेंगे,
- मनोवैज्ञानिक जाँच की कुछ महत्वपूर्ण विधियों को जान सकेंगे,
- प्रदत्त विश्लेषण की विधियों को समझ सकेंगे, तथा
- मनोवैज्ञानिक जाँच की सीमाओं एवं नैतिक विचारों को सीख सकेंगे।

विषयवस्तु

परिचय

मनोवैज्ञानिक जाँच के लक्ष्य

मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के चरण

अनुसंधान के वैकल्पिक प्रतिमान

मनोवैज्ञानिक प्रदत्त का स्वरूप

मनोविज्ञान की कुछ महत्वपूर्ण विधियाँ

प्रेक्षण विधि

प्रयोग का एक उदाहरण (बॉक्स 2.1)

प्रायोगिक विधि

सहसंबंधात्मक अनुसंधान

सर्वेक्षण अनुसंधान

सर्वेक्षण विधि का उदाहरण (बॉक्स 2.2)

मनोवैज्ञानिक परीक्षण

व्यक्ति अध्ययन

प्रदत्त विश्लेषण

परिमाणात्मक विधि

गुणात्मक विधि

मनोवैज्ञानिक जाँच की सीमाएँ

नैतिक मुद्दे

प्रमुख पद

सारांश

समीक्षात्मक प्रश्न

परियोजना विचार

परिचय

प्रथम अध्याय में आप पढ़ चुके हैं कि मनोविज्ञान अनुभवों, व्यवहारों एवं मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन है। अब आप जानना चाहेंगे कि मनोवैज्ञानिक इन गोचरों (phenomena) का अध्ययन कैसे करते हैं। दूसरे शब्दों में, व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करने में मनोवैज्ञानिक किन विधियों का उपयोग करते हैं। अन्य वैज्ञानिकों की भाँति मनोवैज्ञानिक भी जिन विषयों का अध्ययन करते हैं उनका वर्णन, पूर्वकथन, व्याख्या तथा नियंत्रण करने का प्रयास करते हैं। इसके लिए मनोवैज्ञानिक औपचारिक तथा व्यावहारिक प्रेक्षणों द्वारा प्रश्नों का समाधान करते हैं। अपनी अध्ययन विधियों के कारण ही मनोविज्ञान एक वैज्ञानिक क्रियाकलाप कहलाता है। मनोवैज्ञानिक अनेक अनुसंधान विधियों का उपयोग करते हैं क्योंकि मानव व्यवहार अनगिनत होते हैं तथा एक विधि से ही सबका अध्ययन संभव नहीं होता है। मनोविज्ञान की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए प्रेक्षण, प्रयोग, सहसंबंधात्मक अनुसंधान, सर्वेक्षण, मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं व्यक्ति अध्ययन विधियों का प्रायः उपयोग किया जाता है। इस अध्याय में आप मनोवैज्ञानिक जाँच (enquiry) के लक्ष्य, सूचनाओं अथवा प्रदत्तों के स्वरूप, जिन्हें हम मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में एकत्र करते हैं, से परिचित होंगे। साथ ही मनोविज्ञान के अध्ययनों में प्रयुक्त होने वाली अनेक विधियों के विस्तार तथा मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण मुद्दों से भी आपका परिचय होगा।

मनोवैज्ञानिक जाँच के लक्ष्य

किसी वैज्ञानिक अनुसंधान की तरह मनोवैज्ञानिक जाँच के लक्ष्य इस प्रकार हैं : **वर्णन** (description), **पूर्वकथन** (prediction), **व्याख्या** (explanation), व्यवहार का **नियंत्रण** (control) और इस प्रकार अर्जित ज्ञान का वस्तुनिष्ठ तरीकों से **अनुप्रयोग** (application) करना। आइए, इन पदों का अर्थ समझा जाए।

वर्णन **:** मनोवैज्ञानिक अध्ययन में हम व्यवहार अथवा किसी घटना का यथासंभव सही-सही वर्णन करते हैं। इससे किसी व्यवहार विशेष को अन्य व्यवहारों से अलग करने में सहायता मिलती है। उदाहरण के लिए, शोधकर्ता विद्यार्थियों की अध्ययन की आदतों का प्रेक्षण करना चाहता है। अध्ययन की आदतों में विविध प्रकार के व्यवहार आ सकते हैं; जैसे- सभी कक्षाओं में नियमित रूप से उपस्थित रहना, नियत कार्य समय पर प्रस्तुत करना, अध्ययन अनुसूची की योजना बनाना, नियत कार्यक्रम के अनुसार अध्ययन करना, दिन-प्रतिदिन के आधार पर कार्यों की समीक्षा करना आदि। एक वर्ग विशेष में भी कई सूक्ष्म विवरण हो सकते हैं। शोधकर्ता अध्ययन की आदत का जो अर्थ समझता है, उसे उसका वर्णन करना चाहिए। इस प्रकार के विवरण में व्यवहार विशेष का उल्लेख आवयश्क होता है, जो उसको समझने में सहायता करता है।

पूर्वकथन **:** वैज्ञानिक जाँच का दूसरा लक्ष्य व्यवहार का पूर्वकथन है। यदि आप व्यवहार को सही-सही समझने तथा उसका वर्णन करने में सक्षम हैं तो आप एक व्यवहार विशेष के अन्य व्यवहारों, घटनाओं, अथवा गोचरों से संबंध को सरलतापूर्वक जान सकते हैं। ऐसी स्थिति में आप इस बात की भविष्यवाणी कर सकते हैं कि कतिपय दशाओं में कुछ त्रुटियों के साथ वह व्यवहार विशेष घटित हो सकता है। उदाहरण के लिए, अध्ययन के आधार पर, एक अनुसंधानकर्ता विभिन्न विषयों के अध्ययन समय की मात्रा एवं उपलब्धियों के बीच धनात्मक संबंध की स्थापना कर सकता है। बाद में यदि आपको ज्ञात होता है कि एक बालक विशेष अध्ययन के लिए पर्याप्त समय देता है तो आप इस बात का पूर्वकथन कर सकते हैं कि वह बालक परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करेगा। पूर्वकथन प्रेक्षण किए गए व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि होने पर अधिक सही होता है। जितने अधिक लोगों का प्रेक्षण किया जाएगा, पूर्वकथन के सही होने की संभावना उतनी ही अधिक होगी।

व्याख्या **:** मनोवैज्ञानिक जाँच का तीसरा लक्ष्य व्यवहार के कारणों की अथवा उसके निर्धारकों की जानकारी प्राप्त करना

है। मनोवैज्ञानिक मूलत: यह जानना चाहते हैं कि व्यवहार किन कारणों से घटित होता है और वे कौन सी दशाएँ हैं जिनमें व्यवहार विशेष घटित नहीं होता है। उदाहरण के लिए, किन कारणों से कुछ बच्चे अपनी कक्षा में अधिक ध्यान देते हैं? अन्य बच्चों की तुलना में कुछ बच्चे अध्ययन हेतु अधिक समय क्यों नहीं देते हैं? अत:, यह उद्देश्य अध्ययन किए जाने वाले व्यवहार के निर्धारकों अथवा पूर्ववर्ती दशाओं की पहचान करने से संबंधित होता है जिससे दो परिवर्त्यों (वस्तुओं) अथवा घटनाओं के बीच कार्य–कारण संबंध स्थापित किया जा सके।

नियंत्रण : यदि आप व्यवहार विशेष के घटित होने की व्याख्या कर लेते हैं तो आप उक्त व्यवहार की पूर्ववर्ती दशाओं में परिवर्तन करके उसको नियंत्रित कर सकते हैं। नियंत्रण तीन बातों से संबंधित होता है: किसी व्यवहार विशेष को घटित कराना, उसे कम करना अथवा बढ़ाना। उदाहरण के लिए, आप चाहें तो अध्ययन करने के घंटों को उतना ही रहने दें अथवा आप उन्हें कम कर सकते हैं या उसमें वृद्धि कर सकते हैं। मनोवैज्ञानिक उपचारों द्वारा चिकित्सा के रूप में व्यक्तियों के व्यवहार में जो परिवर्तन होता है वह नियंत्रण का एक अच्छा उदाहरण है।

अनुप्रयोग : वैज्ञानिक जाँच का अंतिम लक्ष्य लोगों के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाना है। विभिन्न दशाओं में समस्याओं का समाधान करने के लिए ही मनोवैज्ञानिक अनुसंधान किए जाते हैं। इन प्रयासों के कारण लोगों के जीवन की गुणवत्ता ही मनोवैज्ञानिक के मूल लगाव का विषय होती है। उदाहरण के लिए, योग एवं ध्यान के अनुप्रयोग से दबाव की मात्रा कम करके दक्षता बढ़ाई जाती है। वैज्ञानिक जाँच नए सिद्धांतों अथवा निर्मितियों के विकास के लिए भी की जाती है, जिनसे भविष्य में भी अनुसंधान कार्य किए जाते हैं।

मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के चरण

विज्ञान को इस आधार पर नहीं परिभाषित किया जाता है कि वह किस चीज़ की खोज करता है, बल्कि इस आधार पर कि वह कैसे खोज करता है। वैज्ञानिक विधि में किसी घटना विशेष अथवा गोचर का वस्तुनिष्ठ, व्यवस्थित एवं परीक्षणीय तरीके से अध्ययन करने का प्रयास किया जाता है। **वस्तुनिष्ठता** (objectivity) का अभिप्राय यह है कि यदि दो या दो से अधिक व्यक्ति स्वतंत्र रूप से किसी घटना विशेष का अध्ययन करें तो दोनों को लगभग एक ही निष्कर्ष पर पहुँचना चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि आप और आपका कोई मित्र एक मापनी से किसी मेज़ की लंबाई मापते हैं तो इस बात की संभावना अधिक होती है कि आप दोनों एक ही निष्कर्ष पर पहुँचेंगे।

वैज्ञानिक विधि की दूसरी विशेषता यह होती है कि इसमें खोज की **व्यवस्थित** (systematic) प्रक्रिया अथवा चरण का अनुपालन होता है। इसके अंतर्गत आने वाले चरण हैं: *समस्या का संप्रत्ययन, प्रदत्त संग्रह, निष्कर्ष निकालना तथा शोध निष्कर्षों एवं सिद्धांतों का पुनरीक्षण करना* (चित्र 2.1 देखें)। आइए इन चरणों का कुछ विस्तार से वर्णन करें।

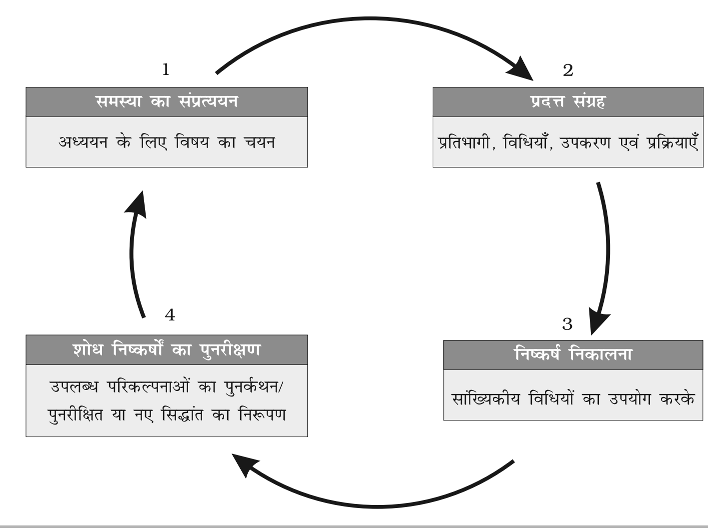

चित्र 2.1 : वैज्ञानिक जाँच के चरण

(1) *समस्या का संप्रत्ययन* : वैज्ञानिक शोध का कार्य तब प्रारंभ होता है जब शोधकर्ता अध्ययन के कथ्य अथवा विषय का चयन करता है। इसके बाद वह अपना ध्यान केंद्रित करता है तथा विशेष शोध प्रश्न अथवा समस्या का विकास करता है। ऐसा पूर्व में किए गए अनुसंधानों की समीक्षा, प्रेक्षणों तथा व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर किया जाता है। उदाहरण के लिए, पूर्व में आपने पढ़ा कि शोधकर्ता विद्यार्थियों के अध्ययन की आदतों का प्रेक्षण करने में रुचि लिया करता था। इसके लिए वह पहले अध्ययन की आदतों के विविध पक्षों की पहचान करता है, उसके बाद ही यह सुनिश्चित कर सकता है कि वह घर पर किए जाने वाले अथवा कक्षा में प्रदर्शित अध्ययन की आदतों का अध्ययन करना चाहता है।

मनोविज्ञान में हम व्यवहार एवं अनुभव से संबंधित विविध समस्याओं का अध्ययन करते हैं। इन समस्याओं का संबंध (क) हमारे अपने व्यवहार को समझने (जैसे- जब हम प्रसन्नता अथवा दुख की दशा में होते हैं तो कैसा अनुभव करते हैं? हम अपने अनुभव एवं व्यवहार पर कैसी प्रतिक्रिया करते हैं? हम भूल क्यों जाते हैं?); (ख) दूसरों के व्यवहार को समझने (उदाहरण के लिए, क्या अभिनव अंकुर से अधिक बुद्धिमान है? कुछ लोग अपना कार्य सर्वदा समय से क्यों नहीं पूरा कर पाते हैं? क्या सिगरेट पीने की आदत को नियंत्रित किया जा सकता है? कुछ लोग असाध्य रोग से ग्रसित होने के बाद भी दवाइयाँ क्यों नहीं लेते हैं?); (ग) समूह से प्रभावित वैयक्तिक व्यवहार (उदाहरण के लिए, रहीम अपने कार्य को संपादित करने की तुलना में लोगों से मिलने-जुलने में अधिक समय क्यों देता है? कोई साइकिल चालक साइकिल चलाते हुए अकेले की तुलना में समूह में अधिक अच्छा प्रदर्शन क्यों करता है?); (घ) समूह व्यवहार (उदाहरण के लिए, जब लोग समूह में होते हैं तो उनके खतरा उठाने वाले व्यवहारों में वृद्धि क्यों हो जाती है?) तथा (ङ) संगठनात्मक स्तर (उदाहरण के लिए, कुछ संगठन दूसरे संगठनों की तुलना में अधिक सफल क्यों होते हैं? कोई नियोजक अपने कर्मचारियों की अभिप्रेरणा में कैसे वृद्धि कर सकता है?) से होता है। इसकी सूची लंबी है और आप आगे के अध्यायों में इनके विविध पक्षों को जानेंगे। यदि आप अधिक जिज्ञासु हों तो आप कई समस्याओं को लिख सकते हैं, जिनकी आप जाँच कर सकते हैं।

समस्या की पहचान के बाद शोधकर्ता समस्या का एक काल्पनिक उत्तर ढूँढ़ता है, जिसे **परिकल्पना** (hypothesis) कहते हैं। उदाहरण के लिए, अपने पूर्व के साक्ष्य या प्रेक्षण के आधार पर आप एक परिकल्पना विकसित कर सकते हैं कि 'टेलीविज़न पर हिंसा देखने से बच्चों में आक्रामकता आती है।' इसके बाद आप अपने अनुसंधान में इस कथन को गलत अथवा सही सिद्ध कर सकते हैं।

(2) *प्रदत्त संग्रह* : वैज्ञानिक विधि का दूसरा चरण प्रदत्त संग्रह होता है। प्रदत्त संग्रह के लिए संपूर्ण अध्ययन का एक अनुसंधान अभिकल्प होना चाहिए। इसके लिए अग्रलिखित चार पहलुओं के बारे में निर्णय लेना पड़ता है : (क) अध्ययन के प्रतिभागी, (ख) प्रदत्त संग्रह की विधि, (ग) अनुसंधान में प्रयुक्त उपकरण एवं (घ) प्रदत्त संग्रह की प्रक्रिया। अध्ययन के स्वरूप के अनुसार अनुसंधानकर्ता को निर्णय करना पड़ता है कि अध्ययन में कौन-कौन प्रतिभागी (सूचना देने वाले) होंगे। प्रतिभागी बच्चे, किशोर, महाविद्यालय के छात्र, अध्यापक और प्रबंधक हो सकते हैं। चिकित्सालय के रोगी, उद्योग में कार्य करने वाले कर्मचारी अथवा व्यक्तियों का कोई समूह भी प्रतिभागी हो सकते हैं जिनमें/जहाँ पर अध्ययन किए जाने वाला गोचर प्रचलित हों। दूसरा निर्णय प्रदत्त संग्रह की विधि के उपयोग से संबंधित होता है; जैसे- प्रेक्षण विधि, प्रायोगिक विधि, सहसंबंधात्मक विधि, व्यक्ति अध्ययन इत्यादि। अनुसंधानकर्ता को प्रदत्त संग्रह के लिए उपयुक्त साधनों के विषय में भी निर्णय लेना पड़ता है (उदाहरण के लिए, साक्षात्कार अनुसूची, प्रेक्षण अनुसूची, प्रश्नावली, आदि)। शोधकर्ता यह भी निर्णय करता है कि इन उपकरणों को प्रदत्त संग्रह हेतु किस प्रकार उपयोग में लाया जाएगा (अर्थात वैयक्तिक अथवा सामूहिक)। इसके बाद वास्तविक प्रदत्त संग्रह किया जाता है।

(3) *निष्कर्ष निकालना* : अगला चरण संगृहीत प्रदत्तों का सांख्यिकीय प्रक्रियाओं की सहायता से विश्लेषण करना है जिससे हम समझ सकें कि प्रदत्तों का क्या अर्थ है? यह कार्य ग्राफ द्वारा (जैसे वृत्तखंड, दंड-आरेख, संचयी बारंबारता आदि बनाना) तथा विभिन्न सांख्यिकीय विधियों के उपयोग द्वारा भी किया जा सकता है। विश्लेषण का उद्देश्य परिकल्पना की जाँच करके तदनुसार निष्कर्ष निकालना है।

(4) *शोध निष्कर्षों का पुनरीक्षण* : अनुसंधानकर्ता ने अनुशासनहीनता का अध्ययन इस परिकल्पना से प्रारंभ किया होगा कि टेलीविज़न पर हिंसा देखने एवं बच्चों में आक्रामकता आने के बीच संबंध है। उसे यह देखना होगा कि क्या उसके निष्कर्ष इस परिकल्पना की पुष्टि करते हैं। यदि करते हैं तो प्रस्तुत परिकल्पना/सिद्धांत पुष्ट हो जाएगी। यदि ऐसा नहीं है तो

अनुसंधानकर्ता एक वैकल्पिक परिकल्पना/सिद्धांत स्थापित करेगा तथा नए प्रदत्तों के आधार पर इसका परीक्षण करेगा और निष्कर्ष निकालेगा। इस परिकल्पना/सिद्धांत की परीक्षा भावी अनुसंधानकर्ताओं द्वारा की जा सकती है। अतः अनुसंधान निरंतर चलनेवाली प्रक्रिया है।

अनुसंधान के वैकल्पिक प्रतिमान

मनोवैज्ञानिकों की मान्यता है कि मानव व्यवहार का अध्ययन भौतिकी, रसायन विज्ञान तथा जीव विज्ञान जैसे विज्ञानों की विधियों को अपनाकर किया जा सकता है और किया भी जाना चाहिए। इस विचारधारा का प्रमुख अभिमत है कि मानव व्यवहार का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। यह आंतरिक एवं बाह्य शक्तियों द्वारा घटित होता है तथा इसका प्रेक्षण, मापन तथा नियंत्रण किया जा सकता है। इन लक्ष्यों की पुष्टि के लिए, मनोविज्ञान विद्याशाखा ने बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक अपने को मात्र व्यक्त व्यवहार तक सीमित रखा – वह व्यवहार जिसका प्रेक्षण एवं मापन किया जा सकता है। मनोविज्ञान के अध्ययन में वैयक्तिक अनुभूतियों, अनुभवों तथा अर्थों पर ध्यान नहीं दिया गया।

आधुनिक समय में, एक अलग दृष्टि जिसे *व्याख्यापरक परंपरा* कहते हैं का उदय हुआ है जो व्याख्या एवं पूर्वकथन की तुलना में समझ को अधिक महत्वपूर्ण मानता है। यह परंपरा मानती है कि निरंतर परिवर्तनीय एवं जटिल मानव व्यवहार एवं अनुभव की अन्वेषण विधि, भौतिक जगत की अन्वेषण विधि से भिन्न होनी चाहिए। इस विचारधारा के अनुसार किसी संदर्भ विशेष में घटित होने वाली घटनाओं एवं क्रियाओं की अर्थवत्ता को खोजना एवं समझना अधिक महत्वपूर्ण होता है। कुछ विशिष्ट संदर्भ होते हैं जहाँ बाह्य कारकों (जैसे सुनामी, भूकंप एवं चक्रवात से प्रभावित व्यक्ति) अथवा आंतरिक कारकों (उदाहरणार्थ, लंबी बीमारी आदि) से लोग पीड़ादायी स्थितियों से गुजरते हैं। ऐसी स्थितियों में वस्तुनिष्ठता संभव नहीं होती है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति सत्य का निर्माण अपने-अपने ढंग से करता है, इसलिए हम वास्तविकता की व्यक्तिपरक व्याख्या करते हैं। यहाँ हमारा लक्ष्य होता है कि हम मानवीय अनुभवों एवं व्यवहारों की सहज प्रवहमानता को बिना हानि पहुँचाए विविध पक्षों का पता लगाएँ। उदाहरण के लिए, कोई भी खोज करने वाला यह नहीं जानता कि वह क्या खोज रहा है, कैसे खोज की जाए तथा किस बात की प्रत्याशा की जाए। बल्कि वह प्रयास करता है कि जो कुछ अव्यवस्थित विवरण है उसका प्रारूप तैयार किया जाए यद्यपि उसे उस क्षेत्र की कम अथवा बिलकुल जानकारी नहीं रहती है। उसका मुख्य कार्य जो कुछ एक संदर्भ विशेष में मिलता है उसका विस्तृत विवरण लिपिबद्ध रूप में तैयार करना है।

वैज्ञानिक एवं व्याख्यापरक परंपरा दोनों का उद्देश्य दूसरों के व्यवहारों एवं अनुभवों का अध्ययन करना होता है। हमारे अपने अनुभवों एवं व्यवहारों के विषय में क्या होता है? मनोविज्ञान के छात्र के रूप में आप स्वयं से प्रश्न पूछ सकते हैं: मैं क्यों दुख का अनुभव कर रहा हूँ? कई बार आप प्रण करते हैं कि आप अपने खान-पान को नियंत्रित करेंगे अथवा अध्ययन हेतु अधिक समय देंगे। लेकिन जब भोजन या अध्ययन करने का समय होता है तो आप अपना प्रण भूल जाते हैं। आपको आश्चर्य होगा कि कोई अपने व्यवहार पर नियंत्रण क्यों नहीं कर पाता है। क्या मनोविज्ञान को इस बात में सहायता नहीं करनी चाहिए कि आप अपने अनुभवों, चिंतन प्रक्रियाओं तथा व्यवहार का विश्लेषण कर सकें? मनोवैज्ञानिक जाँच का ध्येय होना चाहिए कि वह अपने अनुभवों एवं अंतर्दृष्टियों द्वारा प्रदर्शित होने वाले 'स्व' को समझने का प्रयास करे।

मनोवैज्ञानिक प्रदत्त का स्वरूप

आप जानना चाहेंगे कि मनोवैज्ञानिक प्रदत्त किस प्रकार अन्य विज्ञानों के प्रदत्तों से भिन्न होता है। मनोवैज्ञानिक विविध स्रोतों से विभिन्न विधियों द्वारा सूचनाएँ एकत्रित करते हैं। सूचनाएँ जिन्हें **प्रदत्त** (data) कहा जाता है (डेटा बहुवचन है और डेटम शब्द एकवचन), व्यक्तियों के अव्यक्त अथवा व्यक्त व्यवहारों, आत्मपरक अनुभवों एवं मानसिक प्रक्रियाओं से संबंधित होती हैं। मनोवैज्ञानिक जाँच का अहम स्वरूप प्रदत्तों से निर्मित होता है। वे वास्तव में कुछ सीमा तक वास्तविकता का अनुमान लगाते हैं और इससे एक ऐसा अवसर प्राप्त होता है जिसमें हम अपने विचारों, अनुमानों धारणाओं आदि के सही अथवा गलत होने की जाँच कर सकते हैं। ध्यातव्य है कि प्रदत्त कोई स्वतंत्र सत्व नहीं होते बल्कि वे एक संदर्भ में प्राप्त होते हैं तथा उस सिद्धांत एवं विधि से आबद्ध होते हैं जिनसे इनके संग्रह की प्रक्रिया संचालित होती है। दूसरे शब्दों में, प्रदत्त भौतिक अथवा सामाजिक संदर्भों, संबंधित व्यक्यों तथा व्यवहार के घटित होने के समय आदि से स्वतंत्र नहीं होते हैं। उदाहरण के लिए, हम अकेले में जैसा व्यवहार करते हैं समूह में या घर और कार्यालय में उससे कहीं भिन्न व्यवहार करते हैं। आप अपने

अध्यापक अथवा माता–पिता से बातचीत करने में संकोच करते हैं परंतु अपने मित्रों के साथ वैसा नहीं करते हैं। आपने ध्यान दिया होगा कि सभी लोग समान परिस्थितियों में समान व्यवहार नहीं करते हैं। आप भी हर जगह एक ही तरह का व्यवहार नहीं करते। प्रदत्त संग्रह की प्रयुक्त विधियाँ (सर्वेक्षण, साक्षात्कार, प्रयोग आदि) तथा सूचना के स्रोत (उदाहरण के लिए, व्यक्ति अथवा समूह, युवा अथवा वृद्ध, पुरुष अथवा महिला, शहरी अथवा ग्रामीण) प्रदत्त के स्वरूप तथा गुणवत्ता का निर्धारण करते हैं। यह संभव है कि जब आप किसी विद्यार्थी का साक्षात्कार करें तो वह उस परिस्थिति में एक अलग प्रकार से व्यवहार करे, परंतु जब आप वास्तविक स्थिति में उसका प्रेक्षण करें तो सब कुछ विपरीत पाएँ। प्रदत्त की अन्य विशेषता है कि वह स्वयं सत्यता के विषय में कुछ नहीं कहता बल्कि उससे अनुमान लगाया जाता है। दूसरे शब्दों में, शोधकर्ता प्रदत्त को एक संदर्भ विशेष में रखकर अर्थवान बनाता है।

मनोविज्ञान में हम विभिन्न प्रकार के प्रदत्त अथवा सूचनाएँ संगृहीत करते हैं। इनमें से कुछ प्रकारों का उल्लेख आगे किया जा रहा है :

i) *जनांकिकीय सूचनाएँ* **:** इन सूचनाओं के अन्तर्गत व्यक्तिगत सूचनाएँ आती हैं; जैसे- नाम, आयु, लिंग, जन्मक्रम, सहोदरों की संख्या, शिक्षा, व्यवसाय, वैवाहिक स्थिति, बच्चों की संख्या, आवास की भौगोलिक स्थिति, जाति, धर्म, माता–पिता की शिक्षा, उनका व्यवसाय, तथा परिवार की आय आदि।

ii) *भौतिक सूचनाएँ* **:** इसके अंतर्गत पारिस्थितिक संबंधी सूचनाएँ (पहाड़ी/रेगिस्तानी/वन), आर्थिक दशा, आवास की दशा, कमरों का आकार, घर में, पड़ोस में एवं विद्यालय में उपलब्ध सुविधाएँ, यातायात के साधन आदि सम्मिलित होती हैं।

iii) *दैहिक प्रदत्त* **:** कुछ अध्ययनों में लंबाई, वजन, हृदय गति, थकान का स्तर, गैल्वैनी त्वचा प्रतिरोध, इलेक्ट्रो–एनसेफैलोग्राफ द्वारा मापी जाने वाली मस्तिष्क की धारागत क्रियाएँ, रुधिर ऑक्सीजन का स्तर, प्रतिक्रिया काल, निद्रा की अवधि, रक्तचाप, स्वप्न का स्वरूप, लार की मात्रा तथा पशुओं के संदर्भ में दौड़ना एवं कूदना जैसी दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक सूचनाओं को संगृहीत किया जाता है।

iv) *मनोवैज्ञानिक सूचना* **:** कुछ अध्ययनों में बुद्धि, व्यक्तित्व, रुचि, मूल्य, सर्जनशीलता, संवेग, अभिप्रेरणा, मनोवैज्ञानिक विकार, भ्रमासक्ति, विभ्रांति, भ्रम, अवसादबोधन, प्रात्यक्षिक निर्णय, चिंतन प्रक्रियाएँ, चेतना, व्यक्तिपरक अनुभव आदि अनेक मनोवैज्ञानिक सूचनाएँ संगृहीत की जाती हैं।

मापन की दृष्टि से उपर्युक्त सूचनाएँ अनगढ़ हो सकती हैं। वे श्रेणियों के रूप में (जैसे- उच्च/निम्न, हाँ/नहीं), कोटियों (जैसे- प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ आदि) अथवा लब्धांकों (10, 12, 15, 18, 20 आदि) के रूप में होती हैं। हमें वाचिक आख्याएँ, प्रेक्षण अभिलेख, व्यक्तिगत दैनिकी, क्षेत्र टिप्पणियाँ, पुरालेखीय प्रदत्त आदि भी प्राप्त होते हैं। इस तरह की सूचनाओं का गुणात्मक विधि का उपयोग करते हुए पृथक रूप से विश्लेषण किया जा सकता है। इस अध्याय के आगे के भाग में आपको इसके बारे में कुछ जानकारी प्राप्त होगी।

मनोविज्ञान की कुछ महत्वपूर्ण विधियाँ

पिछले खंड में आपने मनोविज्ञान में संगृहीत होने वाले भिन्न–भिन्न प्रकार के प्रदत्तों के बारे में पढ़ा। ये सभी प्रदत्त किसी एक ही विधि से प्राप्त नहीं होते हैं। अनेक प्रकार की विधियाँ होती हैं, जैसे- प्रेक्षण, प्रायोगिक, सहसंबंधात्मक, सर्वेक्षण, मनोवैज्ञानिक परीक्षण तथा व्यक्ति अध्ययन। इस खंड का उद्देश्य आपको यह बताना है कि आप किसी एक विधि अथवा कई विधियों को मिलाकर अपने उद्देश्य के अनुरूप कार्य कर सकते हैं। उदाहरण के लिए:

- आप फुटबाल मैच देखते हुए दर्शकों के व्यवहार का प्रेक्षण कर सकते हैं।
- आप एक प्रयोग करके देख सकते हैं कि बच्चे जब अपनी ही कक्षा में परीक्षा देते हैं तो अच्छा प्रदर्शन करते हैं अथवा परीक्षा भवन में (कार्य–कारण संबंध)।
- आप बुद्धि एवं आत्म–सम्मान के बीच सहसंबंध स्थापित कर सकते हैं (पूर्वकथन के उद्देश्य से)।
- शिक्षा के निजीकरण के संबंध में आप विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का सर्वेक्षण कर सकते हैं।
- वैयक्तिक भिन्नता की जानकारी के लिए आप मनोवैज्ञानिक परीक्षण का उपयोग कर सकते हैं।
- आप बच्चे के भाषा–विकास का व्यक्ति अध्ययन कर सकते हैं।

अगले खंडों में इन विधियों की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन किया गया है।

प्रेक्षण विधि

प्रेक्षण मनोवैज्ञानिक जाँच का एक सशक्त उपकरण है। व्यवहार के वर्णन की यह एक प्रभावकारी विधि है। अपने दैनिक जीवन में हम दिन भर अनेक चीज़ों का प्रेक्षण करने में व्यस्त रहते हैं। कई बार ऐसा होता है कि हमें उस बात का ध्यान ही नहीं रह पाता है कि हम क्या देख रहे हैं अथवा हमने क्या देखा है। हम देखते हैं, परंतु प्रेक्षण नहीं करते हैं। हम प्रतिदिन जितनी चीज़ों को देखते हैं उनमें से कुछ की ही हमें जानकारी रहती है। क्या आपने ऐसा अनुभव किया है? आपने यह भी अनुभव किया होगा कि यदि आप किसी व्यक्ति या घटना को कुछ देर तक ध्यान से देखते हैं तो आपको उस व्यक्ति अथवा घटना के विषय में बहुत सी रोचक बातों का पता चलता है। वैज्ञानिक प्रेक्षण दिन-प्रतिदिन के प्रेक्षणों से बहुधा भिन्न होते हैं। ये विशेषताएँ हैं:

(क) *चयन* : मनोवैज्ञानिक उन सभी व्यवहारों का प्रेक्षण नहीं करते हैं जिनसे उनका सामना पड़ता है बल्कि वे एक व्यवहार विशेष का प्रेक्षण हेतु **चयन** (select) करते हैं। उदाहरण के लिए, आप यह जानना चाहेंगे कि ग्यारहवीं कक्षा के विद्यार्थी अपने विद्यालय में समय कैसे व्यतीत करते हैं। इस स्तर पर दो बातें संभव हैं। एक अनुसंधानकर्ता के रूप में आप सोच सकते हैं कि आप भली-भाँति जानते हैं कि विद्यालयों में क्या होता है। आप उन क्रियाकलापों की एक सूची बनाकर विद्यालय जाकर देख सकते हैं कि उनमें से कौन से क्रियाकलाप घटित हो रहे हैं। आप यह भी सोच सकते हैं कि आप इस संबंध में कुछ नहीं जानते हैं कि विद्यालयों में क्या-क्या होता है। अब प्रेक्षण के द्वारा आप इसका पता लगा सकते हैं।

(ख) *अभिलेखन* : प्रेक्षण करते समय अनुसंधानकर्ता चयनित व्यवहारों का विभिन्न साधनों का प्रयोग करते हुए, जैसे- पूर्व में चयनित व्यवहारों का जब भी वे घटित होते हैं, टैली लगाकार **अभिलेख** (records) तैयार करता है। इसके लिए वह शार्टहैंड अथवा प्रतीकों, फोटोग्राफ अथवा वीडियो अभिलेखन का उपयोग करता है।

(ग) *प्रदत्त विश्लेषण* : प्रेक्षण के पश्चात मनोवैज्ञानिक जो भी अभिलेख तैयार करते हैं उसका **विश्लेषण** (analyse) इस ध्येय से करते हैं कि उससे कुछ अर्थ निकाला जा सके।

यह ध्यातव्य है कि प्रेक्षण एक कौशल है। एक कुशल प्रेक्षक जानता है कि वह किस चीज़ का प्रेक्षण कर रहा है, वह किसका प्रेक्षण करना चाहता है, प्रेक्षण *कहाँ* और *कब* करना होगा। प्रेक्षण कर अभिलेख किस रूप में तैयार किया जाएगा और प्रेक्षित व्यवहार का विश्लेषण किस विधि द्वारा किया जाएगा।

प्रेक्षण के प्रकार

प्रेक्षण निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं :

(क) *प्रकृतिवादी बनाम नियंत्रित प्रेक्षण* : जब प्रेक्षण प्राकृतिक अथवा वास्तविक जगत की स्थिति में किया जाता है (उपर्युक्त उदाहरण में विद्यालय में प्रेक्षण किया गया था) तो उसे **प्रकृतिवादी प्रेक्षण** (naturalistic observation) कहते हैं। इस उदाहरण में प्रेक्षणकर्ता परिस्थिति का न तो प्रहस्तन करता है और न ही उसको नियंत्रित करने का प्रयास करता है। इस तरह के प्रेक्षण अस्पताल, घर, विद्यालय, दिन में देखभाल करने वाले केंद्र आदि स्थानों पर किए जाते हैं। यद्यपि कई बार आपको कुछ ऐसे कारकों को नियंत्रित करने की आवश्यकता पड़ती है जो व्यवहार का निर्धारण करते हैं परंतु वे आपके अध्ययन के केंद्र नहीं होते हैं। इसलिए, बहुत से मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रयोगशालाओं में किए जाते हैं। उदाहरण के लिए, यदि आप बॉक्स 2.1 का अवलोकन करें तो पाएँगे कि धुआँ मात्र नियंत्रित प्रयोगशाला में ही उत्पन्न किया जा सकता है। इस तरह के प्रेक्षण नियंत्रित प्रयोगशाला प्रेक्षण के नाम से जाने जाते हैं और वास्तव में ये प्रेक्षण प्रयोगशाला के प्रयोगों में प्राप्त होते हैं।

(ख) *असहभागी बनाम सहभागी प्रेक्षण* : प्रेक्षण दो प्रकार से किया जा सकता है। प्रथम, आप किसी व्यक्ति या घटना का प्रेक्षण दूर से कर सकते हैं। द्वितीय, प्रेक्षक प्रेक्षण किए जाने वाले समूह का एक सदस्य बनकर प्रेक्षण करता है। प्रथम दशा में व्यक्ति जिसका प्रेक्षण किया जा रहा है उसे यह मालूम नहीं हो पाता है कि उसका प्रेक्षण किया जा रहा है। उदाहरण के लिए, किसी कक्षा विशेष में आप शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के बीच होने वाली अन्त:क्रिया का प्रेक्षण करना चाहते हैं। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कई तरीके हैं। आप चाहें तो कक्षा में वीडियो कैमरा लगाकर सारी गतिविधियों का परीक्षण करें, जिन्हें आप बाद में देख सकते हैं तथा उनका विश्लेषण कर सकते हैं। विकल्प के रूप में आप कक्षा की सामान्य गतिविधियों में बिना भाग लिए अथवा बिना कोई अवरोध पैदा किए कक्षा के कौने में बैठ सकते हैं। इस प्रकार के प्रेक्षण को **असहभागी प्रेक्षण** (non-participant observation)

बॉक्स 2.1 प्रयोग का एक उदाहरण

बिब्ब लताने (Bibb Latane) एवं जान डार्ली (John Darley) नामक दो अमरीकी मनोवैज्ञानिकों ने 1970 में एक अध्ययन किया। इस अध्ययन में भाग लेने के लिए कोलंबिया विश्वविद्यालय के छात्र व्यक्तिगत रूप से एक प्रयोगशाला में उपस्थित हुए। उन्हें बताया गया था कि संभवत: किसी विषय पर उनका साक्षात्कार किया जाएगा। प्रत्येक छात्र को एक प्रतीक्षालय में भेजा गया था जहाँ उसे एक प्रारंभिक प्रश्नावली पूर्ण करनी थी। उनमें से कुछ लोगों को उनके कक्ष में दो व्यक्ति पहले से बैठे मिले जबकि शेष कक्ष में अकेले बैठे थे। ज्योंही विद्यार्थियों ने प्रश्नावली हल करनी प्रारंभ की, कमरे की दीवार के छिद्र से कक्ष में धुआँ भरने लगा। धुएँ की उपेक्षा करना कठिन था। चार मिनट में ही धुआँ दृष्टि एवं श्वसन को बाधित करने लगा। लताने एवं डार्ली यह देखना चाहते थे कि विद्यार्थी कितनी शीघ्रता से कक्ष छोड़ते हैं और उस आपातकाल की सूचना देते हैं। अधिकांश (75 प्रतिशत) ऐसे विद्यार्थी जो कक्ष में अकेले थे उन्होंने समूह में रहने वाले विद्यार्थियों की तुलना में धुएँ की सूचना शीघ्रता से दी। जिन समूहों में तीन अपरिचित लोग थे वहाँ मात्र 38 प्रतिशत विद्यार्थियों ने धुएँ की सूचना दी। जहाँ विद्यार्थियों के साथ दो अभिसंगी थे, जिन्हें शोधकर्ता ने कुछ न करने का निर्देश दिया था, वहाँ मात्र 10 प्रतिशत विद्यार्थियों ने धुएँ की सूचना दी थी।

कहते हैं। इस विधि में इस बात का खतरा रहता है कि किसी व्यक्ति (बाहरी व्यक्ति) के कक्षा में बैठने से पूरी कक्षा की वास्तविक स्थिति बिगड़ सकती है।

द्वितीय प्रकार के प्रेक्षण में प्रेक्षणकर्ता एक अध्यापक अथवा विद्यार्थी के रूप में विद्यालय में उपस्थित रहता है तथा शिक्षक व विद्यार्थी के रूप में होने वाली समस्त गतिविधियों में भाग लेता है। इसे प्रतिभागी प्रेक्षण कहा जाता है। प्रतिभागी प्रेक्षण में प्रेक्षक को समूह के साथ घनिष्ठता बनाने में, जिससे कि समूह सदस्य उसे अपने समूह के सदस्य के रूप में स्वीकार करें, कुछ समय लगता है। फिर भी समूह के साथ प्रेक्षक के सम्मिलित होने की मात्रा उसके अध्ययन के केंद्र के आधार पर भिन्न होगी।

प्रेक्षण विधि का लाभ यह होता है कि इसमें अनुसंधानकर्ता लोगों एवं उनके व्यवहारों का प्राकृतिक स्थिति जैसे वह घटित होती है, में अध्ययन करता है। हालाँकि, प्रेक्षण विधि श्रमसाध्य है, अधिक समय लेती है तथा प्रेक्षक के पूर्वाग्रह के कारण इसमें गलती होने का डर रहता है।

हमारा प्रेक्षण व्यक्ति अथवा घटना के संबंध में हमारे मूल्यों एवं विश्वासों से प्रभावित होता है। आप इस बहुप्रचलित कथन से परिचित होंगे: 'हम चीज़ों को उसी ढंग से देखते हैं जैसा कि हम स्वयं होते हैं न कि जैसी चीज़ें होती हैं।' अपने पूर्वाग्रह के कारण हम चीज़ों की व्याख्या भिन्न रूप में कर सकते हैं न कि जैसे प्रतिभागी वास्तव में उसका अर्थ समझते हैं। इसीलिए इस बात की सलाह दी जाती है कि प्रेक्षक व्यवहार के घटित होने के समय ही उसका अभिलेख तैयार कर लें, किंतु प्रेक्षण करते समय व्यवहार की व्याख्या न करें।

क्रियाकलाप 2.1

जब मनोविज्ञान का अध्यापक कक्षा में पढ़ा रहा हो तो कुछ विद्यार्थी प्रेक्षण कर सकते हैं। विस्तार से नोट कीजिए कि वह अध्यापक क्या करता है, विद्यार्थी क्या करते हैं तथा विद्यार्थियों एवं शिक्षक की अन्त:क्रिया का लेखा-जोखा तैयार कीजिए। किए गए प्रेक्षणों पर विद्यार्थियों और अध्यापक के साथ विमर्श कीजिए। प्रेक्षण की समानताओं एवं असमानताओं को नोट कीजिए।

प्रायोगिक विधि

प्रयोग प्राय: एक नियंत्रित दशा में दो घटनाओं या परिवर्त्यों के मध्य कार्य-कारण संबंध स्थापित करने के लिए किया जाता है। यह सतर्कतापूर्वक संचालित प्रक्रिया है जिसमें एक कारक में कुछ परिवर्तन किए जाते हैं और किसी दूसरे कारक पर उनके प्रभाव का अध्ययन किया जाता है, जबकि अन्य संबंधित कारक स्थिर रखे जाते हैं। प्रयोग में कारण वह घटना है जिसे परिवर्तित तथा प्रहस्तित किया जाता है। प्रभाव व्यवहार होता है जो प्रहस्तन के कारण परिवर्तित होता है।

परिवर्त्य का संप्रत्यय

आप पहले पढ़ चुके हैं कि प्रायोगिक विधि में अनुसंधानकर्ता दो परिवर्त्यों के मध्य संबंध स्थापित करने का प्रयास करता है। अब प्रश्न है: परिवर्त्य किसे कहते हैं? कोई उद्दीपक या घटना जो बदलती रहती है अर्थात इसके भिन्न-भिन्न मान होते हैं (परिवर्तित होते हैं) और इसलिए इसका मापन किया जा सकता

है, को **परिवर्त्य** (variable) कहते हैं। उदाहरण के लिए, लिखने के लिए आप जिस कलम का उपयोग करते हैं वह एक परिवर्त्य नहीं है। लेकिन कलमें विभिन्न आकारों, प्रकारों एवं रंगों की होती हैं। ये सभी परिवर्त्य हैं। जिस कमरे में आप बैठे हैं वह एक परिवर्त्य नहीं है बल्कि उसका आकार एक परिवर्त्य है क्योंकि विभिन्न आकारों के कमरे होते हैं। व्यक्तियों का कद (5' से 6') भी एक परिवर्त्य है। इसी प्रकार, विभिन्न प्रजाति के लोगों के अलग-अलग रंग होते हैं। युवा लोग विभिन्न रंगों से अपने बाल रँगने लगे हैं। इस प्रकार, बाल का रंग भी एक परिवर्त्य है। बुद्धि भी एक परिवर्त्य है। अनेक प्रकार के बुद्धि स्तर वाले (उच्च, मध्यम, निम्न) लोग होते हैं। एक कक्ष में व्यक्तियों की उपस्थिति या अनुपस्थिति भी एक परिवर्त्य है जैसा बॉक्स 2.1 के प्रयोग में दिखाया गया है। अत: वस्तुओं/घटनाओं की मात्रा अथवा गुणवत्ता में परिवर्तन हो सकते हैं।

परिवर्त्य अनेक प्रकार के होते हैं किंतु यहाँ हम दो प्रकार के परिवर्त्यों की चर्चा करेंगे- अनाश्रित और आश्रित परिवर्त्य। **अनाश्रित परिवर्त्य** (independent variable) वह परिवर्त्य होता है जिसका प्रहस्तन किया जाता है अथवा जिसे प्रयोग में अनुसंधानकर्ता द्वारा परिवर्तित किया जाता है। अध्ययन में अनुसंधानकर्ता परिवर्त्य के प्रभाव में किए गए परिवर्तन का प्रेक्षण अथवा नोट तैयार करना चाहता है। लताने और डार्ली द्वारा संपादित प्रयोग (बॉक्स 2.1) में अनुसंधानकर्ता धुएँ के संबंध में आपातकाल की सूचना देने वाले व्यक्ति पर अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति का प्रभाव देखना चाहते थे। एक कक्ष में दो व्यक्तियों की उपस्थिति या अनुपस्थिति अनाश्रित परिवर्त्य था। जिस व्यवहार पर अनाश्रित परिवर्त्य के प्रभाव का प्रेक्षण किया जाता है उसे **आश्रित परिवर्त्य** (dependent variable) कहते हैं। आश्रित परिवर्त्य उस गोचर को बताता है जिसकी अनुसंधानकर्ता व्याख्या करना चाहता है। यह मात्र अनाश्रित परिवर्त्य में परिवर्तन के परिणामस्वरूप व्यवहार में परिवर्तन है और कुछ नहीं। धुएँ के आपातकाल की सूचना देना आश्रित परिवर्त्य था। अत: प्रायोगिक दशा में अनाश्रित परिवर्त्य कारण है तथा आश्रित परिवर्त्य प्रभाव।

यहाँ यह स्पष्ट होना चाहिए कि आश्रित एवं अनाश्रित परिवर्त्य एक दूसरे पर आश्रित होते हैं। किसी की भी परिभाषा दूसरे के बिना संभव नहीं है। अनुसंधानकर्ता द्वारा चयनित अनाश्रित परिवर्त्य एक मात्र ऐसा परिवर्त्य नहीं होता है जो आश्रित परिवर्त्य को प्रभावित करता है। किसी व्यावहारिक घटना में कई परिवर्त्य होते हैं। यह किसी संदर्भ में ही होता है। आश्रित एवं अनाश्रित परिवर्त्यों का चयन अनुसंधानकर्ता की सैद्धांतिक रुचि के कारण ही किया जाता है। वास्तव में, ऐसे बहुत से अन्य सार्थक अथवा बाह्य परिवर्त्य होते हैं जो आश्रित परिवर्त्य को प्रभावित करते हैं, किंतु अनुसंधानकर्ता उनके प्रभावों को जानने में रुचि नहीं भी ले सकता है। ऐसे बाह्य परिवर्त्यों को प्रयोग में नियंत्रित करना आवश्यक होता है जिससे अनुसंधानकर्ता अनाश्रित एवं आश्रित परिवर्त्यों के मध्य कार्य-कारण संबंध स्पष्ट कर सके।

प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह

प्रयोगों में प्राय: एक या अधिक प्रायोगिक समूह और एक या अधिक नियंत्रित समूह होते हैं। प्रायोगिक समूह वह समूह होता है जिसमें समूह सदस्यों को अनाश्रित परिवर्त्य प्रहस्तन के लिए प्रस्तुत किया जाता है। नियंत्रित समूह एक तुलना समूह होता है जो प्रहस्तित परिवर्त्य को छोड़कर शेष अन्य दृष्टियों से प्रायोगिक समूह की तरह का ही होता है। उदाहरण के लिए, लताने और डार्ली के अध्ययन में, दो प्रायोगिक समूह और एक नियंत्रित समूह थे। जैसे आपको ज्ञात है, अध्ययन में प्रतिभागी तीन कक्षों में भेजे गए थे। एक कक्ष में कोई भी उपस्थित नहीं था (नियंत्रित समूह)। अन्य दो कक्षों में दो व्यक्ति बैठाए गए थे (प्रायोगिक समूह)। दो प्रायोगिक समूहों में एक समूह को यह निर्देशित किया गया था कि कमरे में धुआँ भरने पर कुछ भी नहीं करना था। दूसरे समूह को कोई भी निर्देश नहीं दिया गया था। नियंत्रित समूह के निष्पादन की तुलना प्रायोगिक समूह से की गई थी। जैसा कि अध्ययन में पाया गया, नियंत्रित समूह के प्रतिभागियों ने आपातकाल के संबंध में सबसे अधिक सूचना दी, प्रथम प्रायोगिक समूह जिसमें प्रतिभागियों को कोई निर्देश नहीं दिया गया था तथा द्वितीय प्रायोगिक समूह (अभिषंगी वाला समूह) ने आपातकाल की बहुत कम सूचना दी।

ध्यातव्य है कि किसी प्रयोग में प्रायोगिक प्रहस्तन के अतिरिक्त प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूहों के लिए अन्य दशाएँ स्थिर रखी जाती हैं। उन सभी संबद्ध परिवर्त्यों को नियंत्रित करने का प्रयास किया जाता है जो आश्रित परिवर्त्य को प्रभावित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, जिस गति से कक्ष में धुआँ आना शुरू हुआ, कक्ष में धुएँ की समग्र मात्रा, कक्ष में भौतिक एवं अन्य प्रकार की सुविधाएँ तीनों समूह के लिए एकसमान थीं। प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूहों में प्रतिभागियों का वितरण **यादृच्छिक** (random) रूप में किया जाता है। यह वह

विधि होती है जिसमें यह सुनिश्चित किया जाता है कि हर व्यक्ति के किसी भी समूह में चयनित होने की संभावना एक समान रहे। यह संभव है कि प्रयोगकर्ता एक समूह में सिर्फ़ पुरुषों को और दूसरे समूह में सिर्फ़ महिलाओं को रखे। जो परिणाम उसको अध्ययन में मिलेगा वह प्रायोगिक प्रहस्तन का न होकर लिंग भिन्नता के कारण होगा। प्रायोगिक अध्ययनों में सभी संबद्ध सार्थक परिवर्त्य जो अध्ययन के परिणाम को प्रभावित कर सकते हैं, उनका नियंत्रण करने की आवश्यकता होती है। ये तीन प्रमुख प्रकार के होते हैं: जैविक परिवर्त्य (जैसे- दुश्चिंता, बुद्धि, व्यक्तित्व आदि), परिस्थितिजन्य अथवा पर्यावरणीय परिवर्त्य जो प्रयोग करते समय क्रियाशील होते हैं (जैसे- शोर, तापमान, आर्द्रता) तथा अनुक्रमिक परिवर्त्य। जब प्रयोग के प्रतिभागियों का परीक्षण विभिन्न दशाओं में किया जाता है तो अनुक्रमिक परिवर्त्य अधिक सक्रिय हो जाते हैं। विभिन्न दशाओं के प्रति संवेदनशीलता के परिणामस्वरूप थकान अथवा अभ्यास प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं जो अध्ययन के परिणामों को प्रभावित कर सकते हैं तथा निष्कर्षों की व्याख्या को जटिल बना सकते हैं।

बाह्य परिवर्त्यों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए प्रयोगकर्ता कई नियंत्रण तकनीकों का उपयोग करते हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिए गए हैं:

- चूँकि प्रयोग का लक्ष्य बाह्य परिवर्त्यों को कम करना होता है इसलिए इस समस्या से मुक्त होने का उत्तम तरीका प्रायोगिक दशा से ऐसे परिवर्त्यों का निरसन करना है। उदाहरण के लिए, प्रयोग ध्वनिरोधी एवं वातानुकूलित कक्ष में किया जा सकता है और ध्वनि तथा तापमान के प्रभाव का निरसन किया जा सकता है।
- निरसन सर्वदा संभव नहीं होता है। इस बात का प्रयास किया जाना चाहिए कि उनका प्रभाव स्थिर रहे जिससे पूरी प्रायोगिक दशा में उनका प्रभाव एक-सा बना रहे।
- प्राणिगत (जैसे- भय, अभिप्रेरणा) और पृष्ठभूमि संबंधित परिवर्त्यों (जैसे- ग्रामीण/शहरी, जाति, सामाजिक और आर्थिक स्थिति) के नियंत्रण के लिए सुमेलन भी किया जाता है। इस प्रक्रिया में दो समूहों को प्रासंगिक परिवर्त्य के आधार पर समान कर दिया जाता है अथवा प्रयोग विभिन्न दशाओं में प्रतिभागियों के समेल युग्मों को लेते हुए प्रासंगिक परिवर्त्यों को स्थिर रखा जाता है।
- क्रम प्रभाव को कम करने के लिए प्रतिसंतुलनकारी तकनीक अपनाई जाती है। मान लीजिए, किसी प्रयोग में दो कार्य करने के लिए दिए गए हैं। प्रयोगकर्ता चाहे तो कार्यों के क्रम को परिवर्तित कर सकता है। अतः समूह के आधे प्रतिभागी अ और ब क्रम में कार्य प्राप्त कर सकते हैं जबकि शेष आधे ब और अ क्रम में। इसी प्रकार, एक ही व्यक्ति को अ, ब, ब, अ क्रम में कार्य दिया जा सकता है।
- विभिन्न समूहों में प्रतिभागियों के यादृच्छिक वितरण से समूहों के बीच विभवपरक व्यवस्थित अंतर समाप्त हो जाते हैं।

किसी भी सु-अभिकल्पित प्रयोग की शक्ति यह होती है कि वह दो या दो से अधिक परिवर्त्यों के मध्य कार्य-कारण संबंधों का युक्त प्रमाण दे सकता है। तथापि प्रयोग प्राय: बहुत नियंत्रित प्रयोगशाला परिस्थितियों में किए जाते हैं। इनकी आलोचना इस बात से होती है कि ये वास्तविक व्यवहार में नहीं होते हैं। प्रयोग ऐसे परिणाम प्रदान कर सकते हैं जिनका ठीक से सामान्यीकरण नहीं हो पाता अथवा वे वास्तविक परिस्थितियों में अनुप्रयुक्त नहीं हो पाते। दूसरे शब्दों में, इनकी निम्न *बाह्य वैधता* होती है। इनकी एक और सीमा है कि यह सर्वदा संभव नहीं होता कि किसी समस्या विशेष का अध्ययन प्रायोगिक रूप में किया जा सके। उदाहरण के लिए, बच्चों के बुद्धि स्तर पर पौष्टिकता की कमी के प्रभाव का अध्ययन नहीं किया जा सकता है, क्योंकि किसी को भूखा रखना नैतिक रूप से गलत है। तीसरी समस्या यह है कि समस्त प्रासंगिक परिवर्त्यों को जानना और उनका नियंत्रण करना कठिन होता है।

क्षेत्र प्रयोग एवं प्रयोग-कल्प

कई बार प्रयोगशाला में अध्ययन कर पाना संभव नहीं होता है। ऐसी दशा में अनुसंधानकर्ता क्षेत्र अथवा प्राकृतिक स्थिति में जाता है जहाँ व्यवहार विशेष वास्तव में घटित होता है। इसे **क्षेत्र प्रयोग** (field experiment) कहते हैं। उदाहरण के लिए, अनुसंधानकर्ता यह जानना चाहता है कि किस विधि से छात्रों में अधिक अधिगम होगा – व्याख्यान विधि अथवा करके दिखाने की विधि। इसलिए अनुसंधानकर्ता के लिए यह आवश्यक होगा कि वह अध्ययन विद्यालय में संपन्न करे। अनुसंधानकर्ता प्रतिभागियों के दो समूहों का चयन कर सकता है: कुछ समय तक एक समूह को करके दिखाने की विधि द्वारा पढ़ाए तथा दूसरे समूह को व्याख्यान विधि द्वारा पढ़ाए। अध्यापन के अंत में वह उनके निष्पादन की तुलना कर सकता है। इस प्रकार के प्रयोगों में प्रासंगिक परिवर्त्यों पर नियंत्रण प्रयोगशाला प्रयोग की

अपेक्षा कम होता है। इसमें समय भी अधिक लगता है तथा यह मँहगा भी पड़ता है।

बहुत से परिवर्त्य ऐसे होते हैं जिनका प्रहस्तन प्रयोगशाला में संभव नहीं हो पाता है। उदाहरण के लिए, यदि आप भूकंप में अनाथ हुए बच्चों पर भूकंप के प्रभाव का अध्ययन करना चाहते हैं तो आप ऐसी परिस्थिति प्रयोगशाला में तैयार नहीं कर सकते हैं। ऐसी परिस्थितियों में अनुसंधानकर्ता **प्रयोग-कल्प** (quasi experiments) (लैटिन शब्द जिसका अर्थ कल्प होता है) विधि अपनाता है। ऐसे प्रयोगों में अनाश्रित परिवर्त्य का चयन किया जाता है न कि उसे परिवर्तित अथवा प्रहस्तित किया जाता है। उदाहरण के लिए, प्रायोगिक समूह में हम ऐसे बच्चों को रखेंगे जो भूकंप में अनाथ हो गए और नियंत्रित समूह में उन बच्चों को रखेंगे जिन्होंने भूकंप का अनुभव तो किया है, किंतु माता-पिता से बिछुड़े नहीं हैं। इस प्रकार, प्रयोग-कल्प में एक प्राकृतिक परिवेश में स्वाभाविक रूप से पाए जाने वाले समूहों का उपयोग करके अनाश्रित परिवर्त्य को प्रहस्तित करने का प्रयास किया जाता है और प्रायोगिक तथा नियंत्रित समूह का निर्माण किया जाता है।

क्रियाकलाप 2.2

प्रस्तुत परिकल्पनाओं में अनाश्रित एवं आश्रित परिवर्त्यों की पहचान कीजिए:

1. *अध्यापक का कक्षा में व्यवहार छात्रों के निष्पादन को प्रभावित करता है।*
2. *माता-पिता एवं बच्चों के मध्य स्वस्थ संबंधों से बच्चों में संवेगात्मक समायोजन का विकास होता है।*
3. *साथियों के दबाव में वृद्धि के साथ दुश्चिंता के स्तर में वृद्धि होती है।*
4. *युवा बच्चों के वातावरण को विशिष्ट पुस्तकों एवं पहेलियों से समृद्ध बनाने से उनके निष्पादन में वृद्धि होती है।*

सहसंबंधात्मक अनुसंधान

मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में हम प्रायः पूर्वकथन करने के लिए दो परिवर्त्यों के मध्य संबंध का निर्धारण करना चाहते हैं। उदाहरण के लिए, आपकी रुचि यह जानने की है कि 'क्या अध्ययन समय की मात्रा विद्यार्थी की शैक्षिक उपलब्धि से संबंधित है?' यह विधि प्रयोगात्मक विधि से भिन्न है क्योंकि इसमें आपको अध्ययन के समय का न तो प्रहस्तन करना है, और न ही उपलब्धि पर उसका प्रभाव देखना है। आप मात्र दो परिवर्त्यों के मध्य संबंध जानना चाहते हैं जिससे आप यह जान सकें कि क्या दोनों में साहचर्य अथवा सहसंबंध है या नहीं। दोनों परिवर्त्यों में संबंध की शक्ति एवं दिशा एक गणितीय लब्धांक द्वारा प्रस्तुत होती है जिसे सहसंबंध गुणांक कहते हैं। इसका विस्तार +1.00, 0.0 से –1.0 तक होता है।

इस प्रकार, सहसंबंध गुणांक तीन प्रकार के होते हैं: धनात्मक, ऋणात्मक एवं शून्य। **धनात्मक सहसंबंध** (positive correlation) इस बात का संकेत करता है कि जब एक परिवर्त्य का मान बढ़ेगा तो दूसरे परिवर्त्य का मान भी बढ़ेगा। उसी प्रकार जब एक परिवर्त्य का मान घटेगा तो दूसरे का मान भी घटेगा। मान लीजिए यह पाया गया है कि विद्यार्थी जब अध्ययन के लिए अधिक समय देते हैं तो उनमें उपलब्धि लब्धांक की भी वृद्धि होती है तथा यह भी पाया गया है कि जब वे कम अध्ययन करते हैं तो उनका उपलब्धि लब्धांक भी कम होता है। इस प्रकार के साहचर्य को धनात्मक अंक द्वारा दर्शाया जाएगा और अध्ययन एवं उपलब्धि के बीच जितना अधिक सार्थक साहचर्य होगा वह गुणांक +1.00 के उतने ही करीब होगा। आपको +0.85 सहसंबंध गुणांक मिल सकता है जो अध्ययन समय एवं उपलब्धि के बीच उच्च धनात्मक साहचर्य का द्योतक होगा। दूसरी ओर, **ऋणात्मक सहसंबंध** (negative correlation) हमें बतलाता है कि जैसे ही एक परिवर्त्य (X) का मान बढ़ता है वैसे ही दूसरे परिवर्त्य (Y) का मान कम हो जाता है। उदाहरण के लिए, आप इस बात की परिकल्पना कर सकते हैं कि जैसे ही अध्ययन समय में वृद्धि होगी वैसे ही अन्य गतिविधियों में लगने वाला समय कम हो जाएगा। यहाँ आपको जो ऋणात्मक सहसंबंध मिलेगा उसका विस्तार 0 और –1.0 के बीच होगा। यहाँ यह भी संभव है कि दो परिवर्त्यों के बीच कोई सहसंबंध न हो। इसे **शून्य सहसंबंध** (zero correlation) कहते हैं। शून्य सहसंबंध मिलना प्रायः कठिन होता है। यद्यपि सहसंबंध शून्य के निकट हो सकता है जैसे –.02 अथवा +.03। यह बताता है कि दोनों परिवर्त्यों के बीच कोई सार्थक सहसंबंध नहीं है अथवा दोनों परिवर्त्य एक दूसरे से संबंधित नहीं हैं।

सर्वेक्षण अनुसंधान

आपने समाचारपत्रों में पढ़ा होगा अथवा दूरदर्शन पर देखा होगा कि चुनाव के समय यह जानने के लिए सर्वेक्षण किया

जाता है कि मतदाता किस राजनीतिक दल विशेष को वोट देंगे अथवा वे किस प्रत्याशी विशेष के पक्ष में हैं। सर्वेक्षण अनुसंधान लोगों के मत, अभिवृत्ति और सामाजिक तथ्यों का अध्ययन करने के लिए अस्तित्व में आया। इसका मुख्य सरोकार प्रारंभ में विद्यमान वास्तविकता अथवा मूल रेखा का पता लगाना था। इसलिए इसका उपयोग तथ्यों को प्राप्त करने के लिए किया गया था जैसे एक अवधि विशेष में साक्षरता की दर, धार्मिक संबद्धता तथा समूह विशेष के सदस्यों का आय-स्तर आदि। इसका उपयोग परिवार नियोजन के प्रति लोगों की अभिवृत्ति, पंचायती राज की संस्थाओं को स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता आदि से संबंधित कार्यक्रमों के संचालन हेतु शक्ति प्रदान करने के प्रति लोगों की अभिवृत्ति जानने के लिए भी किया गया। यद्यपि अब इसमें परिष्कृत तकनीकों का भी उपयोग होता है जो विविध प्रकार के कारण-कार्य संबंधों का पूर्वानुमान करने में सहायता करते हैं। बॉक्स 2.2 में सर्वेक्षण विधि द्वारा किए गए अध्ययन का एक उदाहरण दिया गया है।

सर्वेक्षण अनुसंधान सूचना एकत्रित करने के लिए विविध प्रकार की तकनीकों का उपयोग करता है। इन तकनीकों में वैयक्तिक साक्षात्कार, प्रश्नावली सर्वेक्षण, दूरभाष सर्वेक्षण तथा नियंत्रित प्रेक्षण आते हैं। यहाँ इन तकनीकों का कुछ विस्तार से वर्णन किया गया है।

वैयक्तिक साक्षात्कार

लोगों से सूचना प्राप्त करने के लिए साक्षात्कार सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाली विधि है। इसका उपयोग विभिन्न परिस्थितियों में किया जाता है। एक चिकित्सक इससे रोगियों के विषय में सूचना प्राप्त करता है, एक नियोजक अपने भावी कर्मचारी से मिलते समय इसका उपयोग करता है तथा एक बिक्रीकर्ता यह जानने के लिए एक गृहिणी से साक्षात्कार करता है कि वह एक ब्रांड विशेष के साबुन का ही उपयोग क्यों करती है। दूरदर्शन पर हम मीडियाकर्मियों को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व के मुद्दों पर साक्षात्कार करते हुए बहुत बार देखते हैं। साक्षात्कार में क्या होता है? हम देखते हैं कि दो या दो से अधिक व्यक्ति आमने-सामने बैठते हैं जिसमें एक व्यक्ति (प्रायः जिसे साक्षात्कारकर्ता कहा जाता है) प्रश्न पूछता है तथा दूसरा व्यक्ति (जिसे साक्षात्कारदाता या प्रतिक्रियादाता कहा जाता है) समस्या से संबंधित प्रश्नों का उत्तर देता है। साक्षात्कार एक उद्देश्यपूर्ण क्रियाकलाप है जिससे तथ्यपरक सूचनाएँ, अभिमत तथा अभिवृत्ति, एवं व्यवहार विशेष के कारण आदि प्रतिक्रियादाताओं से प्राप्त किए जाते हैं। यह आमने-सामने किया जाता है किंतु कभी-कभी यह दूरभाष पर भी संपन्न होता है।

मुख्य रूप से साक्षात्कार दो प्रकार के हो सकते हैं : **संरचित** (structured) या **मानकीकृत** (standardised)

बॉक्स 2.2 सर्वेक्षण विधि का उदाहरण

दिसम्बर 2004 में 'आउटलुक साप्ताहिक' पत्रिका (10 जनवरी 2005) द्वारा एक सर्वेक्षण यह जानने के लिए किया गया था कि भारत के लोगों को किन चीज़ों से प्रसन्नता मिलती है। सर्वेक्षण मुंबई, दिल्ली, कोलकाता, बैंगलूर, हैदराबाद, अहमदाबाद, जयपुर तथा रांची जैसे आठ बड़े नगरों में किया गया था। अध्ययन में 25 से 55 आयु वर्ग के 817 प्रतिभागियों ने भाग लिया था। सर्वेक्षण में प्रयुक्त प्रश्नावली में विभिन्न प्रकार के प्रश्न थे। पहले प्रश्न में (क्या आप प्रसन्न हैं?) प्रतिभागियों को पंच-अंक मापनी (5-अत्यधिक प्रसन्न, 4-लगभग प्रसन्न, 3-न तो प्रसन्न न ही अप्रसन्न, 2-लगभग अप्रसन्न, 1-अत्यधिक अप्रसन्न) पर अपनी प्रतिक्रिया देनी थी। लगभग 47 प्रतिशत लोगों ने बताया कि वे अत्यधिक प्रसन्न हैं, 28 प्रतिशत लोग लगभग प्रसन्न थे, 11 प्रतिशत लोगों ने बताया कि वे न तो प्रसन्न हैं और न ही अप्रसन्न, अंतिम दो वर्गों (दोनों में 7 प्रतिशत) में लोगों ने प्रतिक्रिया दी कि वे लगभग अप्रसन्न एवं अत्यधिक अप्रसन्न हैं। द्वितीय प्रश्न (क्या आप पैसों से प्रसन्नता खरीद सकते हैं?) के तीन विकल्प थे (हाँ, नहीं, ज्ञात नहीं)। करीब 80 प्रतिशत लोगों का मत था कि प्रसन्नता पैसों से नहीं खरीदी जा सकती है। अन्य प्रश्न में यह जानने का प्रयास किया गया था कि लोगों को अत्यधिक प्रसन्नता किससे मिलती है? 50 प्रतिशत से अधिक प्रतिक्रियादाताओं ने बताया कि मन की शांति (52 प्रतिशत) तथा स्वास्थ्य (50 प्रतिशत) लोगों को अत्यधिक प्रसन्नता प्रदान करती है। इसके बाद कार्य में सफलता (43 प्रतिशत) तथा परिवार (40 प्रतिशत) प्रसन्नता प्रदान करते हैं। एक दूसरा प्रश्न पूछा गया था कि वे अप्रसन्न अथवा दुखी होने पर क्या करते हैं? पाया गया कि 36 प्रतिशत लोग संगीत सुनने में, 23 प्रतिशत मित्रों की संगति में तथा 15 प्रतिशत सिनेमा देखने में प्रसन्नता का अनुभव करते हैं।

एवं **असंरचित** (unstructured) या **अमानकीकृत** (non-standardised)। यह अंतर इस बात पर आधारित होता है कि हमने साक्षात्कार के पहले कैसी तैयारी की है। चूँकि हमें साक्षात्कार के समय प्रश्न पूछने होते हैं, इसलिए प्रश्नों की सूची पहले से ही बना लेना आवश्यक होता है। इस सूची को साक्षात्कार अनुसूची कहते हैं। संरचित साक्षात्कार उसे कहते हैं जिसमें प्रश्न स्पष्ट रूप से अनुसूची में एक क्रम में लिख लिए जाते हैं। साक्षात्कारकर्ता को प्रश्नों की शब्दावली में अथवा उनके पूछे जाने के क्रम में कोई भी परिवर्तन करने की स्वतंत्रता नहीं होती है। कतिपय दशाओं में उन प्रश्नों की प्रतिक्रियाएँ भी पहले से ही उल्लिखित रहती हैं, इन्हें अमुक्त प्रश्न कहते हैं। इसके विपरीत, असंरचित साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता पूछे जाने वाले प्रश्नों, प्रश्नों की शब्दावली तथा प्रश्नों के पूछे जाने के क्रम में परिवर्तन करने के लिए स्वतंत्र होता है। चूँकि प्रतिक्रियाएँ पूर्व उल्लिखित नहीं होतीं, इसलिए प्रतिक्रियादाता जैसे चाहता है वैसे उत्तर देता है। इनको मुक्त प्रश्न कहते हैं। उदाहरण के लिए, यदि अनुसंधानकर्ता किसी व्यक्ति की प्रसन्नता के स्तर के संबंध में जानना चाहता है तो वह पूछ सकता है कि: आप कितने प्रसन्न हैं? प्रतिक्रियादाता जैसे चाहे वैसे उत्तर दे सकता है।

किसी साक्षात्कार में प्रतिभागियों की निम्न संयुक्तियाँ साक्षात्कार दशा में हो सकती हैं:

(अ) *व्यक्ति से व्यक्ति:* इस दशा में एक साक्षात्कारकर्ता किसी एक व्यक्ति का साक्षात्कार करता है।

(ब) *व्यक्ति से सूमह:* इस दशा में एक साक्षात्कारकर्ता व्यक्तियों के एक समूह का साक्षात्कार करता है। इसका एक भिन्न रूप फोकस समूह विमर्श होता है।

(स) *समूह से व्यक्ति:* यह एक ऐसी दशा होती है जिसमें साक्षात्कारकर्ताओं का एक समूह किसी एक व्यक्ति का साक्षात्कार करता है। जब आप नौकरी के लिए कोई साक्षात्कार देने जाते हैं तो आपको इस प्रकार के साक्षात्कार का अनुभव हो सकता है।

(द) *समूह से समूह:* ऐसी दशा में साक्षात्कारकर्ताओं का एक समूह साक्षात्कारदाताओं के एक समूह का साक्षात्कार करता है।

साक्षात्कार करना एक कौशल है जिसके लिए उपयुक्त प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। एक कुशल साक्षात्कारकर्ता यह जानता है कि प्रतिक्रियादाता को कैसे सहज रखकर इष्टतम उत्तर प्राप्त किया जा सकता है। व्यक्ति जिस प्रकार उत्तर देता है उसके प्रति साक्षात्कारकर्ता संवेदनशील रहता है तथा आवश्यकता पड़ने पर अधिक सूचना देने के लिए खोजबीन करता है। यदि प्रतिक्रियादाता अस्पष्ट उत्तर देता है तो साक्षात्कारकर्ता उससे उपयुक्त एवं मूर्त उत्तर प्राप्त करने का प्रयास करता है।

साक्षात्कार सूचनाओं को गहराई से प्राप्त करने में सहायता करता है। यह परिस्थितियों के अनुसार लचीला एवं अनुकूलित होता है और इस विधि का उपयोग प्राय: तब किया जाता है जब कोई अन्य विधि संभव अथवा पर्याप्त नहीं हो। इसका उपयोग बच्चों के लिए तथा अशिक्षितों के लिए भी किया जा सकता है। साक्षात्कारकर्ता जान सकता है कि क्या प्रतिक्रियादाता प्रश्नों को समझता है अथवा दुहराने या दूसरी तरह से कहने की आवश्यकता है। यद्यपि साक्षात्कार में समय लगता है। प्राय: किसी एक व्यक्ति से सूचना प्राप्त करने में एक घंटे का अथवा अधिक समय लग सकता है जो लागत-प्रभावी नहीं हो सकता है।

प्रश्नावली सर्वेक्षण

प्रश्नावली सूचना प्राप्त करने की सबसे प्रचलित, साधारण, बहुमुखी तथा अल्प लागत वाली आत्म-संवाद विधि है। इसमें एक पूर्वनिर्धारित प्रश्नों का समुच्चय होता है। प्रतिक्रियादाता को प्रश्न पढ़ना पड़ता है और कागज़ पर उत्तर लिखना पड़ता है न कि साक्षात्कारकर्ता को मौखिक उत्तर देना होता है। यह लगभग अति संरचित साक्षात्कार के जैसा होता है। प्रश्नावली को व्यक्तियों के एक समूह में वितरित किया जा सकता है जो प्रश्नों के उत्तर देते हैं और अनुसंधानकर्ता को लौटा देते हैं अथवा उत्तर डाक द्वारा भी भेजा जा सकता है। प्राय: प्रश्नावाली में दो प्रकार के प्रश्न होते हैं: मुक्त एवं अमुक्त। मुक्त प्रश्नों में प्रतिक्रियादाता कुछ भी उत्तर दे सकता है जो वह ठीक समझता है। अमुक्त प्रश्नों में प्रश्न तथा उनके संभावित उत्तर दिए गए होते हैं तथा प्रतिक्रियादाता को सही उत्तर का चुनाव करना होता है। अमुक्त प्रश्नों की प्रतिक्रियाओं के उदाहरण इस प्रकार हो सकते हैं; जैसे- हाँ/नहीं, सही/गलत, बहुविकल्प अथवा मापनियों का उपयोग आदि। मापनियों के संबंध में एक कथन दिया रहता है और प्रतिक्रियादाता अपना मत त्रि-अंक (सहमत, अनिर्णय, असहमत) अथवा पंच-अंक (अत्यधिक सहमत, सहमत, अनिर्णय, असहमत, अत्यधिक असहमत) अथवा सप्त-अंक, नौ-अंक, ग्यारह-अंक अथवा तेरह-अंक मापनियों पर देता है। कुछ स्थितियों में, प्रतिक्रियादाता अपनी पसंद के क्रम में बहुत सी चीज़ों को कोटियों में प्रस्तुत करता है। प्रश्नावली का उपयोग पृष्ठभूमि संबंधी एवं जनांकिकीय सूचनाओं, भूतकाल

के व्यवहारों, अभिवृत्तियों एवं अभिमतों, किसी विषय विशेष के ज्ञान, तथा व्यक्तियों की प्रत्याशाओं एवं आकांक्षाओं की जानकारी के लिए किया जाता है। कभी-कभी सर्वेक्षण डाक द्वारा प्रश्नावली भेजकर भी किया जाता है। डाक द्वारा भेजी गई प्रश्नावली की समस्या यह होती है कि लोगों से प्रतिक्रियाएँ कम मिल पाती हैं।

क्रियाकलाप 2.3

एक अन्वेषणकर्ता इंटरनेट पर एक प्रश्नावली देकर जानना चाहता है कि कल्याण कार्यक्रमों के प्रति लोगों की अभिवृत्ति कैसी है। क्या यह अध्ययन सामान्य लोगों के विचारों को सही-सही प्रदर्शित करता है? क्यों अथवा क्यों नहीं?

दूरभाष सर्वेक्षण

सर्वेक्षण **दूरभाष** (telephone) द्वारा भी किए जाते हैं और आजकल मोबाइल फोन पर एस.एम.एस. (संक्षिप्त संदेश सेवा) द्वारा विचारों को जानने के कार्यक्रम आपने देखे होंगे। दूरभाष सर्वेक्षण में समय कम लगता है। चूँकि प्रतिक्रियादाता साक्षात्कारकर्ता को नहीं जानता है इसलिए प्रतिक्रियादाताओं में असहयोग, अनिच्छा, तथा सतही उत्तर देने की प्रवृत्ति अधिक देखी जाती है। एक संभावना और है कि प्रतिक्रियादाता प्रतिक्रिया न देने वालों से आयु, लिंग, आय-स्तर, शैक्षिक स्तर आदि में भिन्न हो सकते हैं। उससे अभिनत परिणाम मिलने की संभावना बनी रहती है।

प्रेक्षण विधि की चर्चा पहले की गई है। सर्वेक्षण करने हेतु इस विधि का भी उपयोग किया जाता है। प्रत्येक विधि के अपने लाभ एवं सीमाएँ हैं। शोधकर्ता को किसी विधि विशेष का चयन करते समय सावधानी बरतनी चाहिए।

सर्वेक्षण विधि के कई लाभ हैं। प्रथम, हजारों व्यक्तियों से शीघ्रतापूर्वक एवं दक्षतापूर्वक सूचनाएँ संगृहीत की जा सकती हैं। द्वितीय, चूँकि सर्वेक्षण शीघ्रता से किए जा सकते हैं इसलिए नए मुद्दों के उत्पन्न होने के साथ ही उन पर जनमत प्राप्त किया जा सकता है। सर्वेक्षण की कुछ सीमाएँ भी हैं। प्रथम, लोग गलत सूचनाएँ दे सकते हैं। वे ऐसा स्मृति की गड़बड़ी से कर सकते हैं अथवा वे शोधकर्ता को यह नहीं बताना चाहते हैं कि किसी मुद्दे पर उनके वास्तविक विचार क्या हैं - वे कैसा विश्वास करते हैं। द्वितीय, लोग कभी-कभी वैसी प्रतिक्रियाएँ देते हैं जैसा शोधकर्ता जानना चाहता है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षण

वैयक्तिक भिन्नता का मूल्यांकन प्रारंभ से ही मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण विषय रहा है। मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न मानवीय विशेषताओं; जैसे- बुद्धि, अभिक्षमता, व्यक्तित्व, रुचि, अभिवृत्ति, मूल्य, शैक्षिक उपलब्धि आदि के मूल्यांकन हेतु विभिन्न परीक्षणों का निर्माण किया है। इन परीक्षणों का उपयोग विभिन्न उद्देश्यों; जैसे- कार्मिक चयन, स्थानन, प्रशिक्षण, निर्देशन, निदान आदि के लिए तथा विविध संदर्भों; जैसे- शैक्षणिक संस्थानों, निर्देशन क्लिनिक, उद्योगों, रक्षा संस्थानों तथा अन्य में किया जाता है। क्या आपने कभी किसी मनोवैज्ञानिक परीक्षण को किया है? यदि किया है, तो आपने देखा होगा कि एक परीक्षण में बहुत से प्रश्न होते हैं जिन्हें अपनी संभावित प्रतिक्रियाओं के साथ एकांश कहा जाता है और जो किसी मानव विशेषता या गुण विशेष से संबंधित होते हैं। यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि जिस विशेषता के लिए परीक्षण की रचना की गई है उसको स्पष्ट रूप से तथा बिना किसी अर्थद्वंद्व के परिभाषित किया जाना चाहिए तथा सभी एकांश (प्रश्न) उसी विशेषता से संबद्ध होने चाहिए। आपने यह भी देखा होगा कि परीक्षण किसी आयु वर्ग विशेष के लोगों के लिए होता है। प्रश्नों का उत्तर देने की निश्चित समय सीमा हो सकती है अथवा नहीं भी हो सकती है।

तकनीकी रूप से मनोवैज्ञानिक परीक्षण **मानकीकृत** (standardised) एवं **वस्तुनिष्ठ** (objective) उपकरण होते हैं जिसका उपयोग मानसिक अथवा व्यवहारपरक विशेषताओं के संबंध में किसी व्यक्ति की स्थिति के मूल्यांकन में करते हैं। इस परिभाषा में दो बातें अति ध्यातव्य हैं - वस्तुनिष्ठता एवं प्रमाणीकरण। **वस्तुनिष्ठता** (objectivity) का संबंध इस बात से होता है कि यदि दो या दो से अधिक अनुसंधानकर्ता एक मनोवैज्ञानिक परीक्षण को एक ही समूह के सदस्यों को दें तो दोनों ही समूह के प्रत्येक सदस्य के लिए लगभग एक ही प्रकार के मूल्य दिखाई देने चाहिए। किसी भी परीक्षण के एकांशों की शब्दावली ऐसी होनी चाहिए कि वह विभिन्न पाठकों को समान अर्थ का बोध कराए। साथ ही परीक्षण का उत्तर देने वाले व्यक्ति के लिए एकांशों का उत्तर देने संबंधी निर्देश का पहले ही उल्लेख करना चाहिए। परीक्षण को देने की प्रक्रिया; जैसे- पर्यावरणीय दशाएँ, समय सीमा, देने की रीति (वैयक्तिक अथवा सामूहिक) का भी उल्लेख होना चाहिए तथा प्रतिक्रियादाताओं की प्रतिक्रियाओं की गणना की विधि का भी उल्लेख किया जाना आवश्यक होता है।

परीक्षण की रचना एक व्यवस्थित प्रक्रिया है तथा इसके कुछ चरण हैं। इसके अंतर्गत एकांशों के विस्तृत विश्लेषण तथा समग्र परीक्षण की **विश्वसनीयता** (reliability), **वैधता** (validity) एवं **मानकों** (norms) के आकलन आते हैं।

परीक्षण की **विश्वसनीयता** का संबंध दो भिन्न अवसरों पर एक ही परीक्षण पर किसी व्यक्ति द्वारा प्राप्त लब्धांकों की संगति से है। उदाहरण के लिए, आप विद्यार्थियों के एक समूह को एक परीक्षण आज दीजिए तथा कुछ समय के बाद, मान लें 20 दिन बाद, उन्हीं विद्यार्थियों को वही परीक्षण पुनः दीजिए। परीक्षण के विश्वसनीय होने पर, दोनों अवसरों पर विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त लब्धांकों में कोई अंतर नहीं होना चाहिए। इसके लिए हम **परीक्षण-पुनःपरीक्षण** (test-retest) विश्वसनीयता की गणना कर सकते हैं जो कालिक स्थिरता (कालाधारित परीक्षण लब्धांक की स्थिरता) का द्योतक है। उन्हीं व्यक्तियों पर प्राप्त लब्धांकों के दो समुच्चयों के मध्य सहसंबंध गुणांक प्राप्त करके उसकी गणना की जाती है। दूसरी प्रकार की परीक्षण विश्वसनीयता को **विभक्तार्ध** (split-half) विश्वसनीयता कहते हैं। यह परीक्षण की आंतरिक संगति की मात्रा का संकेत देती है। यह इस मान्यता पर आधारित होती है कि यदि एकांश समान क्षेत्र से संबंधित है तो उन्हें एक दूसरे से सहसंबंधित होना चाहिए। यदि वे अलग क्षेत्र से होंगे जैसे- सेब एवं नारंगी, तो वे सहसंबंधित नहीं होंगे। आंतरिक संगति ज्ञात करने के लिए परीक्षण को दो समान भागों में विषम-सम विधि (एकांश 1, 3, 5 एक समूह में तथा एकांश 2, 4, 6 दूसरे समूह में) द्वारा बांट दिया जाता है तथा विषम-सम एकांशों पर प्राप्त लब्धांकों के मध्य सहसंबंध गुणांक की गणना की जाती है।

परीक्षण के उपयोग योग्य होने के लिए उसकी **वैधता** भी आवश्यक है। वैधता का संबंध इस प्रश्न से है कि क्या परीक्षण उस चीज़ का मापन कर रहा है जिसका कि वह मापन करने का दावा करता है? उदाहरण के लिए, यदि आपने एक गणितीय उपलब्धि परीक्षण की रचना की है तो क्या परीक्षण गणितीय उपलब्धि का मापन कर रहा है अथवा भाषा दक्षता का।

अंतिम रूप से, कोई परीक्षण प्रामाणिक परीक्षण तब होता है जब परीक्षण के लिए **मानक** विकसित कर लिए जाते हैं। जैसा कि पूर्व में वर्णित है कि मानक समूह का सामान्य अथवा औसत निष्पादन होता है। परीक्षण विद्यार्थियों के एक बड़े समूह को दिया जाता है। उनकी आयु, लिंग, आवास स्थान आदि के आधार पर औसत निष्पादन मानक सुनिश्चित कर लिए जाते हैं। इससे एक विद्यार्थी के निष्पादन की समूह के अन्य विद्यार्थियों के साथ तुलना करने में सहायता मिलती है। इससे किसी परीक्षण पर व्यक्तियों के प्राप्त लब्धांक की व्याख्या करने में भी सहायता मिलती है।

परीक्षण के प्रकार

मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का वर्गीकरण भाषा, उसके देने की रीति तथा जटिलता-स्तर के आधार पर किया जाता है। भाषा के आधार पर **वाचिक** (verbal), **अवाचिक** (non-verbal) तथा **निष्पादन** (performance) परीक्षण होते हैं। वाचिक परीक्षणों के लिए साक्षरता आवश्यक होती है क्योंकि एकांश किसी भाषा में ही लिखे जाते हैं। अवाचिक परीक्षणों में, एकांश प्रतीकों अथवा चित्रों द्वारा बनाए जाते हैं। निष्पादन परीक्षणों में वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक एक क्रम में रखना होता है।

देने की रीति के आधार पर मनोवैज्ञानिक परीक्षणों को **वैयक्तिक** (individual) अथवा **समूह** (group) परीक्षणों में विभाजित किया जाता है। अनुसंधानकर्ता द्वारा वैयक्तिक परीक्षण एक समय में एक ही व्यक्ति को दिया जाता है जबकि समूह परीक्षण अनेक व्यक्तियों को एक साथ ही दिया जाता है। वैयक्तिक परीक्षणों में अनुसंधानकर्ता आमने-सामने परीक्षण बाँटता है तथा परीक्षार्थी के सामने बैठकर प्रतिक्रियाएँ नोट करता है। समूह परीक्षण में एकांशों के उत्तर देने के निर्देश आदि परीक्षण पर लिखे होते हैं जिसे परीक्षार्थी पढ़ता है तथा उसी के अनुसार प्रश्नों का उत्तर देता है। परीक्षण देने वाला पूरे समूह को निर्देशों की व्याख्या करता है। वैयक्तिक परीक्षणों में समय अधिक लगता है, परन्तु बच्चों तथा भाषा न जानने वालों से प्रतिक्रिया प्राप्त करने का यह उत्तम तरीका है। समूह परीक्षण देना सरल होता है तथा इनमें समय भी कम लगता है। यद्यपि, प्रतिक्रियाओं की कुछ सीमाएँ होती हैं। प्रतिक्रियादाता प्रश्नों का उत्तर देने के लिए पर्याप्त अभिप्रेरित नहीं भी हो सकता है और झूठी प्रतिक्रिया भी दे सकता है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षण **गति** (speed) एवं **शक्ति** (power) परीक्षण के रूप में भी वर्गीकृत किए जाते हैं। गति परीक्षण की एक समय सीमा होती है जिसमें परीक्षार्थी को सभी एकांशों का उत्तर देना होता है। ऐसा परीक्षण व्यक्ति का मूल्यांकन उसके द्वारा एकांशों के सही उत्तर देने में लिए गए समय के आधार पर किया जाता है। गति परीक्षण में प्रत्येक एकांश की जटिलता की सीमा समान होती है। दूसरी ओर, शक्ति परीक्षण में व्यक्ति की अंतर्निहित योग्यता (अथवा शक्ति) का मूल्यांकन, उसे पर्याप्त समय देकर किया जाता है अर्थात

इन परीक्षणों की कोई समय सीमा नहीं होती है। एक शक्ति परीक्षण में एकांशों को जटिलता के बढ़ते क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति छठे एकांश का हल करने में असमर्थ है तो उसे आगे के एकांशों को हल करने में कठिनाई होगी। यद्यपि शुद्ध रूप में गति अथवा शक्ति परीक्षण का निर्माण कठिन होता है। अधिकांश परीक्षण गति एवं शक्ति परीक्षण के मिले-जुले रूप में होते हैं।

चूँकि परीक्षण प्रायः अनुसंधानों एवं लोगों के विषय में निर्णय लेने के लिए किया जाता है, इसलिए परीक्षणों का चयन एवं उपयोग बहुत सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। परीक्षणकर्ता अथवा निर्णय करने वाले व्यक्ति को किसी एक ही परीक्षण पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। परीक्षण प्रदत्तों में व्यक्ति की पृष्ठभूमि, रुचियों तथा पूर्व के निष्पादन के संबंध में सूचनाएँ सम्मिलित होनी चाहिए।

क्रियाकलाप 2.4

एक परीक्षण की अनुदेश पुस्तिका को ध्यानपूर्वक पढ़िए तथा निम्नलिखित को पहचानिए :

- *एकांशों की संख्या एवं प्रकार*
- *विश्वसनीयता, वैधता एवं मानकों से संबंधित सूचनाएँ*
- *परीक्षण के प्रकार : वाचिक या अन्यथा, वैयक्तिक या समूह*
- *परीक्षण के प्रकार : गति, शक्ति अथवा मिश्रित*
- *कोई अन्य विशेषताएँ*

अन्य विद्यार्थियों तथा अध्यापक के साथ इन पर चर्चा कीजिए।

व्यक्ति अध्ययन

इस विधि में एक व्यक्ति विशेष (केस) का गहराई से अध्ययन करने पर बल दिया जाता है। अनुसंधानकर्ता उन व्यक्तियों पर ज़्यादा ध्यान केंद्रित करते हैं जिनसे कम समझे गए गोचरों के संबंध में महत्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती हैं अथवा कुछ नया सीखने को मिलता है। केस विशिष्ट योग्यताओं वाला एक व्यक्ति हो सकता है (उदाहरण के लिए, मनोवैज्ञानिक विकार प्रदर्शित करने वाला एक रोगी), अथवा व्यक्तियों का ऐसा छोटा समूह जिनमें बहुत सी विशेषताएँ समान होती हैं (उदाहरण के लिए, सर्जनात्मक लेखक जैसे रवींद्रनाथ टैगोर एवं महादेवी वर्मा), संस्थाएँ (उदाहरण के लिए, खराब अथवा सफलतापूर्वक कार्य करने वाले विद्यालय अथवा कंपनी कार्यालय) तथा विशिष्ट घटनाएँ (उदाहरण के लिए, सूनामी के विध्वंस से प्रभावित बच्चे, युद्ध अथवा वाहन द्वारा उत्पन्न प्रदूषण, आदि)। जिन व्यक्तियों का हम अध्ययन करते हैं वे अपने क्षेत्र में विशिष्ट होते हैं, इसलिए उनमें सूचनाएँ बहुत होती हैं। व्यक्ति अध्ययन में अनेक विधियों का उपयोग विभिन्न प्रकार के प्रतिक्रियादाताओं से सूचना संग्रह के लिए किया जाता है; जैसे- साक्षात्कार, प्रेक्षण तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षण। ये प्रतिक्रियादाता किसी-न-किसी रूप में व्यक्ति से संबंधित हो सकते हैं तथा महत्वपूर्ण सूचनाएँ दे सकते हैं। व्यक्ति अध्ययन की सहायता से मनोवैज्ञानिकों ने कल्पनाओं, आशाओं, भय, आघातपूर्ण अनुभवों तथा अभिभावकों द्वारा किए गए लालन-पालन पर अनुसंधान कार्य किया है जिनसे व्यक्ति के मन एवं व्यवहार को समझने में सहायता मिलती है। व्यक्ति अध्ययनों से घटनाओं के आख्यान अथवा विस्तृत विवरण मिलते हैं जो व्यक्ति के जीवन में घटित होते हैं।

व्यक्ति अध्ययन नैदानिक मनोविज्ञान तथा मानव विकास के क्षेत्र में अनुसंधान का एक मूल्यवान उपकरण है। फ्रायड (Freud) की सोच जिससे मनोविश्लेषण के सिद्धांत का विकास हुआ वह उनके व्यक्तियों के विषय में प्रेक्षण एवं व्यवस्थित अभिलेख तैयार करने के कारण संभव हो सका था। उसी प्रकार, पियाजे (Piaget) ने संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत का प्रतिपादन अपने तीन बच्चों के प्रेक्षण के आधार पर किया था। व्यक्ति अध्ययनों का उपयोग बच्चों के समाजीकरण के ढंग को समझने में किया गया है। उदाहरण के लिए, मिन्टर्न (Minturn) एवं हिचकॉक (Hitchcock) ने खालापुर के राजपूत बच्चों के समाजीकरण का व्यक्ति अध्ययन किया। एस. आनन्दलक्ष्मी ने वाराणसी के बुनकर समुदाय में शैशवकाल के स्वरूप का अध्ययन किया था।

व्यक्ति अध्ययन व्यक्तियों के जीवन की गहराइयों का विस्तृत चित्रण प्रदान करते हैं। यद्यपि व्यक्ति अध्ययनों के आधार पर सामान्यीकरण करते समय अधिक सावधानी की आवश्यकता होती है। एकल व्यक्ति अध्ययनों में वैधता की समस्या एक चुनौती होती है। यह सुझाव दिया जाता है कि अनेक अन्वेषकों द्वारा विभिन्न स्रोतों की सूचनाओं को विविध रचना-कौशल बहुल के उपयोग से एकत्रित करना चाहिए। प्रदत्त संग्रह की सावधानीपूर्ण योजना भी आवश्यक होती है। प्रदत्त संग्रह की पूरी प्रक्रिया में अनुसंधानकर्ता को साक्ष्यों की एक श्रृंखला बनाए रखनी चाहिए जिससे वह विविध प्रदत्त स्रोतों को, जो अनुसंधान के प्रश्नों से संबंधित हों, जोड़ सके।

जैसा कि आप पढ़ चुके हैं, प्रत्येक विधि की अपनी विशेषताएँ एवं सीमाएँ होती हैं। इसलिए, अनुसंधानकर्ता से यह अपेक्षा की जाती है कि वह किसी एक विधि पर ही निर्भर न रहे। वास्तविक स्थिति को जानने के लिए दो या दो से अधिक

विधियों की संयुक्तियों का उपयोग करना चाहिए। यदि सभी विधियाँ एक-सा परिणाम दें, अर्थात सब एक ही परिणाम दें, तो निश्चित हुआ जा सकता है।

क्रियाकलाप 2.5

निम्न अनुसंधान समस्याओं के लिए उपयुक्त जाँच विधि सुझाइए।
- *क्या शोर लोगों की समस्या-समाधान की योग्यता को प्रभावित करता है?*
- *क्या महाविद्यालय के विद्यार्थियों के लिए एक निश्चित पोशाक होनी चाहिए?*
- *गृह कार्य के प्रति विद्यार्थियों, शिक्षकों एवं अभिभावकों की अधिवृत्तियों का अध्ययन करने के लिए।*
- *एक विद्यार्थी का खेल समूह एवं कक्षा में व्यवहार का अध्ययन करने के लिए।*
- *आपके मनपसंद नेता के जीवन की प्रमुख घटनाओं का पता लगाने के लिए।*
- *अपने विद्यालय के 11वीं कक्षा के विद्यार्थियों के दुश्चिंता स्तर का मूल्यांकन करने के लिए।*

प्रदत्त विश्लेषण

पूर्व खंड में हमने सूचनाओं के संग्रहण की विविध विधियों की विवेचना की। प्रदत्त संग्रह के बाद अनुसंधानकर्ता का दूसरा कार्य निष्कर्ष निकालना होता है। उसके लिए प्रदत्त विश्लेषण आवश्यक होता है। हम प्राय: प्रदत्त विश्लेषण के लिए दो प्रकार के विधिपरक उपागमों का उपयोग करते हैं। ये हैं: परिमाणात्मक एवं गुणात्मक विधियाँ। इस खंड में हम संक्षेप में इन उपागमों की विवेचना करेंगे।

परिमाणात्मक विधि

अब तक आप अच्छी तरह जान चुके होंगे कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण, प्रश्नावली, संरचित साक्षात्कार आदि में अमुक्त प्रश्नों की एक शृंखला होती है। कहने का आशय यह है कि इन मापकों में प्रश्न तथा उनके संभावित उत्तर दिए गए होते हैं। सामान्यतया, ये प्रतिक्रियाएँ मापनियों के रूप में होती हैं अर्थात वे प्रतिक्रिया की शक्ति तथा मात्रा को प्रदर्शित करती हैं। उदाहरण के लिए, वे 1 (निम्न) से 5, 7 अथवा 11 (उच्च) तक फैली हुई हो सकती हैं। प्रतिभागियों का कार्य होता है कि वे सर्वाधिक उपयुक्त प्रतिक्रिया का चयन करें। कभी-कभी उसमें सही एवं गलत प्रतिक्रियाएँ होती हैं। अनुसंधानकर्ता प्रत्येक उत्तर के लिए एक अंक प्रदान करता है (प्राय: '1' अंक सही उत्तर के लिए तथा '0' अंक गलत उत्तर के लिए)। अंत में अनुसंधानकर्ता इन सभी अंकों का योग ज्ञात करता है और एक समग्र अंक प्राप्त करता है जो प्रतिभागी के उस गुण विशेष के स्तर के विषय में बताता है (उदाहरण के लिए, बुद्धि, शैक्षिक बुद्धि इत्यादि)। ऐसा करते समय, अनुसंधानकर्ता मनोवैज्ञानिक गुणों को एक मात्रा (साधारणतया अंक) में बदल देता है।

निष्कर्ष ज्ञात करने के उद्देश्य से, अनुसंधानकर्ता व्यक्ति के लब्धांकों की तुलना समूह से करता है अथवा दो समूहों के लब्धांकों की तुलना करता है। उसके लिए कुछ सांख्यिकीय विधियों के उपयोग की आवश्यकता पड़ती है जिसके विषय में आप आगे पढ़ेंगे। आप दसवीं कक्षा में गणित के अंतर्गत केंद्रीय प्रवृत्तियों की विधियों (माध्य, माध्यिका तथा बहुलक), परिवर्तनशीलता की विधियों (प्रसार, चतुर्थक विचलन, मानक विचलन), सहसंबंध गुणांक आदि के विषय में पढ़ चुके हैं। ये तथा कुछ अन्य अतिविकसित सांख्यिकीय विधियाँ अनुसंधानकर्ता को अनुमान लगाने तथा प्रदत्तों को अर्थवान बनाने हेतु योग्य बनाती हैं।

गुणात्मक विधि

मानवीय अनुभव बहुत जटिल होते हैं। यह जटिलता उस समय समाप्त हो जाती है जब प्रश्नों के आधार पर कोई व्यक्ति किसी परीक्षार्थी से सूचना प्राप्त करता है। यदि आप जानना चाहते हैं कि कोई माँ बच्चे के न रहने पर कैसा अनुभव करती है, तो आपको उसकी वह कहानी सुननी पड़ेगी जिससे आप समझ सकें कि वह अपने अनुभवों को कैसे संगठित करती है तथा उसने अपनी पीड़ा को क्या नाम दिया है। इसके परिमाणीकरण के लिए किए गए किसी भी प्रयास से आप ऐसे अनुभवों को संगठित करने वाले सिद्धांतों को नहीं समझ पाएँगे। मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे प्रदत्तों के विश्लेषण के लिए कुछ गुणात्मक विधियाँ विकसित की हैं। इनमें से एक विवरणात्मक विधि है। प्रदत्त सर्वदा लब्धांकों के रूप में नहीं प्राप्त होते हैं। जब अनुसंधानकर्ता सहभागी प्रेक्षण की विधि का अथवा असंरचित साक्षात्कार का उपयोग करता है तो प्रदत्त प्राय: विवरणों के रूप में प्राप्त होते हैं; जैसे- प्रतिभागी की ही शब्दावली में, अनुसंधानकर्ता के प्रेक्षण नोट, फोटोग्राफ, अनुसंधानकर्ता द्वारा साक्षात्कार के साथ ली गई प्रतिक्रियाओं के विवरण अथवा टेप/वीडियो अभिलेखित अनौपचारिक बातचीत आदि रूपों में। ऐसे प्रदत्तों को अंकों में परिवर्तित नहीं किया जा सकता और इनका सांख्यिकीय विश्लेषण भी नहीं किया जा सकता है

बल्कि अनुसंधानकर्ता विषय-विश्लेषण विधि का उपयोग कर कथ्यपरक वर्गीकरणों की जानकारी प्राप्त करता है और प्रदत्तों से उदाहरण लेकर उन वर्गों का निर्माण करता है। यह स्वभावत: अधिक विवरणात्मक होता है।

यह समझ लेना चाहिए कि परिमाणात्मक एवं गुणात्मक विधियाँ परस्पर विरोधी नहीं हैं बल्कि एक दूसरे की पूरक हैं। किसी घटना को समग्र रूप में समझने के लिए दोनों विधियों की उपयुक्त संयुक्ति अधिक अपेक्षित है।

मनोवैज्ञानिक जाँच की सीमाएँ

पूर्व में प्रत्येक विधि के लाभ एवं उसकी सीमाओं का वर्णन किया जा चुका है। इस खंड में आप मनोवैज्ञानिक मापन की कुछ सामान्य समस्याओं के बारे में पढ़ेंगे।

1. *वास्तविक शून्य बिंदु का अभाव* : भौतिक विज्ञानों में मापन शून्य से प्रारंभ होते हैं। उदाहरण के लिए, यदि आप मेज़ की लंबाई का मापन करना चाहते हैं तो आप उसका मापन शून्य से शुरू कर कह सकते हैं कि यह 3 फीट लंबी है। मनोवैज्ञानिक मापन में हमें शून्य बिंदु नहीं मिलते हैं। उदाहरण के लिए, इस दुनिया में किसी भी व्यक्ति की बुद्धि शून्य नहीं होती। हम सभी लोगों के साथ बुद्धि की कुछ मात्रा अवश्य होती है। मनोवैज्ञानिक मनचाहे ढंग से किसी बिंदु को शून्य बिंदु निर्धारित कर लेते हैं और आगे बढ़ते हैं। परिणामस्वरूप हम मनोवैज्ञानिक अध्ययन में जो कुछ लब्धांक प्राप्त करते हैं वे अपने आप में निरपेक्ष नहीं होते बल्कि उनका सापेक्षिक मूल्य होता है।

   कुछ अध्ययनों में कोटियों को लब्धांक के रूप में उपयोग में लाया जाता है। उदाहरण के लिए, किसी परीक्षण में प्राप्त किए गए लब्धांक के आधार पर शिक्षक विद्यार्थियों को एक क्रम में व्यवस्थित करता है - 1, 2, 3, 4 और उसी प्रकार आगे भी करता है। ऐसे मूल्यांकन की समस्या यह होती है कि प्रथम एवं द्वितीय कोटि प्राप्त विद्यार्थियों के मध्य का अंतर द्वितीय एवं तृतीय कोटि प्राप्त विद्यार्थियों के मध्य के अंतर के समान नहीं होता। 50 अंक में से प्रथम कोटि वाला विद्यार्थी 48 अंक प्राप्त कर सकता है, द्वितीय 47 अंक तथा तृतीय 40 अंक प्राप्त कर सकता है। जैसा कि आप देख सकते हैं कि प्रथम एवं द्वितीय कोटि प्राप्त विद्यार्थियों का अंतर द्वितीय एवं तृतीय कोटि प्राप्त विद्यार्थियों के समान नहीं है। इससे मनोवैज्ञानिक मापन के सापेक्षिक स्वरूप स्पष्ट भी होते हैं।

2. *मनोवैज्ञानिक उपकरणों का सापेक्षिक स्वरूप* : मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का निर्माण किसी संदर्भ विशेष के प्रमुख पक्षों को ध्यान में रखकर किया जाता है। उदाहरण के लिए, शहरी क्षेत्र के छात्रों के लिए विकसित परीक्षण में शहरी क्षेत्र के उद्दीपकों से संबंधित एकांश से परिचय आवश्यक है - बहुमंजिली इमारतें, हवाई जहाज, मेट्रो रेल आदि। ऐसा परीक्षण जनजातीय क्षेत्रों के बच्चों के लिए उपयुक्त नहीं होगा। वे अधिक सहज उन एकांशों से होंगे जिनमें उनके परिवेश के पेड़-पौधे व जीव-जंतुओं के वर्णन मिलते हैं। इसी प्रकार पश्चिमी देशों में विकसित परीक्षण भारतीय संदर्भ में उपयुक्त नहीं हो सकते हैं। ऐसे परीक्षणों को ध्यानपूर्वक परिष्कृत किया जाना चाहिए तथा उन्हें जिन संदर्भों में प्रयुक्त करना हो, उनकी विशेषताओं से उन्हें अनुकूलित होना चाहिए।

3. *गुणात्मक प्रदत्तों की आत्मपरक व्याख्या* : गुणात्मक अध्ययनों में प्रदत्त प्राय: आत्मपरक होते हैं क्योंकि इनकी व्याख्या अनुसंधानकर्ता एवं प्रदत्त प्रदान करने वाले करते हैं। एक व्यक्ति की व्याख्या दूसरे से भिन्न हो सकती है। अत: प्राय: यह सुझाव दिया जाता है कि गुणात्मक अध्ययनों के संदर्भ में क्षेत्र अध्ययन एक से अधिक शोधकर्ताओं द्वारा किया जाना चाहिए जो अध्ययन के अंत में बैठकर अपने प्रेक्षणों पर विमर्श करें तथा उसको अंतिम स्वरूप देने के पहले स्वयं एक सहमत बिंदु पर पहुँचे। वस्तुत: यदि ऐसे सार्थक विमर्श में प्रतिक्रियादाताओं को भी सम्मिलित किया जाए तो अधिक अच्छा होगा।

नैतिक मुद्दे

जैसा कि आप जानते हैं मनोवैज्ञानिक अनुसंधान मानव व्यवहार से संबंधित होते हैं, इसलिए अनुसंधानकर्ता से यह आशा की जाती है कि वह अपने अध्ययन के दौरान नैतिकता (अथवा नैतिक सिद्धांत) का पालन करेगा। ये सिद्धांत हैं: **अध्ययन में भाग लेने के लिए व्यक्ति की निजता** एवं **रुचि का सम्मान**, **अध्ययन के प्रतिभागियों के उपकार** अथवा **किसी खतरे से उनकी सुरक्षा** तथा **अनुसंधान के लाभ में सभी प्रतिभागियों की भागीदारी**। इन नैतिक सिद्धांतों के कुछ महत्वपूर्ण पक्षों का वर्णन आगे किया जा रहा है :

1. *स्वैच्छिक सहभागिता* : यह सिद्धांत कहता है कि जिन व्यक्तियों पर आप अध्ययन करने जा रहे हैं उन्हें यह निर्धारित करने का विकल्प होना चाहिए कि वे अध्ययन

में भाग लेंगे अथवा नहीं। प्रतिभागियों को इस बात का विकल्प होना चाहिए कि वह बिना किसी प्रपीड़न अथवा प्रलोभन के अध्ययन में भाग लें और अनुसंधान के आरंभ होने के बाद उससे अलग होने पर उन्हें किसी भी प्रकार से दंडित नहीं किया जाए।

2. *सूचित सहमति* : यह आवश्यक है कि प्रतिभागी को यह पता होना चाहिए कि अध्ययन के दौरान उनके साथ क्या घटित होगा। सूचित सहमति के सिद्धांत के अनुसार, संभाव्य प्रतिभागियों को यह सूचना उनसे प्रदत्त संग्रह से पहले होनी चाहिए जिससे वे अध्ययन में भाग लेने के लिए सूचित निर्णय ले सकें। कुछ मनोवैज्ञानिक प्रयोगों में, प्रतिभागियों को प्रयोग के समय विद्युताघात दिया जाता है। कुछ अन्य अध्ययनों में आपत्तिजनक (घातक अथवा अप्रिय) उद्दीपक प्रस्तुत किए जाते हैं। हो सकता है कि उनसे कुछ व्यक्तिगत सूचनाएँ भी माँगी जाएँ जो प्राय: दूसरों को नहीं बताई जाती हैं। कुछ अध्ययनों में छलछद्म की तकनीक का उपयोग किया जाता है जिसमें प्रतिभागियों को इस बात का निर्देश दिया जाता है कि वे एक निश्चित तरीके से सोचें अथवा कल्पना करें तथा उनके निष्पादन के विषय में उनको झूठी सूचना अथवा प्रतिप्राप्ति दी जाती है (उदाहरण के लिए, आप बहुत बुद्धिमान हैं, आप अक्षम हैं)। इसलिए यह महत्वपूर्ण होता है कि प्रतिभागियों को वास्तविक रूप में अध्ययन प्रारंभ करने से पहले ही उसके स्वरूप के विषय में बता दिया जाना चाहिए।

3. *स्पष्टीकरण* : अध्ययन समाप्त हो जाने के बाद प्रतिभागियों को वे सब आवश्यक सूचनाएँ देनी चाहिए जिनसे वे अनुसंधान को ठीक से समझ सकें। यह उस समय सबसे आवश्यक हो जाता है जब अध्ययन में छलछद्म का उपयोग किया गया हो। स्पष्टीकरण का उद्देश्य यह होता है कि प्रतिभागी जिस शारीरिक एवं मानसिक दशा में अध्ययन में सम्मिलित हुए थे, अध्ययन समाप्त होने पर उसी दशा में पुन: वापस आ जाएँ। यह प्रतिभागियों को एक प्रकार से भरोसा दिलाने जैसा ही है। अध्ययन के समय छलछद्म के कारण उत्पन्न किसी दुश्चिंता अथवा दुष्प्रभाव, जिसे प्रतिभागी ने अनुभव किया हो, को अनुसंधानकर्ता को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

4. *अध्ययन के परिणाम की भागीदारी* : मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों में प्रतिभागियों से सूचनाएँ संगृहीत करने के बाद हम अपने कार्य-स्थान पर वापस आते हैं, प्रदत्तों का विश्लेषण करते हैं एवं निष्कर्ष निकालते हैं। अनुसंधानकर्ता के लिए यह आवश्यक है कि वह प्रतिभागियों के पास वापस जाकर अध्ययन के परिणाम को उनको बताए। जब आप प्रदत्त संग्रह के लिए जाते हैं तो प्रतिभागी आपसे कुछ आशा रखते हैं। एक आशा यह होती है कि आपने अपने अध्ययन में उनके व्यवहारों की जो अन्वेषणा की है उसके विषय में उन्हें बताएँगे। अनुसंधानकर्ता के रूप में यह हमारा नैतिक कर्तव्य होता है कि हम उनसे वापस मिलें। इस अभ्यास के दो लाभ हैं। प्रथम, आप प्रतिभागियों की प्रत्याशा पूरी करते हैं। द्वितीय, प्रतिभागी परिणाम के विषय में अपने विचार बताएँगे जो आपको नयी अन्तर्दृष्टि विकसित करने में सहायता कर सकते हैं।

5. *प्रदत्त स्रोतों की गोपनीयता* : अध्ययन में प्रतिभागियों को अपनी निजता का अधिकार होता है। अनुसंधानकर्ता को चाहिए कि वह उनकी निजता की रक्षा के लिए उनके द्वारा दी गई सूचनाओं को अत्यंत गोपनीय रखे। सूचना का उपयोग सिर्फ़ अनुसंधान के लिए किया जाना चाहिए और किसी भी दशा में यह किसी अन्य इच्छुक पक्ष के हाथ नहीं लगनी चाहिए। प्रतिभागियों की गोपनीयता की रक्षा का सबसे सशक्त तरीका यह है कि उनके पहचान का अभिलेख न तैयार किया जाए। कुछ तरह के अनुसंधानों में यह संभव नहीं होता है। ऐसी दशा में संकेत संख्या प्रदत्त पत्र पर अंकित कर दी जाती है तथा नामों को संकेतों से अलग रखा जाता है। पहचान सूची अनुसंधान कार्य समाप्त होने के उपरांत नष्ट कर दी जानी चाहिए।

प्रमुख पद

व्यक्ति अध्ययन, गोपनीयता, नियंत्रित समूह, सहसंबंधात्मक अनुसंधान, प्रदत्त, स्पष्टीकरण, आश्रित परिवर्त्य, प्रायोगिक समूह, प्रायोगिक विधि, समूह परीक्षण, परिकल्पना, अनाश्रित परिवर्त्य, वैयक्तिक परीक्षण, साक्षात्कार, ऋणात्मक सहसंबंध, मानक, वस्तुनिष्ठता, प्रेक्षण, निष्पादन परीक्षण, धनात्मक सहसंबंध, शक्ति परीक्षण, मनोवैज्ञानिक परीक्षण, गुणात्मक विधि, परिमाणात्मक विधि, प्रश्नावली, विश्वसनीयता, गति परीक्षण, संरचित साक्षात्कार, सर्वेक्षण, असंरचित साक्षात्कार, वैधता, परिवर्त्य

सारांश

- *मनोवैज्ञानिक अनुसंधान विवरण, पूर्वकथन, व्याख्या, व्यवहार-नियंत्रण तथा वस्तुनिष्ठ तरीके से उत्पादित ज्ञान के अनुप्रयोग के लिए किए जाते हैं। इसके चार चरण होते हैं: समस्या का संप्रत्ययन, प्रदत्त संग्रह, प्रदत्त विश्लेषण, तथा अनुसंधान निष्कर्ष निकालना और उसका पुनरीक्षण। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान का एक ध्येय यह भी होता है कि किसी संदर्भ विशेष में घटित होने वाली घटनाओं और उनके अपने व्यवहार एवं अनुभव पर पड़ने वाले प्रभावों को आत्मपरक ढंग से खोजा एवं समझा जाए।*
- *मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में विविध प्रकार के प्रदत्त; जैसे- जनांकिकीय, पर्यावरणीय, भौतिक, दैहिक तथा मनोवैज्ञानिक सूचनाएँ संगृहीत की जाती हैं। किंतु मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के प्रदत्त एक संदर्भ विशेष में स्थित होते हैं तथा वे प्रदत्त संग्रह करने वाले सिद्धांतों तथा विधियों से बंधे होते हैं।*
- *सूचना संग्रह के लिए कई विधियों का उपयोग किया जाता है। प्रेक्षण विधि का उपयोग व्यवहार का वर्णन करने के लिए किया जाता है। उसकी पहचान एक व्यवहार विशेष के चयन, उसके अभिलेखन एवं विश्लेषण से की जाती है। प्रेक्षण प्राकृतिक दशा अथवा नियंत्रित प्रयोगशाला की दशा में किए जा सकते हैं। यह सहभागी अथवा असहभागी प्रकार का हो सकता है।*
- *प्रायोगिक विधि कार्य-कारण संबंध की स्थापना में सहायता करती है। प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह का उपयोग करके अनाश्रित परिवर्त्य की उपस्थिति का प्रभाव आश्रित परिवर्त्य पर देखा जाता है।*
- *सहसंबंधात्मक अनुसंधान का उद्देश्य परिवर्त्यों के मध्य के साहचर्य की खोज करना तथा पूर्वकथन करना है। दो परिवर्त्यों के मध्य संबंध धनात्मक, शून्य अथवा ऋणात्मक हो सकता है तथा उनकी साहचर्य शक्ति का प्रसार +1.0 से 0.0 से लेकर -1.0 तक होता है।*
- *सर्वेक्षण अनुसंधान का केंद्र विद्यमान वास्तविकता की सूचना देना है। सर्वेक्षण संरचित तथा असंरचित साक्षात्कार, डाक द्वारा भेजी गई प्रश्नावली तथा दूरभाष द्वारा संपन्न किए जाते हैं।*
- *मनोवैज्ञानिक परीक्षण मानकीकृत एवं वस्तुनिष्ठ उपकरण होते हैं जो दूसरों की तुलना में किसी व्यक्ति की स्थिति जानने में सहायता करते हैं। परीक्षण वाचिक, अवाचिक और निष्पादन प्रकार के हो सकते हैं जो एक समय में एक व्यक्ति पर अथवा पूरे समूह पर किए जा सकते हैं।*
- *व्यक्ति अध्ययन की विधि में किसी एक व्यक्ति के विषय में गहराई से सूचनाएँ प्राप्त की जाती हैं।*
- *इन विधियों के उपयोग से संगृहीत प्रदत्तों का गुणात्मक तथा परिमाणात्मक विधियों द्वारा विश्लेषण किया जाता है। परिमाणात्मक विधियों में निष्कर्ष ज्ञात करने के लिए सांख्यिकीय प्रक्रियाओं का उपयोग किया जाता है। गुणात्मक अनुसंधान के अंतर्गत विवरणात्मक विधि एवं विषय विश्लेषण विधि का उपयोग किया जाता है।*
- *मनोवैज्ञानिक जाँच की निरपेक्ष शून्य बिंदु के अभाव, मनोवैज्ञानिक उपकरणों के सापेक्ष स्वरूप तथा गुणात्मक प्रदत्तों की आत्मपरक व्याख्या जैसी सीमाएँ हैं। प्रतिभागियों की स्वैच्छिक सहभागिता, उनकी सूचित सहमति तथा परिणामों के विषय में प्रतिभागियों से भागीदारी करने जैसे नैतिक सिद्धांतों को अनुसंधानकर्ता को ध्यान में रखना चाहिए।*

समीक्षात्मक प्रश्न

1. वैज्ञानिक जाँच के लक्ष्य क्या होते हैं ?
2. वैज्ञानिक जाँच करने में अंतर्निहित विभिन्न चरणों का वर्णन कीजिए।
3. मनोवैज्ञानिक प्रदत्तों के स्वरूप की व्याख्या कीजिए।
4. प्रायोगिक तथा नियंत्रित समूह एक-दूसरे से कैसे भिन्न होते हैं? एक उदाहरण की सहायता से व्याख्या कीजिए।
5. एक अनुसंधानकर्ता साइकिल चलाने की गति एवं लोगों की उपस्थिति के मध्य संबंध का अध्ययन कर रहा है। एक उपयुक्त परिकल्पना का निर्माण कीजिए तथा अनाश्रित एवं आश्रित परिवर्त्यों की पहचान कीजिए।
6. जाँच की विधि के रूप में प्रायोगिक विधि के गुणों एवं अवगुणों की व्याख्या कीजिए।

7. डॉ. कृष्णन व्यवहार को बिना प्रभावित अथवा नियंत्रित किए एक नर्सरी विद्यालय में बच्चों के खेलकूद वाले व्यवहार का प्रेक्षण करने एवं अभिलेख तैयार करने जा रहे हैं। इसमें अनुसंधान की कौन-सी विधि प्रयुक्त हुई है? इसकी प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए तथा इसके गुणों एवं अवगुणों का वर्णन कीजिए।
8. उन दो स्थितियों का उदाहरण दीजिए जहाँ सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया जा सकता है। इस विधि की सीमाएँ क्या हैं?
9. साक्षात्कार एवं प्रश्नावली में अंतर कीजिए।
10. एक मानकीकृत परीक्षण की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
11. मनोवैज्ञानिक जाँच की सीमाओं का वर्णन कीजिए।
12. मनोवैज्ञानिक जाँच करते समय एक मनोवैज्ञानिक को किन नैतिक मार्गदर्शी सिद्धांतों का पालन करना चाहिए?

परियोजना विचार

1. कक्षा पाँच एवं नौ के अलग-अलग 10 छात्रों का एक प्रतिदर्श लेकर उनकी विद्यालय के बाद की गतिविधियों का सर्वेक्षण कीजिए। वे विभिन्न प्रकार की गतिविधियों को कितना समय देते हैं; जैसे- अध्ययन में, खेलकूद में, टेलीविजन देखने में तथा अन्य रुचियों में, उसका पता लगाइए। क्या आप कोई अंतर पाते हैं? आप क्या निष्कर्ष निकालते हैं और आप क्या सलाह देंगे?
2. आप अपने समूह में कविताओं के पाठ का उसके सीखने पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन कीजिए। छः वर्ष के 10 बच्चों को लीजिए तथा उन्हें दो समूहों में विभाजित कीजिए। एक समूह को एक नयी कविता याद करने को दीजिए तथा उन्हें उच्च स्वर में 15 मिनट तक पढ़ने का निर्देश दीजिए। दूसरे समूह को वही कविता याद करने को कहिए किंतु उन्हें निर्देश दीजिए कि वे उच्च स्वर में न पढ़ें। 15 मिनट बाद दोनों समूहों को कविता का पुनःस्मरण करने को कहिए। ध्यान रहे कि दोनों समूहों को अलग-अलग रखा जाए। कविता के पुनःस्मरण के बाद प्रेक्षण को नोट कीजिए।

    आपके द्वारा प्रयुक्त अनुसंधान विधि, परिकल्पना, परिवर्त्य एवं प्रायोगिक अभिकल्प के प्रकार की पहचान कीजिए। दूसरे समूह से अपने प्रेक्षण की तुलना कीजिए एवं अपने परिणाम के विषय में कक्षा में अपने अध्यापक से विमर्श कीजिए।

अध्याय 3

मानव व्यवहार के आधार

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- मानव व्यवहार की विकासवादी प्रकृति को समझ सकेंगे,
- तंत्रिका तंत्र तथा अंत:स्रावी तंत्र के प्रकार्यों का व्यवहार के साथ संबंध बता सकेंगे,
- व्यवहार को निर्धारित करने में आनुवंशिक कारकों की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे,
- मानव व्यवहार का निरूपण करने में संस्कृति की भूमिका को समझ सकेंगे,
- संस्कृतीकरण, समाजीकरण तथा परसंस्कृतिग्रहण की प्रक्रियाओं का वर्णन कर सकेंगे, तथा
- मानव व्यवहार को समझने में जैविकीय एवं सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों की भूमिका का वर्णन कर सकेंगे।

विषयवस्तु

परिचय
विकासवादी परिप्रेक्ष्य
जैविकीय एवं सांस्कृतिक मूल
व्यवहार के जैविकीय आधार
तंत्रिका कोशिकाएँ
तंत्रिका तंत्र और अंत:स्रावी तंत्र की संरचना एवं प्रकार्य तथा व्यवहार और अनुभव के साथ उनके संबंध
तंत्रिका तंत्र
अंत:स्रावी तंत्र
आनुवंशिकता : जीन एवं व्यवहार
सांस्कृतिक आधार : व्यवहार का सामाजिक-सांस्कृतिक निरूपण
संस्कृति का संप्रत्यय
जैविकीय एवं सांस्कृतिक संचरण (बॉक्स 3.1)
संस्कृतीकरण
समाजीकरण
परसंस्कृतिग्रहण

प्रमुख पद
सारांश
समीक्षात्मक प्रश्न
परियोजना विचार

परिचय

इस धरती पर मनुष्य, प्राज्ञ मानव समस्त जीवों में सबसे अधिक विकसित प्राणी है। सीधे चलने की इनकी योग्यता, शारीरिक भार के अनुपात में मस्तिष्क का बड़ा आकार तथा मस्तिष्क के विशिष्ट ऊतकों का अनुपात इन्हें सभी अन्य प्रजातियों से पृथक करते हैं। मानव में इन अभिलक्षणों का विकास करोड़ों वर्षों में हुआ है तथा इनसे मानव कई तरह के जटिल व्यवहार करने में समर्थ हो गया है। वैज्ञानिकों ने जटिल मानव व्यवहार तथा तंत्रिका तंत्र की प्रक्रियाओं, विशेष रूप से मस्तिष्क, के बीच संबंध जानने का प्रयास किया है। उन्होंने विचारों, अनुभूतियों तथा क्रियाओं के स्नायविक आधारों को खोजने का प्रयास किया है। मनुष्य के जैविक आधारों को समझने से आप जान पाएँगे कि किस प्रकार मस्तिष्क, पर्यावरण और व्यवहार के बीच की अंत:क्रिया, विशिष्ट प्रकार के व्यवहारों को उत्पन्न करती है। इस अध्याय को हम विकासवादी परिप्रेक्ष्य में तंत्रिका तंत्र के सामान्य वर्णन से प्रारंभ करते हैं। तंत्रिका तंत्र की संरचना और प्रकार्यों का भी आप अध्ययन करेंगे। आप अंत:स्रावी तंत्र और मानव व्यवहार पर उसका प्रभाव भी जानेंगे। तत्पश्चात् इस अध्याय में आप संस्कृति के संप्रत्यय एवं व्यवहार को समझने में इसकी प्रासंगिकता का भी अध्ययन करेंगे। इसके बाद संस्कृतीकरण, समाजीकरण एवं परसंस्कृतिग्रहण की प्रक्रियाओं का विश्लेषण करेंगे।

विकासवादी परिप्रेक्ष्य

आपने अवश्य देखा होगा कि लोग शारीरिक और मनोवैज्ञानिक विशेषताओं में एक दूसरे से भिन्न होते हैं। लोगों की विशिष्टताएँ, उनकी आनुवंशिक अक्षयनिधि और पर्यावरण की माँगों के बीच अंत:क्रिया का परिणाम होती हैं।

इस संसार में, जीवों की करोड़ों विभिन्न प्रजातियाँ हैं जो कई तरह से भिन्न हैं। जीव वैज्ञानिकों का विश्वास है कि ये प्रजातियाँ हमेशा ऐसी नहीं थीं; ये अपने पूर्ववर्ती प्रारूपों से आज के रूप में विकसित हुई हैं। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि आधुनिक मानवों की विशेषताएँ, लगभग 2,00,000 वर्ष पहले उनके पर्यावरण के साथ लगातार अंत:क्रिया के फलस्वरूप विकसित हुई हैं।

विकास का तात्पर्य क्रमश: एवं क्रमिक जैविकीय परिवर्तन से है जो किसी प्रजाति के पूर्ववर्ती प्रारूपों में पर्यावरण की परिवर्तित होती हुई अनुकूलन की आवश्यकताओं के प्रति उसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप होता है। शरीर में क्रियात्मक और व्यवहारात्मक परिवर्तन, जो विकास की प्रक्रिया के फलस्वरूप होते हैं, इतने मंद होते हैं कि सैकड़ों पीढ़ियों के बाद ही दिखाई देते हैं। विकास प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया के माध्यम से होता है। आपको पता है कि प्रत्येक प्रजाति के सदस्य अपने शारीरिक ढाँचे और व्यवहार में बहुत भिन्न होते हैं। जो गुण और विशेषताएँ उन प्रजातियों की उत्तरजीविता और प्रजनन की उच्चदर से जुड़ी होती हैं संभवत: वे ही आगे आने वाली पीढ़ियों में भी जाती हैं। एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी में जब ये दोहराई जाती हैं तब प्राकृतिक चयन, उन नयी प्रजातियों के विकास को उन्मुख करता है जो कि उस विशेष पर्यावरण के साथ अत्यधिक प्रभावी रूप से अनुकूलित होती हैं। यह बहुत कुछ आजकल प्रचलित घोड़ों और दूसरे जानवरों के चयनात्मक प्रजनन के समान है। प्रजनक अपने प्रजाति समूह से योग्यतम और सबसे द्रुतगामी, नर एवं मादा घोड़ों को छाँटते हैं और उन्हें चयनात्मक प्रजनन के लिए प्रवर्तित करते हैं, ताकि उन्हें योग्यतम घोड़े मिल सकें। उपयुक्तता किसी जीव की वह योग्यता है जिसके कारण उसका अस्तित्व कायम रहता है तथा वह अगली पीढ़ी को अपनी जीन प्रदान करता है।

आधुनिक मानवों के तीन महत्वपूर्ण अभिलक्षण उन्हें अपने पूर्वजों से अलग करते हैं : (1) बड़ा और विकसित मस्तिष्क, जिसमें संज्ञानात्मक व्यवहार; जैसे- प्रत्यक्षण, स्मृति, तर्कना, समस्या समाधान और संप्रेषण के लिए भाषा का उपयोग करने की अधिक क्षमता, (2) दो पैरों पर सीधा खड़ा होकर चलने की क्षमता, और (3) काम करने योग्य विपरीत अँगूठे के साथ मुक्त हाथ। ये अभिलक्षण हमारे पास कई हजार वर्षों से हैं।

हमारे व्यवहार दूसरी प्रजातियों की तुलना में बहुत जटिल और विकसित हैं क्योंकि हमारे पास बड़ा और अधिक विकसित मस्तिष्क है। मानव मस्तिष्क के विकास का प्रमाण दो तथ्यों से दिया जाता है। पहला, मस्तिष्क का वजन हमारे शरीर के कुल भार का 2.35 प्रतिशत है और यह सभी प्रजातियों की तुलना में सर्वाधिक है (हाथी में यह 0.2 प्रतिशत है)। दूसरा, मनुष्य का प्रमस्तिष्क (मस्तिष्क के सामने का बड़ा भाग), मस्तिष्क के अन्य अंगों से अधिक विकसित है।

यह विकास पर्यावरण की माँगों के परिणामस्वरूप हुआ है। कुछ व्यवहार इस विकास में स्पष्ट भूमिका निभाते हैं। उदाहरणार्थ, आहार ढूँढ़ने की योग्यता, परभक्षी से दूर रहना और छोटे बच्चों की सुरक्षा। ये सब जीव तथा उसकी प्रजाति की उत्तरजीविता से संबंधित उद्देश्य हैं। वे जैविकीय और व्यवहारात्मक विशेषताएँ, जो इन उद्देश्यों को पूरा करने में हमारी सहायता करती हैं, जीन के माध्यम से इन विशेषताओं को अगली पीढ़ी तक पहुँचाने में जीव की योग्यता को बढ़ाती हैं। पर्यावरण की आवश्यकताएँ लंबे समय में जैविकीय और व्यवहारात्मक परिवर्तन लाती हैं।

जैविकीय एवं सांस्कृतिक मूल

हमारे व्यवहार का एक महत्वपूर्ण निर्धारक हमारी जैविकीय संरचना है जो हमें हमारे पूवर्जों से एक विकसित शरीर और मस्तिष्क के रूप में उत्तराधिकार में मिली है। किसी दुर्घटना, बीमारी या दवाओं के सेवन से जब मस्तिष्क की कोशिकाएँ क्षतिग्रस्त हो जाती हैं तब इन जैविकीय आधारों का महत्त्व स्पष्ट दिखाई देता है। इस तरह के उदाहरणों में कई तरह की शारीरिक एवं मानसिक अशक्तता विकसित हो जाती है। कई बच्चों में माता-पिता से दूषित जीन के संचरण के कारण मानसिक मंदन तथा अन्य असामान्य लक्षण विकसित हो जाते हैं।

एक मनुष्य होने के कारण हमारे पास न केवल समान जैविकीय तंत्र, बल्कि निश्चित सांस्कृतिक तंत्र भी होते हैं। ये तंत्र मानव आबादी में विविध रूपों में हैं। हम सब जिस संस्कृति में जन्म लेते और पलते हैं उससे अपने जीवन का समझौता करते हैं। संस्कृति हमें विभिन्न स्थितियों में डालकर, तथा हमारे जीवन से कुछ माँगें करके, हमें विभिन्न प्रकार के अनुभव और सीखने के अवसर प्रदान करती है। इस प्रकार की माँगें, अनुभव और अवसर हमारे व्यवहार को अत्यन्त प्रभावित करते हैं। जैसे-जैसे हम शैशवावस्था से जीवन के अगले वर्षो की ओर बढ़ते हैं ये प्रभाव अधिक स्पष्ट और सक्षम दिखाई देते हैं। इस प्रकार जैविकीय आधार के अलावा हमारे व्यवहार के सांस्कृतिक आधार भी होते हैं। इस अध्याय में आगे आप व्यवहार में संस्कृति की भूमिका के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

व्यवहार के जैविकीय आधार

तंत्रिका कोशिकाएँ

तंत्रिका कोशिका हमारे तंत्रिका तंत्र की मूलभूत इकाई है। तंत्रिका कोशिकाएँ विशिष्ट कोशिकाएँ हैं, जो विभिन्न प्रकार के उद्दीपकों को विद्युतीय आवेग में परिवर्तित करने की अद्‌भुत योग्यता रखती हैं। इसके अलावा ये सूचना को विद्युत-रासायनिक संकेतों के रूप में ग्रहण करने, संवहन करने तथा अन्य कोशिकाओं तक भेजने में भी निपुण होती हैं। ये ज्ञानेन्द्रियों (संवेदी अंगों) से या पास की अन्य तंत्रिका कोशिकाओं से सूचना प्राप्त करती हैं, उसे केंद्रीय तंत्रिका तंत्र (मस्तिष्क और मेरुरज्जु) तक ले जाती हैं। फिर केंद्रीय तंत्रिका तंत्र से पेशीय सूचना को पेशीय अंगों (मांसपेशियों तथा ग्रंथियों) तक ले जाती हैं।

मानव तंत्रिका तंत्र में 12 अरब तंत्रिका कोशिकाएँ पाई जाती हैं। ये बहुत प्रकार की होती हैं तथा आकृति, आकार, रासायनिक संरचना और प्रकार्य में एक दूसरे से बहुत भिन्न होती हैं। इन विभिन्नताओं के बावजूद इनमें तीन मूलभूत घटक समान रूप से पाए जाते हैं। वे हैं काय, पार्श्वतंतु और अक्षतंतु।

काय (soma) या काय कोशिका तंत्रिका कोशिका का मुख्य अंग है। इस कोशिका में कोशिका का **केंद्रक** (nucleus) तथा अन्य संरचनाएँ पाई जाती हैं, जो हर प्रकार की जीवित कोशिकाओं में सामान्य होती हैं (चित्र 3.1)। तंत्रिका कोशिकाओं की आनुवंशिक सामग्री केंद्रक में संचित होती है और यह कोशिका के पुनरुत्पादन एवं प्रोटीन संश्लेषण में तत्परता से सक्रिय होती है। तंत्रिका कोशिका का अधिकांश कोशिका द्रव्य काय कोशिका में होता है। **पार्श्वतंतु** (dendrites) शाखाओं की तरह की विशिष्ट संरचना वाले होते हैं जो कि काय कोशिका से निकलते हैं। ये तंत्रिका कोशिका के ग्रहण करने वाले सिरे होते हैं। इनका कार्य निकटवर्ती तंत्रिका कोशिका से या सीधे संवेदी अंगों से आने वाले तंत्रिका आवेगों को ग्रहण करना होता है। पार्श्वतंतु में विशिष्ट ग्राहक होते हैं जो किसी विद्युत-रासायनिक या जैव-रासायनिक संकेत के मिलते ही सक्रिय हो जाते हैं। ग्रहण

किए हुए संकेत काय कोशिका में भेजे जाते हैं और इसके बाद अक्षतंतु में, जिससे कि सूचना अन्य तंत्रिका कोशिकाओं और मांसपेशियों में भेजी जा सके। अक्षतंतु अपनी लंबाई के साथ-साथ सूचना का संवहन करता है जो मेरुरज्जु में कई फीट तक और मस्तिष्क में एक मिलीमीटर से कम हो सकते हैं। अंतिम सिरे पर अक्षतंतु छोटी-छोटी शाखाओं में बँट जाते हैं जिन्हें **अंतस्थ बटन** (terminal buttons) कहते हैं। इनमें अन्य तंत्रिका कोशिकाओं, ग्रंथियों और मांसपेशियों में सूचना भेजने की क्षमता होती है। तंत्रिका कोशिकाएँ सामान्यत: एक ही दिशा में सूचना का संवहन करती हैं, अर्थात पार्श्वतंतु से काय कोशिका फिर अक्षतंतु और वहाँ से अंतस्थ बटन तक।

तंत्रिका तंत्र में एक स्थान से दूसरे स्थान तक सूचना का संवहन तंत्रिकाओं के माध्यम से होता है, जो **अक्षतंतु** (axon) के ढेर होते हैं। तंत्रिकाएँ मुख्यत: दो प्रकार की होती हैं - *संवेदी* एवं *पेशीय*। संवेदी तंत्रिकाएँ, जिन्हें अभिवाही तंत्रिकाएँ भी कहते हैं, सूचना को ज्ञानेंद्रियों से केंद्रीय तंत्रिका तंत्र तक ले जाती हैं। दूसरी ओर पेशीय तंत्रिकाएँ, जिन्हें अपवाही तंत्रिकाएँ भी कहा जाता है, सूचना को केंद्रीय तंत्रिका तंत्र से मांसपेशियों तक ले जाती हैं। पेशीय तंत्रिका स्नायविक आदेशों का संवहन करती है जो हमारी गतिविधियों और अन्य प्रतिक्रियाओं को निर्देशित, नियंत्रित एवं नियमित करते हैं। कुछ मिश्रित तंत्रिकाएँ भी होती हैं, लेकिन इनमें संवेदी और पेशीय तंतु भिन्न-भिन्न होते हैं।

तंत्रिका आवेग

तंत्रिका तंत्र में सूचनाएँ तंत्रिका आवेग के रूप में प्रवाहित होती हैं। जब उद्दीपक ऊर्जा ग्राहकों तक पहुँचती है तब तंत्रिका समर्थता में विद्युत परिवर्तन होने लगते हैं। तंत्रिका कोशिका की सतह पर विद्युत समर्थता में आकस्मिक परिवर्तन को तंत्रिका समर्थता कहते हैं। जब उद्दीपक ऊर्जा अपेक्षाकृत कमज़ोर होती है, तब विद्युत परिवर्तन इतने कम होते हैं कि तंत्रिका आवेग उत्पन्न नहीं हो पाते हैं और हम उस उद्दीपक का अनुभव नहीं कर पाते हैं। यदि उद्दीपक ऊर्जा अपेक्षाकृत सशक्त होती है तो विद्युत आवेग उत्पन्न होते हैं और केंद्रीय तंत्रिका तंत्र की ओर संवाहित होते हैं। तंत्रिका आवेग की शक्ति उसको उत्पन्न करने वाले उद्दीपक की शक्ति पर निर्भर नहीं करती है। तंत्रिका तंतु पूर्ण या शून्य सिद्धांत पर काम करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वे या तो पूरी तरह से अनुक्रिया करते हैं या बिलकुल नहीं करते हैं। तंत्रिका आवेग की शक्ति तंत्रिका तंतु के साथ-साथ स्थिर रहती है।

तंत्रिका-कोष संधि

तंत्रिका तंत्र में कोई सूचना एक स्थान से दूसरे स्थान तक एक तंत्रिका आवेग के रूप में संचारित होती है। एक अकेली तंत्रिका कोशिका तंत्रिका आवेग को अपने अक्षतंतु की लंबाई भर की दूरी तक ले जा सकती है। जब किसी आवेग को शरीर के दूर के हिस्से में भेजना होता है तो इस प्रक्रिया में कई तंत्रिका कोशिकाएँ भाग लेती हैं। इस प्रक्रिया में एक तंत्रिका कोशिका बहुत विश्वसनीय तरीके से सूचना को अपनी निकटवर्ती तंत्रिका कोशिका में भेजती है। पूर्ववर्ती तंत्रिका कोशिका के अक्षतंतु के संकेत दूसरी तंत्रिका कोशिका के पार्श्वतंतु से प्रकार्यात्मक संबंध या *तंत्रिका-कोष संधि* बनाते हैं। एक तंत्रिका कोशिका कभी भी दूसरी तंत्रिका कोशिका से शारीरिक रूप से जुड़ी नहीं होती, बल्कि वहाँ दोनों के बीच में खाली

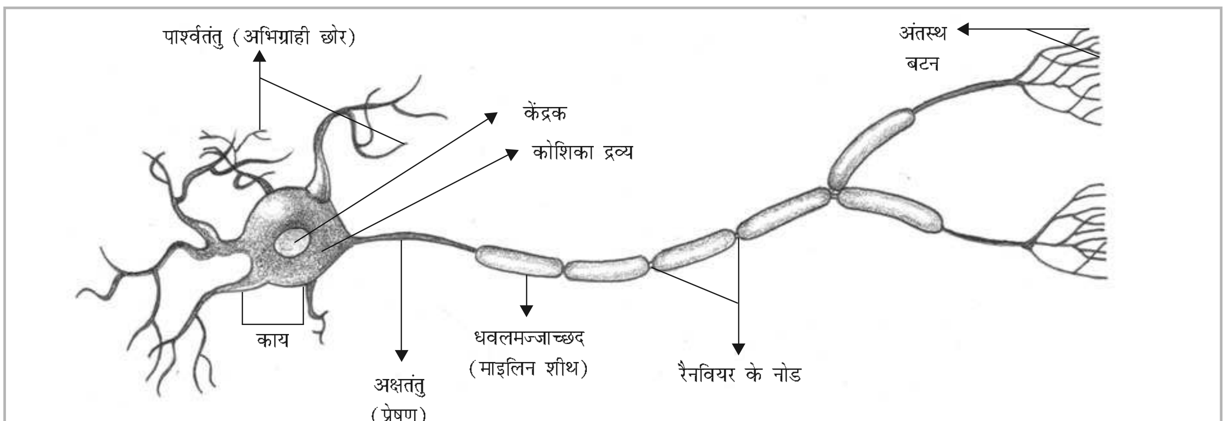

चित्र 3.1 : तंत्रिका कोशिका की संरचना

स्थान होता है। इस खाली स्थान को संधिस्थलीय खंड कहा जाता है। एक तंत्रिका कोशिका से तंत्रिका आवेग एक जटिल संधिस्थलीय सूचना संचरण प्रक्रिया द्वारा दूसरी तंत्रिका कोशिका तक पहुँचाया जाता है। अक्षतंतुओं में तंत्रिका आवेग का संवहन विद्युत-रासायनिक होता है, जबकि संधिस्थलीय संचरण की प्रकृति रासायनिक होती है (चित्र 3.2)। ये रासायनिक पदार्थ तंत्रिका-संचारक कहलाते हैं।

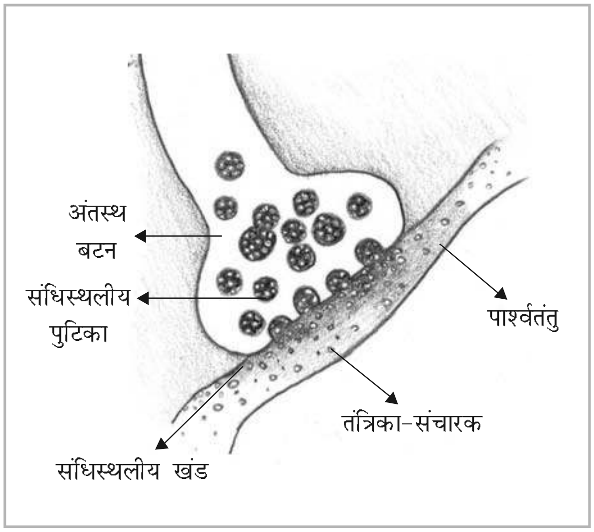

चित्र 3.2 : तंत्रिका आवेग का तंत्रिका-कोष संधि से संचरण

तंत्रिका तंत्र और अंत:स्रावी तंत्र की संरचना एवं प्रकार्य तथा व्यवहार और अनुभव के साथ उनके संबंध

चूँकि हमारी जैविकीय संरचना हमारे व्यवहार के संगठन एवं निष्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है इसलिए हम इन संरचनाओं को कुछ विस्तार से देखेंगे। विशेष रूप से आप तंत्रिका तंत्र एवं अंत:स्रावी तंत्र के बारे में पढ़ेंगे, जो मानव व्यवहार और अनुभव को एक आकार प्रदान करने में एक साथ कार्य करते हैं।

तंत्रिका तंत्र

सभी प्राणियों में मानव तंत्रिका तंत्र सर्वाधिक जटिल एवं विकसित तंत्र है। यद्यपि तंत्रिका तंत्र समग्र रूप से कार्य करता है, तथापि अध्ययन की सरलता के लिए हम इसे इसकी स्थिति और कार्य के आधार पर कई हिस्सों में बाँट सकते हैं। स्थिति के आधार पर तंत्रिका तंत्र दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है : केंद्रीय तंत्रिका तंत्र तथा परिधीय तंत्रिका तंत्र। तंत्रिका तंत्र का वह भाग जो कठोर हड्डी के खोल (कपाल और रीढ़ की हड्डी) के अंदर पाया जाता है उसे केंद्रीय तंत्रिका तंत्र कहा जाता है। मस्तिष्क और मेरुरज्जु इस तंत्र के अवयव हैं। केंद्रीय तंत्रिका तंत्र के अतिरिक्त तंत्रिका तंत्र के कुछ भाग परिधीय तंत्रिका तंत्र में स्थित होते हैं। परिधीय तंत्रिका तंत्र को पुन: कायिक एवं स्वायत्त तंत्रिका तंत्र में विभक्त किया जा सकता है। कायिक तंत्रिका तंत्र ऐच्छिक प्रकार्यों से संबद्ध है, जबकि स्वायत्त तंत्रिका तंत्र उन कार्यों को करता है जिनपर हमारा कोई ऐच्छिक नियंत्रण नहीं होता है। चित्र 3.3 में तंत्रिका तंत्र का संगठन क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है।

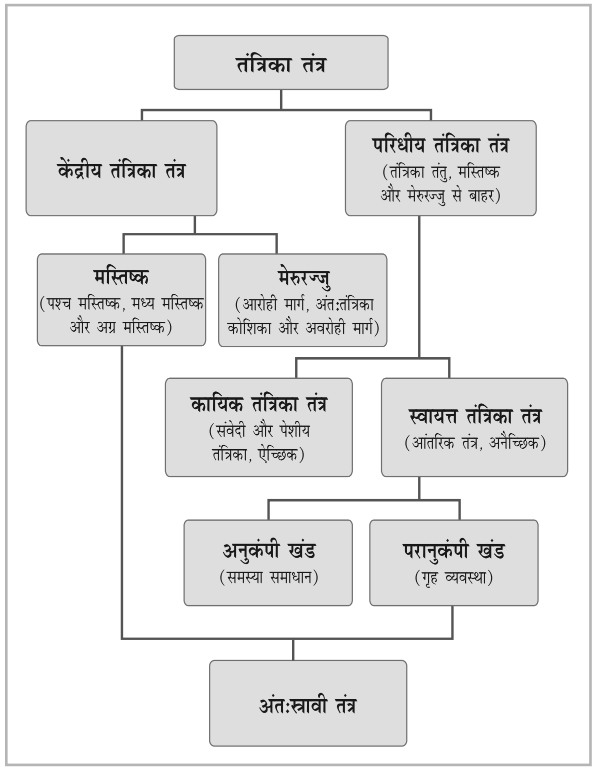

चित्र 3.3 : तंत्रिका तंत्र का क्रमबद्ध प्रतिरूपण

परिधीय तंत्रिका तंत्र

परिधीय तंत्रिका तंत्र में वे समस्त तंत्रिका कोशिकाएँ तथा तंत्रिका तंतु पाए जाते हैं, जो केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को पूरे शरीर से जोड़ते हैं। परिधीय तंत्रिका तंत्र को कायिक तंत्रिका तंत्र तथा स्वायत्त तंत्रिका तंत्र में विभाजित किया गया है। स्वायत्त

तंत्रिका तंत्र को पुनः अनुकंपी तथा परानुकंपी तंत्र में बाँटा गया है। परिधीय तंत्रिका तंत्र, केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को सूचना संवेदी ग्राहकों (आँख, कान, त्वचा, आदि) के द्वारा भेजता है और पुनः मस्तिष्क के पेशीय आदेशों को मांसपेशियों और ग्रंथियों तक वापस पहुँचाता है।

कायिक तंत्रिका तंत्र

इस तंत्र में दो प्रकार की तंत्रिकाएँ होती हैं, जिन्हें कपालीय तंत्रिका और मेरु तंत्रिका कहा जाता है। कपालीय तंत्रिकाओं के 12 समुच्चय (सेट) होते हैं, जो मस्तिष्क के विभिन्न स्थानों से निकलते या उस तक पहुँचते हैं। तीन प्रकार की कपालीय तंत्रिकाएँ होती हैं - संवेदी, पेशीय और मिश्रित। संवेदी तंत्रिकाएँ सिर के क्षेत्र में स्थित ग्राहकों (दृष्टि, श्रवण, घ्राण, स्वाद, स्पर्श इत्यादि) से संवेदी सूचनाएँ एकत्रित करती हैं और उन्हें मस्तिष्क तक ले जाती हैं। पेशीय तंत्रिकाएँ मस्तिष्क से निकलने वाले पेशीय आवेगों को सिर के क्षेत्र में स्थित मांसपेशियों तक ले जाती हैं। उदाहरणार्थ, आँख के गोलों का संचलन पेशीय कपालीय तंत्रिका द्वारा नियंत्रित होता है। मिश्रित तंत्रिकाओं में संवेदी और पेशीय दोनों प्रकार के तंतु होते हैं जो मस्तिष्क से निकलने और पहुँचने वाली संवेदी पेशीय सूचनाओं का संवहन करते हैं।

मेरु तंत्रिकाओं के 31 समुच्चय होते हैं जो मेरुरज्जु से निकलते और उस तक पहुँचते हैं। प्रत्येक समुच्चय में संवेदी और पेशीय तंत्रिकाएँ होती हैं। मेरु तंत्रिका के दो कार्य होते हैं। मेरु तंत्रिका के संवेदी तंतु शरीर के सभी भागों (सिर के हिस्से को छोड़कर) से संवेदी सूचनाएँ एकत्रित करते हैं और मेरुरज्जु तक भेजते हैं जहाँ से फिर संवेदी सूचनाएँ मस्तिष्क तक भेजी जाती हैं। इसके अतिरिक्त मस्तिष्क से नीचे आने वाले पेशीय आवेग मेरु तंत्रिकाओं के पेशीय तंतुओं द्वारा मांसपेशियों को भेजे जाते हैं।

स्वायत्त तंत्रिका तंत्र

यह तंत्र उन क्रियाओं का संचालन करता है जो सामान्यतः हमारे प्रत्यक्ष नियंत्रण में नहीं होती। यह ऐसे आंतरिक प्रकार्यों; जैसे- साँस लेना, रक्त संचार, लार स्राव, उदर संकुचन और सांवेगिक प्रतिक्रियाओं का नियंत्रण करता है (चित्र 3.4)। स्वायत्त तंत्रिका तंत्र की ये क्रियाएँ मस्तिष्क के विभिन्न भागों के नियंत्रण में होती हैं।

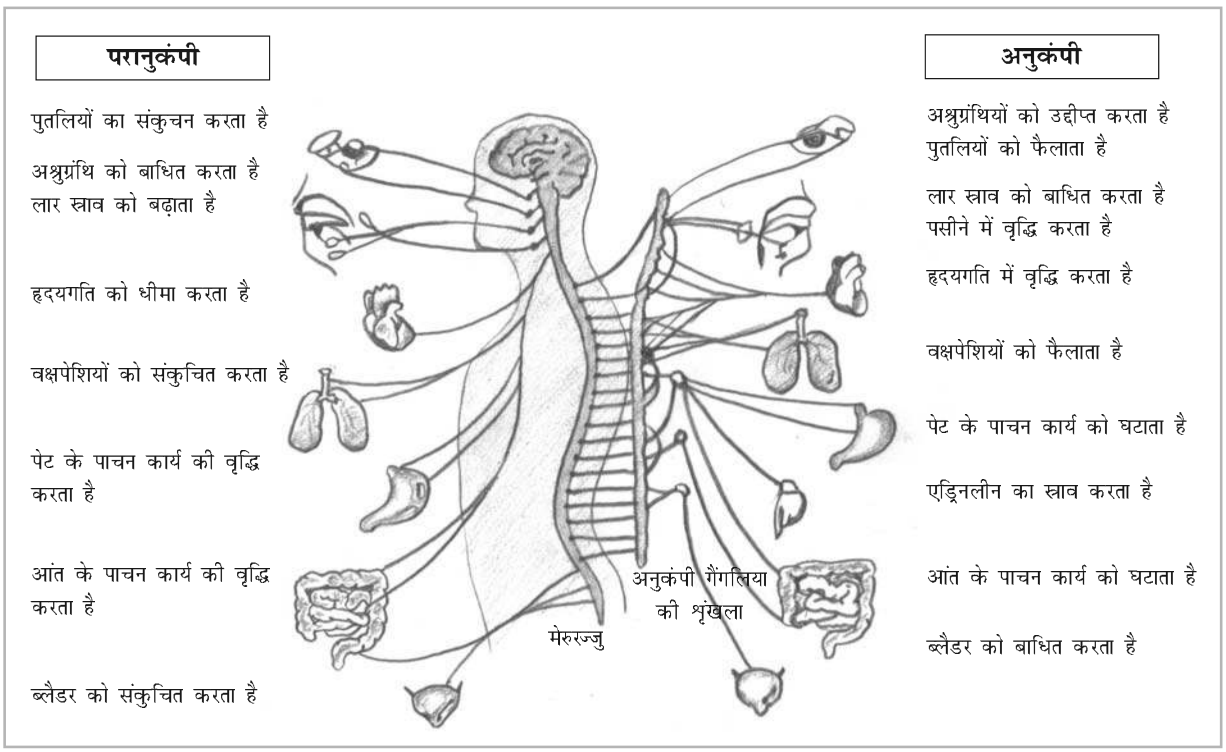

चित्र 3.4 : स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के प्रकार्य

स्वायत्त तंत्रिका तंत्र के दो खंड हैं : अनुकंपी खंड और परानुकंपी खंड। यद्यपि दोनों के प्रभाव एक दूसरे के विपरीत होते हैं, फिर भी दोनों संतुलन की स्थिति बनाए रखने के लिए मिलकर कार्य करते हैं। अनुकंपी खंड आपातकालीन स्थितियों को संभालने का कार्य करता है जब प्रबल और त्वरित कार्यवाही होनी चाहिए, जैसे संघर्ष या पलायन की स्थिति में। इस आपातकाल में पाचन क्रिया रुक जाती है, रक्त आंतरिक अंगों से मांसपेशियों की ओर दौड़ने लगता है, तथा श्वास गति, ऑक्सीजन आपूर्ति, हृदयगति और रक्त शर्करा का स्तर बढ़ जाता है।

परानुकंपी खंड मुख्यत: ऊर्जा के संरक्षण से संबद्ध है। यह शरीर के आंतरिक तंत्र के नियमित प्रकार्यों का संचालन करता है। जब आपातकालीन स्थिति समाप्त हो जाती है तब परानुकंपी खंड कार्यभार संभाल लेता है; यह अनुकंपी तंत्र की सक्रियता को कम करता है और व्यक्ति को शांत कर उसे सामान्य स्थिति में लाता है। परिणामस्वरूप सभी शारीरिक क्रियाएँ; जैसे- हृदयगति, श्वास गति, और रक्त संचार सामान्य स्तर पर वापस आ जाते हैं।

केंद्रीय तंत्रिका तंत्र

केंद्रीय तंत्रिका तंत्र सभी तंत्रिका क्रियाओं का केंद्र है। यह आने वाली समस्त संवेदी सूचनाओं को संगठित करता है, सभी प्रकार की संज्ञानात्मक क्रियाएँ करता है तथा मांसपेशियों और ग्रंथियों को प्रेरक आदेश देता है। केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में समाविष्ट हैं (अ) मस्तिष्क, और (ब) मेरुरज्जु। अब आप मस्तिष्क के मुख्य अंगों के प्रकार्यों एवं किन व्यवहारों के लिए हर अंग उत्तरदायी है, के बारे में पढ़ेंगे।

मस्तिष्क और व्यवहार

ऐसी धारणा है कि मानव मस्तिष्क करोड़ों वर्षों में निम्नस्तर के पशुओं के मस्तिष्क से विकसित हुआ है और यह विकासात्मक प्रक्रिया अभी भी जारी है। विकास की इस प्रक्रिया में इसके प्राचीनतम रूप से लेकर आधुनिकतम रूप तक हम इसकी संरचनाओं के स्तरों की जाँच कर सकते हैं। उपवल्कुटीय तंत्र, मस्तिष्क स्तंभ और अनुमस्तिष्क प्राचीनतम संरचनाएँ हैं जबकि विकास के क्रम में प्रमस्तिष्कीय वल्कुट नवीनतम परिवर्धन है। एक वयस्क मस्तिष्क का भार लगभग 1.36 किलोग्राम होता है तथा इसमें लगभग 100 अरब तंत्रिका कोशिकाएँ होती हैं। तथापि मस्तिष्क के बारे में सबसे आश्चर्यजनक बात इसकी मानव व्यवहार और विचार को दिशा प्रदान करने की योग्यता है न कि इसकी तंत्रिका कोशिकाओं की संख्या। मस्तिष्क, क्षेत्रों और संरचनाओं में संगठित है जो विशिष्ट प्रकार्य करते हैं। मस्तिष्कीय क्रमवीक्षण से पता चलता है कि कुछ मानसिक प्रकार्य मस्तिष्क के विभिन्न क्षेत्रों में वितरित हैं, लेकिन बहुत सी गतिविधियाँ केंद्रित भी होती हैं। उदाहरणार्थ, मस्तिष्क का पश्चकपाल पालि (खंड) दृष्टि के लिए विशिष्ट क्षेत्र है।

क्रियाकलाप 3.1

कुछ विद्यार्थियों से कागज़ की पर्ची बनाने को कहिए और उन पर तंत्रिका तंत्र के हिस्सों के नाम लिखने को कहिए। पर्चियों को एक साथ मिलाकर एक कटोरे में रखिए और प्रत्येक विद्यार्थी को एक पर्ची उठाने को कहिए। उन्हें कुछ समय दीजिए और फिर उनसे उस पर्ची पर लिखे हिस्से के कार्य और स्थान याद करने को कहिए। प्रत्येक विद्यार्थी फिर सामने आए और वह हिस्सा बता कर अपना परिचय दे, फिर उस हिस्से के स्थान और कार्य की व्याख्या करे।

मस्तिष्क की संरचना

अध्ययन की सुविधा के लिए मस्तिष्क को तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता है: पश्च मस्तिष्क, मध्य मस्तिष्क एवं अग्र मस्तिष्क (चित्र 3.5)।

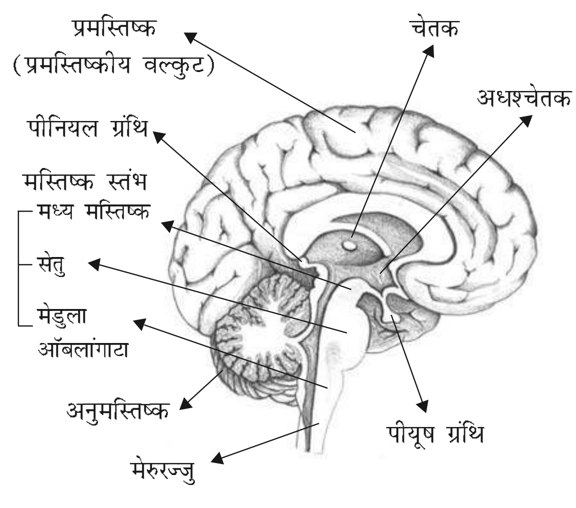

चित्र 3.5 : मस्तिष्क की संरचना

पश्च मस्तिष्क

मस्तिष्क के इस हिस्से में निम्न संरचनाएँ होती हैं:

मेडुला ऑबलांगाटा : यह मस्तिष्क का सबसे निचला हिस्सा है जो मेरुरज्जु से सटा रहता है। इसमें तंत्रिकीय केंद्र होते हैं जो मूलभूत जीवन सहायक गतिविधियों; जैसे- श्वास लेना, हृदयगति, और रक्तचाप को नियमित करते हैं। इसीलिए मेडुला मस्तिष्क का जीवनाधार केंद्र माना जाता है। इसमें कुछ केंद्र स्वायत्त क्रियाओं के लिए भी होते हैं।

सेतु : एक ओर यह मेडुला से और दूसरी ओर मध्य मस्तिष्क से जुड़ा होता है। सेतु का एक केंद्रक (तंत्रिकीय केंद्र) हमारे कानों द्वारा संचारित श्रवणात्मक संकेतों को ग्रहण करता है। ऐसा माना जाता है कि सेतु निद्रा रचनातंत्र से जुड़ा होता है, विशेषत: स्वप्ननिद्रा से। इसमें ऐसे केंद्रक होते हैं जो चेहरे की अभिव्यक्ति और श्वास-प्रश्वास संचालन को भी प्रभावित करते हैं।

अनुमस्तिष्क : पश्च मस्तिष्क का यह सबसे विकसित हिस्सा अपनी झुर्रीदार सतह से आसानी से पहचाना जा सकता है। यह शारीरिक मुद्रा एवं संतुलन को बनाए रखने और नियंत्रित करने का कार्य करता है। इसका मुख्य कार्य मांसपेशीय क्रियाकलापों में समन्वय करना है। यद्यपि पेशीय आदेश अग्र मस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं, अनुमस्तिष्क उनको ग्रहण कर तथा समन्वित कर, मांसपेशियों को भेजता है। यह क्रियाकलापों की विधियों की स्मृति भी संचित करता है जिससे हम कैसे चलें, साइकिल पर चढ़ें या नाचें इत्यादि मुद्राओं पर ध्यान केंद्रित नहीं करना पड़ता है।

मध्य मस्तिष्क

मध्य मस्तिष्क अपेक्षाकृत छोटे आकार का होता है तथा यह पश्च मस्तिष्क और अग्र मस्तिष्क को जोड़ता है। यहाँ कुछ तंत्रिकीय केंद्र जो कुछ विशेष प्रतिवर्तों से संबंधित होते हैं तथा चाक्षुष और श्रवण संवेदनाएँ पाई जाती हैं। मध्य मस्तिष्क का एक महत्वपूर्ण हिस्सा जिसे रेटिक्युलर एक्टिवेटिंग सिस्टम कहते हैं, हमारे भाव प्रबोधन के लिए उत्तरदायी होता है। संवेदी आगत को नियमित करके यह हमें सजग और सक्रिय बनाता है। पर्यावरण से आगत सूचनाओं के चयन में भी यह हमारी सहायता करता है।

अग्र मस्तिष्क

अग्र मस्तिष्क को सर्वाधिक महत्वपूर्ण हिस्सा माना जाता है क्योंकि यह सभी प्रकार की संज्ञानात्मक, संवेगात्मक और प्रेरक क्रियाकलापों को संपादित करता है। हम अब अग्र मस्तिष्क के चार मुख्य भागों की चर्चा करेंगे : अधश्चेतक, चेतक, उप वल्कुटीय तंत्र और प्रमस्तिष्क।

अधश्चेतक : मस्तिष्क के सबसे छोटे भागों में से अधश्चेतक एक है, किंतु यह व्यवहार में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। सांवेगिक एवं अभिप्रेरणात्मक व्यवहारों में शामिल शारीरिक प्रक्रियाओं को यह नियमित करता है; जैसे- भोजन करना, पानी पीना, सोना, तापमान नियमन, और कामोत्तेजना। यह शरीर के आंतरिक वातावरण (यथा, हृदयगति, रक्तचाप, तापमान) को नियंत्रित एवं नियमित करता है तथा विभिन्न अंत:स्रावी ग्रंथियों से निकलने वाले अंत:स्राव या हार्मोन को भी नियमित करता है।

चेतक : चेतक अधश्चेतक के ऊपरी हिस्से पर अंडाकार रूप में स्थित होता है। इसमें तंत्रिका कोशिकाओं के गुच्छे होते हैं। यह एक प्रसारण स्टेशन की तरह है जो ज्ञानेन्द्रियों से आने वाले सभी संवेदी संकेतों को ग्रहण करके वल्कुट के उपयुक्त हिस्सों में प्रक्रमण के लिए भेजता है। वल्कुट से निकलने वाले सभी बर्हिगत प्रेरक संकेतों को भी ग्रहण कर, शरीर के उपयुक्त भागों में भेजता है।

उपवल्कुटीय तंत्र : यह तंत्र ऐसी संरचनाओं के समूह से बना है जो पुरातन स्तनधारीय मस्तिष्क का हिस्सा है। शरीर में शारीरिक तापमान, रक्तचाप और रक्तशर्करा स्तर का नियमन करके यह आंतरिक समस्थिति को कायम रखने में मदद करता है। इसका अधश्चेतक से भी गहरा संबंध है। अधश्चेतक के अलावा उपवल्कुटीय तंत्र में हिप्पोकेम्पस और गलतुंडिका भी समाविष्ट हैं। दीर्घकालिक स्मृति में हिप्पोकेम्पस की और संवेगात्मक व्यवहारों में गलतुंडिका की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

प्रमस्तिष्क : यह प्रमस्तिष्कीय वल्कुट के नाम से भी जाना जाता है। यह भाग सभी उच्चस्तरीय संज्ञानात्मक प्रकार्यों; जैसे- अवधान, प्रत्यक्षण, अधिगम, स्मृति, भाषा-व्यवहार, तर्कना और समस्या समाधान को नियमित करता है। मानव मस्तिष्क के कुल परिमाण का दो तिहाई भाग प्रमस्तिष्क होता है। इसकी सघनता 1.5 मि.मी. से लेकर 4 मि.मी. तक होती है जो मस्तिष्क की पूरी सतह को ढक लेती है और

इसमें तंत्रिका कोशिकाएँ, अक्षतंतुओं के समूह और तंत्रिका जाल होते हैं। ये सभी हमारे लिए संगठित कार्य करना और प्रतिमाएँ, प्रतीक, साहचर्य तथा स्मृति सर्जन करना संभव बनाते हैं।

प्रमस्तिष्क दो बराबर अर्धभागों में विभक्त है जिन्हें प्रमस्तिष्कीय गोलार्ध कहते हैं। यद्यपि दोनों गोलार्ध देखने में एक जैसे लगते हैं, किंतु प्रकार्यात्मक रूप से एक गोलार्ध सामान्यत: दूसरे की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है। उदाहरणार्थ, बायाँ गोलार्ध सामान्यत: भाषा संबंधी व्यवहारों को नियंत्रित करता है और दायाँ गोलार्ध सामान्यत: प्रतिमाएँ, देशिक संबंध, प्रारूप प्रत्यभिज्ञान जैसे विशिष्ट कार्यों को संभालता है। ये दोनों गोलार्ध एक सफ़ेद माइलिन आच्छादित तंतुओं के समूह से जुड़े होते हैं जिसे महासंयोजक पिंड या कार्पस कोलोसम कहा जाता है और जो दोनों गोलार्धों के बीच संदेश लाने और ले जाने का कार्य करता है।

प्रमस्तिष्कीय वल्कुट को भी चार पालियों (खंडों) में विभक्त किया गया है- ललाट पालि, पार्श्विक पालि, शंख पालि और पश्चकपाल पालि। **ललाट पालि** (frontal lobe) मुख्यत: संज्ञानात्मक कार्यों; जैसे- अवधान, चिंतन, स्मृति, अधिगम एवं तर्कना से संबद्ध है, किंतु यह स्वायत्त और संवेगात्मक अनुक्रियाओं पर भी अवरोधात्मक प्रभाव डालता है। **पार्श्विक पालि** (parietal lobe) मुख्यत: त्वचीय संवेदनाओं और उनका चाक्षुष और श्रवण संवेदनाओं के साथ समन्वय से संबद्ध है। **शंख पालि** (temporal lobe) मुख्यत: श्रवणात्मक सूचनाओं के प्रक्रमण से संबद्ध है। प्रतीकात्मक शब्दों और ध्वनियों की स्मृति यहाँ रहती है। लिखित भाषा और वाणी को समझना इसी पालि पर निर्भर करता है। **पश्चकपाल पालि** (occipital lobe) मुख्यत: चाक्षुष सूचनाओं से संबद्ध है। ऐसा माना जाता है कि चाक्षुष आवेगों की व्याख्या, चाक्षुष उद्दीपकों की स्मृति और रंग चाक्षुष उन्मुखता इसी पालि के द्वारा संपन्न होती है।

शरीरक्रियाविज्ञानी और मनोवैज्ञानिकों ने मस्तिष्क की विशिष्ट संरचनाओं से संबंधित विशिष्ट प्रकार्यों को पहचानने का प्रयास किया है। उन्होंने पाया है कि मस्तिष्क की कोई भी गतिविधि वल्कुट के केवल एक हिस्से के द्वारा ही संपादित नहीं होती है। सामान्यत: दूसरे हिस्से भी सम्मिलित होते हैं। किंतु यह भी सत्य है कि प्रकार्यों का कुछ क्षेत्र निर्धारण भी है अर्थात एक विशेष कार्य के लिए वल्कुट का कोई विशेष भाग, दूसरे भागों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उदाहरणार्थ, यदि आप कोई कार चला रहे हैं तो आप अपने पश्चकपाल पालि के कार्यों के फलस्वरूप सड़क और अन्य दूसरी गाड़ियों को देखते हैं, हार्न की आवाज़ शंख पालि के काम करने के कारण सुन पाते हैं, पार्श्विक पालि के नियंत्रण में कई प्रकार के पेशीय क्रियाकलाप करते हैं और निर्णय ललाट पालि के द्वारा लेते हैं। पूरा मस्तिष्क एक समुचित रूप से समन्वित इकाई के रूप में कार्य करता है, जहाँ अलग-अलग हिस्से अपना कार्य अलग-अलग करते हैं।

मेरुरज्जु

मेरुरज्जु एक लंबी रस्सी की तरह का तंत्रिका तंतुओं का एक समूह है जो मेरुदंड के अंदर पूरी लंबाई तक जाता है। इसका एक हिस्सा मस्तिष्क के मेडुला से जुड़ा होता है और दूसरा हिस्सा एक पूँछ के अंतिम हिस्से की भाँति मुक्त रहता है। पूरी लंबाई तक इसकी संरचना एक जैसी है। मेरुरज्जु के मध्य में उपस्थित तितली के आकार के धूसर रंग के द्रव्य के ढेर में **साहचर्य तंत्रिका कोशिकाएँ** (association neurons) तथा अन्य कोशिकाएँ होती हैं। धूसर द्रव्य को घेरे हुए मेरुरज्जु का श्वेत द्रव्य होता है जो कि ऊपर जाने वाले और नीचे की ओर आने वाले तंत्रिका पथ से बना होता है। ये तंत्रिका पथ (तंत्रिका तंतु का समूह) मस्तिष्क को शरीर के अन्य हिस्सों से जोड़ता है। मेरुरज्जु एक बहुत बड़े केबिल की भूमिका निभाती है जो केंद्रीय तंत्रिका तंत्र को असंख्य संदेश भेजती और प्राप्त करती है। मेरुरज्जु के दो मुख्य प्रकार्य हैं। पहला, शरीर के निचले भागों से आने वाले संवेदी आवेगों को मस्तिष्क तक पहुँचाना और मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले पेशीय आवेगों को सारे शरीर तक पहुँचाना। दूसरा, इसमें कुछ सरल प्रतिवर्ती क्रियाएँ संपन्न होती हैं जिनमें मस्तिष्क भाग नहीं लेता है। इन सरल प्रतिवर्ती क्रियाओं में संवेदी तंत्रिका, पेशीय तंत्रिका तथा मेरुरज्जु के धूसर द्रव्य की साहचर्य तंत्रिका कोशिकाएँ शामिल हैं।

प्रतिवर्ती क्रिया

प्रतिवर्ती क्रिया एक ऐसी अनैच्छिक क्रिया है जो एक विशेष प्रकार के उद्दीपन के तुरंत बाद घटित होती है। प्रतिवर्ती क्रियाएँ मस्तिष्क के चेतन रूप से लिए गए निर्णय के बिना स्वत: घटित होती हैं। प्रतिवर्ती क्रियाएँ हमारे तंत्रिका तंत्र में विकासवादी प्रक्रिया के माध्यम से वंशानुगत होती हैं। उदाहरणार्थ, आँख झपकने की प्रतिवर्ती क्रिया। जब कभी कोई वस्तु हमारी आँखों

के समीप अचानक आती है तो हमारी पलकें झपकती हैं। प्रतिवर्ती क्रियाएँ जीव को किसी भी संभावित खतरे से बचाकर जीवन की रक्षा करती हैं। हालाँकि हमारा तंत्रिका तंत्र कई प्रकार की प्रतिवर्ती क्रियाएँ करता है किंतु उनमें जो परिचित हैं वे हैं, घुटने में झटका लगना, पुतलियों का फैलना-सिकुड़ना, बहुत गरम या बहुत ठंडी चीज़ से हाथ हटाना, साँस लेना और अंगों को फैलाना। इनमें से बहुत सारी प्रतिवर्ती क्रियाएँ मेरुरज्जु के द्वारा की जाती हैं जिनमें मस्तिष्क सम्मिलित नहीं होता है।

अंत:स्रावी तंत्र

हमारे विकास और व्यवहार में अंत:स्रावी ग्रंथियों की निर्णायक भूमिका होती है। वे विशेष रासायनिक द्रव्य प्रवाहित करती हैं जिन्हें अंत:स्राव कहते हैं जो हमारे कुछ व्यवहारों को नियंत्रित करते हैं। ये ग्रंथियाँ वाहिनी रहित ग्रंथियाँ या अंत:स्रावी ग्रंथियाँ कहलाती हैं, क्योंकि इनमें कोई नली (दूसरी ग्रंथियों की तरह) नहीं होती है जिससे ये अपने स्राव को विशेष स्थानों पर भेज सकें। अंत:स्राव रक्त धारा के साथ प्रवाहित होते हैं। अंत:स्रावी ग्रंथियाँ शरीर में एक अंत:स्रावी तंत्र बना लेती हैं। यह तंत्र तंत्रिका तंत्र के अन्य हिस्सों के संयोजन में काम करता है। अत: पूरे तंत्र को तंत्रिका-अंत:स्रावी तंत्र के रूप में जाना जाता है। चित्र 3.6 शरीर की मुख्य अंत:स्रावी ग्रंथियों को प्रदर्शित करता है।

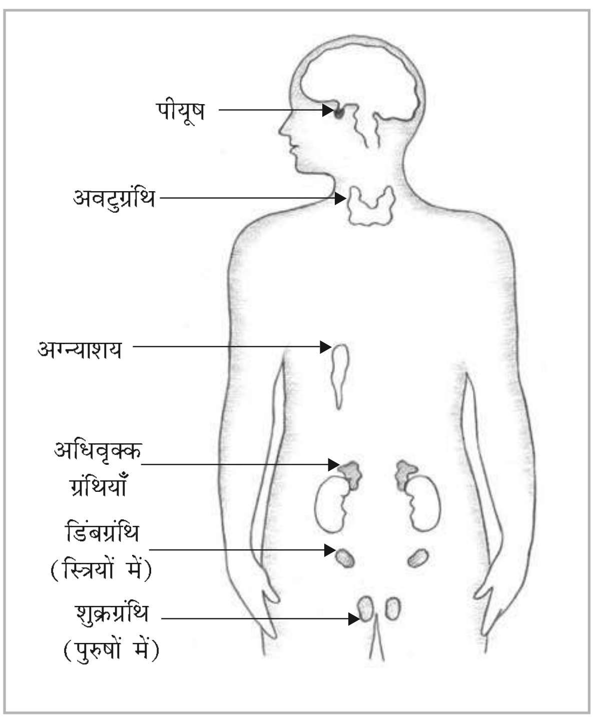

चित्र 3.6 : मुख्य अंत:स्रावी ग्रंथियाँ

पीयूष ग्रंथि

यह ग्रंथि कपाल में, अधश्चेतक के ठीक नीचे स्थित होती है। पीयूष ग्रंथि अग्रपीयूष और पश्च पीयूष में विभक्त है। अग्र पीयूष अधश्चेतक से प्रत्यक्षत: जुड़ी होती है जो इसके अंत:स्रावी स्रावों को नियमित करती है। पीयूष ग्रंथि संवृद्धि अंत:स्राव और अन्य कई अंत:स्रावों को स्रावित करती है, जो हमारे शरीर में पाई जाने वाली अन्य कई अंत:स्रावी ग्रंथियों के स्रावों का निर्देशन एवं नियमन करते हैं। इसी कारण पीयूष ग्रंथि को 'मुख्य ग्रंथि' कहा जाता है। कुछ अंत:स्राव जीवन पर्यंत धीमी गति से स्रावित होते रहते हैं जबकि दूसरे अन्य, जीवन में उपयुक्त समय पर प्रवाहित होते हैं। उदाहरणार्थ, संवृद्धि अंत:स्राव पूरी बाल्यावस्था में स्थिरतापूर्वक प्रवाहित होते रहते हैं, किशोरावस्था में कुछ स्फुरण के साथ, लेकिन जननग्रंथि पोषक हार्मोन यौवनारंभ की अवस्था में प्रवाहित होते हैं जो लड़कियों और लड़कों में स्त्रियोचित एवं पुरुषोचित अंत:स्रावों को उद्दीप्त करते हैं। इसके फलस्वरूप मूल और गौण लैंगिक परिवर्तन होते हैं।

अवटुग्रंथि

यह ग्रंथि गले में स्थित होती है। यह **थाइरॉक्सिन** (thyroxin) नामक अंत:स्राव उत्पन्न करती है जो शरीर में चयापचय की दर को प्रभावित करता है। अग्र पीयूष हार्मोन के द्वारा उपयुक्त मात्रा में थाइरॉक्सिन हार्मोन का स्राव और नियमन होता है। इस हार्मोन का स्थिर स्राव शरीर कोशिकाओं में ऊर्जा के उत्पादन को, ऑक्सीजन की खपत को और बेकार पदार्थ के विलोपन को बनाए रखता है। दूसरी ओर थाइरॉक्सिन हार्मोन के उत्पादन की कमी से शारीरिक और मानसिक सुस्ती आती है। यदि छोटे जानवरों से अवटुग्रंथि को निकाल दिया जाए तो उनका विकास रुक जाता है और वे लैंगिक रूप से विकसित नहीं हो पाते।

अधिवृक्क ग्रंथियाँ

ये दोनों ग्रंथियाँ प्रत्येक गुर्दे के ऊपर स्थित होती हैं। इसके दो भाग होते हैं, **अधिवृक्क वल्कुट** (adrenal cortex) और **अधिवृक्क मध्यांश** (adrenal medulla) और इनमें प्रत्येक से अलग-अलग अंत:स्राव उत्पन्न होता है। अधिवृक्क वल्कुट

से होने वाला अंत:स्राव, अग्रपीयूष ग्रंथि से स्रावित होने वाले अंत:स्राव एड्रीनोकॉर्टिकोट्रोफिक हार्मोन (ACTH) द्वारा नियंत्रित और नियमित होता है। जब अधिवृक्क वल्कुट का स्राव कम हो जाता है तब अग्रपीयूष ग्रंथि संदेश पाकर एड्रीनोकॉर्टिकोट्रोफिक हार्मोन के स्राव को बढ़ा देती है जो अधिवृक्क वल्कुट को अधिक अंत:स्राव के लिए उद्दीप्त कर देता है।

अधिवृक्क वल्कुट हार्मोन के एक समूह को स्रावित करता है जिन्हें **कॉर्टिकोयड** (corticoids) कहा जाता है। शरीर के द्वारा इनका उपयोग कई शरीरक्रियात्मक उद्देश्यों, उदाहरणार्थ, शरीर में खनिज विशेषत: सोडियम, पोटैशियम और क्लोराइड्स के नियमन के लिए किया जाता है। इस ग्रंथि के कार्यों में किसी भी प्रकार की बाधा तंत्रिका तंत्र के प्रकार्यों को गंभीर रूप से प्रभावित करती है।

अधिवृक्क मध्यांश दो प्रकार के अंत:स्राव स्रावित करता है, **एपाइनफ्राइन** (epinephrine) तथा **नॉरएपाइनफ्राइन** (norepinephrine)। इन्हें क्रमश: एड्रिनलीन और नॉरएड्रिनलीन के नाम से भी जाना जाता है। अनुकंपी सक्रियता; जैसे- हृदयगति में वृद्धि, ऑक्सीजन की खपत, चयापचय दर, पेशीय शक्ति इत्यादि, इन्हीं दो हार्मोन के स्राव के द्वारा घटित होती है। एपाइनफ्राइन और नॉरएपाइनफ्राइन अधश्चेतक को उद्दीप्त करते हैं जो प्रतिबलकों के हटा लेने के बाद भी व्यक्ति में संवेगों को बढ़ाते हैं।

अग्न्याशय

अग्न्याशय पेट के नीचे रहता है। यह खाना पचाने में मुख्य भूमिका निभाता है। लेकिन यह भी एक हार्मोन का स्राव करता है जिसे **इन्सुलिन** (insulin) कहा जाता है। इन्सुलिन, शरीर के उपयोग के लिए या यकृत में ग्लाइकोज़न के रूप में भंडारण के लिए यकृत की ग्लूकोज़ के विखंडन में सहायता करता है। जब समुचित मात्रा में इन्सुलिन का स्राव नहीं होता तो लोगों में बीमारी उत्पन्न हो जाती है जिसे मधुमेह कहते हैं।

जननग्रंथियाँ

जननग्रंथियों से तात्पर्य पुरुषों में शुक्रग्रंथि और स्त्रियों में डिंबग्रंथि से है। इन ग्रंथियों से स्रावित होने वाले अंत:स्राव पुरुषों और स्त्रियों में काम व्यवहार और प्रजनन प्रकार्यों को नियंत्रित और नियमित करते हैं। इन ग्रंथियों से निकलने वाले अंत:स्राव को शुरू करना, उसे बनाए रखना और उसके नियमन करने का कार्य **जननग्रंथि पोषक हार्मोन** (gonadotrophic hormone) करते हैं जो अग्रपीयूष ग्रंथि से निकलते हैं। जननग्रंथि पोषक हार्मोन का स्राव यौवनारंभ के दौरान (10 से 14 वर्ष के मानवों में) शुरू होता है और ये जननग्रंथियों को अंत:स्राव को उत्पन्न करने के लिए उद्दीप्त करता है जो कि पुन: मूल और गौण लैंगिक लक्षणों के विकास को उद्दीप्त करता है।

महिलाओं में डिंबग्रंथियाँ एस्ट्रोजन और प्रोजेस्ट्रान उत्पन्न करती हैं। एस्ट्रोजन से महिला शरीर का लैंगिक विकास होता है। लैंगिक रूप से परिपक्व एक महिला की डिंबग्रंथि में प्रजनन से संबंधित मूल लैंगिक लक्षण प्रकट होते हैं; जैसे- डिंबग्रंथि से लगभग प्रत्येक 28 दिनों में अंडाणु का निकलना। गौण लैंगिक लक्षण; जैसे- वक्षस्थल का विकास, शरीर की बाह्य सीमाओं का गोल होना, चौड़ी श्रोणि इत्यादि इसी अंत:स्राव पर निर्भर करती हैं। प्रोजेस्ट्रान का लैंगिक विकास में कोई योगदान नहीं होता है। इसका कार्य गर्भाशय को, निषेचित अंडाणु को ग्रहण करने के लिए, तैयार करना होता है।

पुरुषों में यह प्रजनन संबंधी व्यवहार अधिक सरल होता है, क्योंकि इसमें कोई चक्रीय प्रतिरूप नहीं होता। पुरुषों में शुक्रग्रंथि शुक्राणु निरंतर उत्पन्न करती रहती है और एण्ड्रोजन नामक पुरुष यौन अंत:स्राव स्रावित करती है। प्रमुख पुरुष यौन हार्मोन टेस्टोस्ट्रोन है। टेस्टोस्ट्रोन से गौण लैंगिक परिवर्तन होते हैं; जैसे- शारीरिक परिवर्तन, शरीर और चेहरे पर बालों का आना, आवाज़ का भारीपन और लैंगिक उन्मुख व्यवहार में वृद्धि। आक्रामकता में वृद्धि और दूसरे अन्य व्यवहार भी टेस्टोस्ट्रोन की उत्पत्ति से संबंधित हैं।

सभी अंत:स्रावों का सामान्य प्रकार्य हमारे व्यवहारपरक कल्याण के लिए निर्णायक होता है। अंत:स्राव के संतुलित स्राव के बिना शरीर आंतरिक संतुलन को बनाने में सक्षम नहीं होता। यदि अंत:स्राव में वृद्धि न हो तो दबाव की स्थिति में हम पर्यावरण के संभाव्य खतरों के प्रति प्रभावी प्रतिक्रिया नहीं कर सकते। अंत में, हमारे जीवन के विशिष्ट समय में यदि अंत:स्राव स्रावित न हों तो हमारी संवृद्धि नहीं हो सकती, हम परिपक्व नहीं हो सकते और न ही प्रजनन संभव हो सकता है।

आनुवंशिकता : जीन एवं व्यवहार

हम अपने माता-पिता से विशेषताएँ उत्तराधिकार में जीन के रूप में पाते हैं। एक बच्चा अपने जन्म के समय अपने माता और पिता से प्राप्त जीन के विशिष्ट संयोजन का धारक होता

है। यह उत्तराधिकार व्यक्ति के विकास को जैविक नक्शा (ब्लूप्रिंट) और समय-सारणी प्रदान करता है। अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार में प्राप्त शारीरिक और मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का अध्ययन **आनुवंशिकी** (genetics) कहलाता है। बच्चे का जन्म एकल युग्मनज कोशिका से प्रारंभ होता है। माता का अंडाणु पिता के शुक्राणु से निषेचित होकर युग्मनज कहलाता है। यह एक अत्यंत छोटी कोशिका होती है जिसके मध्य में केंद्रक होता है जिसमें गुणसूत्र होते हैं। सभी जीन के साथ ये गुणसूत्र, माता और पिता से बराबर संख्या में, वंशागत होते हैं।

गुणसूत्र

गुणसूत्र शरीर के आनुवंशिक तत्व हैं। ये गुणसूत्र प्रत्येक कोशिका के केंद्रक में होते हैं। इनकी संरचना धागे जैसी और जोड़े वाली होती है। प्रत्येक केंद्रक में गुणसूत्रों की संख्या पृथक किंतु प्रत्येक जीवित प्राणी में स्थिर होती है। युग्मक-कोशिकाओं (शुक्राणु और अंडाणु) में 23 गुणसूत्र पाए जाते हैं किंतु ये जोड़े में नहीं होते। एक शुक्राणु कोशिका और एक अंडाणु कोशिका के मिलने से एक नयी पीढ़ी का जन्म होता है।

गर्भधारण के समय जीव माता-पिता से 46 गुणसूत्र वंशानुक्रम से प्राप्त करता है, 23 माता से और 23 पिता से। इनमें से प्रत्येक गुणसूत्र में हजारों जीन होते हैं। पिता की शुक्राणु कोशिका, माता की अंडाणु कोशिका से एक महत्वपूर्ण पहलू में भिन्न होती है। शुक्राणु कोशिका का 23वाँ गुणसूत्र या तो अंग्रेज़ी वर्णमाला के बड़े X अक्षर की तरह या बड़े Y अक्षर की तरह का हो सकता है। यदि X की तरह की शुक्राणु कोशिका, अंडाणु कोशिका का निषेचन करती है तो निषेचित अंडाणु कोशिका में 23वें जोड़े में XX गुणसूत्र होंगे और संतान स्त्री होगी। दूसरी ओर, यदि Y की तरह की शुक्राणु कोशिका, अंडाणु कोशिका का निषेचन करेगी तो 23वें जोड़े में XY गुणसूत्र होंगे और संतान पुरुष के रूप में होगी।

गुणसूत्र मुख्यत: **डीऑक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड** (DNA) नामक पदार्थ से बने होते हैं। हमारे जीन मुख्यत: डी.एन.ए. अणुओं से बने होते हैं। वे दो जीन जो प्रत्येक लक्षण के विकास को नियंत्रित करते हैं, एक ही स्थान पर स्थित होते हैं। अर्थात् गुणसूत्र के एक विशेष जोड़े के प्रत्येक गुणसूत्र पर एक जीन स्थित होता है। इसका अपवाद है लिंग गुणसूत्रों का जोड़ा जो व्यक्ति के लिंग का निर्धारण करता है।

क्रियाकलाप 3.2

पूरी कक्षा को दो समूहों में बाँट दीजिए और इस विषय पर चर्चा कीजिए 'मनोवैज्ञानिकों को तंत्रिका कोशिका, तंत्रिका-कोष संधि और तंत्रिका तंत्र का अध्ययन जीव वैज्ञानिकों के लिए छोड़ देना चाहिए'। एक समूह को इसके पक्ष में और दूसरे समूह को विपक्ष में बोलना चाहिए।

जीन

प्रत्येक गुणसूत्र में हजारों आनुवंशिक निर्देश जीन के रूप में होते हैं। जीव के विकास का अधिकांश भाग ये जीन निर्धारित करते हैं। इनमें विशिष्ट प्रकार के प्रोटीन उत्पन्न करने के निर्देश होते हैं जो शरीरक्रियात्मक प्रक्रियाएँ और जीव के दृश्य प्ररूप गुणों की अभिव्यक्ति को नियमित करते हैं। जीव के व्यक्त गुणों को दृश्य प्ररूप या फीनोटाइप कहते हैं (उदाहरणार्थ, शारीरिक बनावट, शारीरिक शक्ति, बुद्धि एवं अन्य व्यवहारात्मक गुण)। जो गुण आनुवंशिक सामग्री के द्वारा बच्चों में हस्तांतरित होते हैं उन्हें जीन प्ररूप या जीनोटाइप कहते हैं। सभी जैविकीय और मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ जो एक आधुनिक मानव में होती हैं, वे उत्तराधिकार में प्राप्त जीन प्ररूप गुणों के फलस्वरूप होती हैं। इनमें दृश्य प्ररूप गुणों के कारण विभिन्नताएँ होती हैं।

एक निश्चित जीन कई भिन्न रूपों में जीवित रह सकता है। एक रूप से दूसरे रूप में बदलने की जीन की क्रिया को **उत्परिवर्तन** (mutation) कहते हैं। जिस प्रकार का उत्परिवर्तन प्रकृति में स्वाभाविक रूप से होता है उसी से जीन प्ररूप में भिन्नताएँ आती हैं और नयी प्रजातियों की उत्पत्ति होती है। उत्परिवर्तन की प्रक्रिया नए जीन को पुराने उपस्थित जीन से पुन: संयोजन के अवसर प्रदान करती है। जीन संरचना का यह नया संयोजन पुन: पर्यावरण में परीक्षण के लिए रखा जाता है, जो जीन प्ररूप पर्यावरण में सर्वोपयुक्त होते हैं उन्हें छाँट लिया जाता है।

सांस्कृतिक आधार : व्यवहार का सामाजिक-सांस्कृतिक निरूपण

व्यवहार के जैविकीय आधार को पढ़ने के बाद आपका यह विचार बन गया होगा कि हमारे कई व्यवहार अंत:स्रावों से प्रभावित होते हैं तो अन्य कई व्यवहार प्रतिवर्ती अनुक्रियाओं के कारण होते हैं। तथापि हार्मोन और प्रतिवर्त हमारे समस्त व्यवहार के कारणों की व्याख्या नहीं करते। हार्मोन मानव

कायिकी को नियमित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, किंतु वे पूर्णरूपेण मानव व्यवहार को नियंत्रित नहीं करते। इसी प्रकार रूढ़धारणा (स्थिर प्ररूप) जो किसी भी प्रतिवर्त का सबसे विभेदकारी गुण है, अधिकांश मानव अनुक्रियाओं में दिखाई नहीं देता।

यह तर्क देने के लिए कि हमारा व्यवहार जानवरों के व्यवहार से अधिक जटिल है हम अपने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से उदाहरण ले सकते हैं। इस जटिलता का एक प्रमुख कारण यह है कि मनुष्य के व्यवहार को नियमित करने के लिए एक संस्कृति है जो जानवरों में नहीं है। आइए, एक मूल आवश्यकता, भूख को लें। हमें पता है कि इसका जैविकीय आधार है, जो मनुष्यों और जानवरों में समान है लेकिन जिस तरह से मनुष्यों द्वारा इस आवश्यकता की संतुष्टि होती है वह अत्यंत जटिल है। उदाहरणार्थ, कुछ लोग शाकाहारी भोजन करते हैं जबकि कुछ मांसाहारी भोजन भी खाते हैं। वे कैसे शाकाहारी या मांसाहारी बन गए? कुछ शाकाहारी अंडा खाते हैं कुछ नहीं। ऐसा क्यों है? सोचने का प्रयत्न कीजिए कि लोग खाना खाने के विषय में इतना भिन्न व्यवहार कैसे करने लगे हैं। यदि आप और खोज करें तो पाएँगे कि भोजन करने के तरीके में भी विभिन्नताएँ होती हैं (उदाहरण के लिए, हाथ से भोजन करना या चम्मच, काँटे और छुरी की मदद से खाना)।

काम-व्यवहार को भी एक अन्य उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। हमें पता है कि इस व्यवहार में मनुष्यों और जानवरों में अंतःस्राव और प्रतिवर्ती क्रियाएँ समान रूप से होती हैं। जबकि जानवरों में काम-व्यवहार काफी सरल और प्रतिवर्ती होता है (सभी जानवर, लगभग एक ही प्रकार से काम-व्यवहार करते हैं) मनुष्यों में यह इतना जटिल होता है कि इसे प्रतिवर्ती बिलकुल भी नहीं कहा जा सकता। मानव काम-व्यवहार में साथी का चुनाव एक मुख्य विशेषता होती है। चुनाव का यह आधार भिन्न समाजों में भिन्न होता है और एक ही समाज में भी भिन्न होता है। मानव काम-व्यवहार कई नियमों, मानकों, मूल्यों और कानूनों से नियंत्रित होता है। तथापि इन नियमों और मानकों में भी लगातार परिवर्तन की प्रक्रिया होती है।

ये उदाहरण यह स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य के व्यवहार को समझने में केवल जैविकीय कारक ही हमारी बहुत ज़्यादा सहायता नहीं कर सकते। जीव वैज्ञानिकों द्वारा जो मानव प्रकृति बताई गई है उससे कहीं भिन्न मनुष्य का स्वभाव होता है। जैविकीय और सांस्कृतिक शक्तियों की परस्पर-क्रिया के द्वारा मानव प्रकृति विकसित हुई है। इन्हीं शक्तियों ने हमें कई तरह से समान और कई अन्य तरह से भिन्न बनाया है।

संस्कृति का संप्रत्यय

आपने पढ़ा कि मानव व्यवहार को उसके सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में ही जिसमें वह घटित होता है, समझा जा सकता है। मानव व्यवहार मूलभूत रूप से सामाजिक होता है। इसमें, दूसरे अन्य लोगों के साथ संबंध, उनके व्यवहार के प्रति प्रतिक्रिया और हमारे पूर्वजों द्वारा दी गई असंख्य चीज़ों से हमारे आबंध, सम्मिलित होते हैं। यद्यपि कई अन्य प्राणी भी हमारी तरह सामाजिक होते हैं किंतु मनुष्य सांस्कृतिक भी होते हैं।

आप पूछ सकते हैं : सांस्कृतिक होने का क्या तात्पर्य है? इस प्रश्न का उत्तर समझने के लिए हमें संस्कृति का अर्थ समझना होगा। एकदम सरल भाषा में यदि कहें तो संस्कृति का तात्पर्य 'पर्यावरण के मानव-निर्मित भाग' से है। इसमें बहुत से लोगों के व्यवहार के साथ-साथ हमारे अपने व्यवहार के विभिन्न उत्पाद सम्मिलित होते हैं। ये उत्पाद भौतिक वस्तुएँ (यथा, औज़ार, मूर्तियाँ), विचार (यथा, श्रेणियाँ, मानक) या सामाजिक संस्थान (यथा, परिवार, विद्यालय) हो सकते हैं। हम उन्हें लगभग हर जगह देख सकते हैं। वे हमारे व्यवहार को प्रभावित करते हैं यद्यपि हम उनके प्रति हमेशा सजग नहीं होते हैं।

आइए, कुछ उदाहरणों को देखें। जिस कमरे में आप अभी हैं वह एक सांस्कृतिक उत्पाद है। यह किसी का वास्तुकलात्मक विचार और भवन-निर्माण कला का परिणाम हो सकता है। आपका कमरा आयताकार हो सकता है किंतु कई स्थान ऐसे होते हैं जहाँ कमरे आयताकार नहीं होते (यथा, एस्किमो के)। इस अध्याय को पढ़ते समय हो सकता है आप किसी कुर्सी पर बैठे हों जिसका किसी ने कुछ समय पहले रूपांकन एवं निर्माण किया हो। चूँकि कुर्सी पर बैठने की एक विशेष मुद्रा होती है, यह आविष्कार आपके व्यवहार का निरूपण कर रहा है। कई ऐसे समाज हैं जहाँ कुर्सियाँ नहीं होती हैं। ज़रा सोचिए कि इन समाजों में लोग कुछ पढ़ने के लिए कैसे बैठते होंगे।

विद्यार्थी 'कक्षा' में कुर्सियों पर बैठते हैं, लेकिन सभी विद्यालयों में कुर्सियाँ नहीं होती। कई गाँवों के स्कूलों में विद्यार्थियों के लिए कुर्सियाँ नहीं होतीं। वे या तो ज़मीन पर या उस पर बोरे बिछाकर बैठते हैं। कुछ समाजों में बच्चे एक कमरे में एकत्रित होकर, अध्यापक की ओर मुख करके बैठते हैं, जो कि एक अन्य प्रकार का सांस्कृतिक उत्पाद है, जिसे 'शिक्षण' कहते हैं। इस संस्थान का भौतिक पक्ष हो सकता है, जैसे-भवन और वैचारिक पक्ष हो सकता है, जैसे यह विचार कि शिक्षण एक विशिष्ट स्थान या समय पर होना चाहिए या

बॉक्स 3.1 जैविकीय एवं सांस्कृतिक संचरण

अपेक्षाकृत आधुनिक वर्षों में एक विद्याशाखा का उद्भव हुआ है, जिसे समाज-जीवविज्ञान कहा जाता है और जो जीवविज्ञान और समाज की अन्योन्यक्रिया से संबंधित है। विकासवादी ढाँचे में 'समावेशी उपयुक्तता' के आधार पर यह विद्याशाखा मनुष्य के सामाजिक व्यवहार की व्याख्या करती है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रत्येक जीव से इस प्रकार के व्यवहार की प्रत्याशा की जाती है जिससे प्रजनन को अधिकाधिक बढ़ाया जा सके। जिन शोधकर्ताओं ने कई सामाजिक व्यवहारों (जैसे- प्रणययाचन, मैथुन, बच्चों का पालन-पोषण) का अध्ययन किया है उन्होंने जैविकीय रूप से संबंधित प्राणियों के विकास की निरंतरता का निम्न मूल्यांकन किया है। उनके अनुसार मनुष्य का व्यवहार केवल जैविकीय पूर्ववृत्तियों के कारण नहीं है। यह अधिगम से बहुत प्रभावित होता है। एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक, हाइडी केलर (Heidi Keller) के अनुसार, आनुवंशिक अक्षयनिधि को जीन और व्यवहार के बीच स्थिर, नियतिवादी संबंधों के भ्रामक अर्थ में नहीं समझना चाहिए। उन्होंने 'आनुवंशिक तत्परता' का विचार प्रतिपादित किया जिसका तात्पर्य यह हुआ कि पर्यावरण के साथ हमारे अनुकूलन को बढ़ाने के लिए, हम कुछ विशिष्ट व्यवहारों को अधिगम के द्वारा अर्जित करते हैं।

अब यह माना जाता है कि मानव क्रमविकास में दोनों, आनुवंशिक और सांस्कृतिक, संचरण सम्मिलित हैं। यह संचरण प्रक्रियाएँ कुछ हद तक भिन्न हैं किंतु उनकी समांतर विशेषताएँ भी हैं। आनुवंशिक संचरण एक प्रक्रिया है जो सभी जीवों में एक ही तरह से घटित होती है जबकि सांस्कृतिक संचरण एक अनोखी मानव प्रक्रिया है। शिक्षण और अनुकरण के माध्यम से एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी से जो सीखती है, वही अधिगम इसे जैविकीय संचरण से भिन्न बनाता है। सांस्कृतिक संचरण में, व्यक्ति अपने जैविक माता-पिता के अलावा अन्य लोगों से भी प्रभावित होता है, जबकि जैविकीय संचरण में केवल माता-पिता ही प्रभाव का कारण होते हैं। अतः केवल मनुष्यों में ही 'सांस्कृतिक माता-पिता' होते हैं (जैसे- विस्तृत परिवार के सदस्य, शिक्षक और अन्य प्रभावशाली लोग)। सांस्कृतिक क्रम विकास भी केवल पीढ़ियों के मध्य प्रभाव तक ही सीमित नहीं है। एक पीढ़ी में भी विचार संचारित हो सकते हैं यहाँ तक कि यह भी संभव है कि बड़े लोग अपने छोटों को आदर्श बनाएँ।

यह दोनों प्रक्रियाएँ कई महत्वपूर्ण तरीके से समान हैं। पर्यावरण की माँगों के साथ दोनों अन्योन्यक्रिया में आगे बढ़ती हैं। दोनों में वे परिवर्तन सम्मिलित हैं जो या तो बने रहते हैं या खत्म हो जाते हैं। यह इस बात पर निर्भर करता है कि वे अनुकूलन के कितने योग्य हैं (अर्थात वे उस पर्यावरण के साथ कितनी अच्छी तरह से समायोजित होते हैं जिसमें वे पहली बार घटित हुए थे)। अतः मानव स्तर पर हम द्वैध-उत्तराधिकार सिद्धांत के प्रमाण पाते हैं। जैविकीय उत्तराधिकार जीन के माध्यम से घटित होते हैं जबकि सांस्कृतिक उत्तराधिकार मीम्स के द्वारा। पहले में ऊपर से नीचे का क्रम (माता-पिता से बच्चे) होता है जबकि दूसरे में नीचे से ऊपर का क्रम (बच्चों से माता-पिता) भी हो सकता है। द्वैध-उत्तराधिकार सिद्धांत यह भी प्रदर्शित करता है कि यद्यपि जैविकीय एवं सांस्कृतिक शक्तियों में भिन्न-भिन्न प्रक्रियाएँ हो सकती हैं लेकिन वे समांतर शक्तियों की तरह कार्य करती हैं और एक दूसरे से अन्योन्यक्रिया करते हुए व्यक्ति के व्यवहार की व्याख्या करती हैं।

यह विचार कि जो लोग 'विद्यालय' आते हैं उनका मूल्यांकन होना चाहिए, और सफलतापूर्वक शिक्षा पूरी करने पर उन्हें प्रमाणपत्र देना चाहिए। यह संस्थान उन लोगों को कुछ व्यवहारात्मक प्रत्याशाएँ भी प्रदान करते हैं जो इसमें भाग लेते हैं। अध्यापक और विद्यार्थी दोनों को ही कुछ भूमिकाएँ निभानी पड़ती हैं और कुछ ज़िम्मेदारियाँ भी लेनी पड़ती हैं। व्यक्ति, परिवार और समुदाय के शिक्षा एवं शिक्षण के प्रति भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण होते हैं। कुछ का मत है कि विद्यालयी शिक्षा एक मूल्यवान चीज़ है। उनका यह अडिग विश्वास है कि विद्यालयी शिक्षा लोगों को अधिक शक्तिशाली बना सकती है और उनका भाग्य बदल सकती है। दूसरे लोग इसे न तो मूल्यवान समझते हैं और न ही इसकी शक्ति में विश्वास रखते हैं। कुछ समाज लड़के और लड़कियों की समान शिक्षा पर ज़ोर डालते हैं जबकि अन्य ऐसा नहीं मानते। कुछ समूह शिक्षा की इस प्रक्रिया में व्यापक रूप से भाग लेते हैं जबकि दूसरे (जैसे- कुछ जनजातीय समूह) थोड़ा या बिलकुल भी भाग नहीं लेते। कुछ विशेष आवश्यकताओं वाले लोग बहुधा कई कारणों से विद्यालयी शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। समुदाय, लिंग, जाति समूह और विशेष आवश्यकताओं वाले समूह और उनकी शैक्षणीयता के बारे में भिन्न-भिन्न समाजों में लोगों के भिन्न-भिन्न विचार होते हैं।

जब आप चारों ओर देखेंगे तो पाएँगे कि मनुष्य के रूप में हम कई प्रकार के सांस्कृतिक उत्पादों से अन्योन्यक्रिया करते हैं और उनके अनुरूप व्यवहार करते हैं। इसका तात्पर्य

यह हुआ कि संस्कृति एक महत्वपूर्ण ढंग से हमारे व्यवहार को प्रभावित करती है। फिर भी इस बिंदु पर यह भी समझने योग्य है कि जिस प्रकार संस्कृति हमारे व्यवहार को प्रभावित करती है हम भी अपनी संस्कृति को प्रभावित करते हैं। कई मानवशास्त्रियों ने इंगित किया है कि संस्कृति और मानस का एक दूसरे पर पारस्परिक प्रभाव पड़ता है। उनके अनुसार व्यक्ति और उसके सामाजिक परिवेश के बीच संबंध अन्योन्यक्रियात्मक (परस्पर प्रभाव डालने वाला) है और इन्हीं अन्योन्यक्रियाओं के दौरान वे एक दूसरे को बनाते हैं। यह परिप्रेक्ष्य बताता है कि मनुष्य सांस्कृतिक शक्तियों का निष्क्रिय प्राप्तकर्ता नहीं है। बल्कि वे स्वयं एक संदर्भ बनाते हैं जिसमें उनके व्यवहारों का निरूपण होता है।

क्रियाकलाप 3.3

विभिन्न राज्यों के विद्यार्थियों के साथ उनके भोजन, त्योहारों, रीति-रिवाज़ों और पोशाकों आदि के बारे में बात कीजिए।

समानता और विभिन्नता की एक सूची तैयार कीजिए तथा उस पर अपने शिक्षक के साथ चर्चा कीजिए।

संस्कृति क्या है?

यद्यपि संस्कृति हर समय हमारे साथ रहती है, इसको परिभाषित करने में बहुत-सी भ्रांतियाँ हैं। यह बहुत कुछ भौतिकी में 'ऊर्जा' के विचार या समाजशास्त्र में 'समूह' के विचार जैसा ही है। कुछ के अनुसार संस्कृति हमारे बाहर रहती है और इसका व्यक्तियों के लिए बहुत महत्त्व है जबकि दूसरों के अनुसार संस्कृति का कोई अस्तित्व नहीं है बल्कि यह एक विचार है जो लोगों के एक समूह द्वारा बनाया और समान रूप से माना जाता है।

संस्कृति की असंख्य परिभाषाएँ साधारणतया इसकी कुछ अत्यावश्यक विशेषताओं की ओर इंगित करती हैं। पहली विशेषता यह है कि संस्कृति उन लोगों के व्यवहारात्मक उत्पादों को सम्मिलित करती है जो हमसे पहले आ चुके हैं। यह मूर्त और अमूर्त दोनों उत्पादों के बारे में इंगित करती है जो किसी न किसी रूप में पहले रह चुके हैं। अत: जैसे ही हम जीवन शुरू करते है संस्कृति वहाँ पहले से उपस्थित होती है। इसमें कुछ *मूल्य* होते हैं जो प्रकट किए जाते हैं और उनको प्रकट करने के लिए एक *भाषा* होती है। यह एक *जीवन-पद्धति* है जो हम में से बहुत लोगों के द्वारा अपनाई जाती है जो उस परिवेश में बड़े होते हैं। संस्कृति का इस प्रकार का संप्रत्ययीकरण इसे व्यक्ति के बाहर की बात समझता है, किंतु कुछ ऐसी भी व्याख्याएँ हैं जो संस्कृति को लोगों के मन में समझती हैं। दूसरे प्रकार की व्याख्याओं में संस्कृति को कुछ प्रतीकों में अभिव्यक्त अर्थों के रूप में समझा जाता है जो कि ऐतिहासिक रूप से लोगों में संचारित होते हैं। संस्कृति महत्वपूर्ण वर्ग बनाकर; जैसे- सामाजिक प्रथाएँ (जैसे- विवाह) और भूमिकाएँ (जैसे- वर) तथा मूल्य, विश्वास और आधार-वाक्य के माध्यम से एक अर्थ प्रदान करती है। जैसा कि, रिचर्ड श्वेडर (Richard Shweder) ने कहा है कि यह सीखने के लिए कि 'माँ की बहन के पति मौसा होते हैं', हमें दूसरों से ज्ञान का एक ढाँचा ग्रहण करना होता है ताकि हम किसी चीज़ का अर्थ समझ सकें।

संस्कृति को हम चाहे एक स्थित यथार्थ के रूप में देखें या उसका अमूर्तीकरण करें, या दोनों ही अर्थ में लें, यह मानव व्यवहार पर कई प्रकार से प्रभाव डालती है। मानव व्यवहार की बहुत सी ऐसी भिन्नताएँ जो पहले जैविकीय कारणों से मानी जाती थीं उन्हें हम संस्कृति के कारण वर्गीकृत करके, उनकी व्याख्या कर सकते हैं। सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ जिनमें मनुष्य का विकास होता है वे समय और स्थान के कारण बहुत भिन्न होते हैं। उदाहरणार्थ, बीस वर्ष पहले भारत में बच्चे बहुत से ऐसे उत्पादों को नहीं जानते थे जो आज बाल संसार का एक हिस्सा हैं। उसी तरह एक आदिवासी जो दूरवर्ती वन या पहाड़ी क्षेत्र में रह रहा है, उसने कभी नाश्ते में 'सैंडविच' या 'पिज़्ज़ा' नहीं खाया होगा।

इसके पूर्व के अनुच्छेद में हमने '**संस्कृति**' (culture) एवं '**समाज**' (society) का कई बार उल्लेख किया है। अक्सर दोनों का एक ही अर्थ लगाया जाता है। हमें यह समझ लेना चाहिए कि दोनों का अर्थ एक नहीं है। समाज लोगों का एक समूह है जिनकी एक विशेष सीमा होती है और वे एक सामान्य भाषा बोलते हैं जो उनके पड़ोसी लोग सामान्यतया नहीं समझ पाते। एक समाज एकल राष्ट्र हो सकता है या नहीं हो सकता है लेकिन प्रत्येक समाज की अपनी एक संस्कृति होती है। ये संस्कृति ही है जो एक समाज से दूसरे समाज के मनुष्यों के व्यवहारों का निरूपण करती है। एक समाज से दूसरे समाज में जो विविधताएँ होती हैं उन्हीं को संस्कृति का नाम दिया जाता है। समाज की इन्हीं भिन्नताओं और मानव व्यवहार पर उनके प्रभाव का अध्ययन ही मनोवैज्ञानिकों की विषयवस्तु है। अत: लोगों का एक समूह जो अपनी आजीविका, शिकार और वनों में एकत्रीकरण से चलाता है उसके जीवन में

कुछ ऐसी विशेषताएँ परिलक्षित होंगी जो उन समाजों में नहीं पाई जाएँगी जो कृषि उत्पादों या वेतन से अपनी आजीविका चलाते हैं।

सांस्कृतिक संचरण

हमने पहले भी देखा है कि एक मनुष्य होने के नाते हम जैविक और सामाजिक-सांस्कृतिक दोनों प्रकार के प्राणी हैं। जैविक प्राणी होने के नाते हमारी कुछ प्रमुख आवश्यकताएँ हैं। उनकी पूर्ति हमारी उत्तरजीविता दर को बढ़ाती है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति में हम अपने बहुत सारे अर्जित कौशलों का उपयोग करते हैं। हमारे अंदर अपने और दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाने की एक अतिविकसित क्षमता होती है। किसी अन्य प्राणी में इस सीमा तक सीखने की क्षमता नहीं होती जितनी हममें होती है। किसी अन्य प्राणी ने अधिगम का एक संगठित तंत्र, जिसे शिक्षा कहा जाता है, नहीं बनाया है, और इस सृष्टि में कोई और प्राणी इतना सीखना भी नहीं चाहता जितना हम सीखना चाहते हैं। परिणामस्वरूप हम कई प्रकार के व्यवहारों को प्रदर्शित करते हैं, जो मनुष्य की विशिष्टता है और जिन्हें हम संस्कृति कहते हैं, उसकी रचना है। *संस्कृतीकरण* और *समाजीकरण* की प्रक्रियाएँ हमें सांस्कृतिक व्यक्ति बनाती हैं।

संस्कृतीकरण

संस्कृतीकरण उस सभी प्रकार के अधिगम को कहते हैं जो बिना किसी प्रत्यक्ष और सुविचारित शिक्षण के होता है। हम कुछ विचार, संप्रत्यय और मूल्यों को सीखते हैं क्योकि वे हमारे सांस्कृतिक संदर्भ में हमें उपलब्ध हैं। उदाहरणार्थ, क्या 'सब्जी' है और क्या 'घासपात' है, क्या 'अनाज' है और क्या 'अनाज नहीं' है की परिभाषा हम उसी तरह से देते हैं, जिस तरह हमसे पहले 'अनाज' या 'सब्जी' का अर्थ बताया गया था और अधिकांश लोगों ने सहमति भी दी थी। इस तरह के संप्रत्यय प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों तरीके से संचारित होते हैं और बहुत अच्छी तरह से सीखे जाते हैं क्योंकि वे किसी भी सांस्कृतिक समूह के जीवन का एक अभिन्न अंग होते हैं जिन पर कभी प्रश्न चिह्न नहीं लगाए जाते। अधिगम के ये सभी उदाहरण 'संस्कृतीकरण' कहलाते हैं।

इस प्रकार संस्कृतीकरण उन सभी प्रकार के अधिगमों को कहा जाता है जो व्यक्ति के जीवन में इसलिए घटित होते हैं क्योंकि वे हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में हमें प्राप्त होते हैं। संस्कृतीकरण का मुख्य तत्व है प्रेक्षण द्वारा सीखना। जब भी हम अपने समाज की कोई भी चीज़ प्रेक्षण द्वारा सीखते हैं तो संस्कृतीकरण प्रमाणित होता है। पूर्ववर्ती पीढ़ियों द्वारा इन सारी चीज़ों का सांस्कृतिक निरूपण होता है। इस अर्थ में संस्कृतीकरण का तात्पर्य उस अधिगम से है जो कि हमें पहले से प्राप्त है। हमारे व्यवहार का एक बहुत बड़ा हिस्सा संस्कृतीकरण का उत्पाद है। भारतीय परिवारों में कई प्रकार की जटिल क्रियाएँ; जैसे- भोजन बनाना, प्रेक्षण द्वारा ही सीखी जाती हैं। इस तरह की क्रियाओं के लिए कोई निर्धारित पाठ्यक्रम या पाठ्यपुस्तक नहीं है और भोजन बनाने के लिए कोई सुविचारित अनुदेश भी नहीं हैं।

यद्यपि संस्कृतीकरण के प्रभाव काफ़ी स्पष्ट दिखाई देते हैं तथापि लोग साधारणतया इन प्रभावों के प्रति सजग नहीं होते। वे साधारणतया इस बात के लिए भी सजग नहीं होते कि समाज में सीखने के लिए क्या उपलब्ध नहीं है। अत: यह एक प्रत्यक्ष विरोधाभास को जन्म देता है कि जो लोग सबसे अधिक सुसांस्कृतिक होते हैं वे बहुधा स्वयं के निर्माण में अपनी संस्कृति की भूमिका के प्रति सबसे कम सजग होते हैं।

समाजीकरण

समाजीकरण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोग ज्ञान, कौशल, और शील गुण अर्जित करते हैं जो उन्हें समाज और समूहों के प्रभावी सदस्यों के रूप में भाग लेने के योग्य बनाते हैं। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जो पूरी जीवन-विस्तृति तक निरंतर चलती है और जिसके माध्यम से विकास की किसी भी अवस्था में व्यक्ति प्रभावी ढंग से कार्य करने के तरीके सीखता है और विकसित करता है। समाजीकरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सामाजिक-सांस्कृतिक संचरण का आधार तैयार करता है। किसी समाज में इसकी असफलता उस समाज के अस्तित्व को खतरे में डाल सकती है।

समाजीकरण का संप्रत्यय यह इंगित करता है कि सभी मनुष्य सामान्यत: जो व्यवहार प्रदर्शित करते हैं, उससे कहीं अधिक विविध प्रकार के व्यवहार प्रदर्शित कर सकते हैं। हम एक विशेष सामाजिक संदर्भ में जीवन प्रारंभ करते हैं और वहाँ हम कुछ नियत अनुक्रियाएँ ही करना सीखते हैं दूसरी अन्य अनुक्रियाएँ नहीं। इसका सबसे स्पष्ट उदाहरण हमारा भाषिक व्यवहार है। यद्यपि विश्व की कोई भी भाषा हम बोल सकते

हैं तथापि हम वही भाषा बोलना सीखते हैं जो हमारे इर्द-गिर्द लोग बोलते हैं। इस सामाजिक संदर्भ में हम बहुत सी दूसरी बातें भी सीखते हैं (जैसे कि कब संवेगों को प्रदर्शित करना है और कब उन्हें दबाना है)।

एक विशेष प्रकार से व्यवहार करने की संभाव्यता हमारे संबंधियों से बहुत अधिक प्रभावित होती है। कोई भी वह व्यक्ति जिसके पास हमसे अधिक शक्ति है, हमें समाजीकृत कर सकता है। इस प्रकार के व्यक्ति '*समाजीकरण के कारक*' कहे जाते हैं। ये कारक हमारे माता-पिता, शिक्षक और अन्य बड़े लोग हैं जिनके पास अपने समाज के तरीकों का अधिक ज्ञान है। हालाँकि कुछ खास स्थितियों में हमारे समवयस्क भी समाजीकरण को प्रभावित कर सकते हैं।

समाजीकरण कारक और व्यक्ति के बीच समाजीकरण की प्रक्रिया हमेशा सहज/सम संक्रमण की नहीं होती। इसमें कभी-कभी द्वंद्व भी होते हैं। ऐसी स्थितियों में न केवल कुछ अनुक्रियाएँ दंडित होती हैं, बल्कि अन्य लोगों के व्यवहारों द्वारा प्रभावी ढंग से अवरुद्ध भी कर दी जाती हैं। वहीं कुछ अनुक्रियाओं को पुरस्कृत करने की आवश्यकता होती है ताकि वे अधिक बल अर्जित कर सकें। अतः पुरस्कार एवं दंड समाजीकरण के लक्ष्यों को प्राप्त करने के मूलभूत साधन हैं। इस अर्थ में, सभी समाजीकरण में दूसरों के द्वारा व्यवहार को नियंत्रित करने का प्रयास किया जाता है।

यद्यपि समाजीकरण मुख्यतः स्वीकृत व्यवहार को उत्पन्न करने के लिए सुविचारित शिक्षण है, तथापि यह प्रक्रिया एकदिशीय नहीं है। व्यक्ति न केवल अपने सामाजिक पर्यावरण के द्वारा प्रभावित होते हैं बल्कि वे भी उसे प्रभावित करते हैं। ऐसे समाज में जहाँ बहुत से सामाजिक समूह होते हैं, व्यक्ति उन्हीं को चुन सकते हैं जिनसे वे संबद्ध होना चाहते हैं। प्रवसन के बढ़ने के साथ व्यक्ति केवल एक बार ही समाजीकृत नहीं होता बल्कि अपनी जीवन-विस्तृति में कई बार विभिन्न प्रकार से पुनः समाजीकृत होता है। इस प्रक्रिया को *परसंस्कृतिग्रहण* कहते हैं जिसकी हम इस अध्याय में बाद में चर्चा करेंगे।

संस्कृतीकरण और समाजीकरण की प्रक्रियाओं के कारण हम समाजों में व्यवहारात्मक समानताएँ तथा एक समाज से दूसरे समाजों के बीच व्यवहारात्मक भिन्नताएँ पाते हैं। दोनों प्रक्रियाओं में दूसरों से सीखना सम्मिलित होता है। समाजीकरण की प्रक्रिया में अधिगम में सुविचारित शिक्षण सम्मिलित है, जबकि संस्कृतीकरण में अधिगम के लिए शिक्षण का होना आवश्यक नहीं है। संस्कृतीकरण का तात्पर्य लोगों का अपनी संस्कृति के अनुसार विविध कार्यों को करना है। चूँकि अपनी संस्कृति में कार्यो को करते रहने से अधिकांश अधिगम घटित होता है, समाजीकरण को संस्कृतीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत आसानी से सम्मिलित किया जा सकता है।

हमारे बहुत-से अधिगम में संस्कृतीकरण एवं समाजीकरण दोनों ही सम्मिलित होते हैं। भाषा-अधिगम इसका एक अच्छा उदाहरण है। जबकि अधिकांश भाषा-अधिगम स्वतः स्फूर्त होता है तथापि कुछ सीमा तक भाषा का प्रत्यक्ष शिक्षण भी होता है जैसा कि प्रारंभिक विद्यालयों में व्याकरण की शिक्षा में। दूसरी ओर मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा को सीखना, जैसे कि एक यूरोपियन बच्चे द्वारा हिंदी भाषा सीखना या एक भारतीय बच्चे द्वारा फ्रेंच सीखना पूर्णतया एक सोद्देश्य प्रक्रिया है।

समाजीकरण कारक

बहुत से लोग, जो हमसे संबद्ध हैं, वे हमें समाजीकृत करने की शक्ति रखते हैं। ऐसे लोग '*समाजीकरण कारक*' कहे जाते हैं। माता-पिता तथा घर के अन्य सदस्य सबसे महत्वपूर्ण समाजीकरण कारक होते हैं। माता-पिता पर बच्चे की देखभाल का कानूनी उत्तरदायित्व भी होता है। उनका कार्य बच्चों का पालन-पोषण इस प्रकार करना होता है कि उनकी स्वाभाविक योग्यताओं का अधिकाधिक विकास हो और नकारात्मक व्यवहार की प्रवृत्ति कम से कम या नियंत्रित हो। चूँकि प्रत्येक बच्चा एक बृहत् समुदाय और समाज का भी हिस्सा होता है, दूसरे कई प्रभाव (जैसे- शिक्षक, समसमूह) भी उसके जीवन पर संक्रिया करते हैं। इनमें से कुछ प्रभावों की हम संक्षेप में चर्चा करेंगे।

माता-पिता

बालक के विकास पर सबसे अधिक प्रत्यक्ष और महत्वपूर्ण प्रभाव माता-पिता का पड़ता है। वे विभिन्न स्थितियों में माता-पिता के प्रति भिन्न प्रकार से प्रतिक्रिया करते हैं। माता-पिता उनके कुछ व्यवहारों को शाब्दिक रूप से पुरस्कृत करके (जैसे- प्रशंसा करना) या अन्य मूर्त तरह से पुरस्कृत करके (जैसे- चॉकलेट या बच्चे की पसंद की वस्तु का खरीदना) प्रोत्साहित करते हैं। वे कुछ अन्य व्यवहारों का अनुमोदन न करके निरुत्साहित करते हैं। वे बच्चों को भिन्न प्रकार की स्थितियों में रख के उन्हें विध्यात्मक अनुभव, सीखने के अवसर और चुनौतियाँ प्रदान करते हैं। बच्चों से अन्योन्यक्रिया करते समय माता-पिता विभिन्न युक्तियाँ अपनाते हैं जिन्हें सामान्यतः पैतृक शैली कहा जाता है। प्राधिकृत, सत्तावादी और

लोकतांत्रिक या अनुज्ञात्मक पैतृक शैलियों में विभेद किया गया है। शोध अध्ययन यह प्रदर्शित करते हैं कि माता–पिता के अपने बच्चों के प्रति व्यवहारों में *स्वीकृति* और *नियंत्रण* की हद के विषय में बहुत भिन्नताएँ होती हैं। जीवन की वे स्थितियाँ भी जिनमें माता–पिता रहते हैं (गरीबी, बीमारी, कार्य–दबाव, परिवार का स्वरूप), उन शैलियों को प्रभावित करती हैं जो माता–पिता अपने बच्चों को समाजीकृत करने के लिए अपनाते हैं। दादा–दादी एवं नाना–नानी से समीपता तथा सामाजिक संबंधों का ढाँचा, बच्चे के समाजीकरण में प्रत्यक्षत: या माता–पिता के माध्यम से बहुत बड़ी भूमिका निभाते हैं।

विद्यालय

विद्यालय एक अन्य महत्वपूर्ण समाजीकरण कारक है। चूँकि बच्चे विद्यालय में लंबा समय व्यतीत करते हैं, जो उन्हें अपने शिक्षकों और समकक्षियों के साथ अन्योन्यक्रिया करने का एक सुसंगठित ढाँचा प्रदान करता है, इसी कारण आजकल विद्यालय को माता–पिता तथा परिवार की तुलना में बालक के समाजीकरण का अधिक महत्वपूर्ण कारक समझा जा रहा है। बच्चे केवल संज्ञानात्मक कौशल (जैसे- पढ़ना, लिखना, गणित को करना) ही नहीं सीखते हैं बल्कि बहुत से सामाजिक कौशल (जैसे- बड़ों तथा समवयस्कों के साथ व्यवहार करने के ढंग, भूमिकाएँ स्वीकारना, उत्तरदायित्व निभाना) भी सीखते हैं। वे समाज के नियमों और मानकों को सीखते भी हैं और उनका आंतरीकरण भी करते हैं। कई अन्य विध्यात्मक गुण; जैसे- स्वयं पहल करना, आत्म–नियंत्रण, उत्तरदायित्व लेना, और सर्जनात्मकता इत्यादि विद्यालयों में प्रोत्साहित किए जाते हैं। ये गुण बच्चों को अधिक आत्मनिर्भर बनाते हैं। यदि ये कार्य संपादन सफल होते हैं तो जो कौशल और ज्ञान बच्चे विद्यालय में, अपने पाठ्यक्रम द्वारा या अपने शिक्षकों और समकक्षियों के साथ अन्योन्यक्रिया द्वारा अर्जित करते हैं, वे उनके जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी स्थानांतरित हो जाते हैं। कई शोधकर्ताओं का विश्वास है कि एक अच्छा विद्यालय बच्चे के व्यक्तित्व का पूर्णतया ही रूपांतरण कर सकता है। इसी कारण हम पाते हैं कि निर्धन माता–पिता भी अपने बच्चों को अच्छे विद्यालय में भेजना चाहते हैं।

समसमूह

मध्य बाल्यावस्था की मुख्य विशेषताओं में से एक है घर के बाहर सामाजिक जालक्रम का विस्तार। इस संदर्भ में मित्रता का बहुत अधिक महत्त्व हो जाता है। यह बच्चों को न केवल दूसरों के साथ होने का अवसर प्रदान करती है बल्कि अपनी उम्र के साथियों के साथ सामूहिक रूप से विभिन्न क्रियाकलापों (यथा - खेल) को आयोजित करने का भी अवसर प्रदान करती है। ऐसे गुण; जैसे- सहभाजन, विश्वास, आपसी समझ, भूमिका स्वीकृति एवं निर्वहन भी समकक्षियों के साथ अन्योन्यक्रिया के दौरान विकसित होते हैं। बच्चे, अपने दृष्टिकोण को दृढ़तापूर्वक रखना और दूसरों के दृष्टिकोण को स्वीकार करना, और उनसे अनुकूलन करना भी सीखते हैं। समसमूह के कारण आत्म–तादात्म्य का विकास बहुत सुगम हो जाता है। चूँकि बच्चों का समसमूह के साथ संप्रेषण प्रत्यक्ष होता है, समाजीकरण की प्रक्रिया सामान्यत: निर्बाध होती है।

जन संचार का प्रभाव

आधुनिक वर्षों में जन संचार ने भी समाजीकरण कारक के गुणों को अर्जित किया है। दूरदर्शन, समाचारपत्रों, पुस्तकों और चलचित्रों के माध्यम से बाह्य जगत ने हमारे जीवन और हमारे घरों में अपना स्थान बना लिया है और बना रहा है। जबकि बच्चे बहुत सारी बातें इन माध्यमों से सीखते हैं, किशोर और युवा प्रौढ़ अक्सर इन्हीं में से अपना आदर्श प्राप्त करते हैं, विशेषकर दूरदर्शन और चलचित्रों से। दूरदर्शन पर दिखाई जाने वाली हिंसा, परिचर्चा का एक मुख्य विषय है, चूँकि अध्ययन यह इंगित करते हैं कि दूरदर्शन पर हिंसा को देखना, बच्चों में आक्रामक व्यवहार को बढ़ाता है। समाजीकरण के इस कारक को अधिक अच्छी तरह से उपयोग करने की आवश्यकता है जिससे बच्चों में अवांछित व्यवहारों के विकास को रोका जा सके।

क्रियाकलाप 3.4

पाँच दिनों तक, सुबह और शाम, लगभग आधे घंटे के लिए, चार-पाँच परिवारों का, जो भिन्न सांस्कृतिक एवं सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के हों, अपने बच्चों के साथ अन्योन्यक्रिया करते हुए प्रेक्षण कीजिए।

क्या आप माता-पिता को अपने पुत्र-पुत्रियों के साथ भिन्न प्रकार से अन्योन्यक्रिया करते हुए पाते हैं?

उनके व्यवहार के सुस्पष्ट प्रतिरूप को नोट कीजिए और अपने शिक्षक से उसकी चर्चा कीजिए।

परसंस्कृतिग्रहण

परसंस्कृतिग्रहण का तात्पर्य दूसरी संस्कृतियों के साथ संपर्क के फलस्वरूप आए हुए सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों से है। यह संपर्क प्रत्यक्ष (जैसे- कोई नयी संस्कृति में स्थानांतरित होता है और उसमें बस जाता है) या अप्रत्यक्ष (जैसे- जन संचार या अन्य माध्यमों से) रूप में होता है। यह ऐच्छिक (जैसे- कोई विदेश उच्च शिक्षा, प्रशिक्षण, नौकरी या व्यापार के लिए जाता है) या अनैच्छिक (जैसे- औपनिवेशिक अनुभव, आक्रमण या राजनीतिक शरण के द्वारा) हो सकता है। दोनों ही स्थितियों में लोगों को कुछ नया सीखने की आवश्यकता होती है (और वे सीखते भी हैं) ताकि वे दूसरे सांस्कृतिक समूहों के लोगों के साथ जीवन व्यतीत कर सकें। उदाहरणार्थ, भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन के समय बहुत से लोगों और समूहों ने ब्रिटिश जीवन शैली के कई पक्षों को अपना लिया। वे अंग्रेज़ी विद्यालयों में जाना, वैतनिक कार्यों को करना, अंग्रेज़ी कपड़े पहनना, अंग्रेज़ी भाषा बोलना और अपना धर्म परिवर्तित करना पसंद करते थे।

किसी के जीवन में परसंस्कृतिग्रहण किसी भी समय घटित हो सकता है। यह जब कभी भी घटित होता है तब इसमें मानकों, मूल्यों, गुणों और व्यवहार के प्रारूपों को पुनः सीखना होता है। इन पक्षों में परिवर्तन लाने में पुनः समाजीकरण की आवश्यकता होती है। कभी-कभी लोग इन नयी बातों को सीखना सरल समझते हैं और यदि उनका सीखना सफल रहता है तो उनके व्यवहार में उस समूह की दिशा की ओर परिवर्तन आसानी से हो जाता है, जो उनके लिए परसंस्कृतिग्रहण लाता है। ऐसी स्थिति में नए जीवन की ओर संक्रमण अपेक्षाकृत निर्बाध और समस्यारहित होता है। दूसरी ओर, बहुत सी स्थितियों में लोग परिवर्तन की नयी माँगों के अनुसार कार्य व्यवहार करने में कठिनाई अनुभव करते हैं। उन्हें यह परिवर्तन कठिन लगता है और वे द्वंद्व की स्थिति में पड़ जाते हैं। यह स्थिति अपेक्षाकृत कष्टप्रद होती है क्योंकि यह परसंस्कृतिग्राही लोगों और समूहों को दबाव और अन्य व्यवहारात्मक कठिनाइयों का अनुभव कराती है।

मनोवैज्ञानिकों ने विशद अध्ययन किया है कि लोग परसंस्कृतिग्रहण के दौरान किस प्रकार मनोवैज्ञानिक तरीके से परिवर्तित होते हैं। किसी भी परसंस्कृतिग्रहण के घटित होने के लिए दूसरे सांस्कृतिक समूह के साथ संपर्क अत्यावश्यक है। यह अक्सर कुछ द्वंद्व भी उत्पन्न करता है। चूँकि लोग लंबे समय तक द्वंद्व की स्थिति में नहीं रह सकते, वे द्वंद्व का समाधान करने के लिए कुछ युक्तियों को अपनाते हैं। एक लंबे समय तक यह समझा जाता था कि आधुनिकता की ओर उन्मुख सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन एकदिशीय था, जिसका तात्पर्य यह हुआ कि वे सभी लोग जो परिवर्तन की समस्या का सामना कर रहे हैं वे पारंपरिक स्थिति से आधुनिकता की स्थिति की ओर अग्रसर हो जाएँगे। तथापि पश्चिमी देशों के प्रवासियों तथा विश्व के विभिन्न भागों के देशवासियों या आदिवासियों पर किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि लोगों के पास परसंस्कृतिग्राही परिवर्तनों से निपटने के लिए कई विकल्प होते हैं। अतः परसंस्कृतिग्राही परिवर्तन का मार्ग बहुदिशीय होता है।

क्रियाकलाप 3.5

उन लोगों को ढूँढ़ने का प्रयास कीजिए जो विभिन्न संस्कृतियों में लंबे समय तक रह चुके हैं। उनसे साक्षात्कार कीजिए तथा उनसे अभिवृत्तियों, मानकों और मूल्यों में प्रदर्शित कुछ सांस्कृतिक समानताओं और विभिन्नताओं के कुछ उदाहरण देने के लिए

परसंस्कृतिग्रहण के कारण आने वाले परिवर्तनों का आत्मनिष्ठ तथा वस्तुनिष्ठ स्तर पर परीक्षण किया जा सकता है। आत्मनिष्ठ स्तर पर परिवर्तन बहुधा लोगों की परिवर्तन के प्रति अभिवृत्तियों में प्रतिबिंबित होता है। इन्हें *परसंस्कृतिग्रहण अभिवृत्तियाँ* कहते हैं। वस्तुनिष्ठ स्तर पर परिवर्तन, लोगों के दिन-प्रतिदिन के व्यवहार और क्रियाकलापों में प्रतिबिंबित होता है। इन्हें *परसंस्कृतिग्रहण युक्तियाँ* कहा जाता है। परसंस्कृतिग्रहण को समझने के लिए इसका दोनों स्तरों पर परीक्षण आवश्यक है। परसंस्कृतिग्रहण के वस्तुनिष्ठ स्तर पर हम लोगों के जीवन में बहुत प्रकार के प्रत्यक्ष परिवर्तनों को देख सकते हैं। भाषा, वेशभूषा शैली, जीवनयापन के साधन, घर का प्रबंध और घर की चीज़ें, आभूषण, फर्नीचर, मनोरंजन के साधन, प्रौद्योगिकी का उपयोग, यात्रा के अनुभव, चलचित्रों का प्रदर्शन इत्यादि हमें उन परिवर्तनों का स्पष्ट संकेत दे सकते हैं जिसे व्यक्तियों और समूहों ने अपने जीवन में अपना लिया हो। इन संकेतकों के आधार पर हम परसंस्कृतिग्रहण से हुए परिवर्तन की मात्रा को आसानी से जान सकते हैं जो व्यक्ति या समूह के जीवन में प्रवेश कर चुका है। केवल एक समस्या है कि ये संकेतक हमेशा ही यह नहीं दर्शाते कि समूहों या व्यक्तियों ने इस

परिवर्तन को सचेतन स्वीकृति दी है। ये संकेतक लोगों द्वारा इसलिए रखे जाते हैं क्योंकि ये आसानी से प्राप्त होते हैं और आर्थिक रूप से सामर्थ्य में होते हैं। अत: कुछ स्थितियों में ये संकेतक थोड़े भ्रामक प्रतीत होते हैं।

परिवर्तन की सचेतन स्वीकृति में कुछ विश्वास के लिए आत्मनिष्ठ स्तर पर उन संकेतकों का विश्लेषण करना आवश्यक है। जॉन बेरी (John Berry) नाम के मनोवैज्ञानिक, परसंस्कृतिग्रहण पर अपने मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के लिए सर्वप्रसिद्ध हैं। वे तर्क देते हैं कि दो महत्वपूर्ण प्रश्न हैं जिनको संस्कृति संपर्क की स्थितियों में सभी परसंस्कृतिग्रहण करने वाले व्यक्तियों या समूहों को सामना करना पड़ता है। पहले प्रश्न का संबंध इस बात से है कि वे किस मात्रा तक अपनी संस्कृति और अनन्यता को बनाए रखना चाहते हैं। दूसरा प्रश्न यह है कि वे अन्य सांस्कृतिक समूह के सदस्यों के साथ दैनिक अन्योन्यक्रिया में किस मात्रा तक अपने को लगाए रखना चाहते हैं।

इन प्रश्नों पर प्राप्त लोगों के सकारात्मक और नकारात्मक उत्तरों के आधार पर निम्न चार परसंस्कृतिग्राही युक्तियाँ खोजी गई हैं :

समाकलन : वह अभिवृत्ति है जिसमें दोनों ही बातों में रुचि होती है, अपनी मूल संस्कृति एवं अनन्यता को बनाए रखना, साथ ही दूसरे सांस्कृतिक समूहों के साथ दैनिक अन्योन्यक्रिया करते रहना। इस स्थिति में दूसरे सांस्कृतिक समूहों के साथ अन्योन्यक्रिया करते हुए कुछ मात्रा में सांस्कृतिक अखंडता बनाए रखी जाती है।

आत्मसात्करण : वह अभिवृत्ति है जिसमें व्यक्ति अपनी सांस्कृतिक अनन्यता को बनाए नहीं रखना चाहते और वे दूसरी संस्कृति का अभिन्न अंग बनने के लिए व्यवहार करते हैं। इस स्थिति में अपनी संस्कृति और अनन्यता की क्षति होती है।

पृथक्करण : वह अभिवृत्ति है जिसमें लगता है कि लोग अपनी मूल संस्कृति को धारण किए रहना मूल्यवान समझते हैं और वे दूसरे सांस्कृतिक समूहों से अन्योन्यक्रिया से बचना चाहते हैं। इस स्थिति में लोग प्राय: अपनी सांस्कृतिक अनन्यता को गौरवान्वित करते हैं।

सीमांतकरण : वह अभिवृत्ति है जहाँ अपने सांस्कृतिक अनुरक्षण की या तो संभाव्यता कम होती है या रुचि कम होती है और दूसरे सांस्कृतिक समूहों से संबंध रखने की इच्छा भी कम होती है। इस स्थिति में लोग सामान्यत: अनिश्चय की स्थिति में रहते हैं कि उन्हें क्या करना चाहिए और वे एक अत्यंत दबावमय स्थिति में बने रहते हैं।

आपने इस अध्याय में पढ़ा है कि मानव व्यवहार केवल जैविकीय कारकों द्वारा ही पूर्णतया नियंत्रित नहीं होता है। सामाजिक-सांस्कृतिक कारक व्यक्ति के जैविकीय गुणों के साथ अन्योन्यक्रिया करते हैं जिससे एक विशेष समाज में उसके व्यवहार को विशेष रूप दिया जा सके। चूँकि पूरे भूमंडल में समाज और संस्कृतियाँ समजातीय नहीं होतीं, अत: मानव व्यवहार भी सब जगह एक ही प्रकार से अभिव्यक्त नहीं होता। इससे हम यह कह सकते हैं कि जैविक जड़ों के अतिरिक्त मानव व्यवहार की सांस्कृतिक जड़ें भी होती हैं। जीन यदि जैविक संचरण की पांडुलिपि लिखते हैं तो मीम्स सांस्कृतिक संचरण की पांडुलिपि लिखते हैं। जीन और मीम्स एक साथ काम करते हैं ताकि समाज में और परस्पर समाजों में व्यवहार को आंशिक रूप से समान और आंशिक रूप से भिन्न ढंगों में प्रकट किया जा सके। व्यवहार के सांस्कृतिक आधार को समझने से आप अनुभव करेंगे कि व्यक्तियों या समूहों के बीच व्यवहारात्मक भिन्नताएँ, केवल जैविक तंत्र के संरचनात्मक और प्रकार्यात्मक गुणों के कारण ही नहीं होतीं। व्यवहारात्मक भिन्नताओं को उत्पन्न करने में व्यक्तियों और समूहों की सांस्कृतिक विशेषताओं का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है।

प्रमुख पद

परसंस्कृतिग्रहण, पूर्ण या शून्य सिद्धांत, भाव प्रबोधन, अक्षतंतु, मस्तिष्क स्तंभ, केंद्रीय तंत्रिका तंत्र, अनुमस्तिष्क, प्रमस्तिष्कीय वल्कुट, गुणसूत्र, वल्कुट, संस्कृति, डिऑक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड, संस्कृतीकरण, अंत:स्रावी ग्रंथियाँ, पर्यावरण, क्रमविकास, जीन, गोलार्द्ध, आनुवंशिकता, प्राज्ञ मानव, समस्थिति, अधश्चेतक, मेडुला, मीम्स, तंत्रिका आवेग, तंत्रिका कोशिका, केंद्रक, रेटिक्युलर एक्टिवेटिंग सिस्टम, कंकालीय पेशियाँ, समाजीकरण, काय (काय कोशिका), कायिक तंत्रिका तंत्र, प्रजाति, संधिस्थलीय पुटिका

सारांश

- *मानव तंत्रिका तंत्र में अरबों अंत:संबंधित, अतिविशिष्ट कोशिकाएँ होती हैं, जिन्हें तंत्रिका कोशिकाएँ कहते हैं। तंत्रिका कोशिकाएँ समस्त मानव-व्यवहार को नियंत्रित और समन्वित करती हैं।*
- *केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में मस्तिष्क एवं मेरुरज्जु होते हैं। केंद्रीय तंत्रिका तंत्र से निकल कर परिधीय तंत्रिका तंत्र की शाखाएँ शरीर के प्रत्येक अंग में जाती हैं। इसके दो भाग हैं : कायिक तंत्रिका तंत्र (कंकालीय पेशियों के नियंत्रण से संबंधित) और स्वायत्त तंत्रिका तंत्र (आंतरिक अंगों के नियंत्रण से संबंधित)। स्वायत्त तंत्र, अनुकंपी और परानुकंपी तंत्र में उपविभाजित हैं।*
- *तंत्रिका कोशिका में पार्श्वतंतु होते हैं जो आवेगों को ग्रहण करते हैं; और अक्षतंतु जो आवेगों को काय कोशिका से दूसरी अन्य तंत्रिका कोशिकाओं या पेशी ऊतकों तक संचारित करते हैं।*
- *प्रत्येक अक्षतंतु एक खाली स्थान से विभाजित होता है जिसे तंत्रिका-कोष संधि कहते हैं। तंत्रिका-संचारक नामक रसायन जो अक्षतंतु सीमांत से निकलता है संदेश को अन्य तंत्रिका कोशिकाओं तक पहुँचाता है।*
- *मानव मस्तिष्क के केंद्रीय क्रोड में पश्च मस्तिष्क (जिसमें मेडुला, सेतु, जालाकार रचना तथा अनुमस्तिष्क होते हैं), मध्य मस्तिष्क तथा चेतक और अधश्चेतक होते हैं। केंद्रीय क्रोड के ऊपर अग्र मस्तिष्क या प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्ध होते हैं।*
- *उपवल्कुटीय तंत्र ऐसे व्यवहार जैसे लड़ना, भागना इत्यादि को नियमित करता है। इसमें हिप्पोकेम्पस, गलतुंडिका तथा अधश्चेतक होते हैं।*
- *अंत:स्रावी तंत्र में ग्रंथियाँ होती हैं; पीयूष ग्रंथि, अवटुग्रंथि, अधिवृक्क ग्रंथि, अग्न्याशय तथा जननग्रंथियाँ। हमारे व्यवहार एवं विकास में इन ग्रंथियों द्वारा प्रवाहित अंत:स्रावों की निर्णायक भूमिका होती है।*
- *जैविकीय कारकों के साथ, संस्कृति भी मानव व्यवहारों की एक महत्वपूर्ण निर्धारक मानी गई है। इसका संदर्भ पर्यावरण के मानव-निर्मित भाग से है जिसके दो पक्ष हैं - भौतिक एवं आत्मिक। इसका संदर्भ लोगों के समूह से है जो एक जीवन-पद्धति के सहभागी होते हैं, जिससे वे अपने व्यवहार का अर्थ व्युत्पन्न करते हैं तथा जिसे अभ्यास का आधार बनाते हैं। ये अर्थ और अभ्यास पीढ़ियों द्वारा संचारित होते हैं।*
- *यद्यपि जैविक कारक हमें सामान्यत: समर्थ बनाते हैं, विशिष्ट कौशलों का विकास और क्षमताएँ सांस्कृतिक कारकों एवं प्रक्रियाओं पर निर्भर होती हैं।*
- *संस्कृतीकरण तथा समाजीकरण की प्रक्रियाओं के माध्यम से हम संस्कृति के बारे में सीखते हैं। संस्कृतीकरण का संदर्भ उन समस्त अधिगमों से है जो बिना किसी प्रत्यक्ष और सोद्देश्य शिक्षण के होता है।*
- *समाजीकरण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति ज्ञान, कौशल और शील गुण अर्जित करते हैं, जो उन्हें समाज एवं समूहों में प्रभावशाली सदस्यों की तरह भाग लेने में सक्षम बनाती हैं। सबसे महत्वपूर्ण समाजीकरण कारक माता-पिता, विद्यालय, समसमूह, जन संचार इत्यादि होते हैं।*
- *परसंस्कृतिग्रहण का तात्पर्य सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों से है जो दूसरी संस्कृतियों के संपर्क में आने के परिणामस्वरूप होते हैं। परसंस्कृतिग्रहण के मार्ग में लोगों द्वारा जो परसंस्कृतिग्राही युक्तियाँ अपनाई जाती हैं, वे हैं : समाकलन, आत्मसात्करण, पृथक्करण तथा सीमांतकरण।*

समीक्षात्मक प्रश्न

1. विकासवादी परिप्रेक्ष्य व्यवहार के जैविक आधार की किस प्रकार व्याख्या करता है?
2. तंत्रिका कोशिकाएँ सूचना को किस प्रकार संचारित करती हैं? वर्णन कीजिए।
3. प्रमस्तिष्कीय वल्कुट के चार पालियों के नाम बताइए। ये क्या कार्य करते हैं?
4. विभिन्न अंत:स्रावी ग्रंथियों और उनसे निकलने वाले अंत:स्रावों के नाम बताएँ। अंत:स्रावी तंत्र हमारे व्यवहार को कैसे प्रभावित करता है?
5. स्वायत्त तंत्रिका तंत्र किस प्रकार आपातकालीन स्थितियों में कार्य-व्यवहार करने में हमारी सहायता करता है?

6. संस्कृति का क्या अर्थ है? इसकी मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
7. क्या आप इस कथन से सहमत हैं कि 'जैविक कारक हमें समर्थ बनाने की भूमिका निभाते हैं जबकि व्यवहार के विशिष्ट पहलू सांस्कृतिक कारकों से जुड़े हैं'। अपने उत्तर के समर्थन के लिए कारण दीजिए।
8. समाजीकरण के मुख्य कारकों का वर्णन कीजिए।
9. संस्कृतीकरण और समाजीकरण में हम किस प्रकार विभेद कर सकते हैं? व्याख्या कीजिए।
10. परसंस्कृतिग्रहण से क्या तात्पर्य है? क्या परसंस्कृतिग्रहण एक निर्बाध प्रक्रिया है? विवेचना कीजिए।
11. परसंस्कृतिग्रहण के दौरान लोग किस प्रकार की परसंस्कृतिग्राही युक्तियाँ अपनाते हैं? विवेचना कीजिए।

परियोजना विचार

1. एक ऐसे व्यक्ति के बारे में सूचना एकत्रित कीजिए जिसका मस्तिष्क क्षतिग्रस्त हो। इसके लिए आप चिकित्सक, पुस्तक या इंटरनेट से सहायता ले सकते हैं। इसकी सामान्य मस्तिष्क की कार्य प्रणाली से तुलना करते हुए एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।
2. अपनी दैनिक दिनचर्या लिखिए। इसमें सारे क्रियाकलाप तथा उनके किए जाने का समय भी सम्मिलित होना चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि आप सायंकाल 7 बजे से 8 बजे तक रोज़ टेलीविज़न देखते हैं तो आपको क्रियाकलाप और उसका समय भी लिखना चाहिए। जितना अधिक विस्तार से लिख सकें लिखिए। टेलीविज़न पर जो खास कार्यक्रम आप देखते हैं उनके नाम आप सम्मिलित कर सकते हैं। साप्ताहिक दिनों और सप्ताहांत की अलग अनुसूची बनाइए। पूरी कक्षा दैनिक अनुसूचियों की जाँच कर सकती है और देख सकती है कि विद्यार्थियों में कौन से क्रियाकलाप समान हैं। क्या कुछ समान सांस्कृतिक मूल्यों/विश्वासों का अनुमान लगाया जा सकता है जिसके वे सहभागी हैं? (उदाहरणार्थ, सभी विद्यार्थी रोज़ कई घंटे विद्यालय में बिताते हैं, यह प्रतिबिंबित करता है कि सभी उस संस्कृति से आते हैं जहाँ विद्यालयी शिक्षा का मूल्य है)।

अध्याय 4

मानव विकास

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- विकास के अर्थ और प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे,
- मानव विकास पर आनुवंशिकता, पर्यावरण एवं संदर्भ के प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे,
- मानव विकास की अवस्थाओं की पहचान कर सकेंगे तथा शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कर सकेंगे, तथा
- अपने विकास-क्रम तथा उससे संबंधित अनुभवों पर मनन कर सकेंगे।

विषयवस्तु

परिचय

विकास का अर्थ

विकास का जीवनपर्यंत परिप्रेक्ष्य

संवृद्धि, विकास, परिपक्वता तथा क्रमविकास (बॉक्स 4.1)

विकास को प्रभावित करने वाले कारक

विकास का संदर्भ

विकासात्मक अवस्थाओं की समग्र दृष्टि

प्रसवपूर्व अवस्था

शैशवावस्था

बाल्यावस्था

लिंग एवं स्त्री-पुरुष भूमिकाएँ (बॉक्स 4.2)

किशोरावस्था की चुनौतियाँ

प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था

प्रमुख पद

सारांश

समीक्षात्मक प्रश्न

परियोजना विचार

परिचय

यदि आप अपने चारों ओर देखें तो आप यह पाएँगे कि एक व्यक्ति के जीवन में जन्म के बाद से ही विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं, जो वृद्धावस्था तक भी जारी रहते हैं। एक निश्चित समय अवधि में मनुष्य बढ़ता और विकसित होता है, संप्रेषण अथवा बात-चीत करना, चलना, गिनती गिनना, पढ़ना तथा लिखना सीखता है। सही तथा गलत के मध्य भेद करना भी वह सीखता है। वह मित्र बनाता है, यौवनारंभ की अवस्था से गुजरता है, विवाह कर लेता है, बच्चों का पालन-पोषण करता है और वृद्ध हो जाता है। यद्यपि हम एक-दूसरे से भिन्न हैं, तथापि हम लोगों में एक जैसी अनेक विशेषताएँ पाई जाती हैं। हम लोगों में से अधिकांशत: व्यक्ति एक वर्ष की अवस्था तक चलना तथा दो वर्ष की अवस्था तक बोलना सीख लेते हैं। यह अध्याय लोगों के संपूर्ण जीवन क्रम में विभिन्न क्षेत्रों में दिखने वाले परिवर्तनों से आपका परिचय कराएगा। आप प्रमुख विकासात्मक प्रक्रियाओं तथा संपूर्ण जीवन की प्रमुख अवस्थाओं: प्रसवपूर्व अवस्था, शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था में होने वाले परिवर्तनों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। यह स्वयं को समझने तथा आत्म-अन्वेषण की एक यात्रा होगी जिसे आपके भावी विकास में सहायक होना चाहिए। दूसरों से भली प्रकार से व्यवहार करने में भी मानव विकास का अध्ययन आपके लिए सहायक होगा।

विकास का अर्थ

जब हम विकास के बारे में सोचते हैं तो निरपवाद रूप से हम दैहिक परिवर्तनों के बारे में सोचते हैं, क्योंकि घर में भाई-बहनों में, विद्यालय में मित्रों-सहयोगियों में अथवा घर में माता-पिता एवं दादा-दादी या अपने आस-पास के अन्य लोगों में ये परिवर्तन सामान्यतया देखे जाते हैं। गर्भाधान से लेकर मृत्यु के क्षणों तक हम मात्र दैहिक रूप से ही परिवर्तित नहीं होते हैं बल्कि हम सोचने, भाषा के उपयोग तथा सामाजिक संबंधों को विकसित करने के तरीकों के आधार पर भी परिवर्तित होते रहते हैं। याद रखें कि परिवर्तन एक व्यक्ति के जीवन के किसी एक क्षेत्र तक सीमित नहीं रहते हैं; ये व्यक्ति में एकीकृत रूप से या एक साथ उत्पन्न होते हैं। *विकास गतिशील, क्रमबद्ध तथा पूर्वकथनीय परिवर्तनों का प्रारूप है जो गर्भाधान से प्रारंभ होता है तथा जीवनपर्यंत चलता रहता है।* विकास में मुख्यतया संवृद्धि एवं ह्रास, जो वृद्धावस्था में देखा जाता है, दोनों ही तरह के परिवर्तन निहित होते हैं।

विकास जैविक, संज्ञानात्मक तथा समाज-सांवेगिक प्रक्रियाओं की परस्पर क्रिया से प्रभावित होता है। माता-पिता से वंशानुगत रूप से प्राप्त जीन के कारण होने वाले विकास; जैसे- लंबाई एवं वज़न, मस्तिष्क, हृदय एवं फेफड़े का विकास इत्यादि, ये सभी **जैविक प्रक्रियाओं** (biological processes) की भूमिका को इंगित करते हैं। विकास में **संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं** (cognitive processes) की भूमिका का संबंध ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त करने तथा इनसे संबंधित मानसिक क्रियाओं; जैसे- चिंतन, प्रत्यक्षण, अवधान, समस्या समाधान आदि से है। विकास को प्रभावित करने वाली **समाज-संवेगात्मक प्रक्रियाओं** (socio-emotional processes) का संबंध एक व्यक्ति की दूसरों के साथ अंत:क्रिया में होने वाले और संवेग तथा व्यक्तित्व में होने वाले परिवर्तनों से है। एक बच्चे का अपनी माँ से लिपट जाना, एक छोटी बच्ची का अपने भाई-बहनों के प्रति स्नेहमय भाव का प्रदर्शन, अथवा एक किशोर का मैच हारने का दु:ख, सभी मानव विकास में समाज-संवेगात्मक प्रक्रियाओं की गहन लिप्तता को प्रकट करते हैं।

यद्यपि आप इस पाठ्यपुस्तक के अलग-अलग अध्यायों में अलग-अलग प्रक्रियाओं के बारे में पढ़ेंगे, यह स्मरण रखना महत्वपूर्ण है कि जैविक, संज्ञानात्मक तथा समाज-संवेगात्मक प्रक्रियाएँ एक दूसरे से घनिष्ट रूप से संबंधित हैं। मनुष्य के जन्म से मृत्यु तक की संपूर्ण अवधि में ये प्रक्रियाएँ व्यक्ति के विकास में होने वाले परिवर्तनों को समग्र रूप से प्रभावित करती हैं।

विकास का जीवनपर्यंत परिप्रेक्ष्य

जीवनपर्यंत परिप्रेक्ष्य के अनुसार विकास के अध्ययन में निम्नलिखित मान्यताएँ या पूर्वधारणाएँ निहित हैं:

1. विकास जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया है, अर्थात विकास गर्भाधान से प्रारंभ होकर वृद्धावस्था तक सभी आयु समूहों

में होता है। इसमें प्राप्तियाँ तथा हानियाँ दोनों ही सम्मिलित हैं, जो संपूर्ण जीवन-विस्तार में गत्यात्मक तरीके से (एक पक्ष में परिवर्तन के साथ दूसरे पक्ष में भी परिवर्तन का होना) अंत:क्रिया करती हैं।

2. जन्म से मृत्यु तक की संपूर्ण अवधि में मानव विकास की विभिन्न प्रक्रियाएँ, अर्थात जैविक, संज्ञानात्मक तथा समाज-संवेगात्मक, एक व्यक्ति के विकास में एक दूसरे से घनिष्ट रूप से संबंधित रहते हैं।
3. विकास बहु-दिश् है। विकास के एक दिए हुए आयाम के कुछ आयामों या घटकों में वृद्धि हो सकती है, जबकि दूसरे ह्रास का प्रदर्शन कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, प्रौढ़ों के अनुभव उन्हें अधिक बुद्धिमान बना सकते हैं तथा उनके निर्णयों को दिशा प्रदान कर सकते हैं। जबकि उम्र बढ़ने के साथ, गति की माँग करने वाले कार्यों, जैसे दौड़ना, पर एक व्यक्ति का निष्पादन कम हो सकता है।
4. विकास अत्यधिक लचीला या संशोधन योग्य होता है, अर्थात व्यक्ति के अंतर्गत होने वाले मानसिक विकास में परिमार्जनशीलता पाई जाती है, यद्यपि इस लचीलेपन में एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्नता पाई जाती है। इसका अर्थ यह है कि संपूर्ण जीवन-क्रम में कौशलों तथा योग्यताओं में सुधार या विकास किया जा सकता है।
5. विकास ऐतिहासिक दशाओं से प्रभावित होता है। उदाहरणार्थ, भारत के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान रहे 20 वर्षीय व्यक्ति का अनुभव आज के 20 वर्षीय व्यक्ति से बहुत भिन्न होगा। आज के विद्यालय स्तर के विद्यार्थियों का कैरियर या जीविका के प्रति रुझान उन विद्यार्थियों से बहुत भिन्न है जो आज से 50 वर्ष पहले विद्यालय स्तर के थे।
6. विकास अनेक शैक्षणिक विद्याओं के लिए एक महत्वपूर्ण सरोकार है। विभिन्न विषयों; जैसे- मनोविज्ञान, मानवशास्त्र, समाजशास्त्र तथा तंत्रिका विज्ञान में मानव विकास का

बॉक्स 4.1 संवृद्धि, विकास, परिपक्वता तथा क्रमविकास

संवृद्धि *(growth) शारीरिक अंगों अथवा संपूर्ण जीव की बढ़ोत्तरी को कहते हैं। इसका मापन अथवा मात्राकरण किया जा सकता है, उदाहरण के लिए, ऊँचाई, वज़न आदि में वृद्धि।* ***विकास*** *(development) एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने संपूर्ण जीवन-चक्र में बढ़ता रहता है एवं परिवर्तित होता रहता है। विकास शब्द उन परिवर्तनों के लिए प्रयुक्त किया जाता है जिनके होने की एक दिशा होती है तथा जिनका इनके पूर्ववर्ती कारकों से एक निश्चित संबंध होता है जो बाद में यह निर्धारित करेंगे कि इसके बाद (इन परिवर्तनों के बाद) क्या आएगा या घटित होगा (किस तरह के परिवर्तन होंगे)। अल्पकालिक बीमारी के कारण होने वाले अस्थाई परिवर्तन, उदाहरणार्थ, विकास के अंतर्गत नहीं आते हैं। विकास के फलस्वरूप होने वाले सभी परिवर्तन एक जैसे नहीं होते। अत: आकार में परिवर्तन (शारीरिक संवृद्धि), अनुपात में परिवर्तन (बच्चे से प्रौढ़), अभिलक्षणों अथवा आकृति में परिवर्तन (दूध के दाँतों का निकल जाना), तथा नयी आकृतियों या अभिलक्षणों को पाना, ये सभी परिवर्तन अपनी गति तथा व्यापकता के स्तर में भिन्न होते हैं। संवृद्धि, विकास का एक पक्ष है।* ***परिपक्वता*** *(maturation) उन परिवर्तनों को इंगित करता है जो एक निर्धारित क्रम का अनुसरण करते हैं तथा प्रधानत: उस आनुवंशिक रूपरेखा (ब्लूप्रिंट) से सुनिश्चित होते हैं जो हमारी संवृद्धि एवं विकास में समानता उत्पन्न करते हैं। उदाहरण के लिए, अधिकांश बच्चे 7 माह की आयु तक बिना सहारे के बैठ सकते हैं, आठवें महीने तक सहारे के साथ खड़े हो सकते हैं तथा एक वर्ष की उम्र तक चलने लगते हैं। एक बार जब बच्चे की आधारभूत शारीरिक संरचना पर्याप्त रूप से विकसित हो जाती है तो इन व्यवहारों में कुशलता प्राप्त करने के लिए उपयुक्त परिवेश एवं थोड़े से अभ्यास की आवश्यकता होती है। परंतु, यदि बच्चे परिपक्वता की दृष्टि से तैयार नहीं हैं तो इन व्यवहारों को त्वरित करने के लिए किए गए विशेष प्रयास का कोई लाभ नहीं मिलता है। ये प्रक्रियाएँ 'अंदर से प्रस्फुटित होती हैं'। ये आंतरिक एवं आनुवंशिक रूप से निर्धारित समय-सारणी, जो प्रजाति विशेष की चरित्रगत विशेषता होती है, के अनुसार घटित होती हैं।* ***क्रमविकास*** *(evolution) प्रजाति-विशिष्ट परिवर्तनों को कहते हैं। प्राकृतिक चयन एक विकासवादी प्रक्रिया है जो उन व्यक्तियों या प्रजातियों को लाभ पहुँचाती है जो अपनी जीवन-रक्षा तथा वंश परंपरा को आगे बढ़ाने अर्थात प्रजनन करने के लिए सर्वश्रेष्ठ रूप से अनुकूलित होती हैं। विकासवादी परिवर्तन किसी प्रजाति की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचते हैं। क्रमविकास अत्यंत धीमी गति से आगे बढ़ता है। आदि वानर प्रजाति से मनुष्य प्रजाति की उत्पत्ति में लगभग चौदह मिलियन (एक करोड़ चालीस लाख) वर्ष लगे। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि 'प्राज्ञ मानव' लगभग 50,000 वर्ष पहले अस्तित्व में आया।*

अध्ययन किया जाता है, प्रत्येक विषय संपूर्ण जीवन क्रम में होने वाले विकास को समझने का प्रयास कर रहा है।

7. एक व्यक्ति परिस्थिति अथवा संदर्भ के आधार पर अनुक्रिया करता है। इस संदर्भ के अंतर्गत वंशानुगत रूप से प्राप्त विशेषताएँ, भौतिक पर्यावरण, सामाजिक, ऐतिहासिक, तथा सांस्कृतिक संदर्भ आदि सम्मिलित हैं। उदाहरण के लिए, प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में घटित घटनाएँ एक जैसी नहीं होती हैं; जैसे- माता-पिता की मृत्यु, दुर्घटना, भूकंप आदि एक व्यक्ति के जीवन क्रम को जिस प्रकार प्रभावित करती हैं वैसे ही पुरस्कार जीतना, या एक अच्छी नौकरी पा लेना जैसी सकारात्मक घटनाएँ भी विकास को प्रभावित करती हैं। संदर्भों के बदलने के साथ-साथ लोग बदलते रहते हैं।

विकास को प्रभावित करने वाले कारक

क्या आपने अपनी कक्षा में देखा है कि आप में से कुछ लोगों की त्वचा का रंग साँवला है तथा कुछ लोगों की त्वचा का रंग साफ या गोरा है, आपके बाल और आँखों के रंग भिन्न हैं, आप में से कुछ लंबे हैं तो कुछ छोटे, कुछ शांत या उदास हैं जबकि दूसरे बातूनी या प्रसन्नचित्त। शारीरिक लक्षणों के अतिरिक्त बुद्धि, अधिगम योग्यताओं, स्मृति तथा अन्य मानसिक लक्षणों के आधार पर भी लोगों में भिन्नता पाई जाती है। इन भिन्नताओं के बावजूद, किसी भी व्यक्ति को किसी दूसरी प्रजाति के प्राणी के रूप में पहचानने की गलती नहीं की जा सकती है। हम सभी प्राज्ञ मानव हैं। वह क्या कारण है जो हमें एक दूसरे से भिन्न बनाता है परंतु साथ ही साथ एक दूसरे से बहुत हद तक समान भी? इसका उत्तर आनुवंशिकता एवं परिवेश की अंत:क्रिया में छिपा है।

आप अध्याय 3 में पहले ही पढ़ चुके हैं कि आनुवंशिकता का सिद्धांत प्रत्येक प्रजाति की विशेषताओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने या हस्तांतरण करने की प्रक्रिया को स्पष्ट करता है। हम आनुवंशिक कूट-संकेत, जो हमारे शरीर के प्रत्येक कोश में विद्यमान रहते हैं, अपने माता-पिता से वंशानुगत रूप से पाते हैं। हमारे आनुवंशिक कूट-संकेत एक तरह से एक जैसे हैं; उनमें मनुष्य के आनुवंशिक कूट-संकेत होते हैं। यह मनुष्य के आनुवंशिक कूट-संकेत के कारण ही है कि मनुष्य का एक निषेचित अंडा मानव शिशु के रूप में विकसित होता है और वह एक हाथी, एक पक्षी, अथवा एक चूहे के रूप में विकसित नहीं हो सकता है।

आनुवंशिक हस्तांतरण अत्यधिक जटिल प्रक्रिया है। अधिकांश विशेषताएँ जिन्हें हम मनुष्यों में देखते हैं वे बहुत बड़ी संख्या में जीनों के जुड़ने के क्रम के कारण हैं। आप 80,000 या उससे भी अधिक जीनों के जुड़ने के अलग-अलग तरह के क्रमों की कल्पना कर सकते हैं जो विविध प्रकार की विशेषताओं तथा व्यवहारों को निर्धारित करते हैं। हमारी आनुवंशिक संरचना द्वारा उपलब्ध कराई गई सभी विशेषताओं को प्राप्त कर लेना भी संभव नहीं है। वास्तविक आनुवंशिक तत्व या व्यक्ति की आनुवंशिक विरासत या वंश परंपरा को **जीन प्ररूप** (genotype) कहते हैं। परंतु, हमारी प्रेक्षणीय विशेषताओं में यह आनुवंशिक तत्व पूरी तरह से प्रदर्शित या स्पष्ट रूप से पहचानने योग्य नहीं होता है। प्रेक्षणीय एवं मापन योग्य विशेषताओं के रूप में जिस प्रकार व्यक्ति का जीन प्ररूप अभिव्यक्त होता है उसे **दृश्य प्ररूप** (phenotype) कहते हैं। शारीरिक लक्षण; जैसे- ऊँचाई, वज़न, आँख तथा त्वचा का रंग, एवं अनेक मानसिक विशेषताएँ; जैसे- बुद्धि, सर्जनात्मकता, और व्यक्तित्व दृश्य प्ररूप के अंतर्गत आते हैं। व्यक्ति में ये देखी जा सकने वाली विशेषताएँ, व्यक्ति के वंशागत शीलगुण तथा उनके परिवेश की अंत:क्रिया के परिणाम हैं। आप जानते हैं कि ये वह आनुवंशिक कूट-संकेत हैं जो एक बच्चे को एक विशेष तरीके से विकसित होने के लिए पूर्व-प्रवृत्त करते हैं। व्यक्ति के विकास के लिए जीन एक विशिष्ट रूपरेखा (ब्लूप्रिंट) तथा समय-सारणी प्रदान करते हैं। परंतु जीन का अलग से या पृथक अस्तित्व नहीं होता है और विकास व्यक्ति के परिवेश के संदर्भ में ही होता है। यही वह कारण है जो हम में से हर एक को अपने तरह का एक अलग व्यक्ति बनाता है।

परिवेशीय प्रभाव क्या हैं? परिवेश विकास को किस प्रकार से प्रभावित करता है? एक अंतर्मुखता की ओर प्रवृत्त करने वाले जीनप्ररूप से युक्त बच्चे की कल्पना कीजिए जो ऐसे परिवेश में है जो सामाजिक अंत:क्रिया तथा बहिर्मुखता को बढ़ावा देता है। ऐसे परिवेश का प्रभाव बच्चे को थोड़ा बहिर्मुखी बना सकता है। आइए एक दूसरा उदाहरण लें। एक 'छोटे' कद के जीन से युक्त व्यक्ति, यदि वह अच्छे पोषण वाले परिवेश में है तब भी, सामान्य से अधिक लंबा होने में कभी भी सक्षम नहीं होगा। इससे यह प्रदर्शित होता है कि जीन सीमाओं को निर्धारित कर देते हैं और इस सीमा के अंतर्गत परिवेश विकास को प्रभावित करता है।

अब तक आप यह जान चुके हैं कि बच्चे के विकास के लिए माता-पिता जीन प्रदान करते हैं। क्या आप जानते हैं कि यह निर्धारित करने में भी उनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है कि उनके बच्चे किस तरह के परिवेश को पाएँगे? सैन्ड्रा स्कार (Sandra Scarr, 1992) का मानना है कि अपने बच्चे को माता-पिता जो परिवेश प्रदान करते हैं वह कुछ हद तक उनकी स्वयं की आनुवंशिक पूर्व-प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, यदि माता-पिता बुद्धिमान हैं तथा अच्छे पाठक हैं तो वे अपने बच्चों को पढ़ने के लिए पुस्तकें देंगे जिसका संभावित परिणाम यह होगा कि उनके बच्चे अच्छे पाठक बन जाएँगे और वे पढ़ने में आनंद का अनुभव करेंगे। सहयोगी एवं ध्यान देने की प्रवृत्ति जैसे अपने जीन प्ररूप (जो उसे वंशागत रूप से प्राप्त है) के परिणामस्वरूप एक बच्चा, उन बच्चों की तुलना में जो सहयोगी एवं ध्यान देने वाले नहीं हैं, अध्यापकों तथा माता-पिता से अधिक सुखद अनुक्रियाएँ प्राप्त करेगा। इसके अतिरिक्त बच्चे अपने जीन प्ररूप के आधार पर स्वयं कुछ परिवेश का चयन करते हैं। उदाहरण के लिए, अपने जीन प्ररूप के कारण वे संगीत या खेल-कूद में अच्छा निष्पादन कर सकते हैं और वे वैसे परिवेश को ढूँढ़ेंगे तथा उसमें अधिक समय व्यतीत करेंगे जो उन्हें संगीतपरक कौशलों के निष्पादन या अभ्यास का अवसर प्रदान करेगा; इसी प्रकार एक खिलाड़ी खेल-कूद से संबंधित परिवेश की खोज करेगा। परिवेश से ऐसी अंत:क्रियाएँ शैशवावस्था से लेकर किशोरावस्था तक परिवर्तित होती रहती हैं। परिवेशीय प्रभाव भी उतने ही जटिल हैं जितने कि वंशपरंपरा से प्राप्त जीन।

यदि आपकी कक्षा का मॉनीटर पढ़ने-लिखने में तेज़ होने तथा लोकप्रिय विद्यार्थी होने के आधार पर चुना जाता है तो क्या आप यह मानते हैं कि यह उसके जीन अथवा परिवेश के प्रभाव के कारण है? एक ग्रामीण क्षेत्र का बच्चा जो अत्यधिक बुद्धिमान है, यदि अपने को ठीक तरह से अभिव्यक्त न कर पाने अथवा कंप्यूटर उपयोग की जानकारी न होने के कारण एक नौकरी पाने में सक्षम नहीं हो पाता है, तो क्या आप मानते हैं कि यह जीन अथवा परिवेश के कारण है?

विकास का संदर्भ

विकास निर्वात में नहीं घटित होता है। यह सदैव एक विशिष्ट सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में सन्निहित होता है। जैसा कि आप इस अध्याय में पढ़ेंगे, एक व्यक्ति के संपूर्ण जीवन काल में परिवर्तन; जैसे- विद्यालय में प्रवेश करना, एक किशोर बनना, नौकरी खोजना, विवाह करना, बच्चों का होना, सेवानिवृत्त होना इत्यादि, सभी जैविक परिवर्तनों तथा व्यक्ति के परिवेश में परिवर्तनों का संयुक्त कार्य है। व्यक्ति के संपूर्ण जीवन क्रम में किसी भी समय परिवेश परिवर्तित हो सकता है।

युरी ब्रानफेनब्रेनर (Urie Bronfenbrenner) का विकास का परिस्थितिपरक दृष्टिकोण व्यक्ति के विकास में परिवेशीय कारकों की भूमिका पर अधिक बल देता है। इसका निरूपण चित्र 4.1 में किया गया है।

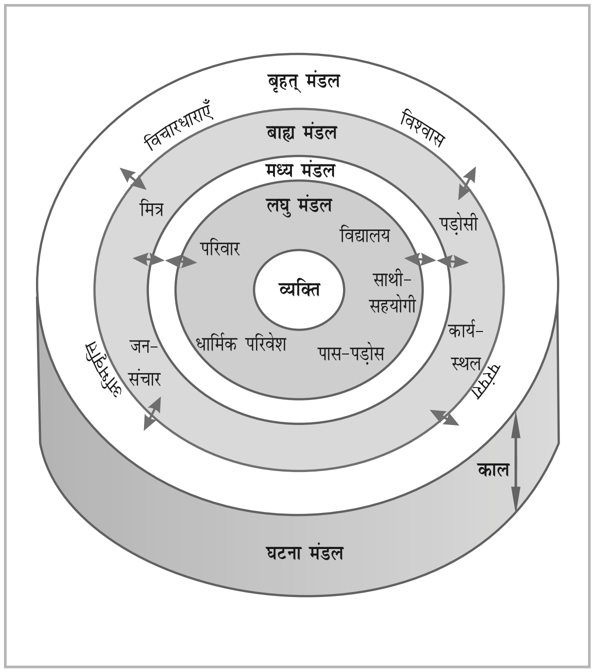

चित्र 4.1 : ब्रानफेनब्रेनर का विकास का परिस्थितिपरक दृष्टिकोण

लघु मंडल (microsystem) वह निकटतम परिवेश है जिसमें व्यक्ति रहता है। यही वह परिवेश है जिसमें बच्चा सामाजिक कारकों या एजेन्टों; जैसे- परिवार, साथी-सहयोगी, अध्यापक, एवं पड़ोस से प्रत्यक्ष रूप से अंत:क्रिया करता है। इन परिवेशों के मध्य संबंध **मध्य मंडल** (mesosystem) के अंतर्गत आते हैं। उदाहरण के लिए, एक बच्चे के माता-पिता अध्यापकों से कैसे संबंध स्थापित करते हैं, या माता-पिता किशोर के मित्र को किस रूप में देखते हैं, ये ऐसे अनुभव हैं जो एक व्यक्ति के दूसरों से संबंध को प्रभावित करने वाले हैं।

बाह्य मंडल (exosystem) के अंतर्गत सामाजिक परिवेश की वे घटनाएँ आती हैं जहाँ बच्चा प्रत्यक्ष रूप से प्रतिभागिता नहीं करता है, परंतु वे तात्कालिक परिस्थिति में बच्चे के अनुभव को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए, माता या पिता का स्थानांतरण माता-पिता में तनाव उत्पन्न कर सकता है जो बच्चे के साथ उनकी अंत:क्रिया अथवा बच्चे को उपलब्ध सामान्य सुख-सुविधाएँ; जैसे- विद्यालयी पठन-पाठन, पुस्तकालयी सुविधाएँ, चिकित्सीय देख-रेख, मनोरंजन के साधन आदि की गुणवत्ता को प्रभावित कर सकता है। **बृहत् मंडल** (macrosystem) के अंतर्गत वह संस्कृति आती है जिसमें व्यक्ति रहता है। व्यक्ति के विकास में संस्कृति के महत्त्व को आप अध्याय 3 में पढ़ चुके हैं। **घटना मंडल** (chronosystem) में व्यक्ति के जीवन-क्रम की घटनाएँ तथा उस काल की सामाजिक-ऐतिहासिक परिस्थितियाँ; जैसे- माता-पिता का तलाक या आर्थिक आघात एवं बच्चों पर उनका प्रभाव आदि निहित हैं।

संक्षेप में, ब्रानफेनब्रेनर का दृष्टिकोण यह है कि बच्चे का विकास उस जटिल संसार से सार्थक रूप से प्रभावित होता है जो उसे आच्छादित किए हुए है - चाहे वह उसके साथियों के साथ बातचीत का गौण प्रसंग हो, अथवा जीवन की वे सामाजिक या आर्थिक परिस्थितियाँ जिसमें उसने जन्म लिया है। शोध यह प्रदर्शित करते हैं कि साधनरहित परिवेश में बच्चों को पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, खिलौनों आदि से रहित उत्तेजनाहीन परिवेश मिलता है, उसमें ऐसे अनुभवों का अभाव होता है; जैसे- पुस्तकालय, संग्रहालय, चिड़ियाघर आदि में जाना, इसमें ऐसे माता-पिता होते हैं जो भूमिका प्रतिरूप स्थापित करने में प्रभावहीन होते हैं। माता-पिता से अंत:क्रिया उपयुक्त तरीके से नहीं होती है तथा बच्चे अत्यधिक भीड़ एवं शोरगुल वाले परिवेश में रहते हैं। इन परिस्थितियों के फलस्वरूप बच्चे असुविधाजनक स्थिति में होते हैं एवं उन्हें सीखने में कठिनाइयाँ होती हैं।

दुर्गानन्द सिन्हा (Durganand Sinha, 1977) ने भारतीय संदर्भ में बच्चों के विकास को समझने के लिए एक पारिस्थितिक मॉडल प्रस्तुत किया है। बच्चे की पारिस्थितिक को दो संकेंद्रीय परतों के रूप में देखा जा सकता है। 'ऊपरी एवं अधिक दृश्य परतों' के अंतर्गत घर, विद्यालय, समसमूह आदि आते हैं। दृश्य ऊपरी परत में बच्चे के विकास को प्रभावित करने वाले सबसे महत्वपूर्ण पारिस्थितिक कारक के अंतर्गत अग्रांकित तत्व आते हैं: (1) घर, उसमें क्षमता से अधिक लोगों का रहना, प्रत्येक सदस्य के लिए उपलब्ध स्थान, प्रयोग में लाए जाने वाले खिलौने, तकनीकी उपकरण आदि के आधार पर घर की परिस्थिति; (2) विद्यालयी पठन-पाठन का स्वरूप तथा गुणवत्ता, वे सुविधाएँ जो बच्चे को प्रस्तुत की जाती हैं; और (3) बाल्यावस्था तथा उसके बाद की अवस्था, समसमूह के साथ की जाने वाली अंत:क्रिया एवं गतिविधियों का स्वरूप।

ये कारक स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं करते हैं बल्कि एक दूसरे से निरंतर अंत:क्रिया करते रहते हैं। चूँकि ये कारक एक विस्तृत एवं अधिक व्यापक परिवेश में सन्निहित रहते हैं, इसलिए बच्चे के पारिस्थितिकी के 'आसपास की परतें', 'उपरी परत' कारकों को निरंतर प्रभावित करती रहती हैं। परंतु, इनके प्रभाव सदैव स्पष्ट रूप से दृष्टिगत नहीं होते हैं। पारिस्थितिकी के आसपास की परत के अंतर्गत अग्रांकित तत्व आते हैं: (1) सामान्य भौगोलिक परिवेश। इसके अंतर्गत मुहल्ले की सामान्य भीड़-भाड़ एवं जनसंख्या घनत्व सहित घर से बाहर खेलने तथा अन्य गतिविधियों के लिए स्थान एवं सुविधाएँ आदि आते हैं; (2) जाति, वर्ग एवं अन्य कारकों द्वारा मुहैया कराया गया संस्थागत परिवेश; तथा (3) बच्चे के लिए उपलब्ध सामान्य सुख-सुविधाएँ; जैसे- पीने का पानी, बिजली, मनोरंजन के साधन इत्यादि।

दृश्य एवं आसपास की परत से संबद्ध कारक एक दूसरे से अंत:क्रिया करते हैं और विकास में इनकी भिन्न-भिन्न लोगों के लिए भिन्न-भिन्न परिणतियाँ हो सकती हैं। व्यक्ति के संपूर्ण जीवन-क्रम में कभी भी पारिस्थितिक पर्यावरण परिवर्तित हो सकता या बदल सकता है। इसलिए, एक व्यक्ति की कार्यप्रणाली में अंतर को समझने के लिए व्यक्ति को उसके अनुभवों के संदर्भ में देखना महत्वपूर्ण है।

क्रियाकलाप 4.1

यदि आप सभी सुख-सुविधाओं, शहर में रहने के कारण आप जिनके आदी हैं, से वंचित एक ग्रामीण क्षेत्र या एक छोटे शहर में रहते हैं तो आपका जीवन कैसा होगा? आप इसके विपरीत परिस्थिति के बारे में भी सोच सकते हैं। अर्थात यदि आप सभी सुख-सुविधाओं, जिनके आप गाँव में रहने के कारण आदी हैं, से वंचित एक शहरी क्षेत्र में रहते हैं तो आप का जीवन कैसा होगा? गरीबी, निरक्षरता, प्रदूषण, जनसंख्या आदि का ध्यान रखते हुए आप छोटे समूह में इसकी परिचर्चा करें।

विकासात्मक अवस्थाओं की समग्र दृष्टि

विकास का वर्णन सामान्यतया अवधि या अवस्थाओं के रूप में किया जाता है। आपने यह देखा होगा कि आपके छोटे भाई-बहन या माता-पिता और स्वयं आप भी अलग-अलग तरह से व्यवहार करते हैं। यदि आप अपने पास-पड़ोस में रहने वाले लोगों को देखें, तो आप पाएँगे कि वे भी एक जैसा व्यवहार नहीं करते हैं। यह अंतर आंशिक रूप से इस कारण है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जीवन की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में होता है। मानव जीवन विभिन्न **अवस्थाओं** (stages) से होते हुए आगे बढ़ता है। उदाहरण के लिए, आप वर्तमान में किशोरावस्था में हैं एवं कुछ वर्ष बाद आप प्रौढ़ावस्था में प्रवेश करेंगे। विकासात्मक अवस्थाएँ अस्थाई मानी जाती हैं एवं प्राय: एक प्रभावी लक्षण या प्रमुख विशेषता के द्वारा पहचानी जाती हैं, जो प्रत्येक अवधि को उसकी अद्वितीय विशिष्टता प्रदान करती हैं। एक विशिष्ट अवस्था में व्यक्ति एक निर्धारित लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है - एक स्थिति या योग्यता जिसे विकास के अनुक्रम में अगली अवस्था तक बढ़ने से पहले ठीक उसी क्रम में प्राप्त कर लेना चाहिए जिस प्रकार से अन्य व्यक्तियों ने प्राप्त किया है। नि:संदेह, विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था के मध्य विकास के समय तथा दर के सापेक्ष व्यक्ति निश्चित रूप से भिन्न होते हैं। यह देखा जा सकता है कि कुछ व्यवहार प्रारूप तथा कुछ कौशल एक विशिष्ट अवस्था में अधिक आसानी से एवं सफलतापूर्वक सीखे जाते हैं। व्यक्ति की ये उपलब्धियाँ विकास की उस अवस्था के लिए एक सामाजिक अपेक्षा बन जाती हैं। इन्हें **विकासात्मक कार्य** (developmental tasks) कहते हैं। अब आप विकास की विभिन्न अवस्थाओं तथा उसकी प्रमुख विशेषताओं के बारे में पढ़ेंगे।

प्रसवपूर्व अवस्था

गर्भाधान से लेकर जन्म तक की अवधि को प्रसवपूर्व काल कहते हैं। औसतन यह लगभग 40 सप्ताह तक का होता है। अब तक आप जान चुके हैं कि प्रसवपूर्व काल में तथा जन्म के बाद हमारे विकास को हमारी आनुवंशिक रूपरेखा (ब्लूप्रिंट) निर्देशित करती है। प्रसवपूर्व अवस्था की विभिन्न अवधियों में आनुवंशिक तथा परिवेशीय दोनों ही तरह के कारक हमारे विकास को प्रभावित करते हैं।

प्रसवपूर्व अवस्था में विकास माता की विशेषताओं से भी प्रभावित होता है; जैसे- माँ की आयु, उसके द्वारा लिए जाने वाले पोषक आहार तथा सांवेगिक स्थिति। माँ का रोग या संक्रमण ग्रस्त होना प्रसवपूर्व अवस्था के विकास पर विपरीत प्रभाव डाल सकता है। उदाहरण के लिए, यह माना जाता है कि रूबेला नामक रोग (जिसे जर्मन मिज़ल्स कहते हैं), जननांग में होने वाला हर्पिस तथा ह्यूमन इम्यूनोडिफिशियंसि वाइरस (एच.आई.वी.) नवजात शिशुओं में आनुवंशिक समस्याएँ उत्पन्न करते हैं। प्रसवपूर्व अवस्था में विकास के लिए भय का दूसरा स्रोत **विरूपजनन-तत्व** (teratogens) है - वे परिवेशीय कारक जो सामान्य विकास में ऐसे विचलन उत्पन्न करते हैं जिससे गंभीर असामान्यताएँ जन्म ले सकती हैं या मृत्यु हो सकती है। सामान्य विरूपजनन-तत्व के अंतर्गत मादक द्रव्य, संक्रमण, विकिरण तथा प्रदूषण आते हैं। स्त्री द्वारा प्रसवपूर्व काल में मादक द्रव्य (गांजा, हेरोइन, कोकीन आदि), शराब, तंबाकू आदि के सेवन का शिशु पर हानिकारक प्रभाव पड़ सकता है और जन्मजात असामान्यताओं की आवृत्ति बढ़ सकती है। विकिरण (जैसे- एक्स-रे) तथा औद्योगिक क्षेत्र के आस-पास के कुछ रसायन, जीन में स्थाई परिवर्तन उत्पन्न कर सकते हैं। परिवेशीय प्रदूषक तथा कार्बनमोनोऑक्साइड, पारा, शीशा जैसे विषाक्त पदार्थ भी अजन्मे बच्चे के लिए खतरे के स्रोत हैं।

शैशवावस्था

जन्म के पहले एवं उसके बाद मस्तिष्क आश्यर्चजनक गति से विकसित होता है। मस्तिष्क के विभिन्न भागों तथा मानवीय क्रियाओं; जैसे- भाषा, प्रत्यक्षण एवं बुद्धि के संचालन में प्रमस्तिष्क की महत्वपूर्ण भूमिका के बारे में आप अध्याय 3 में पहले ही पढ़ चुके हैं। जन्म के ठीक पहले नवजात शिशुओं में सभी तो नहीं परंतु अधिकांश मस्तिष्कीय कोशिकाएँ रहती हैं। इन कोशिकाओं के मध्य तंत्रिकीय संधि तीव्र गति से विकसित होती है।

नवजात शिशु उतना असहाय नहीं होता है जितना कि आप सोचते हैं। जीवन की कार्यप्रणाली को बनाए रखने के लिए आवश्यक क्रियाएँ नवजात शिशु में उपस्थित रहती हैं - वह साँस लेता है, चूसता है, निगलता है एवं शरीर के अपशिष्ट पदार्थों (मल, मूत्र आदि) का त्याग या विसर्जन भी करता है। अपने जीवन के प्रथम सप्ताह में नवजात शिशु यह बताने में सक्षम होते हैं कि ध्वनि किस दिशा से आ रही है, अन्य स्त्रियों की आवाज़ तथा अपनी माँ की आवाज़ में अंतर कर सकते हैं एवं सामान्य हावभाव का अनुकरण कर सकते हैं; जैसे- जीभ बाहर निकालना, मुँह खोलना आदि।

पेशीय विकास : नवजात शिशुओं की पेशीय क्रियाएँ **प्रतिवर्त** (reflexes) – जो उद्दीपकों के प्रति स्वचालित एवं स्वाभाविक रूप से विद्यमान अनुक्रियाएँ होती हैं, से संचालित होती हैं। ये आनुवंशिक रूप से प्राप्त अतिजीविता तंत्र हैं तथा बाद के पेशीय विकास के लिए ये आधारभूत इकाइयाँ हैं। नवजात शिशुओं को सीखने के अवसर मिलने के पहले प्रतिवर्त अनुकूली तंत्र के रूप में कार्य करते हैं। नवजात शिशुओं में पाए जाने वाले कुछ प्रतिवर्त; जैसे- खाँसना, पलक झपकाना तथा जँभाई लेना, जीवनपर्यंत बने रहते हैं। कुछ दूसरे प्रतिवर्त मस्तिष्क की कार्यप्रणाली के परिपक्व होने तथा व्यवहार पर ऐच्छिक नियंत्रण के विकसित हो जाने पर विलुप्त हो जाते हैं (तालिका 4.1 देखें)।

जब मस्तिष्क विकसित होता है, शारीरिक विकास भी अग्रसर होता है। जैसे-जैसे शिशु बढ़ता है, मांसपेशियाँ एवं तंत्रिका तंत्र परिपक्व होते हैं जो सूक्ष्म कौशलों का विकास करते हैं। आधारभूत शारीरिक (पेशीय) कौशलों के अंतर्गत वस्तुओं को पकड़ना एवं उनके पास पहुँचना, बैठना, घुटनों के बल चलना, खड़े होकर चलना और दौड़ना आते हैं। कुछ अपवादों को छोड़कर शारीरिक (पेशीय) विकास का अनुक्रम सार्वभौमिक होता है।

संवेदी योग्यताएँ : अब तक आप जान चुके हैं कि नवजात शिशु उतने अक्षम नहीं हैं जितना वे दिखते हैं। जन्म के मात्र कुछ घंटे बाद वे अपनी माँ की आवाज़ को पहचान सकते हैं एवं उनमें अन्य संवेदी क्षमताएँ भी होती हैं। नवजात शिशु कितनी अच्छी तरह से देख सकते हैं? नवजात शिशु कुछ उद्दीपकों; जैसे- चेहरों को अन्य उद्दीपकों की तुलना में देखना पसंद करते हैं, यद्यपि यह पसंद जीवन के प्रथम कुछ महीनों में परिवर्तित होती है। प्रौढ़ों की तुलना में नवजात शिशुओं की दृष्टि कम आँकी गई है। छठे महीने तक इसमें सुधार होता है और लगभग एक वर्ष की उम्र तक दृष्टि लगभग प्रौढ़ों के समान (20/20) हो जाती है। क्या नवजात शिशु रंगों को देख सकते हैं? वर्तमान में यह सहमति है कि वे लाल और सफ़ेद रंगों के मध्य विभेदन करने में सक्षम हो सकते हैं परंतु सामान्यतया वे रंग विभेदन में अपूर्ण होते हैं एवं पूर्ण रंग दृष्टि 3 माह की आयु तक विकसित होती है।

नवजात शिशुओं में श्रवण का स्वरूप कैसा होता है? नवजात शिशु जन्म के ठीक बाद सुन सकते हैं। नवजात शिशु जैसे-जैसे विकसित होते हैं उनकी ध्वनि की दिशा निर्धारण की दक्षता में सुधार होता है। नवजात शिशु स्पर्श के प्रति अनुक्रिया करते हैं एवं वे पीड़ा की अनुभूति भी कर सकते हैं। घ्राण एवं स्वाद की दोनों क्षमताएँ भी नवजात शिशुओं में होती हैं।

संज्ञानात्मक विकास : क्या एक तीन वर्ष का बालक चीज़ों को उसी प्रकार से समझेगा जैसे कि एक आठ वर्ष का बालक? जीन पियाजे (Jean Piaget) ने इस बात पर बल दिया है कि बच्चे संसार के बारे में अपनी समझ की रचना सक्रिय रूप से करते हैं। परिवेश से सूचनाएँ उनके मन में मात्र प्रवेश ही नहीं करती हैं बल्कि जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं

तालिका 4.1 नवजात शिशुओं में उपस्थित कुछ मुख्य प्रतिवर्त

प्रतिवर्त	*विवरण*	*विकासात्मक क्रम*
रूटिंग	गाल को छूने पर सिर को घुमाना एवं मुख खोलना।	3 से 6 माह में विलुप्त हो जाते हैं।
मोरो	यदि तीव्र शोर होता है तो बच्चा अपनी कमर को मोड़ते हुए भुजा को आगे की ओर फेंकता है और फिर अपनी भुजाओं को एक साथ लाता है जैसे कुछ पकड़ रहा हो।	6 से 7 माह में विलुप्त हो जाते हैं (यद्यपि तीव्र शोर के प्रति अनुक्रिया स्थायी होती है)।
पकड़ना	बच्चे की हथेली को यदि उँगली अथवा किसी अन्य वस्तु से दबाया जाता है तो बच्चे की उँगलियाँ उसके इर्द-गिर्द लिपट जाती हैं।	3 से 4 माह में विलुप्त हो जाते है। ऐच्छिक पकड़ से विस्थापित हो जाते हैं।
बेबिन्स्की	यदि बच्चे के पैर के तलवे को ठोका जाता है तो पैर की उँगलियाँ ऊपर की ओर जाती हैं और फिर आगे की ओर मुड़ जाती हैं।	8 से 12 माह में विलुप्त हो जाते हैं।

अतिरिक्त सूचनाएँ अर्जित की जाती हैं और नए विचारों को अंतर्निहित करने के लिए वे अपने चिंतन का अनुकूलन करते हैं, क्योंकि इससे संसार के बारे में उनकी समझ में सुधार होता है। पियाजे का मानना था कि शैशवावस्था से लेकर किशोरावस्था तक बच्चों का मन विचारों की अवस्थाओं की एक शृंखला से गुजरता है (तालिका 4.2 देखें)।

प्रत्येक अवस्था चिंतन के एक विशिष्ट तरीके से परिभाषित होती है एवं आयु से संबद्ध रहती है। यह स्मरण रखना महत्वपूर्ण है कि यह सोचने का अलग तरीका है न कि सूचना की मात्रा, जो एक अवस्था को दूसरी अवस्था से अधिक उच्च बनाती है। इससे यह भी प्रकट होता है कि आप अपनी उम्र में एक आठ वर्ष के बच्चे की तुलना में क्यों भिन्न प्रकार से सोचते हैं। शैशवावस्था, अर्थात जीवन के प्रथम दो वर्ष के दौरान बच्चा ज्ञानेंद्रियों एवं वस्तुओं के साथ अंत:क्रिया के माध्यम से देखने, सुनने, स्पर्श करने, उन्हें (वस्तुओं को) मुँह में डालने एवं पकड़ने के द्वारा इस संसार का अनुभव करता है। नवजात शिशु वर्तमान में रहता है। जो उसकी दृष्टि के क्षेत्र से बाहर होता है वह उसके मन से भी बाहर होता है। उदाहरण के लिए, यदि आप बच्चे के सामने उस खिलौने को छिपा देते हैं जिससे वह खेल रहा था, तो छोटा शिशु इस प्रकार से प्रतिक्रिया करेगा जैसे कि कुछ हुआ ही न हो, अर्थात वह खिलौने नहीं ढूँढ़ेगा। बच्चा मान लेता है कि खिलौना नहीं है। पियाजे के अनुसार, इस अवस्था में बच्चे तात्कालिक संवेदी अनुभवों के परे नहीं जाते हैं, अर्थात उनमें **वस्तु स्थायित्व** (object permanence) – यह चेतना या जानकारी की जब वस्तु का प्रत्यक्षण नहीं होता है तब भी उसका अस्तित्व बना रहता है, का अभाव होता है। आठ माह की आयु तक धीरे-धीरे बच्चा अपनी उपस्थिति में आंशिक रूप से छिपाई गई वस्तुओं का पीछा करना प्रारंभ कर देता है।

शिशुओं में वाचिक संप्रेषण का आधार उपस्थित रहता है। शिशुओं में 3 से 6 माह की आयु के बीच बबलाने से स्वरीकरण का प्रारंभ होता है। प्रारंभिक भाषा विकास के बारे में आप अध्याय 8 में पढ़ेंगे।

सामाजिक-संवेगात्मक विकास : शिशु जन्म से ही सामाजिक प्राणी होता है। एक शिशु परिचित चेहरों को वरीयता देना प्रारंभ कर देता है और कूकने एवं किलकारी भरने के द्वारा माता-पिता की उपस्थिति के प्रति अनुक्रिया करता है। छ: से आठ माह की आयु तक वे अधिक गतिशील हो जाते हैं एवं अपनी माता के साथ रहना पसंद करने लगते हैं। जब वे नए चेहरे को देख कर डर जाते हैं या अपनी माँ से अलग कर दिए जाते हैं तो वे रोते हैं और पीड़ा की अभिव्यक्ति करते हैं। माता-पिता या देख-रेख करने वाले से पुन: मिलने पर वे मुस्कराहट या आलिंगन से अपने भाव का प्रदर्शन करते हैं। शिशु एवं उनके माता-पिता (पालनकर्ता) के बीच स्नेह का जो सांवेगिक बंधन विकसित होता है उसे **आसक्ति** (attachment) कहते हैं। हार्लो एवं हार्लो (Harlow and Harlow, 1962) ने एक प्राचीन अध्ययन में बंदरों के बच्चों को जन्म के आठ घंटे बाद ही उनकी माँ

तालिका 4.2 पियाजे द्वारा प्रतिपादित संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएँ

अवस्था	*सन्निकट आयु*	*विशेषताएँ*
संवेदी-प्रेरक	0-2 वर्ष	शिशु संवेदी अनुभवों का शारीरिक क्रियाओं के साथ समन्वय करते हुए संसार का अन्वेषण करता है।
पूर्व-संक्रियात्मक	2-7 वर्ष	प्रतीकात्मक विचार विकसित होते हैं; वस्तु स्थायित्व उत्पन्न होता है; बच्चा वस्तु के विभिन्न भौतिक गुणों को समन्वित नहीं कर पाता है।
मूर्त संक्रियात्मक	7-11 वर्ष	बच्चा मूर्त घटनाओं के संबंध में युक्तिसंगत तर्कना कर सकता है और वस्तुओं को विभिन्न समूहों में वर्गीकृत कर सकता है। वस्तुओं की मानस प्रतिमाओं पर प्रतिवर्तनीय मानसिक संक्रियाएँ करने में सक्षम होता है।
औपचारिक संक्रियात्मक	11-15 वर्ष	किशोर तर्क का अनुप्रयोग अधिक अमूर्त रूप से कर सकते हैं; परिकल्पनात्मक चिंतन विकसित होते हैं।

से अलग कर दिया। शिशु बंदरों को प्रायोगिक कक्ष में रखा गया एवं उनका पालन-पोषण 6 माह तक कृत्रिम (स्थानापन्न) ''माताओं'', एक तार से बनी हुई तथा दूसरी कपड़े से, के द्वारा किया गया। आधे शिशु बंदरों को तार से बनी माता ने आहार प्रदान किया एवं आधे को कपड़े से बनी माँ ने। बिना इस बात का ध्यान दिए कि बंदर शिशुओं को तार की बनी माँ ने आहार प्रदान किया अथवा कपड़े की बनी माँ ने, उन्होंने कपड़े की माँ को वरीयता दी और उसके साथ अधिक समय व्यतीत किया। यह अध्ययन स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करता है कि पौष्टिकता अथवा आहार प्रदान करना आसक्ति या लगाव के लिए महत्वपूर्ण नहीं था बल्कि संपर्क-सुख महत्वपूर्ण होता है। आपने भी देखा होगा कि छोटे बच्चे अपने पसंदीदा खिलौने अथवा कंबल के प्रति अधिक लगाव प्रदर्शित करते हैं। इसमें कुछ अप्रत्याशित नहीं है, क्योंकि बच्चे जानते हैं कि कंबल अथवा खिलौने उनकी माँ नहीं है। फिर भी यह उन्हें सुख प्रदान करते हैं। बच्चे जब बड़े हो जाते हैं और स्वयं के बारे में अधिक आश्वस्त हो जाते हैं, वे इन वस्तुओं का परित्याग कर देते हैं।

मानव शिशु अपने माता-पिता अथवा देख-रेख करने वाले के प्रति भी आसक्ति विकसित करते हैं जो लगातार और उपयुक्त ढंग से उनके प्यार और दुलार के संकेतों का उपयुक्त प्रत्युत्तर देते हैं। एरिक एरिक्सन (Erik Erikson) (1968) के अनुसार जीवन का प्रथम वर्ष आसक्ति के विकास के लिए महत्वपूर्ण समय होता है। यह *विश्वास* अथवा *अविश्वास* के विकास की अवस्था को निरूपित करता है। विश्वास का बोध भौतिक सुख की अनुभूति पर निर्मित होता है जो संसार के प्रति एक प्रत्याशा विकसित करता है कि यह सुरक्षित और अच्छा स्थान है। बच्चों में विश्वास का बोध सहानुभूतिपूर्ण एवं संवेदनशील पैतृक प्रभाव द्वारा विकसित होता है। यदि माता-पिता संवेदनशील हैं, स्नेहिल एवं उनमें स्वीकृति प्रदान करने वाले हैं तो यह बच्चे में परिवेश को जानने का मजबूत आधार प्रदान करता है। ऐसे बच्चों में सुरक्षित लगाव के विकास की संभावना बढ़ जाती है। दूसरी तरफ, यदि माता-पिता असंवेदनशील हैं एवं असंतोष प्रदर्शित करते हैं तथा बच्चों में दोष देखते हैं तो इससे बच्चों में आत्म-संदेह की भावना विकसित हो सकती है। सुरक्षित लगाव वाले बच्चे गोद में लेने पर सकारात्मक व्यवहार करते हैं, स्वतंत्रतापूर्वक घूमते हैं एवं खेलते हैं जबकि असुरक्षित लगाव वाले बच्चे अलग होने पर दुश्चिंता की अनुभूति करते हैं तथा रोते-चिल्लाते हैं क्योंकि उनमें भय पाया जाता है और वे विचलित हो जाते हैं। बच्चे के स्वस्थ विकास के लिए संवेदनशील एवं स्नेहिल प्रौढ़ों के साथ घनिष्ठ अंत:क्रियात्मक संबंध प्रथम चरण होता है।

बाल्यावस्था

शैशवावस्था की तुलना में पूर्व-बाल्यावस्था में बच्चे में संवृद्धि मंद हो जाती है। बच्चा शारीरिक रूप से विकसित होता है, उसकी ऊँचाई एवं वज़न में वृद्धि होती है, चलना, दौड़ना, कूदना सीखता है तथा गेंद के साथ खेलता है। सामाजिक रूप से बच्चे का संसार विस्तृत हो जाता है एवं इसमें माता-पिता के अतिरिक्त परिवार तथा पास-पड़ोस एवं विद्यालय के प्रौढ़ व्यक्ति भी सम्मिलित हो जाते हैं। बच्चा अच्छे एवं बुरे की अवधारणा भी सीखना प्रारंभ कर देता है, अर्थात नैतिकता का बोध भी विकसित हो जाता है। बाल्यावस्था के दौरान बालकों की शारीरिक क्षमता बढ़ जाती है, वे कार्यों को स्वतंत्र रूप से कर सकते हैं, लक्ष्यों का निर्धारण कर सकते हैं तथा वयस्कों की अपेक्षाओं को पूरा कर सकते हैं। संसार के बारे में अनुभव प्राप्त करने के अवसरों के साथ-साथ मस्तिष्क की बढ़ती हुई परिपक्वता बच्चों के संज्ञानात्मक विकास में योगदान देती है।

शारीरिक विकास : प्रारंभिक विकास दो सिद्धांतों का अनुसरण करता है: (1) विकास **शिर:पदाभिमुख** (cephalocaudally), अर्थात मस्तिष्क या सिर के क्षेत्र से पैर या निचले हिस्से तक अग्रसर होता है। बच्चे शरीर के निचले भाग से पहले शरीर के ऊपरी भाग पर नियंत्रण प्राप्त करते हैं। आपने देखा होगा कि इसके कारण ही पूर्व-शैशवावस्था में शिशुओं का सिर उनके शरीर के अनुपात में बड़ा होता है अथवा यदि आप एक बच्चे को घुटने के बल चलते हुए देखें तो पाएँगे कि पहले वह भुजाओं का उपयोग करेगा और बाद में पैर का उपयोग, (2) संवृद्धि शरीर के मध्य से प्रारंभ होती है और बाद में दूर के अंगों की ओर बढ़ती है- **समीप-दूराभिमुख** (proximodistal) प्रवृत्ति, अर्थात बच्चे शरीर के दूरस्थ अंगों से पहले धड़ पर नियंत्रण प्राप्त करते हैं। प्रारंभ में शिशु वस्तुओं तक पहुँचने के लिए पूरे शरीर को घुमाते हैं, धीरे-धीरे वे चीज़ों तक पहुँचने के लिए अपनी भुजाओं को आगे बढ़ाते हैं। ये परिवर्तन परिपक्व हो रहे तंत्रिका तंत्र के फलस्वरूप होते हैं और न कि किसी कमी के कारण क्योंकि दोषपूर्ण दृष्टि वाले बच्चे भी ठीक इसी अनुक्रम का प्रदर्शन करते हैं।

बच्चे जैसे-जैसे बड़े होते हैं, वे पतले दिखते हैं क्योंकि उनके धड़ की लंबाई बढ़ती है और शरीर में वसा की मात्रा घटती है। शरीर के अन्य किसी अंग की तुलना में मस्तिष्क

और सिर अधिक तेज़ी से विकसित होता है। मस्तिष्क की संवृद्धि और उसका विकास महत्वपूर्ण है क्योंकि ये बच्चों में नेत्र-हस्त समन्वय, पेंसिल को पकड़ना एवं लिखने का प्रयास करना, जैसी योग्यताओं के परिपक्व होने में सहायता प्रदान करता है। मध्य एवं विलंबित बाल्यावस्था में बच्चों के बल एवं आकार में सार्थक रूप से वृद्धि होती है; वज़न में वृद्धि मुख्य रूप से कंकालीय एवं पेशीय तंत्र के साथ-साथ शरीर के कुछ अंगों का आकार बढ़ने के कारण होती है।

पेशीय विकास : बाल्यावस्था के प्रारंभ के वर्षों में स्थूल पेशीय कौशलों के अंतर्गत भुजाओं एवं पैरों का उपयोग करना, तथा अधिक विश्वास तथा उद्देश्यपूर्ण ढंग से परिवेश में घूमना-फिरना सम्मिलित है। सूक्ष्म पेशीय कौशलों – उँगली निपुणता तथा नेत्र-हस्त समन्वय – में पूर्व-बाल्यावस्था में अत्यधिक सुधार होता है। इस अवधि में बच्चे के बाएँ अथवा दाएँ हाथ के लिए वरीयता का भी विकास होता है। पूर्व-बाल्यावस्था में स्थूल एवं सूक्ष्म पेशीय कौशलों में प्रमुख उपलब्धियों को तालिका 4.3 में दिया गया है।

संज्ञानात्मक विकास : बच्चे में वस्तु स्थायित्व के संप्रत्यय को सीखने की योग्यता उसे वस्तुओं को निरूपित करने के लिए मानसिक प्रतीकों का उपयोग करने में सक्षम बनाती है। परंतु, इस अवस्था में बच्चों में उस योग्यता का अभाव होता है जो उन्हें शारीरिक रूप से किए गए कार्यों को मानसिक रूप से करने की सुविधा प्रदान करती है। पूर्व-बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक विकास पियाजे के *पूर्व-संक्रियात्मक विचार* की अवस्था पर ध्यान केंद्रित करता है (तालिका 4.2 देखें)। जो वस्तु भौतिक रूप से उपस्थित नहीं है, उसे मानसिक रूप से निरूपित करने की योग्यता बच्चा प्राप्त करता है।

आपने देखा होगा कि व्यक्तियों, वृक्षों, कुत्ता, घर आदि को निरूपित करने के लिए बच्चे रूपरेखा/चित्र बनाते हैं। प्रतीकात्मक विचार में संलग्न रहने की बच्चे की यह योग्यता उसके मानसिक संसार को विस्तृत करने में सहायक होती है। प्रतीकात्मक विचार में प्रगति होती रहती है। पूर्व-संक्रियात्मक विचार की एक प्रमुख विशेषता *अहंकेंद्रवाद* है, अर्थात बच्चे दुनिया को केवल अपने दृष्टिकोण से देखते हैं और दूसरों के दृष्टिकोण के महत्त्व को समझने में सक्षम नहीं होते हैं। अहंकेंद्रवाद के कारण बच्चे *जीववाद* में लिप्त हो जाते हैं – चिंतन करने कि सभी चीज़ें उन्हीं की तरह सजीव हैं। वे निर्जीव वस्तुओं में जीवन की कल्पना करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि दौड़ते समय बच्चा फिसल कर सड़क पर गिर जाता है तो वह जीववादी चिंतन का प्रदर्शन यह कह कर करेगा कि 'सड़क ने मुझे चोट पहुँचायी'। जैसे-जैसे बच्चे बढ़ते हैं और लगभग 4 से 7 वर्ष की आयु के हो जाते हैं तो वे अपने सभी वैसे प्रश्नों का उत्तर पाना चाहते हैं जैसे: आकाश नीला क्यों है? वृक्ष कैसे बढ़ते हैं? इत्यादि। ऐसे प्रश्न बच्चों को यह जानने में सहायता करते हैं कि चीज़ें जिस रूप में हैं वैसे ही क्यों हैं। पियाजे ने इसे *अंतःप्रज्ञात्मक विचार* की अवस्था कहा। पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था के विचार की एक अन्य विशेषता बच्चों में *केंद्रीकरण* की प्रवृत्ति, अर्थात एक घटना को समझने के लिए किसी एक विशेषता या पक्ष पर ध्यान देना, से परिभाषित होती है। उदाहरण के लिए, एक बच्चा 'बड़े गिलास' में जूस पीने की ज़िद कर सकता है, एक छोटे चौड़े गिलास की तुलना में एक लंबे व पतले गिलास को वरीयता देता है, जबकि दोनों ही गिलास में समान मात्रा में जूस रहता है।

जब बच्चा बड़ा होता है और लगभग 7 से 11 वर्ष की आयु का हो जाता है तब (मध्य एवं विलंबित बाल्यावस्था की

तालिका 4.3 स्थूल एवं सूक्ष्म पेशीय कौशलों में प्रमुख उपलब्धियाँ

आयु वर्ष में	*स्थूल पेशीय कौशल*	*सूक्ष्म पेशीय कौशल*
3 वर्ष	उछलना, कूदना, दौड़ना	ब्लॉक बनाना, तर्जनी एवं अँगूठे की सहायता से वस्तुओं को उठाना
4 वर्ष	प्रत्येक पादान पर एक-एक पैर रखते हुए सीढ़ियों पर चढ़ना एवं उतरना	चित्रात्मक पहेलियों को भली-भाँति जोड़ना
5 वर्ष	तेज़ दौड़ना, दौड़ प्रतिस्पर्धा का आनंद लेना	हाथ, भुजा एवं शरीर ये सभी, आँख की गति के साथ समन्वित होते हैं

अवधि) अंतर्बोधपरक विचार *तार्किक विचार* के द्वारा विस्थापित हो जाता है। यह *मूर्त संक्रियात्मक विचार* की अवस्था है जो संक्रियाओं से बनती है- वे मानसिक क्रियाएँ जो बच्चे को पूर्व में शारीरिक रूप से किए गए कार्यों को मानसिक रूप से करने की सुविधा प्रदान करती हैं। मूर्त संक्रियाएँ भी प्रतिक्रमणीय मानसिक क्रियाएँ हैं। एक सुप्रसिद्ध परीक्षण में बच्चों के सामने बिलकुल एक जैसी चिकनी मिट्टी की दो गेंदें प्रस्तुत की जाती हैं। प्रयोगकर्ता एक गेंद को बेल कर पतली पट्टी के रूप में बना देता है और दूसरी गेंद अपने मूल रूप में बनी रहती है। यह पूछे जाने पर कि किसमें अधिक मिट्टी है, 7-8 साल के बच्चे का उत्तर होगा कि दोनों में ही मिट्टी की समान मात्रा है। यह इसलिए होता है क्योंकि बच्चा गेंद को पतली पट्टी के रूप में बेलना और फिर उसे गेंद के रूप में गोल कर देने की कल्पना कर लेता है, जिसका अर्थ है कि वह मूर्त/वास्तविक वस्तुओं पर प्रतिक्रमणीय मानसिक क्रिया की कल्पना करने में सक्षम है। आपके विचार से एक पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था के बच्चे ने क्या किया होता? वह मात्र एक पक्ष-लंबाई अथवा ऊँचाई पर संभवतः ध्यान देता। मूर्त संक्रियाएँ बच्चे को वस्तु की विभिन्न विशेषताओं पर न कि मात्र एक विशेषता पर ध्यान देने की सुविधा प्रदान करती हैं। यह बच्चे की इस बात को समझने में सहायक होती हैं कि चीज़ों को देखने या समझने के भिन्न-भिन्न तरीके हैं, जिसके परिणामस्वरूप उसके अहंकेंद्रवाद में भी कमी आती है। चिंतन अधिक लचीला हो जाता है और समस्या समाधान करते समय बच्चे विकल्पों के बारे में सोच सकते हैं, अथवा आवश्यकता पड़ने पर अपने द्वारा उपयोग में लाए गए उपायों को मानसिक रूप से दोहरा सकते हैं। पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था का बालक यद्यपि एक वस्तु की विभिन्न गुणों के मध्य संबंध को देखने की योग्यता विकसित कर लेता है, वह अमूर्त चिंतन नहीं कर सकता है, अर्थात वह अब भी वस्तुओं की अनुपस्थिति में विचारों का प्रहस्तन नहीं कर सकता है। उदाहरणार्थ, बीजगणितीय समीकरण को पूरा करने के लिए आवश्यक चरण, अथवा पृथ्वी के अक्षांश या देशांतर रेखाओं की कल्पना करना।

क्रियाकलाप 4.2

समान आकार के दो पारदर्शी गिलास लीजिए और दोनों में समान मात्रा में जल भरिए। अपने विद्यालय के कक्षा 2 तथा कक्षा 5 के बच्चे से पूछिए : क्या गिलासों में समान मात्रा में जल है? एक दूसरा लंबा व पतला गिलास लीजिए एवं बच्चे के सामने पहले के किसी एक गिलास का जल इस तीसरे गिलास में भर दीजिए। अब उससे पूछिए कि किस गिलास में अधिक जल है? क्या आपने उनकी अनुक्रियाओं में कोई अंतर पाया?

बच्चे की बढ़ती हुई संज्ञानात्मक योग्यताएँ भाषा अर्जन को सुगम बना देती हैं। अध्याय 8 में आप पढ़ेंगे कि बच्चे कैसे शब्दावली एवं व्याकरण का विकास करते हैं।

सामाजिक-सांवेगिक विकास : स्व (self), **लिंग** (gender) तथा **नैतिक** (moral) विकास बच्चों के सामाजिक-सांवेगिक विकास के महत्वपूर्ण आयाम हैं। बाल्यावस्था के प्रारंभिक वर्षों में 'स्व' में कुछ महत्वपूर्ण विकास होते हैं। समाजीकरण के कारण बच्चा यह बोध विकसित कर लेता है कि वह कौन है और वह अपनी पहचान किसकी तरह बनाना चाहता है। विकसित हो रहे स्वतंत्रता के बोध के कारण बच्चे कार्यों को अपने तरीके से करते हैं। एरिक्सन के अनुसार, उनकी (बच्चों) स्वप्रेरित क्रियाओं के प्रति माता-पिता जिस प्रकार से प्रतिक्रिया करते हैं वह पहलशक्ति बोध या अपराध बोध को विकसित करता है। उदाहरण के लिए, साइकिल चलाना, दौड़ना, स्केटिंग जैसे खेलों के लिए स्वतंत्रता एवं अवसर प्रदान करना तथा बच्चों के प्रश्नों का उत्तर देना, उनके द्वारा की गई पहल के लिए आलंबन की अनुभूति उत्पन्न करेगा। इसके विपरीत, यदि उन्हें यह अनुभव कराया जाता है कि उनके प्रश्न अनुपयोगी हैं तथा उनके द्वारा खेले गए खेल मूर्खतापूर्ण हैं तो संभव है कि बच्चों में स्वयं के द्वारा प्रारंभ की गई क्रियाओं के प्रति दोष-भावना विकसित होगी, जो बच्चों के बाद के जीवन में भी बनी रह सकती है। पूर्व-बाल्यावस्था में आत्मबोध स्वयं को शारीरिक विशेषताओं के आधार पर परिभाषित करने तक सीमित रहता है: मैं लंबा हूँ, उसके बाल काले हैं, मैं एक लड़की हूँ, इत्यादि। मध्य एवं विलंबित बाल्यावस्था में बच्चे में संभवतः स्वयं को अपनी आंतरिक विशेषताओं के आधार पर परिभाषित करने की संभावना बढ़ जाती है; जैसे- 'मैं फुर्तीला हूँ एवं मैं लोकप्रिय हूँ' अथवा 'जब विद्यालय में अध्यापक मुझे कोई दायित्व देते हैं तो मैं गर्व का अनुभव करता हूँ'। स्वयं को मानसिक विशेषताओं के आधार पर परिभाषित करने के अतिरिक्त बच्चों के आत्म-विवरण के अंतर्गत स्व का सामाजिक पक्ष भी आता है, जैसे स्वयं को सामाजिक समूहों के संदर्भ में देखना; जैसे- विद्यालय के संगीत क्लब, पर्यावरण क्लब अथवा किसी धार्मिक समूह का सदस्य होना। बच्चों के आत्मबोध के अंतर्गत सामाजिक तुलना का पक्ष भी आता है। बच्चे संभवतः इसके बारे में भी सोच

सकते हैं कि वे दूसरों की तुलना में क्या कर सकते हैं अथवा क्या नहीं कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, 'मैंने अतुल की तुलना में अधिक अंक प्राप्त किए' अथवा 'मैं कक्षा में दूसरे बच्चों की तुलना में तेज़ दौड़ सकता हूँ'। यह विकासात्मक परिवर्तन, एक व्यक्ति के रूप में दूसरों से स्वयं की भिन्नता स्थापित करने में सहायक होता है।

बॉक्स 4.2 लिंग एवं स्त्री-पुरुष भूमिकाएँ

क्या शतरंज एक पुरुष का खेल है अथवा एक महिला का खेल है अथवा दोनों का? बेकिंग (ब्रेड, केक आदि को बनाना) एक महिला का कार्य है अथवा एक पुरुष का कार्य है? गाड़ी चलाना, वाद-विवाद करना एवं भौतिकी की प्रयोगशाला में प्रयोग करना इनके संबंध में आपका क्या विचार है? अथवा टी.वी. पर बेचे जाने वाले युवा पुरुषों एवं महिलाओं के सामानों पर ध्यान दीजिए? लड़के एवं लड़कियों को कैसा होना चाहिए इनके संबंध में इनसे क्या पता चलता है?

यौन भेद का अस्तित्व है अथवा नहीं इस पर मनोवैज्ञानिकों ने सतर्कतापूर्वक शोध किया है। शोध यह प्रदर्शित करते हैं कि महिलाओं की तुलना में पुरुष अधिक आक्रामक होते हैं। उठक-बैठक, छोटी दूरी की दौड़ तथा लंबी कूद के परीक्षणों में महिलाओं की तुलना में पुरुष अधिक बेहतर निष्पादन करते हैं। महिलाएँ पुरुषों की तुलना में सूक्ष्म एवं बेहतर नेत्र-हस्त समन्वय का प्रदर्शन करती हैं तथा उनके शरीर के जोड़ एवं अंग पुरुषों की तुलना में अधिक लचीले होते हैं। आपकी समझ से इन भिन्नताओं का स्रोत क्या है? क्या ये आवश्यक हैं, अथवा दूसरे शब्दों में क्या महिलाएँ कुछ 'स्त्रियोचित गुण' के साथ जन्म लेती हैं एवं पुरुष कुछ 'पुरुषोचित गुण' के साथ? अथवा क्या ये भिन्नताएँ उस संसार का सर्जन हैं जिसमें हम रहते हैं?

जिस सर्वाधिक शक्तिशाली भूमिका में लोगों का समाजीकरण हुआ है वह है लिंग भूमिका। ये महिलाओं एवं पुरुषों के लिए उपयुक्त समझे जाने वाले व्यवहारों के एक समूह से परिभाषित होती हैं। यौन (sex) पुरुष या महिला होने के जैविक आयाम को बताता है, जबकि लिंग (gender) महिला या पुरुष होने के सामाजिक आयाम को इंगित करता है। लिंग के विभिन्न पक्ष हैं। इनमें से महिला या पुरुष की लिंग पहचान एक महत्वपूर्ण पक्ष है जिसे अधिकांश बच्चे तीन या चार वर्ष की आयु का होते-होते अर्जित कर लेते हैं एवं स्वयं को परिशुद्धता से एक लड़का अथवा लड़की के रूप में नामित कर सकते हैं। जब वे बड़े होते हैं तो उनके खिलौनों तथा खेलों की पसंद में इसे देखा जा सकता है।

लिंग भूमिकाएँ, अपेक्षाओं का एक समूह है जो यह प्रस्तावित करती हैं कि महिलाओं एवं पुरुषों को किस प्रकार से सोचना, कार्य करना एवं अनुभव करना चाहिए। लिंग समाजीकरण पर माता-पिता का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, विशेष रूप से विकास के प्रारंभिक वर्षों में। पुरस्कार एवं दंड के माध्यम से वे बच्चों में लिंग उपयुक्त तथा अनुपयुक्त व्यवहार को उत्पन्न करते हैं। माता-पिता अपनी लड़कियों को स्त्रियोचित तथा लड़कों को पुरुषोचित गुणों को सिखाने के लिए प्राय: पुरस्कार एवं दंड का उपयोग करते हैं। समकक्षियों का प्रभाव भी लिंग समाजीकरण के लिए एक महत्वपूर्ण कारक माना जाता है।

विद्यालयी-आयु के लड़कों की तुलना में विद्यालयी-आयु की लड़कियों को माता-पिता अधिक अनुशासित करते हैं तथा लड़के एवं लड़कियों को अलग-अलग तरह के कार्य सौंपते हैं। दिन-प्रतिदिन की अंत:क्रिया में माता-पिता अपनी पुत्रियों को एक प्रकार का 'निर्भरता प्रशिक्षण' देते हैं एवं अपने पुत्रों को एक प्रकार का 'स्वतंत्रता प्रशिक्षण' देते हैं। कार्टून एवं व्यावसायिक विज्ञापन सहित संचार माध्यम यौन रूढ़ियों को कायम रखने के लिए विख्यात हैं। व्यावसायिक विज्ञापनों में यौन रूढ़ियों पर किए गए शोध यह प्रदर्शित करते हैं कि विभिन्न संस्कृतियों के व्यावसायिक विज्ञापनों में आप्त व्यक्ति के रूप में पुरुष को प्रदर्शित किया गया था तथा महिलाओं को आश्रित एवं घरेलू भूमिकाओं में, अथवा शरीर के लिए उपयोगी उत्पादों को बेचने में महिलाएँ अधिक सक्षम थीं तथा खेल संबंधी उत्पादों को बेचने में पुरुष।

एक बार जब बच्चा पुरुष या महिला की भूमिका सीख जाता है तो वह अपने संसार का संगठन लिंग के आधार पर भी करता है। लिंग पर आधारित सामाजिक-सांस्कृतिक मानकों तथा रूढ़ियों के अनुरूप व्यवहार करने के लिए बच्चों का अवधान एवं व्यवहार एक आंतरिक अभिप्रेरणा के द्वारा निर्देशित होता है। अपनी संस्कृति की लिंग लोकरीतियों के अनुसार बच्चे अपना सक्रिय समाजीकरण भी करते हैं। एक बार जब वे लिंग मानकों को आत्मसात कर लेते हैं तो वे स्वयं से लिंग उपयुक्त व्यवहार की अपेक्षा करना प्रारंभ कर देते हैं। छोटे लड़के फैंसी ड्रेस प्रतियोगिताओं में लड़कियों के कपड़े पहनने से मना कर सकते हैं। घर-घर खेलते समय लड़कियाँ पिता की भूमिका निभाने से मना कर सकती हैं। एक बार जब वे अपने लिंग से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं तो बच्चे अपनी संस्कृति के अपने ही लिंग के किसी महान व्यक्ति का अनुकरण कर सकते हैं। ''लिंग-प्ररूपण'' (gender typing) तब उत्पन्न होता है जब किसी समाज के महिला एवं पुरुष के लिए उचित अथवा विशिष्ट समझे जाने वाले व्यवहार के अनुरूप व्यक्ति सूचनाओं को कूट-संकेतित तथा संगठित करने के लिए तैयार हो जाता है।

बच्चे जब विद्यालय में प्रवेश करते हैं तो उनका सामाजिक जगत परिवार से बाहर तक विस्तृत हो जाता है। वे अपनी उम्र के मित्रों व समकक्षियों के साथ अधिक समय भी व्यतीत करते हैं। अतः बच्चे अपने समकक्षियों के साथ जो अतिरिक्त समय देते हैं वह उनके विकास को एक रूप प्रदान करता है।

क्रियाकलाप 4.3

अपने मित्रों तथा माता-पिता के सामने एक लड़के की तरह (यदि आप लड़की हैं) अथवा एक लड़की की तरह (यदि आप एक लड़के हैं) कम से कम एक घंटे तक अभिनय कीजिए। अपने अनुभवों का मनन कीजिए तथा अपने व्यवहार के प्रति दूसरों की प्रतिक्रिया पर ध्यान दीजिए। आप उनसे उनकी प्रतिक्रियाओं के बारे में पूछ भी सकते हैं। दूसरे लिंग के व्यक्ति की तरह निष्पादन करने का यह कार्य कितना कठिन था?

नैतिक विकास : बच्चे के विकास का एक दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है मानवीय क्रियाओं के सही या गलत होने के मध्य अंतर करना सीखना। बच्चे जिस तरह से सही एवं गलत के बीच अंतर करना, अपराध बोध की अनुभूति करना, स्वयं को दूसरे व्यक्ति के स्थान पर रखकर देखना तथा जब दूसरे लोग कठिनाई में होते हैं तो उनकी मदद करना सीखते हैं, ये सभी नैतिक विकास के घटक हैं। बच्चे जिस प्रकार संज्ञानात्मक विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरते हैं, लॉरेन्स कोहल्बर्ग (Lawrence Kohlberg) के अनुसार, वैसे ही वे नैतिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरते हैं। ये अवस्थाएँ आयु से संबद्ध होती हैं। कोहल्बर्ग ने बच्चों का साक्षात्कार किया जिसमें उन्हें ऐसी कहानियाँ सुनाई गईं जिनके पात्र नैतिक दुविधा का सामना कर रहे थे। बच्चों से पूछा गया कि उस दुविधा में पात्रों को क्या करना चाहिए और क्यों? उनके अनुसार अलग-अलग उम्र में बच्चे सही एवं गलत के बारे में भिन्न-भिन्न प्रकार से विचार करते हैं। छोटा बच्चा, अर्थात नौ वर्ष की आयु से पहले, बाह्य एवं प्रभावी व्यक्तियों के संदर्भ में चिंतन करता है। उसके (बच्चे) अनुसार कोई कार्य गलत है क्योंकि उसके लिए वह दंडित किया जाता है तथा सही है क्योंकि उसके लिए उसे पुरस्कृत किया जाता है। जब बच्चा बड़ा होता है, अर्थात पूर्व-किशोरावस्था तक, वह दूसरों द्वारा स्थापित नियमों, जैसे- माता-पिता अथवा समाज के नियमों, के द्वारा नैतिक तर्कना विकसित करता है। बच्चे इन नियमों को स्वयं के नियमों के रूप में स्वीकृत करते हैं। प्रवीण बनने तथा दूसरों की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए (न कि दंड का परिहार करने के लिए) इनको 'आत्मसात' कर लिया जाता है। बच्चे इन नियमों को ऐसे सुनिश्चित दिशा-निर्देश के रूप में देखते हैं जिनका अनुसरण किया जाना चाहिए। इस अवस्था में नैतिक चिंतन अपेक्षाकृत अटल होते हैं। जब वे बड़े होते हैं तो वे धीरे-धीरे व्यक्तिगत नैतिक संहिता या नियमावली विकसित कर लेते हैं।

आप देख चुके हैं कि बाल्यावस्था के अंत में संवृद्धि की अधिक धीमी दर बच्चे को समन्वय तथा संतुलन के कौशलों को विकसित करने में सक्षम बनाती है। भाषा का विकास होता है और बच्चा विवेकपूर्ण तर्कना कर सकता है। सामाजिक रूप से बच्चा सामाजिक व्यवस्था, जैसे-परिवार तथा समसमूह, में अधिक संलिप्त हो जाता है। अगले खंड में किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था की अवधि में मानव विकास में होने वाले परिवर्तनों को रेखांकित किया गया है।

क्रियाकलाप 4.4

एक रोगी गंभीर रूप से बीमार है। कई वर्षों से अस्पताल में भर्ती है और उसमें किसी प्रकार से सुधार नहीं हो रहा है। क्या रोगी की जीवन-रक्षा व्यवस्था को हटा लेना चाहिए? आपका सुखमयमृत्यु, जिसे कभी-कभी 'दया-मृत्यु' भी कहा जाता है, के प्रति क्या दृष्टिकोण है? अपने अध्यापक के साथ इस पर परिचर्चा कीजिए।

किशोरावस्था की चुनौतियाँ

अंग्रेज़ी का शब्द 'एडोलसेंस' (adolescence) लैटिन भाषा के शब्द *एडोलसियर* (adolescere) से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है 'परिपक्व रूप में विकसित होना'। यह व्यक्ति के जीवन में बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के मध्य का संक्रमण काल है। किशोरावस्था को सामान्यतया *जीवन की उस अवस्था के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसका प्रारंभ यौवनारंभ से होता है, जब यौन परिपक्वता या प्रजनन करने की योग्यता प्राप्त कर ली जाती है*। इसे जैविक तथा मानसिक दोनों ही रूप से तीव्र परिवर्तन की अवधि माना गया है। यद्यपि इस अवस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तन सार्वभौमिक हैं, किशोरों के अनुभव के सामाजिक तथा मानसिक आयाम सांस्कृतिक संदर्भ पर निर्भर करते हैं। उदाहरण के लिए, वह संस्कृति जहाँ किशोरावस्था को समस्यापरक अथवा संदेह उत्पन्न करने वाली अवधि के रूप में देखा जाता है, उसमें एक किशोर का अनुभव उस किशोर से भिन्न होगा जो एक ऐसी

संस्कृति में है जहाँ किशोरावस्था को प्रौढ़ व्यवहार और इसलिए दायित्वपूर्ण कार्यों को संपादित करने का प्रारंभ माना जाता है। यद्यपि अधिकांश समाज में किशोरावस्था के लिए कम से कम एक संक्षिप्त अवधि होती है, यह सभी संस्कृतियों के सापेक्ष सार्वभौमिक नहीं है।

शारीरिक विकास : यौवनारंभ या लैंगिक परिपक्वता बाल्यावस्था के अंत को तथा किशोरावस्था के प्रारंभ को इंगित करती है, जो संवृद्धि दर एवं लैंगिक विशेषताओं दोनों में ही आकस्मिक परिवर्तनों के द्वारा परिभाषित होती है। परंतु यौवनारंभ अचानक उत्पन्न होने वाली घटना नहीं है बल्कि यह एक क्रमिक प्रक्रिया का अंग है। यौवनारंभ की अवस्था में स्रावित होने वाले हार्मोन के कारण मूल एवं गौण लैंगिक लक्षण विकसित होते हैं। मूल लैंगिक लक्षणों के अंतर्गत वे लक्षण आते हैं जो प्रजनन से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हैं तथा गौण लैंगिक लक्षणों के अंतर्गत लैंगिक परिपक्वता को प्राप्त कर लेने के लक्षण या संकेत आते हैं। त्वरित संवृद्धि, चेहरों पर बालों का उगना तथा स्वर में परिवर्तन आदि से लड़कों में यौवनारंभ से संबंधित परिवर्तन प्रदर्शित होता है। लड़कियों की ऊँचाई में तीव्र संवृद्धि प्राय: **मासिक धर्म प्रारंभ** (menarche) होने के लगभग दो वर्ष पहले शुरू होती है। लड़कों में 12 या 13 वर्ष की उम्र में तथा लड़कियों में 10 या 11 वर्ष की उम्र में शारीरिक विकास में तीव्र संवृद्धि प्रारंभ होती है। यौवनारंभ अनुक्रम में परिवर्तन का पाया जाना एक सामान्य प्रक्रिया है। उदाहरण के लिए, एक ही कालानुक्रमिक आयु के दो लड़कों (अथवा दो लड़कियों) में एक के यौवनारंभ की अवस्था प्रारंभ होने से पहले ही दूसरे का यौवनारंभ विकास का अनुक्रम पूरा हो सकता है। इसमें आनुवंशिकता एवं परिवेश दोनों की ही महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। उदाहरण के लिए, समरूप-यमज में भ्रातृ-यमज की तुलना में मासिक धर्म लगभग एक ही समय प्रारंभ होता है। आमतौर पर संपन्न परिवार की लड़कियों में गरीब परिवार की लड़कियों की तुलना में मासिक धर्म कुछ पहले प्रारंभ होता है। ऐतिहासक प्रवृत्तियाँ प्रदर्शित करती हैं कि औद्योगिक राष्ट्रों में मासिक धर्म प्रारंभ होने की आयु घट रही है जो बेहतर पोषण एवं चिकित्सकीय सुविधाओं में उन्नति को प्रदर्शित करती है।

किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक विकास के साथ अनेक मानसिक परिवर्तन भी होते हैं। यौवनारंभ के आस-पास किशोर विपरीत लिंगी सदस्यों एवं यौन संबंधी मामलों में अधिक रुचि का प्रदर्शन करते हैं एवं यौन-अनुभूतियों के प्रति एक नयी जागरूकता विकसित होती है। कामुकता या यौन संबंधी विषयों पर अधिक ध्यान देना अनेक कारकों के कारण होता है; जैसे- जैविक परिवर्तनों के प्रति सजगता तथा समकक्षियों, माता-पिता एवं समाज द्वारा कामुकता पर अधिक बल देना। इसके बावजूद अनेक किशोरों में काम-व्यवहार के प्रति उपयुक्त ज्ञान का अभाव होता है अथवा उनमें इसके प्रति अनेक भ्रांतियाँ होती हैं। यौन एक ऐसा विषय है जिस पर माता-पिता बच्चों से परिचर्चा करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं, इसलिए किशोर यौन संबंधी मामलों में गोपनीयता बरतने लगते हैं जो सूचनाओं के आदान-प्रदान तथा संप्रेषणीयता को कठिन बना देता है। एड्स एवं यौन-संक्रमित अन्य रोगों के खतरे के कारण वर्तमान समय में किशोरों में कामुकता के प्रति अधिक ध्यान दिया जा रहा है।

यौन पहचान का विकास यौन-उन्मुखता को परिभाषित करता है एवं काम-व्यवहार को निर्देशित करता है। इस रूप में यह किशोरों के लिए एक महत्वपूर्ण विकासात्मक कार्य बन जाता है। यौवनारंभ के आरंभ होने पर आप स्वयं के बारे में क्या सोचते थे? किशोर इस विषय में विचारमग्न रहते हैं कि वे कैसे दिखते हैं और वे जैसा दिखते हैं उसका मानसिक बिंब बनाते रहते हैं। अपने शारीरिक-स्व अथवा शारीरिक परिपक्वता को स्वीकार करना किशोरावस्था में एक दूसरा महत्वपूर्ण विकासात्मक कार्य है। किशोरों को अपने शारीरिक रंग-रूप का एक वास्तविक बिंब बनाने की आवश्यकता होती है जो उन्हें स्वीकार्य हो। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि यौवनारंभ की अवस्था में शारीरिक परिवर्तनों के साथ-साथ संज्ञानात्मक एवं सामाजिक परिवर्तन भी होते हैं।

संज्ञानात्मक विकासात्मक परिवर्तन : किशोर के विचार अधिक अमूर्त, तर्कपूर्ण एवं आदर्शवादी होते हैं। अपने तथा दूसरों के विचारों का एवं दूसरे उनके बारे में क्या सोचते हैं इसका मूल्यांकन करने में वे अधिक सक्षम हो जाते हैं। किशोरों में तर्कना की विकसित हो रही योग्यता उन्हें संज्ञानात्मक एवं सामाजिक सजगता का एक नया स्तर प्रदान करती है। पियाजे का मानना था कि *औपचारिक संक्रियात्मक विचार* 11 से 15 वर्ष की आयु के बीच उत्पन्न होते हैं। इस अवस्था के दौरान किशोर का चिंतन वास्तविक मूर्त अनुभवों से आगे तक विस्तृत हो जाता है एवं वे उन अनुभवों के बारे में अधिक अमूर्त रूप से चिंतन एवं तर्कना प्रारंभ कर देते हैं। अमूर्त होने के अतिरिक्त किशोरों के विचार आदर्शवादी भी होते हैं। किशोर स्वयं तथा दूसरों की आदर्श विशेषताओं के बारे में

सोचना प्रारंभ कर देते हैं तथा स्वयं की दूसरों से तुलना इन आदर्श मानकों के आधार पर करते हैं। उदाहरण के लिए, एक आदर्श माता-पिता कैसे होंगे वे इसके बारे में सोच सकते हैं एवं अपने माता-पिता की तुलना इन आदर्श मानकों से करते हैं। कभी-कभी यह किशोरों को विस्मय में डाल सकता है कि नए आदर्श मानकों में से वे किन मानकों को अपनाएँ। विकास की प्रारंभिक अवस्था से गुजर रहे बच्चों द्वारा प्रयुक्त प्रयत्न-त्रुटि उपागम के विपरीत समस्या समाधान करने में किशोरों का चिंतन अधिक व्यवस्थित होता है। वे कार्य करने के संभावित तरीकों 'कुछ चीज़ें वैसे ही क्यों हो रही है' के बारे में सोचते हैं एवं क्रमबद्ध तरीके से समाधान को ढूँढ़ते हैं। पियाजे ने इस प्रकार के तर्कपूर्ण चिंतन को **परिकल्पनात्मक निगमनात्मक तर्कना** (hypothetical deductive reasoning) कहा।

तर्कपूर्ण विचार नैतिक तर्कना के विकास को भी प्रभावित करते हैं। सामाजिक नियमों को निरपेक्ष मानक नहीं माना जाता है एवं नैतिक चिंतन कुछ लचीलापन प्रदर्शित करता है। किशोर वैकल्पिक नैतिक संहिता को जानते हैं, विकल्पों की खोज करते हैं, और उसके बाद एक व्यक्तिगत नैतिक संहिता का निश्चय करते हैं। उदाहरण के लिए, क्या मुझे सिगरेट पीनी चाहिए क्योंकि मैं जितने भी लोगों को जानता हूँ वे सभी सिगरेट पीते हैं? क्या परीक्षाओं में नकल करना नैतिक है? यह किशोरों में सामाजिक मानकों को न मानने की संभावना भी उत्पन्न करता है यदि वे उनके व्यक्तिगत नैतिक संहिता के विरुद्ध होते हैं। उदाहरण के लिए, इस उम्र में व्यक्ति एक विरोध प्रदर्शन रैली में प्रतिभागिता कॉलेज के मानकों का पालन करने या उन मानकों के अनुरूप व्यवहार करने के लिए नहीं बल्कि एक निश्चित कारण के लिए करता है।

किशोर भी एक विशिष्ट प्रकार का अहंकेंद्रवाद विकसित करते हैं। डेविड एलकाईंड (David Elkind) के अनुसार **काल्पनिक श्रोता** (imaginary audience) एवं **व्यक्तिगत दंतकथा** (personal fable) किशोरों के अहंकेंद्रवाद के दो घटक हैं। काल्पनिक श्रोता किशोरों का एक विश्वास है कि दूसरे लोग भी उनके प्रति उतने ही ध्यानाकर्षित हैं जितने की वे स्वयं। वे कल्पना करते हैं कि लोग हमेशा उन्हीं पर ध्यान दे रहे हैं एवं उनके प्रत्येक व्यवहार का प्रेक्षण कर रहे हैं। एक लड़के की कल्पना कीजिए जो सोचता है कि उसकी शर्ट पर लगे स्याही के धब्बे पर लोग ध्यान देंगे, अथवा एक लड़की जिसके गालों पर फुंसियाँ हैं, सोचती है कि लोग सोचेंगे कि उसकी त्वचा कितनी खराब है। यह वही काल्पनिक श्रोता है जो उसे अत्यधिक आत्म-सचेत बना देता है। व्यक्तिगत दंतकथा किशोरों की अहंकेंद्रवाद का एक भाग है जिसमें स्वयं के अद्वितीय होने (अपने तरह का अकेला व्यक्ति होने) का भाव निहित है। किशोरों में अद्वितीयता का बोध उन्हें यह सोचने के लिए प्रेरित करता है कि कोई भी व्यक्ति उसको या उसकी अनुभूतियों को नहीं समझता है। उदाहरण के लिए, एक किशोरी सोचती है कि एक मित्र के द्वारा विश्वासघात किए जाने के कारण जिस पीड़ा का अनुभव वह कर रही है उसे कोई भी महसूस नहीं कर सकता है। किशोरों को माता-पिता से यह कहते सुनना बहुत ही आम बात है कि 'आप मुझे समझ नहीं पाते हैं'। अपनी व्यक्तिगत विशिष्टता या अद्वितीयता के बोध को बनाए रखने के लिए वे वास्तविकता से दूर की एक दुनिया बनाने के लिए, स्वयं से संबद्ध कल्पनाओं से भरी कहानियों को गढ़ सकते हैं। व्यक्तिगत दंतकथाएँ प्राय: किशोरों की डायरी का भाग होती हैं।

एक पहचान का निर्माण करना : आपने ऐसे प्रश्नों के उत्तर को ढूँढ़ने का प्रयास अवश्य किया होगा: मैं कौन हूँ? मुझे किन विषयों को पढ़ना चाहिए? क्या मैं ईश्वर में विश्वास रखता हूँ? इन सभी प्रश्नों के उत्तर में अपने आत्म-बोध को परिभाषित करने की चाह अथवा **पहचान** (identity) की खोज निहित है। *आप कौन हैं और आपके मूल्य, प्रतिबद्धता एवं विश्वास क्या हैं, यही पहचान है।* अपने माता-पिता से अलग अपनी एक पहचान स्थापित करना किशोरों का एक प्रमुख कार्य है। किशोरावस्था में विलग्नता या अनासक्ति की एक प्रक्रिया व्यक्ति को वैयक्तिक विश्वासों का एक ऐसा पुंज विकसित करने में सक्षम बनाती है जो अद्वितीय रूप से उनका अपना होता है। एक पहचान प्राप्त करने की प्रक्रिया में किशोर अपने माता-पिता के साथ तथा स्वयं अपने अंदर द्वंद्व का अनुभव कर सकते हैं। वे किशोर जो परस्पर-विरोधी पहचानों की समस्या को सुलझा सकते हैं वे एक नए आत्म बोध को विकसित कर लेते हैं। वे किशोर जो इस पहचान के संकट से उबर पाने में सक्षम नहीं होते हैं वे भ्रमित हो जाते हैं। एरिक्सन के अनुसार, यह 'पहचान भ्रम' व्यक्ति को अपने साथियों तथा परिवार से स्वयं को अलग कर लेने के लिए प्रेरित कर सकता है; अथवा वे भीड़ में अपनी पहचान खो सकते हैं। एक तरफ किशोर स्वतंत्रता की इच्छा रख सकते हैं और दूसरी तरफ वे इससे डरते भी हैं और अपने माता-पिता पर अत्यधिक निर्भरता भी प्रदर्शित करते हैं। आत्म-विश्वास और असुरक्षा की भावना के बीच शीघ्रता से परिवर्तित होते रहना इस अवस्था

की एक विशिष्टता है। किशोर कभी 'अपने को बच्चे की तरह समझे जाने' की शिकायत करते हैं तो कभी अपने माता-पिता पर निर्भर होकर सुख-चैन की तलाश करते हैं। एक पहचान प्राप्त करने में स्वयं में निरंतरता और एकरूपता की खोज करना, अधिक उत्तरदायित्वों को वहन करना, तथा वह कौन है, अर्थात एक पहचान, का स्पष्ट बोध प्राप्त करना सन्निहित है।

किशोरावस्था में पहचान का निर्माण अनेक कारकों से प्रभावित होता है। सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पारिवारिक तथा सामाजिक मूल्य, संजातीय पृष्ठभूमि, तथा सामाजिक-आर्थिक स्तर, ये सभी समाज में एक स्थान प्राप्त करने के लिए किशोरों द्वारा किए गए प्रयास पर प्रभावी रहते हैं। जब किशोर घर से बाहर अधिक समय व्यतीत करने लगता है तो पारिवारिक संबंध कम महत्वपूर्ण हो जाते हैं और वे समकक्षियों के सहयोग एवं स्वीकृति की प्रबल आवश्यकता विकसित कर लेते हैं। समकक्षियों के साथ अधिक अंत:क्रिया उन्हें अपने सामाजिक कौशलों को सुधारने तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के सामाजिक व्यवहारों को परखने का अवसर प्रदान करती है। समकक्षी तथा माता-पिता ये दो शक्तियाँ हैं जिनका किशोरों पर विशेष प्रभाव पड़ता है। समय-समय पर माता-पिता के साथ संघर्षपूर्ण परिस्थितियाँ समकक्षियों के साथ तादात्म्य स्थापित करने की प्रवृति को बढ़ाती हैं। परंतु सामान्यतया समकक्षी एवं माता-पिता अनुपूरक का कार्य करते हैं और किशोरों की भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। व्यावसायिक प्रतिबद्धता किशारों की पहचान निर्माण को प्रभावित करने वाला एक दूसरा कारक है। 'बड़े होकर आप क्या बनेंगे?' इस प्रश्न के लिए भविष्य के संबंध में सोचने की योग्यता एवं वास्तविक तथा प्राप्य लक्ष्यों को निर्धारित करने की आवश्यकता होती है। कुछ संस्कृतियों में युवाओं को व्यवसाय चयन की स्वतंत्रता दी जाती है जबकि कुछ दूसरी संस्कृतियों में इस चुनाव के लिए बच्चों को विकल्प नहीं दिए जाते हैं। माता-पिता के द्वारा लिए गए निर्णय को ही बच्चों द्वारा स्वीकार किए जाने की संभावना रहती है। विषयों के चयन के संबंध में जब आप निर्णय कर रहे थे उस समय का आपका अपना अनुभव क्या है? विद्यालयों में व्यावसायिक परामर्श विद्यार्थियों को विभिन्न पाठ्यक्रमों एवं नौकरियों के मूल्यांकन करने के लिए सूचनाएँ प्रदान करता है और व्यवसाय चयन के संबंध में निर्णय लेने के लिए निर्देशन प्रदान करता है।

कुछ प्रमुख चिंताएँ : एक वयस्क के रूप में जब हम अपने किशोरावस्था के दिनों के बारे में मनन करते हैं और उस अवधि के द्वंद्वों, अनिश्चितताओं, कभी-कभार के अकेलेपन, और समूह के दबाव को याद करते हैं तब हम यह महसूस करते हैं कि निश्चित ही वह एक अतिसंवेदनशील अवधि थी। किशोरावस्था में समकक्षियों का प्रभाव, नयी अर्जित स्वतंत्रता, अनसुलझी समस्याएँ आपमें से अनेक लोगों के लिए कठिनाइयाँ उत्पन्न कर सकती हैं। समकक्षियों के दबाव के अनुसार चलना सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही हो सकता है। किशोर प्राय: ऐसी स्थितियों का सामना करते हैं जिसमें सिगरेट, शराब, मादक पदार्थों के सेवन तथा माता-पिता द्वारा बनाए गए नियमों को तोड़ने के संबंध में निर्णय लेना होता है। इस पर बहुत ध्यान न देते हुए कि इनका क्या प्रभाव हो सकता है, इस प्रकार के निर्णय ले लिए जाते हैं। किशोर अनिश्चितता, अकेलापन, आत्म-संदेह, दुश्चिंता, तथा स्वयं एवं स्वयं के भविष्य के प्रति दुश्चिंता आदि का सामना कर सकते हैं। जब वे विकासात्मक चुनौतियों को दूर कर लेते हैं तब उनमें उत्तेजना, हर्ष, तथा सक्षमता की अनुभूतियों के अनुभव की भी संभावना रहती है। अब आप किशोरों की कुछ प्रमुख चुनौतियों; जैसे- अपचार, मादक द्रव्यों का दुरुपयोग, तथा आहार ग्रहण संबंधी विकारों के बारे में पढ़ेंगे।

अपचार : अपचार विविध प्रकार के व्यवहारों को इंगित करता है जिसमें सामाजिक रूप से अस्वीकृत व्यवहारों से लेकर विधिक अपराध तथा आपराधिक कृत्य भी सम्मिलित हैं। कर्त्तव्यविमुखता, घर से भाग जाना, चोरी या सेंधमारी, या बर्बरतापूर्ण कृत्य इसके उदाहरण हैं। अपचार तथा व्यवहारपरक समस्याओं वाले किशोरों में नकारात्मक आत्म-पहचान, कम विश्वास, और उपलब्धि का निम्न स्तर होता है। अपचार प्राय: माता-पिता के कम सहयोग, अनुपयुक्त अनुशासन, तथा पारिवारिक विवाद से जुड़ा होता है। ध्यानाकर्षण एवं समकक्षियों में लोकप्रियता अर्जित करने के लिए प्राय: वैसे किशोर समाजविरोधी कृत्य करते हैं जो ऐसे समुदायों से आते हैं जिसमें गरीबी, बेरोजगारी एवं मध्यवर्ग से भिन्नता की भावना होती है। परंतु अधिकांश अपचारी बच्चे हमेशा के लिए अपचारी नहीं हो जाते हैं। अपचारी व्यवहार को कम करने में ऐसे कारक सहायक होते हैं; जैसे- समसमूह का बदल जाना, अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों के प्रति अधिक सजग हो जाना और आत्म-अर्ध की भावना को विकसित करना, भूमिका-प्रतिरूप के सकारात्मक व्यवहारों का अनुकरण करना, नकारात्मक अभिवृत्तियों को तोड़ना, एवं नकारात्मक आत्म-धारणा को सुधारना।

मादक द्रव्यों का दुरुपयोग : किशोरावस्था का समय सिगरेट, मद्य व मादक पदार्थों के सेवन के लिए विशिष्ट रूप

से अतिसंवेदनशील है। दबाव से समायोजन स्थापित करने के एक तरीके के रूप में कुछ किशोर सिगरेट पीने या मादक पदार्थों के सेवन का सहारा लेते हैं। यह समायोजी कौशलों के विकास एवं दायित्वपूर्ण निर्णयन के विकास को बाधित कर सकता है। सिगरेट पीने या मादक पदार्थों के सेवन करने के अनेक कारण हो सकते हैं; जैसे- समकक्षियों का दबाव एवं समूह द्वारा स्वीकृत किए जाने की किशोर की आवश्यकता, अथवा प्रौढ़ों की तरह व्यवहार करने की इच्छा, अथवा विद्यालय के कार्य या सामाजिक दायित्वों के दबाव से पलायन की आवश्यकता आदि। निकोटिन की व्यसन डालने की शक्ति के कारण सिगरेट पीना बंद करना कठिन हो जाता है। यह पाया गया है कि वे किशोर जो मादक पदार्थों, शराब तथा निकोटिन उपयोग के लिए संवेदनशील हैं, वे आवेगशील, आक्रामक, उत्कंठित, अवसादी एवं अविश्वसनीय होते हैं तथा उनका आत्म-सम्मान का स्तर कम होता है एवं उनमें उपलब्धि की प्रत्याशा भी कम होती है। समकक्षी दबाव और अपने समसमूह के बीच रहने की आवश्यकता किशोर को अपने समकक्षियों की माँगों के अनुरूप मादक द्रव्य, मदिरा एवं धूम्रपान का प्रयोग करने के लिए प्रेरित करती है या उसको अपना उपहास सहन करने के लिए मजबूर करती है। यदि मादक पदार्थों का उपयोग लंबे समय तक जारी रहता है तो यह शरीरक्रियात्मक निर्भरता, अर्थात मादक पदार्थ, शराब या निकोटिन की लत, को जन्म दे सकता है और किशोरों के शेष जीवन के लिए एक गंभीर खतरा हो सकता है। मादक द्रव्यों के उपयोग को रोकने में माता-पिता, समकक्षियों, भाई-बहनों, एवं वयस्कों के साथ सकारात्मक संबंध की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। नयी दिल्ली स्थित सोसाइटी फॉर थिएटर इन एजुकेशन प्रोग्राम भारत में मादक द्रव्यरोधी एक सफल कार्यक्रम है। यह 13 से 25 वर्ष के लोगों के मनोरंजन के लिए नुक्कड़ नाटकों का आयोजन करती है जिसमें यह शिक्षा दी जाती है कि मादक पदार्थों का सेवन कैसे रोकें। यूनाइटेड नेशंस इंटरनेशनल ड्रग कंट्रोल प्रोग्राम (यू.एन.डी.सी.पी.) ने इस कार्यक्रम को एक उदाहरण के रूप में चुना है जिसे इस क्षेत्र के गैर-सरकारी संगठनों को भी अपनाना चाहिए।

आहार ग्रहण संबंधी विकार : किशोरों का स्वयं के प्रति मनोग्रस्ति, कल्पनालोक में रहना तथा समकक्षियों से तुलना करना ऐसी परिस्थितियों को जन्म देता है जिससे वे अपने शरीर के प्रति मनोग्रस्ति विकसित कर लेते हैं। *एनोरेक्सिया नरवोसा* एक ऐसा ही आहार ग्रहण संबंधी विकार है जिसमें स्वयं को भूखा रखते हुए दुबला बनने का कठिन प्रयास किया जाता है। किशोरों को अपने भोजन से कुछ खाद्य पदार्थों को निकालते अथवा केवल दुर्बल बनाने वाले खाद्य पदार्थों का ही सेवन करते देखा जाना बहुत ही सामान्य घटना है। संचार माध्यम भी दुबलेपन या छरहरेपन को सर्वाधिक वांछनीय छवि के रूप में प्रदर्शित करते हैं, और छरहरेपन की ऐसी फैशनेबल छवि का अनुकरण एनोरेक्सिया नरवोसा को जन्म देता है। *क्षुधतिशयता* या बुलिमिया आहार ग्रहण संबंधी विकार का एक दूसरा प्रकार है जिसमें व्यक्ति अत्यधिक भोजन करने का एक ऐसा प्रारूप अपनाता है जिसमें वह स्वादिष्ट भोजन करता रहता है और उसके बाद अपने प्रयास से वमन करके अथवा किसी विरेचक का उपयोग करके उसका विरेचन कर देता है और बीच-बीच में उपवास भी रखता है। एनोरेक्सिया नरवोसा तथा बुलिमिया मुख्य रूप से महिलाओं के विकार हैं जो शहरी परिवारों में अधिक पाए जाते हैं।

प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था

प्रौढ़ावस्था

एक प्रौढ़ सामान्यतया एक ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया जाता है जो दायित्वों का निर्वहन करता है, परिपक्व व स्वावलंबी है तथा समाज से अच्छी तरह से जुड़ा हुआ है। इन गुणों के विकास में भिन्नता पाई जाती है, जो यह प्रदर्शित करता है कि व्यक्ति के वयस्क बनने अथवा वयस्कों की भूमिकाओं को ग्रहण करने के समय मे अंतर होता है। कुछ लोग अपने कॉलेज अध्ययन के साथ नौकरी भी करते हैं अथवा वे शादी कर सकते हैं तथा पढ़ाई छोड़ देते हैं। कुछ लोग आर्थिक रूप से स्वतंत्र होते हुए और विवाह के बाद भी अपने माता-पिता के साथ ही रहते हैं। प्रौढ़ों की भूमिकाओं को ग्रहण करना व्यक्ति की सामाजिक परिस्थिति से निर्देशित होता है। जीवन की कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं (जैसे- विवाह, नौकरी, बच्चों को जन्म देना) के लिए सर्वोपयुक्त समय क्या होता है इस संदर्भ में एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में भिन्नता होती है, परंतु किसी एक संस्कृति के अंदर प्रौढ़ के विकास क्रम में समानता होती है।

प्रारंभिक प्रौढ़ावस्था के दो मुख्य कार्य हैं, प्रौढ़ जीवन की संभावनाओं को तलाशना तथा एक स्थाई जीवन की संरचना

का विकास करना। उम्र का 20वाँ वर्ष प्रौढ़ों के विकास के एक नए दौर को निरूपित करता है। धीरे-धीरे निर्भरता से स्वतंत्रता की ओर एक परिवर्तन उत्पन्न होता है। एक युवा व्यक्ति जिस प्रकार का जीवन, विशेष रूप से विवाह एवं जीविका के संदर्भ में, जीना चाहता है उसका एक बिंब इस प्रकार के परिवर्तन को इंगित करता है।

जीविका एवं कार्य : उम्र के 20वें एवं 30वें वर्ष के लोगों के लिए एक जीविका प्राप्त करना, व्यवसाय का चयन करना तथा एक जीविका विकसित करना महत्वपूर्ण कार्य होता है। व्यावसायिक जीवन में प्रवेश करना किसी भी व्यक्ति के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना होती है। विभिन्न प्रकार के समायोजन करने, अपनी दक्षता व निष्पादन को सिद्ध करने, प्रतिस्पर्धा का सामना करने तथा अपने एवं नियोजक की प्रत्याशाओं के प्रति समायोजन स्थापित करने से संबंधित अनेक प्रकार की आशंकाएँ होती हैं। नयी भूमिकाओं एवं दायित्वों का यह आरंभ भी होता है। जीविका विकसित करना एवं उसका मूल्यांकन करना प्रौढ़ावस्था का एक मुख्य कार्य बन जाता है

विवाह, मातृपितृत्व एवं परिवार : वैवाहिक जीवन में प्रवेश करने पर युवा वयस्कों को दूसरे व्यक्ति को समझना (यदि वह पहले से ज्ञात नहीं है) एवं एक दूसरे की पसंद, नापसंद एवं रुचि को जानना इत्यादि के प्रति समायोजन स्थापित करना पड़ता है। यदि दोनों साथी कार्यरत हैं तो समायोजन के लिए घर की भूमिकाओं और दायित्वों के निष्पादन में सहभागिता आवश्यक होती है।

विवाह के अतिरिक्त, माता या पिता बनना युवा वयस्क के जीवन में एक कठिन एवं दबावमय संक्रमण होता है, यद्यपि यह सामान्यतया बच्चे के लिए प्रेम की अनुभूति से जुड़ा होता है। वयस्क व्यक्ति मातृत्व या पितृत्व का अनुभव किस प्रकार करते हैं यह विभिन्न परिस्थितियों; जैसे- परिवार में बच्चों की संख्या, सामाजिक आलंबन की उपलब्धता तथा विवाहित युगल की प्रसन्नता अथवा अप्रसन्नता से प्रभावित होता है।

पति-पत्नी का तलाक अथवा किसी एक की मृत्यु एक ऐसी पारिवारिक संरचना को जन्म देती है जिसमें एकल प्रवज या तो माता या पिता में से किसी एक को बच्चों की जिम्मेदारी लेनी होती है। आज के युग में बहुत सी स्त्रियाँ घर से बाहर रोज़गार ढूँढ़ रही हैं जो एक दूसरे प्रकार के परिवार को जन्म दे रहा है जिसमें माता-पिता दोनों ही कार्यरत होते हैं। जब माता-पिता दोनों कार्यरत होते हैं तो दबाव उत्पन्न करने वाले कारक एकल कार्यरत प्रवज के समान ही होते हैं, उदाहरणार्थ, बच्चों की देखभाल करना, उनके विद्यालय का कार्य देखना, बीमारियों तथा घर एवं कार्यालय के कार्यभार से समायोजन स्थापित करना इत्यादि। मातृत्व-पितृत्व दबाव से जुड़े होने के बावजूद, संवृद्धि एवं संतुष्टि के लिए अद्वितीय अवसर प्रदान करता है तथा अगली पीढ़ी से संलग्नता स्थापित करने एवं उन्हें निर्देशित करने के तरीके के रूप में देखा जाता है।

अधेड़ावस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तन शरीर में परिपक्वता से संबंधित परिवर्तनों के कारण से होते हैं। यद्यपि इन परिवर्तनों के उत्पन्न होने की गति में व्यक्तियों में भिन्नता होती है, लगभग सभी मध्य आयु के लोग अपनी शारीरिक क्रिया के कुछ पक्षों में धीरे-धीरे होने वाले ह्रास का अनुभव करते हैं; जैसे- दृष्टि एवं चमक के प्रति संवेदनशीलता में ह्रास, कम सुनाई देना तथा शारीरिक रंग-रूप में परिवर्तन (जैसे- झुर्रियाँ, बालों का सफ़ेद अथवा पतला होना, वज़न में वृद्धि होना)। क्या प्रौढ़ावस्था में संज्ञानात्मक योग्यताओं में परिवर्तन होता है? यह माना जाता है कि कुछ संज्ञानात्मक योग्यताओं में उम्र के साथ ह्रास होता है जबकि कुछ में नहीं। अल्पकालिक स्मृति की तुलना में दीर्घकालिक स्मृति के संकृत्यों में स्मृति का ह्रास अधिक होता है। उदाहरण के लिए, एक मध्य आयु का व्यक्ति एक टेलीफोन नंबर सुनने के तुरंत बाद उसे याद रखता है परंतु कुछ दिनों के बाद वह उसका स्मरण उतनी अच्छी तरह से नहीं कर पाता है। स्मृति में अधिक ह्रास देखा जाता है जबकि उम्र के साथ प्रज्ञान बढ़ सकता है। यह स्मरण रहे कि प्रत्येक आयु में बुद्धि में वैयक्तिक भिन्नता पाई जाती है और जैसे सभी बच्चे विशिष्ट नहीं होते हैं वैसे ही सभी प्रौढ़ भी प्रज्ञान नहीं होते हैं।

वृद्धावस्था

वृद्धावस्था कब प्रारंभ होती है यह बताना आसान नहीं है। परंपरागत रूप से सेवानिवृत्ति को वृद्धावस्था से जोड़ा जाता था। अब जबकि लोग लंबे समय तक जी रहे हैं, नौकरी से सेवानिवृत्ति की आयु बदल रही है एवं वृद्धावस्था को परिभाषित करने वाला अपच्छेदित बिंदु ऊपर की ओर बढ़ रहा है। वृद्धों को जिन चुनौतियों से समायोजन करना होता है उनमें सेवानिवृत्ति,

विधवापन, बीमारी और परिवार में मृत्यु सम्मिलित हैं। कुछ अर्थों में वृद्धों की छवि में परिवर्तन हो रहा है। अब कुछ ऐसे लोग हैं जो 70 या उससे अधिक की उम्र पार कर चुके हैं और अत्यधिक सक्रिय, ऊर्जस्वी तथा सर्जनशील हैं। ये लोग दक्ष होते हैं और इसलिए जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समाज के द्वारा इन्हें महत्त्व दिया जाता है। विशिष्ट रूप से राजनीति, साहित्य, व्यापार, कला तथा विज्ञान में वृद्ध लोग हैं। वृद्धावस्था से जुड़ा यह मिथक परिवर्तित हो रहा है कि यह व्यक्ति को अक्षम करने वाला एवं इसलिए जीवन का एक भयावह चरण है।

निस्संदेह वृद्धावस्था के अनुभव सामाजिक-आर्थिक दशाओं, स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता, लोगों की अभिवृत्ति, समाज की अपेक्षाओं तथा उपलब्ध आलंबन व्यवस्था पर निर्भर करते हैं। प्रौढ़ावस्था के प्रारंभिक वर्षों में नौकरी अधिक महत्वपूर्ण होती है। उसके बाद परिवार अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है और इन सबके बाद स्वास्थ्य व्यक्ति के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा बन जाता है। स्पष्ट रूप से हमारे प्रौढ़ जीवन में स्वस्थ तरीके से वयोवृद्धि इन बातों पर निर्भर है; जैसे- हम लोग अपने कार्य में कितने प्रभावशाली हैं, हमारे परिवार में हम लोगों के संबंध कितने प्रेमपूर्ण हैं, हमारी मित्रता कितनी अच्छी है, हम कितने स्वस्थ हैं, एवं संज्ञानात्मक रूप से हम कितने चुस्त-दुरुस्त हैं।

सक्रिय व्यावसायिक जीवन से सेवानिवृत्त होना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। कुछ लोग सेवानिवृत्ति को एक नकारात्मक परिवर्तन के रूप में देखते हैं। वे मानते हैं कि यह संतुष्टि एवं आत्म-सम्मान के एक महत्वपूर्ण स्रोत से अलगाव है। दूसरे लोग इसे जीवन में एक ऐसे परिवर्तन के रूप में देखते हैं जो उन्हें अपनी रुचि के काम को करने के लिए अधिक समय प्रदान करता है। यह देखा गया है कि जो वृद्ध वयस्क नए अनुभवों के प्रति खुला दृष्टिकोण रखते हैं, अधिक प्रयासशील रहते हैं एवं उपलब्धि उन्मुख व्यवहार को वरीयता देते हैं वे स्वंय को व्यस्त रखना पसंद करते हैं एवं भली प्रकार से समायोजित होते हैं।

वृद्ध वयस्कों को भी पारिवारिक संरचना में परिवर्तन तथा नयी भूमिकाओं (दादा-दादी) से समायोजन करने की आवश्यकता होती है। बच्चे आमतौर पर अपनी जीविका तथा परिवार में व्यस्त होते हैं और अपना स्वतंत्र घर भी बसा सकते हैं। आर्थिक सहयोग तथा अकेलापन दूर करने के लिए वृद्ध वयस्क अपने बच्चों पर निर्भर होते हैं (जब बच्चे घर से बाहर चले जाते हैं)। ये कुछ लोगों में निराशा एवं अवसाद को उत्पन्न कर सकता है।

वृद्धावस्था में शक्तिहीनता का अनुभव एवं स्वास्थ्य तथा वित्तीय संपत्तियों का क्षीण होना, असुरक्षा एवं निर्भरता को जन्म देता है। वृद्ध लोग सहारा एवं अपनी देख-रेख के लिए दूसरों पर निर्भर रहते हैं। भारतीय संस्कृति वृद्धों को बच्चों पर निर्भर रहने की पक्षधर है, क्योंकि वृद्धावस्था में देख-रेख की आवश्यकता होती है। वस्तुत: पूर्वी संस्कृति के अधिकांश माता-पिता अपने बच्चों का लालन-पालन इस उम्मीद में करते हैं कि वे वृद्धावस्था में उनकी देखभाल करेंगे। यह महत्वपूर्ण है कि वृद्धों में सुरक्षा एवं संबंधन की अनुभूति को प्रदान किया जाए, यह अनुभूति उत्पन्न की जाए की लोग उनका ध्यान रखते हैं (विशेष रूप से संकट के क्षणों में) एवं यह स्मरण रखना चाहिए कि एक दिन हम सभी को वृद्ध होना है।

क्रियाकलाप 4.5

जीवन की तीन विभिन्न अवस्थाओं के लोगों का साक्षात्कार कीजिए; जैसे- 20-35 वर्ष, 35-60 वर्ष एवं 60 वर्ष से अधिक। उनसे निम्न के संबंध में बातचीत कीजिए :

क) उनके जीवन में जो प्रमुख परिवर्तन हुए हैं।

ख) इन परिवर्तनों ने उन्हें किस तरह से प्रभावित किया। इसके संबंध में वे कैसा अनुभव करते हैं?

विभिन्न समूहों के द्वारा बताई गई महत्वपूर्ण घटनाओं की तुलना कीजिए।

यद्यपि मृत्यु होने की संभावना विलंबित प्रौढ़ावस्था में अधिक होती है तथापि मृत्यु विकास की किसी भी अवस्था में हो सकती है। अन्य लोगों की तुलना में बच्चों एवं युवकों की मृत्यु को प्राय: अधिक दु:खद समझा जाता है। बच्चों तथा युवकों में दुर्घटना के कारण मृत्यु होने की संभावना अधिक होती है, परंतु वृद्धों में पुरानी बीमारी के कारण मृत्यु की संभावना बढ़ जाती है। पति अथवा पत्नी की मृत्यु प्राय: सबसे बड़ी क्षति होती है। अपने साथी की मृत्यु के बाद जो लोग जीवित रहते हैं, वे गहन दु:ख का अनुभव करते हैं, अकेलापन, अवसाद, वित्तीय क्षति से समायोजन स्थापित करते हैं एवं उनमें विभिन्न स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं का खतरा भी बना रहता है। विधवाओं की संख्या विधुरों से अधिक होती है क्योंकि अध्ययन यह प्रदर्शित करते हैं कि स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक समय तक जीवित रहती हैं तथा वे अपने से बड़े उम्र के पुरुष से विवाह करती हैं। ऐसे

समय में बच्चों, नाती-पोतों, एवं मित्रों का सहयोग व्यक्ति को दंपति की मृत्यु की क्षति से उबारने में सहायक होता है।

भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के लोग मृत्यु को अलग-अलग दृष्टिकोण से देखते हैं। हमारे देश की गोंड संस्कृति में यह माना जाता है कि मृत्यु जादू-टोना एवं दैत्यों के द्वारा होती है। मेडागास्कर की टनाला संस्कृति में मृत्यु का कारण प्राकृतिक शक्तियाँ मानी जाती हैं। मानव विकास, जिसे आपने इस अध्याय मे पढ़ा है, व्यक्ति के संपूर्ण जीवन को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों के प्रभाव को समझने में आपकी सहायता करता है।

प्रमुख पद

किशोरावस्था, जीववाद, आसक्ति, केंद्रीकरण, शिर:पदाभिमुख प्रवृत्ति, मूर्त संक्रियात्मक अवस्था, निगमनात्मक विचार, विकास, अहंकेंद्रवाद, क्रमविकास, लिंग, पहचान, शैशवावस्था, परिपक्वता, मासिक धर्म प्रारंभ, पेशीय विकास, वस्तु स्थायित्व, संक्रियाएँ, दृश्य प्ररूप, प्रसवपूर्व अवधि, पूर्व संक्रियात्मक अवस्था, मूल लैंगिक लक्षण, समीप-दूराभिमुख प्रवृत्ति, यौवनारंभ, प्रतिवर्त, गौण लैंगिक लक्षण, स्व, संवेदी प्रेरक अवस्था, विरूपजनन तत्व

सारांश

- *प्रसवपूर्व अवस्था का विकास माता के कुपोषण, माता के मादक औषधि के उपयोग, तथा माता को होने वाली कुछ बीमारियों से प्रभावित हो सकता है।*
- *पेशीय विकास शिर:पदाभिमुख तथा समीप-दूराभिमुख प्रवृत्तियों का अनुसरण करता है। प्रारंभिक पेशीय विकास परिपक्वता तथा अधिगम दोनों पर निर्भर करता है।*
- *बच्चे के लालन-पालन में सांस्कृतिक भिन्नताएँ, बच्चे तथा उनके देख-रेख करने वालों के बीच की आसक्ति के स्वरूप को प्रभावित कर सकती हैं।*
- *पियाजे के संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत के अनुसार बच्चे में वस्तु-स्थायित्व की पहचान का क्रमश: विकसित होना संवेदी प्रेरक अवस्था की मुख्य विशेषता है। पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था के चिंतन में कुछ कमियाँ; जैसे- केंद्रीकरण, अप्रतिक्रमणीयता एवं अहंकेंद्रवाद पाई जाती हैं।*
- *मूर्त संक्रियात्मक अवस्था में बच्चे वस्तुओं के मानसिक निरूपण पर संक्रियाओं को निष्पादित करने की योग्यता विकसित कर लेते हैं जो उन्हें संरक्षण के नियम को समझने में सक्षम बनाती है। औपचारिक संक्रिया की अवस्था अधिक अमूर्त, व्यवस्थित होती है एवं तार्किक विचारों को विकसित करती है।*
- *कोल्हबर्ग के अनुसार नैतिक तर्कना में प्रगति तीन चरणों, जो आयु संबद्ध होते हैं, में होती है और संज्ञानात्मक विकास के द्वारा निर्धारित होती है।*
- *यौवनारंभ की अवस्था में संवृद्धि की तीव्रता एक महत्वपूर्ण घटना है जिसमें प्रजनन संबंधी परिपक्वता तथा गौण लैंगिक लक्षण अंतर्निहित हैं। एरिक्सन के अनुसार पहचान निर्माण की ओर अग्रसर होना किशोरों की एक मुख्य चुनौती है।*
- *प्रौढ़ावस्था में व्यक्तित्व में स्थायित्व एवं परिवर्तन दोनों ही पाए जाते हैं। प्रौढ़ों के विकास की अनेक प्रमुख घटनाओं में पारिवारिक संबंधों में परिवर्तन सन्निहित है जिसमें विवाह, मातृपितृत्व तथा बच्चों के घर से बाहर जाने के प्रति समायोजन सम्मिलित हैं।*
- *प्रौढ़ावस्था में आयु संबद्ध शारीरिक परिवर्तनों में रंग-रूप, स्मृति तथा संज्ञानात्मक आयामों में परिवर्तन सम्मिलित हैं।*

समीक्षात्मक प्रश्न

1. विकास किसे कहते हैं? यह संवृद्धि तथा परिपक्वता से किस प्रकार भिन्न है?
2. विकास के जीवनपर्यंत परिप्रेक्ष्य की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. विकासात्मक कार्य क्या हैं? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिए।

4. 'बच्चे के विकास में बच्चे के परिवेश की महत्वपूर्ण भूमिका है।' उदाहरण की सहायता से अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए।
5. विकास को सामाजिक-सांस्कृतिक कारक किस प्रकार प्रभावित करते हैं?
6. विकसित हो रहे बच्चे में होने वाले संज्ञानात्मक परिवर्तनों की विवेचना कीजिए।
7. बचपन में विकसित हुए आसक्तिपूर्ण बंधनों का दूरगामी प्रभाव होता है। दिन-प्रतिदिन के जीवन के उदाहरणों से इनकी व्याख्या कीजिए।
8. किशोरावस्था क्या है? अहंकेंद्रवाद के संप्रत्यय की व्याख्या कीजिए।
9. किशोरावस्था में पहचान निर्माण को प्रभावित करने वाले कौन-से कारक हैं? उदाहरण की सहायता से अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए।
10. प्रौढ़ावस्था में प्रवेश करने पर व्यक्तियों को कौन-कौन सी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है?

परियोजना विचार

1. पिछले दो-तीन वर्षों के अपने अनुभवों का चिंतन कीजिए और निम्नलिखित का उत्तर दीजिए: क्या आपका अपने माता-पिता के साथ वाद-विवाद हुआ है? मुख्य समस्याएँ क्या थीं? आपने अपनी समस्याओं का समाधान किस प्रकार किया और किसकी सहायता ली? अपनी सूची की तुलना अपने सहपाठियों से कीजिए। क्या उनमें कुछ समानताएँ हैं? क्या अब आप अपने सम्मुख उपस्थित समस्याओं के समाधान के बेहतर तरीकों के संबंध में सोच सकते हैं?
2. मित्रों के साथ खेलने के लिए एक पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था के बच्चे (4 से 7 वर्ष की आयु के) के दृष्टिकोण से एक आलेख तैयार कीजिए। ठीक वही आलेख एक किशोर के लिए बनाइए। ये दोनों दृश्यलेख किस प्रकार से भिन्न हैं? आपके मित्रों के द्वारा निभाई गई भूमिकाएँ किस प्रकार से भिन्न हैं?

अध्याय 5

संवेदी, अवधानिक एवं प्रात्यक्षिक प्रक्रियाएँ

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- संवेदी प्रक्रियाओं के स्वरूप को समझ सकेंगे,
- अवधान की प्रक्रियाओं एवं प्रकारों की व्याख्या कर सकेंगे,
- आकार एवं स्थान प्रत्यक्षण की समस्याओं का विश्लेषण कर सकेंगे,
- प्रत्यक्षण में सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों की भूमिका की परीक्षा कर सकेंगे, तथा
- दैनंदिन जीवन में संवेदी, अवधानिक एवं प्रात्यक्षिक प्रक्रियाओं पर विचार कर सकेंगे।

विषयवस्तु

परिचय
जगत का ज्ञान
उद्दीपक का स्वरूप एवं विविधता
संवेदन प्रकारताएँ
चाक्षुष संवेदना
अन्य मानवीय संवेदनाएँ (बॉक्स 5.1)
श्रवण संवेदना
अवधानिक प्रक्रियाएँ
चयनात्मक अवधान
विभक्त अवधान (बॉक्स 5.2)
संधृत अवधान
अवधान विस्तृति (बॉक्स 5.3)
अवधान न्यूनता अतिक्रिया विकार (बॉक्स 5.4)
प्रात्यक्षिक प्रक्रियाएँ
प्रत्यक्षण के प्रक्रमण उपागम
प्रत्यक्षणकर्ता
प्रात्यक्षिक संगठन के सिद्धांत
स्थान, गहनता तथा दूरी प्रत्यक्षण
एकनेत्री संकेत एवं द्विनेत्री संकेत
प्रात्यक्षिक स्थैर्य
भ्रम
प्रत्यक्षण पर सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव

प्रमुख पद
सारांश
समीक्षात्मक प्रश्न
परियोजना विचार

परिचय

पिछले अध्यायों में आप पढ़ चुके हैं कि हम किस प्रकार अपने ग्राहियों की सहायता से बाह्य तथा आंतरिक परिवेश में उपस्थित विविध उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया करते हैं। यद्यपि उनमें से कुछ ग्राहियों का स्पष्ट रूप से प्रेक्षण किया जा सकता है (उदाहरण के लिए, आँख अथवा कान), शेष हमारे शरीर के अंदर पाए जाते हैं जिनका प्रेक्षण बिना विद्युत अथवा यांत्रिक साधनों के नहीं किया जा सकता है। इस अध्याय में आपका परिचय विभिन्न ग्राहियों से होगा जो बाह्य एवं आंतरिक जगत से अनेक प्रकार की सूचनाओं का संग्रह करते हैं। दृष्टि एवं श्रवण से संबद्ध कुछ रुचिकर प्रक्रियाओं के साथ-साथ आँख एवं कान की संरचना एवं उनके प्रकार्यों पर विशेष रूप से ध्यान केंद्रित होगा। आप अवधान से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को भी जानेंगे, जो ज्ञानेंद्रियों द्वारा संगृहीत सूचनाओं को ग्रहण एवं पंजीकृत करने में हमारी सहायता करते हैं। विभिन्न प्रकार के अवधानों का वर्णन उनको प्रभावित करने वाले कारकों के साथ किया जाएगा। अंत में हम प्रत्यक्षण की प्रक्रिया की विवेचना करेंगे जो जगत को एक सार्थक ढंग से समझने में हमारी सहायता करती है। आपको यह जानने का भी अवसर प्राप्त होगा कि हम किस प्रकार कुछ उद्दीपकों; जैसे- आकृतियों एवं चित्रों से कभी-कभी धोखा खा जाते हैं।

जगत का ज्ञान

हम जिस जगत में रहते हैं वह वस्तुओं, लोगों एवं घटनाओं की विविधता से पूर्ण है। आप जिस कक्ष में बैठे हैं उसको देखिए। आपको आस-पास बहुत सी चीज़ें दिखाई देंगी। उदाहरण के लिए, आप अपनी मेज़, अपनी कुर्सी, अपनी पुस्तकें, अपना बैग, अपनी घड़ी, दीवार पर टंगे चित्र तथा अन्य बहुत सी चीज़ें देख सकते हैं। जिनकी आकृति, आकार तथा रंग भी अलग-अलग होंगे। यदि आप अपने घर के दूसरे कक्ष में जाएँ तो आप बहुत सी अन्य नयी चीज़ें देखेंगे (जैसे- बर्तन एवं कड़ाही, अलमारी, टेलीविज़न)। यदि आप अपने घर से बाहर जाएँ तो आपको और बहुत सी चीज़ें मिलेंगी जिनके विषय में आप जानते हैं (जैसे- पेड़, जानवर, भवन आदि)। हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन में ऐसे अनुभव बहुत सामान्य हैं। हमें इनको जानने के लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता है।

यदि आपसे कोई पूछता है, 'आप कैसे कह सकते हैं कि ये विविध प्रकार की चीज़ें आपके कक्ष या घर या बाह्य परिवेश में हैं?' तो संभवतः आपका यही उत्तर होगा कि आप उन्हें अपने आस-पास देखते अथवा अनुभव करते हैं। ऐसा करने में आप प्रश्नकर्ता को बताना चाहते हैं कि विविध वस्तुओं का ज्ञान हमारी ज्ञानेंद्रियों (जैसे- आँख, कान) की सहायता से हो पाता है। ये ज्ञानेंद्रियाँ मात्र बाह्य जगत से ही नहीं बल्कि हमारे अपने शरीर से भी सूचनाएँ संग्रह करती हैं। हमारी ज्ञानेंद्रियों द्वारा संगृहीत सूचनाएँ ही हमारे समस्त ज्ञान का आधार बनती हैं। ज्ञानेंद्रियाँ वस्तुओं के विषय में विभिन्न प्रकार की सूचनाओं को पंजीकृत करती हैं, परंतु पंजीकृत होने के लिए वस्तुओं तथा उनके गुणों (जैसे- आकार, आकृति एवं रंग) को हमारा ध्यान आकर्षित करने की क्षमता होनी चाहिए। पंजीकृत सूचनाओं को मस्तिष्क को भी भेजा जाना चाहिए जो उन्हें अर्थवान बनाता है। इसलिए, हमारे आस-पास के जगत का ज्ञान तीन प्रमुख प्रक्रियाओं पर निर्भर करता है - संवेदना, अवधान, तथा प्रत्यक्षण। ये प्रक्रियाएँ एक दूसरे से अत्यधिक अंतर्संबंधित होती हैं, इसलिए इन्हें अधिकांशतः एक ही प्रक्रिया - संज्ञान के विभिन्न अंशों के रूप में समझा जाता है।

उद्दीपक का स्वरूप एवं विविधता

हमारे आस-पास के बाह्य परिवेश में विविध प्रकार के उद्दीपक पाए जाते हैं। उनमें से कुछ (जैसे- घर) देखे जा सकते हैं जबकि कुछ (जैसे- संगीत) मात्र सुने जा सकते हैं। बहुत से अन्य उद्दीपक भी होते हैं जिन्हें हम सूँघ सकते हैं (जैसे- फूल की सुगंध) अथवा उनका स्वाद ग्रहण कर सकते हैं (जैसे- मिठाई)। कई अन्य भी होते हैं जिनका हम स्पर्श कर अनुभव कर सकते हैं (जैसे- कपड़े का चिकनापन)। ये सभी उद्दीपक हमें अनेक प्रकार की सूचनाएँ देते हैं। इन विविध उद्दीपकों से व्यवहार करने के लिए हमारे पास विशिष्ट ज्ञानेंद्रियाँ होती हैं।

मानव के रूप में हमारी सात ज्ञानेंद्रियाँ हैं। इन ज्ञानेंद्रियों को संवेदन ग्राही अथवा सूचना संग्राही तंत्र भी कहते हैं, क्योंकि ये विविध स्रोतों से सूचनाएँ प्राप्त अथवा संगृहीत करते हैं। पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, जो बाह्य जगत से सूचनाएँ एकत्रित करती हैं वे हैं – आँख, कान, नाक, जिह्वा एवं त्वचा। जहाँ हमारी आँखें मुख्यतया दृष्टि के लिए उत्तरदायी होती हैं, वहीं कान श्रवण, नाक घ्राण, जिह्वा स्वाद तथा त्वचा स्पर्श, गर्मी, ठंडक और पीड़ा के अनुभव के लिए उत्तरदायी होती है। गर्मी, ठंडक तथा पीड़ा के विशिष्ट ग्राही हमारी त्वचा के अंदर पाए जाते हैं। इन पाँच बाह्य ज्ञानेंद्रियों के अतिरिक्त हमारे पास दो गहन इंद्रियाँ भी होती हैं – गतिसंवेदी एवं प्रघाण तंत्र। ये हमारे शरीर की स्थिति तथा एक दूसरे से संबंधित शरीर के अंगों की गति के विषय में सूचनाएँ देती हैं। इन सात ज्ञानेंद्रियों की सहायता से हम विभिन्न प्रकार के दस उद्दीपकों को उनकी विशेषताओं के साथ पंजीकृत करते हैं। उदाहरण के लिए, आप ध्यान दे सकते हैं कि प्रकाश द्युतिमान है या धुँधला है, पीला है, लाल है अथवा हरा। ध्वनि के विषय में आप जान सकते हैं कि वह उच्च है अथवा अस्पष्ट, श्रुतिमधुर है अथवा ध्यान भंग करने वाली। उद्दीपकों की ये विभिन्न विशेषताएँ भी हमारी ज्ञानेंद्रियों द्वारा पंजीकृत की जाती हैं।

संवेदन प्रकारताएँ

हमारी ज्ञानेंद्रियाँ हमें अपने बाह्य अथवा आंतरिक जगत के संबंध में मूल सूचना प्रदान करती हैं। किसी विशेष ज्ञानेंद्रिय द्वारा पंजीकृत किसी उद्दीपक या वस्तु का प्रारंभिक अनुभव संवेदना कहलाता है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम अनेक भौतिक उद्दीपकों का पता लगाते हैं तथा उनका संकेतन करते हैं। संवेदना का संबंध उद्दीपक के गुणों; जैसे- कठोर, गरम, तीव्र तथा नीला के तात्कालिक मूल अनुभवों से होता है, जो एक ज्ञानेंद्रिय के समुचित उद्दीपन के परिणामस्वरूप प्राप्त होता है। अलग-अलग ज्ञानेंद्रियाँ विविध प्रकार के उद्दीपकों से संबंधित होती हैं तथा विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति करती हैं। प्रत्येक ज्ञानेंद्रिय एक विशेष प्रकार की सूचना से संबंध स्थापित करने के लिए अति विशिष्ट होती है। अत: इनमें से प्रत्येक को एक संवेदन प्रकारता के रूप में जाना जाता है।

ज्ञानेंद्रियों की प्रकार्यात्मक सीमाएँ

इससे पहले कि हम ज्ञानेंद्रियों का वर्णन करें, यह जान लेना आवश्यक है कि हमारी ज्ञानेंद्रियाँ कुछ सीमाओं में कार्य करती हैं। उदाहरण के लिए, हमारी आँखें ऐसी चीज़ें नहीं देख सकती हैं जो बहुत धुँधली अथवा बहुत द्युतिमान होती हैं। इसी प्रकार हमारे कान बहुत धीमी अथवा बहुत तीव्र ध्वनि नहीं सुन सकते हैं। यही बात अन्य ज्ञानेंद्रियों के बारे में भी लागू होती है। मानव के रूप में हम उद्दीपन के एक सीमित सीमा-प्रसार में कार्य करते हैं। हमारे संवेदन ग्राही के ध्यान में आने के लिए उद्दीपक में इष्टतम तीव्रता अथवा परिमाण होना चाहिए। उद्दीपक एवं उनकी संवेदनाओं के बीच के संबंधों का अध्ययन जिस विद्याशाखा में किया जाता है उसे **मनोभौतिकी** (psychophysics) कहते हैं।

ध्यान में आने के लिए उद्दीपक का एक न्यूनतम मान अथवा वज़न होना चाहिए। किसी विशेष संवेदी तंत्र को क्रियाशील करने के लिए जो न्यूनतम मूल्य अपेक्षित होता है उसे **निरपेक्ष सीमा** अथवा **निरपेक्ष देहली** (absolute threshold or absolute limen, AL) कहते हैं। उदाहरण के लिए, यदि आप पानी के एक गिलास में चीनी का एक कण डालें तो हो सकता है कि आपको उस पानी में मिठास का अनुभव न हो। एक कण और मिलाने से भी हो सकता है कि स्वाद मीठा न हो लेकिन यदि आप एक-एक कण डालते जाएँ तो एक बिंदु ऐसा आएगा जब आप कहेंगे कि पानी अब मीठा हो गया है। चीनी के कणों की वह न्यूनतम संख्या जिससे हम पानी में मिठास का अनुभव करते हैं, उसे मिठास की निरपेक्ष सीमा कहते हैं।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि निरपेक्ष सीमा निश्चित बिंदु नहीं होती, बल्कि यह व्यक्तियों की आंगिक दशाओं एवं उनकी अभिप्रेरणात्मक स्थितियों के आधार पर विशेष रूप से सभी व्यक्यिों एवं परिस्थितियों में बदलती रहती है। इसलिए उसका मूल्यांकन हमें कई प्रयासों के आधार पर करना चाहिए। 50 प्रतिशत अवसरों पर चीनी के कणों की जिस संख्या से पानी में मिठास का अनुभव हो सकता है वह मिठास की निरपेक्ष सीमा होगी। यदि आप चीनी के और कणों को मिलाएँ तो इसकी संभावना अधिक है कि पानी प्राय: मीठा ही बताया जाएगा ना कि सादा।

हमारे लिए जैसे सभी उद्दीपकों को जान पाना संभव नहीं होता वैसे ही समस्त प्रकार के उद्दीपकों के मध्य अंतर कर पाना भी संभव नहीं होता है। यह जानने के लिए कि दो उद्दीपक एक दूसरे से भिन्न हैं, उन उद्दीपकों के मान में एक न्यूनतम अंतर होना अनिवार्य है। दो उद्दीपकों के मान में न्यूनतम अंतर, जो उनकी अलग पहचान के लिए आवश्यक होता है, को **भेद सीमा** अथवा **भेद देहली** (difference threshold or difference limen, DL) कहते हैं। इसे

समझने के लिए हम अपने 'चीनी–पानी' वाले प्रयोग को दोहरा सकते हैं। जैसे कि हमने देखा, चीनी के कुछ कणों को मिला देने के बाद सादा पानी मीठा लगने लगता है। आइए, इस मिठास को याद करें। अगला प्रश्न है: पानी में चीनी के कितने और कण मिलाने की आवश्यकता होगी, जिससे मिठास के पिछले अनुभव से भिन्न अनुभव प्राप्त हो। चीनी का एक–एक कण पानी में डालें और प्रत्येक बार पानी का स्वाद चखें। कुछ कणों को मिलाने के बाद आप अनुभव करेंगे कि अब पानी की मिठास पूर्व मिठास से अधिक है। पानी में मिलाए गए चीनी के कणों की संख्या जिससे मिठास का अनुभव पूर्व में हुए मिठास के अनुभव की तुलना में 50 प्रतिशत अवसरों पर भिन्न हो तो उसे मिठास की भेद देहली कहेंगे। इस प्रकार, भौतिक उद्दीपक में वह न्यूनतम परिवर्तन जो 50 प्रतिशत प्रयासों में संवेदन भिन्नता कराने में सक्षम है उसे भेद सीमा कहते हैं।

अब तक आप समझ गए होंगे कि विविध प्रकार के उद्दीपकों (उदाहरण के लिए, चाक्षुष, श्रवण) की निरपेक्ष देहली एवं भेद देहली को समझे बिना संवेदना को समझना संभव नहीं है। परंतु संवेदना को समझने के लिए इनको समझना ही पर्याप्त नहीं है। संवेदी प्रक्रियाएँ केवल उद्दीपकों की विशेषताओं पर ही निर्भर नहीं होती हैं, बल्कि इस प्रक्रिया में ज्ञानेंद्रियाँ एवं इन्हें मस्तिष्क के भिन्न–भिन्न केंद्रों से जोड़ने वाले तंत्रिका मार्ग भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। एक ज्ञानेंद्रिय उद्दीपक ग्रहण करती है तथा विद्युत आवेग के रूप में उसका संकेतन करती है। ध्यान में आने के लिए इस विद्युत आवेग का मस्तिष्क के उच्च केंद्रों तक पहुँचना आवश्यक होता है। ग्राही अंग, दूसरे तंत्रिका मार्ग या संबंधित मस्तिष्क क्षेत्र में किसी भी प्रकार का संरचनात्मक या प्रकार्यात्मक दोष या क्षति संवेदना के आंशिक अथवा पूर्ण लोभ का कारण बन सकता है।

चाक्षुष संवेदना

समस्त संवेदन प्रकारताओं में मानव में दृष्टि सर्वाधिक विकसित होती है। विभिन्न आकलनों के अनुसार हम बाह्य जगत से अपने संव्यवहार में लगभग 80 प्रतिशत इसी का उपयोग करते हैं। बाह्य जगत से सूचनाओं के संग्रह में श्रवण तथा अन्य संवेदनाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। हम दृष्टि तथा श्रवण संवेदना की कुछ विस्तार से चर्चा करेंगे। अन्य संवेदनाओं की मुख्य विशेषताएँ बॉक्स 5.1 में दी गई हैं।

जब प्रकाश हमारी आँखों में प्रवेश करता है तथा हमारे चाक्षुष ग्राहियों को उद्दीप्त करता है तो चाक्षुष संवेदना प्रारंभ होती है। हमारी आँखें प्रकाश के उस वर्णक्रम के प्रति संवेदनशील होती हैं जिसके तरंगदैर्ध्य का परास 380 नैनोमीटर से 780 नैनोमीटर तक होता है (एक नैनोमीटर एक मीटर का एक अरबवाँ भाग होता है)। प्रकाश के इस परास के परे किसी भी संवेदना का पंजीकरण नहीं होता है।

मानव आँख

मानव आँख की एक रेखाकृति, चित्र 5.1 में प्रदर्शित की गई है। जैसा कि आप देख सकते हैं कि हमारी आँख तीन परतों से बनी होती है। बाह्य परत पर एक पारदर्शी **श्वेतपटल** या **कॉर्निया** (cornea) तथा एक कठोर **स्कलीरा** (sclera) होता है जो शेष आँख को घेरे रहता है। यह आँख की रक्षा करता है तथा उसका आकार यथावत् बनाए रखता है। मध्य परत को **रंजित पटल** (choroid) कहते हैं जिसमें बहुत सी रक्त नलिकाएँ पाई जाती हैं। आंतरिक परत को **दृष्टिपटल** या **रेटिना** (retina) कहते हैं। इसमें प्रकाशग्राही (दण्ड एवं शंकु) और अंत:संबंधित तंत्रिका कोशिकाओं का एक विस्तृत जाल पाया जाता है।

आँख की तुलना प्राय: एक कैमरे से की जाती है। उदाहरण के लिए, आँख एवं कैमरा दोनों में एक लेन्स पाया जाता है। **लेन्स** (lens) आँख को दो असमान कोष्ठों में विभाजित करता है – **जलीय कोष्ठ** (aqueous chamber) तथा **काचाभ कोष्ठ** (vitreous chamber)। जलीय कोष्ठ कॉर्निया एवं लेन्स के मध्य में स्थित होता है। यह आकार में छोटा होता है तथा इसमें पानी जैसा द्रव्य भरा रहता है जिसे **नेत्रोद** (aqueous humor) कहते हैं। काचाभ कोष्ठ लेन्स एवं रेटिना के बीच में स्थित होता है। इसमें जेली जैसा प्रोटीन भरा रहता है जिसे **काचाभ द्रव** (vitreous humor) कहते हैं। इन तरलों से लेन्स के उचित स्थान एवं उपयुक्त आकार में बने रहने में सहायता मिलती है। ये समंजन के लिए पर्याप्त नम्यता प्रदान करते हैं। समंजन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके माध्यम से भिन्न–भिन्न दूरियों की वस्तुओं को फोकस करने के लिए लेन्स अपने आकार में परिवर्तन करता है। यह प्रक्रिया **पक्ष्माभिकी पेशियाँ** (ciliary muscles), जो लेन्स से जुड़ी होती हैं, द्वारा संचालित होती है। ये पेशियाँ दूर की वस्तुओं को फोकस करने के लिए लेन्स को फैला देती हैं एवं निकट की वस्तुओं को फोकस करने के लिए लेन्स को

बॉक्स 5.1 अन्य मानवीय संवेदनाएँ

दृष्टि एवं श्रवण के अतिरिक्त अन्य संवेदनाएँ भी होती हैं जो हमारे प्रत्यक्षण को समृद्ध बनाती हैं। उदाहरण के लिए, संतरा केवल अपने रंग के कारण आकर्षक नहीं लगता, बल्कि इसलिए भी कि उसमें एक विशिष्ट सुगंध एवं स्वाद होता है। यहाँ इन अन्य संवेदनाओं का संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है।

1. ***घ्राण** (Smell) : घ्राण संवेदना के उद्दीपक हवा में विद्यमान विभिन्न पदार्थों के अणु होते हैं। ये नासा मार्ग में प्रवेश करते हैं जहाँ वे नम नासा ऊतकों में घुल जाते हैं। यहाँ से वे घ्राण उपकला की ग्राही कोशिकाओं के संपर्क में आते हैं। मानव में इस तरह के लगभग पाँच करोड़ ग्राही पाए जाते हैं जबकि कुत्तों में इस तरह के लगभग 20 करोड़ ग्राही पाए जाते हैं। फिर भी हमारी घ्राण योग्यता प्रभावशाली है। यह ज्ञात है कि मनुष्य लगभग 10,000 प्रकार की विभिन्न गंधों को पहचान सकता है। अन्य इंद्रियों की भाँति घ्राण भी संवेदी अनुकूलन प्रदर्शित करता है।*
2. ***स्वाद** (Taste) : स्वाद के संवेदी ग्राहक हमारी जीभ के छोटे उभरे हुए भाग में पाए जाते हैं, जिन्हें पैपिला या अंकुरक कहते हैं। प्रत्येक पैपिला में स्वाद-कलिका के गुच्छे होते हैं। मनुष्यों में लगभग 10,000 स्वाद-कलिका होती हैं। यद्यपि लोग भोजन की विविध सुगंधों की पहचान कर सकने का दावा करते हैं, परंतु मात्र चार प्रकार के मूल स्वाद होते हैं - मीठा, खट्टा, कड़वा तथा नमकीन। तब यह कैसे संभव होता है कि हम कई और स्वादों का अनुभव करते हैं? इसका उत्तर यह है कि हम केवल भोजन के स्वाद से ही परिचित नहीं होते हैं, बल्कि उसकी गंध, कण, तापमान, जीभ पर उसके दबाव तथा अन्य बहुत-सी संवेदनाओं से परिचित होते हैं। जब ये कारक नहीं रहते हैं तो हमारे पास केवल चार प्रकार के मूल स्वाद होते हैं। इसके अतिरिक्त, विभिन्न सुगंधों के विविध अनुपातों में संयोजन से एक विभिन्न प्रकार की सुगंध का निर्माण होता है, जो अपने आप में विशिष्ट होती है।*
3. ***स्पर्श एवं अन्य त्वचा संवेदनाएँ** (Touch and other skin senses) : त्वचा एक संवेदी अंग है जिससे स्पर्श (दबाव), गर्मी, सर्दी तथा पीड़ा की संवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं। हमारी त्वचा में इनमें से प्रत्येक संवेदनाओं के लिए विशिष्ट ग्राहियाँ होती हैं। स्पर्श के ग्राही हमारी त्वचा पर समान रूप से वितरित नहीं होते हैं। इसलिए, हमारे शरीर के कुछ भाग (जैसे- चेहरा तथा उँगली-त्राण) अन्य भागों (जैसे- पैर) की तुलना में अधिक संवेदनशील होते हैं। पीड़ा की संवेदनाओं का कोई विशिष्ट उद्दीपक नहीं होता है। इसलिए, इसके तंत्रों का निर्धारण बहुत ही कठिन होता है।*
4. ***गति संवेदन तंत्र** (Kinesthetic system) : इसके ग्राही जोड़े, स्नायु तथा मांसपेशियों में पाए जाते हैं। यह तंत्र हमारे शरीर के अंगों की परस्पर स्थिति के विषय में सूचना देता है तथा हमें साधारण (जैसे- अपनी नाक को छूना) तथा जटिल गतिविधियाँ (जैसे- नाचना) करने देता है। इस संदर्भ में हमारी चाक्षुष व्यवस्था अधिक सहायता करती है।*
5. ***प्रघाण तंत्र** (Vestibular system) : यह तंत्र हमारे शरीर की स्थिति, गति एवं त्वरण के बारे में सूचनाएँ देता है। ये कारक हमारे संतुलन-बोध को बनाए रखने के लिए आवश्यक होते हैं। इस इंद्रिय के संवेदी अंग आंतरिक कान में स्थित होते हैं। जहाँ प्रघाण झिल्ली हमारे शरीर की स्थिति के विषय में बताती है, वहीं अर्धवृत्ताकार नलिकाएँ हमारी गति एवं त्वरण के बारे में हमें सूचना देती हैं।*

सिकोड़ देती हैं। एक कैमरे की तरह आँख में भी एक यंत्र होता है जिससे इसमें आने वाले प्रकाश की मात्रा नियंत्रित की जाती है। यह कार्य **परितारिका** (iris) करती है। यह एक चक्र जैसी रंगीन झिल्ली होती है जो कॉर्निया और लेन्स के बीच स्थित होती है। यह आँख में प्रवेश करने वाले प्रकाश की मात्रा का नियंत्रण पुतली के फैलाव को नियमित करके करती है। धुँधले प्रकाश में पुतली फैल जाती है तथा चमकीले प्रकाश में सिकुड़ जाती है।

आँख की सबसे अंदर की परत को **दृष्टिपटल** (retina) कहते हैं। यह पाँच प्रकार की प्रकाशसंवेदी कोशिकाओं से बना होता है जिसमें दण्ड एवं शंकु सबसे महत्वपूर्ण होते हैं। **दंड** (rods) शलाका दृष्टि (रात्रि दृष्टि) के ग्राही होते हैं। ये प्रकाश की निम्न तीव्रता पर कार्य करते हैं तथा इनसे वर्णांध (रंगहीन) दृष्टि मिलती है। **शंकु** (cones) प्रकाशानुकूली (दिवा प्रकाश) दृष्टि के ग्राही होते हैं। ये प्रकाश-व्यवस्था के उच्च स्तर पर सक्रिय होते हैं तथा इनसे वर्ण (रंग) दृष्टि प्राप्त होती है। प्रत्येक आँख में लगभग 10 करोड़ दंड तथा लगभग 70 लाख शंकु पाए जाते हैं। शंकु **गर्तिका** (fovea) के आसपास दृष्टिपटल के केंद्रीय क्षेत्र में सर्वाधिक मात्रा में पाए जाते हैं। गर्तिका मटर के दाने के आकार का एक छोटा-सा

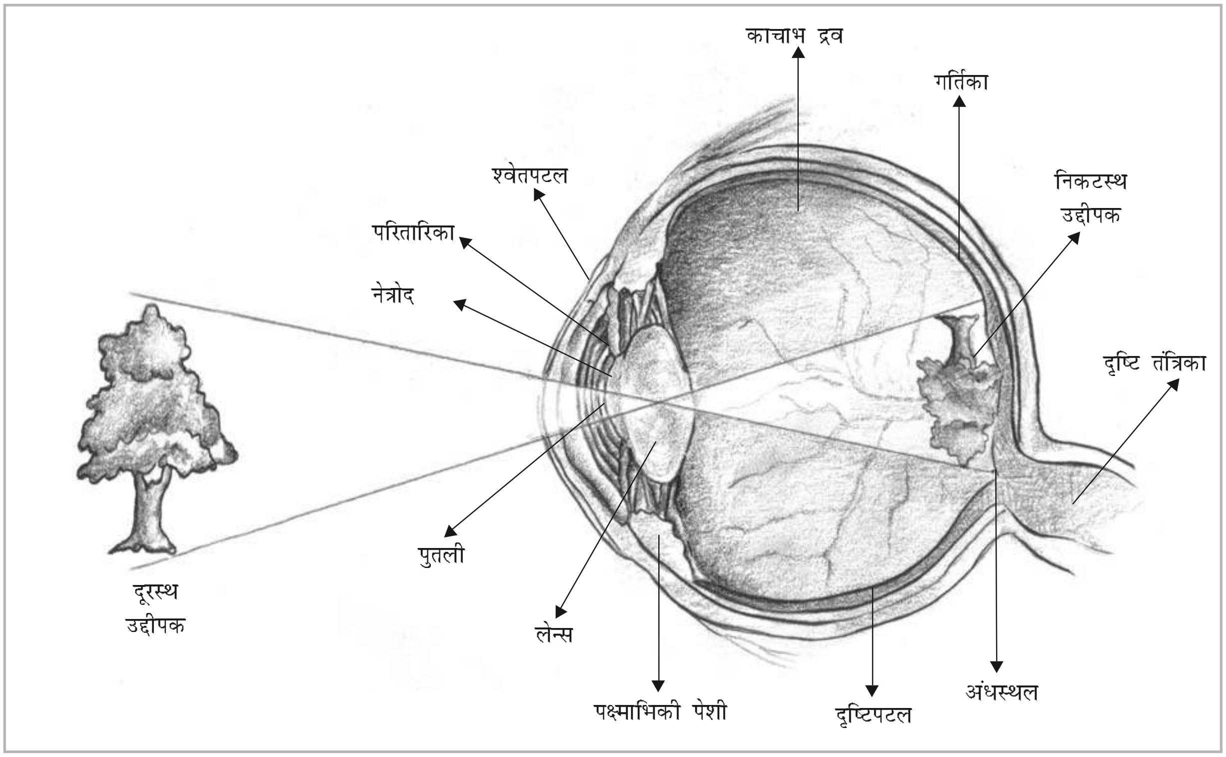

चित्र 5.1 : मानव आँख की संरचना

वृत्ताकार क्षेत्र होता है। इसे **पीत बिंदु** (yellow spot) भी कहते हैं। यह अधिकतम दृष्टि-तीक्ष्णता का क्षेत्र होता है। प्रकाश ग्राहियों के अतिरिक्त रेटिना में कोशिका के बहुत से अक्षतंतु (जिन्हें गुच्छिका कोशिका कहते हैं) पाए जाते हैं, जिनसे **दृष्टि तंत्रिका** (optic nerve) का निर्माण होता है, जो मस्तिष्क तक जाती है।

आँख की क्रियाविधि

नेत्रश्लेष्मला, कॉर्निया तथा पुतली से होकर प्रकाश लेन्स में प्रवेश करता है जो इसे रेटिना पर फोकस करता है। रेटिना दो भागों में विभाजित होता है – नासिकार्ध तथा शंखार्ध। गर्तिका के केंद्र को मध्य बिंदु मान कर आँख के आंतरिक अर्ध भाग (नाक की तरफ) को नासिकार्ध कहा जाता है। गर्तिका के केंद्र से आँख के बाहरी अर्ध भाग (शंख की तरफ) को शंखार्ध कहते हैं। दाहिने चाक्षुष क्षेत्र से प्रकाश प्रत्येक आँख के बाएँ भाग को उद्दीप्त करता है (जैसे- दायीं आँख के नासिकार्ध को और बायीं आँख के शंखार्ध को) तथा बाएँ चाक्षुष क्षेत्र से प्रकाश प्रत्येक आँख के दाएँ अर्ध भाग को उद्दीप्त करता है (जैसे- बायीं आँख के नासिकार्ध को तथा दायीं आँख के शंखार्ध को)। रेटिना पर वस्तु का एक उलटा प्रतिबिंब बनता है। दृष्टि तंत्रिकाओं की सहायता से तंत्रिका आवेग चाक्षुष वल्कुट को भेजा जाता है, जहाँ प्रतिबिंब पुन: उलटा होता है तथा उसका प्रक्रमण किया जाता है। आप चित्र 5.1 में देख सकते हैं कि दृष्टि तंत्रिका दृष्टिपटल को उस क्षेत्र से छोड़ती है जहाँ प्रकाश ग्राही नहीं होते हैं। इस क्षेत्र में चाक्षुष संवेदनशीलता पूर्णत: अनुपस्थित रहती है। इसलिए इसे **अंधस्थल** (blind spot) कहते हैं।

अनुकूलन

मानव आँख प्रकाश तीव्रता के अति विस्तृत परास में कार्य कर सकती है। कभी-कभी हमें प्रकाश स्तरों में द्रुत परिवर्तन को सहन करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, जब हम मैटिनी शो में चलचित्र देखने जाते हैं, तो हॉल में घुसते ही चीज़ों को देख पाना कठिन होता है। फिर, 15-20 मिनट वहाँ बिताने के बाद हम सब कुछ देख सकते हैं। शो देखने के बाद जब हम बाहर आते हैं तो हॉल से बाहर के प्रकाश को हम इतना तीव्र पाते हैं कि कुछ भी दिखाई नहीं देता अथवा कभी-कभी आँख खोले रखने में भी कठिनाई होती है। किंतु लगभग एक मिनट

के भीतर हमें ठीक लगने लगता है और हम चीज़ों को ठीक से देख पाने में समर्थ होते हैं। यह समंजन हॉल में घुसने पर किए गए समंजन से तीव्र होता है। प्रकाश की विभिन्न तीव्रताओं के साथ समंजन करने की प्रक्रिया को 'चाक्षुष अनुकूलन' कहते हैं।

प्रकाश अनुकूलन (light adaptation) का संबंध मंद प्रकाश के प्रभावन के बाद तीव्र प्रकाश से समायोजन की प्रक्रिया से है। इस प्रक्रिया में एक से दो मिनट का समय लगता है। दूसरी ओर, **तम-व्यनुकूलन** (dark adaptation) तीव्र प्रकाश के प्रभावन के बाद मंद प्रकाश वाले वातावरण से समायोजन की प्रक्रिया से संबंधित है। इसमें आधा घंटा अथवा प्रकाश के प्रति आँख के प्रभावन के पूर्व स्तर पर निर्भर होने के कारण उससे भी अधिक समय लग सकता है। इन प्रक्रियाओं को सरल बनाने की कुछ विधियाँ हैं। आपको इस प्रक्रिया से अवगत कराने के लिए एक रोचक क्रियाकलाप नीचे दिया गया है।

क्रियाकलाप 5.1

प्रकाशित क्षेत्र से एक अंधेरे कमरे में जाइए और देखिए कि वहाँ की सभी चीज़ों को ठीक से देखने में आपको कितना समय लगता है।

अगली बार जब आप प्रकाशित स्थान में हों तो लाल धूप का चश्मा पहन लीजिए। उसके बाद किसी अंधेरे कमरे में जाइए और देखिए कि चीज़ों को साफ़-साफ़ देखने में आपको कितना समय लगता है।

आप पाएँगे कि लाल धूप के चश्मे के उपयोग से तम-व्यनुकूलन में लगने वाले समय में बहुत अधिक कमी आ गई है।

क्या आप जानते हैं कि ऐसा क्यों घटित हुआ? आप अपने मित्रों एवं शिक्षक से चर्चा कीजिए।

प्रकाश एवं अंधकार अनुकूलन के प्रकाश-रासायनिक आधार : आपको आश्चर्य हो सकता है कि प्रकाश अनुकूलन एवं तम-व्यनुकूलन क्यों घटित होते हैं। प्राचीन मत के अनुसार, प्रकाश अनुकूलन एवं तम-व्यनुकूलन कुछ प्रकाश-रासायनिक प्रक्रियाओं के कारण घटित होते हैं। दंडों में एक प्रकाश-संवेदनशील रासायनिक पदार्थ होता है जिसे *रोडोप्सिन* या चाक्षुष पर्पल कहते हैं। प्रकाश की क्रिया से इस रासायनिक पदार्थ के अणु विरंजित हो जाते हैं अथवा टूट जाते हैं। इन दशाओं में आँख में प्रकाश अनुकूलन की क्रिया घटित होती है। दूसरी ओर, तम-व्यनुकूलन प्रकाश को हटा देने पर होता है। उसमें विटामिन 'ए' की सहायता से दंडों में वर्णक पुनरुत्पादित करने के लिए पुन:स्थापन की प्रक्रिया होती है। यही कारण है कि प्रकाश अनुकूलन की तुलना में तम-व्यनुकूलन की प्रक्रिया धीमी होती है। ऐसा पाया गया है कि जिन लोगों में विटामिन 'ए' की कमी होती है उनमें तम-व्यनुकूलन बिलकुल नहीं हो पाता है और वे अंधकार में चल-फिर नहीं सकते हैं। इस स्थिति को प्राय: निशांधता (रतौंधी) कहते हैं। इसी प्रकार शंकुओं में पाए जाने वाले रासायनिक पदार्थ को *आयोडोप्सिन* कहते हैं।

रंग दृष्टि

पर्यावरण के साथ अंत:क्रिया करते समय हम विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का ही नहीं, बल्कि उनके वर्णों (रंगों) का भी अनुभव करते हैं। ध्यातव्य है कि रंग हमारे संवेदी अनुभवों की एक मनोवैज्ञानिक विशेषता होते हैं। जब हमारा मस्तिष्क बाह्य जगत से प्राप्त सूचनाओं की व्याख्या करता है, तब यह विशेषता उत्पन्न होती है। यह जानना आवश्यक है कि प्रकाश का वर्णन भौतिक रूप में तरंगदैर्ध्य के रूप में किया जाता है, रंग के रूप में नहीं। जैसा कि हमने पहले पढ़ा है, दृश्य स्पेक्ट्रम का ऊर्जा-परास 380-780 नैनोमीटर होता है जिसका हमारे प्रकाशग्राही पता लगा सकते हैं। दृश्य स्पेक्ट्रम से कम या अधिक ऊर्जा आँखों के लिए हानिकारक होती है। सूर्य के प्रकाश में इन्द्रधनुष की तरह सात रंगों का मिश्रण होता है। प्रेक्षित रंग वायलेट, इंडिगो, ब्लू, ग्रीन, येलो, ऑरेंज तथा रेड (संक्षेप में VIBGYOR) होते हैं।

रंगों की विमाएँ

सामान्य वर्ण-दृष्टि का एक व्यक्ति 70 लाख से अधिक विभिन्न रंगों की छटाओं में अंतर कर सकता है। हमारे रंगों के अनुभव का वर्णन तीन मूल विमाओं के रूप में किया जा सकता है। ये विमाएँ हैं- वर्ण, संतृप्ति एवं द्युति। **वर्ण** (hue) रंगों का ही एक गुण है। सरल शब्दों में, यह रंगों के नाम बताता है; जैसे- लाल, नीला तथा हरा। वर्ण तरंगदैर्ध्य के अनुसार घटता-बढ़ता रहता है तथा प्रत्येक रंग की पहचान विशिष्ट तरंगदैर्ध्य के आधार पर होती है। उदाहरण के लिए, नीले रंग का तरंगदैर्ध्य 465 नैनोमीटर तथा हरे रंग का तरंगदैर्ध्य 500 नैनोमीटर होता है। अवर्णक रंग; जैसे- काला, सफ़ेद एवं भूरा वर्ण के आधार पर नहीं पहचाने जाते हैं। **संतृप्ति** (saturation) एक मनोवैज्ञानिक गुण है जो किसी सतह अथवा वस्तु के वर्ण की सापेक्ष मात्रा से संबंधित होती

है। एक तरंगदैर्ध्य का प्रकाश (एकवर्णी) अधिक संतृप्त प्रतीत होता है। जब हम कई तरंगदैर्ध्यों का मिश्रण करते हैं तो संतृप्ति की मात्रा घट जाती है। भूरा रंग पूर्णतया असंतृप्त होता है। **द्युति** (brightness) प्रकाश की प्रत्यक्षित तीव्रता होती है। यह वर्ण एवं अवर्णक दोनों रंगों के आधार पर बदलती रहती है। सफ़ेद एवं काला रंग द्युति विमा के शीर्ष एवं तल को प्रदर्शित करते हैं। सफ़ेद रंग में द्युति की मात्रा सबसे अधिक होती है, जबकि काले रंग में द्युति की मात्रा सबसे कम होती है।

रंग मिश्रण

रंगों में एक रोचक संबंध होता है। वे पूरक युग्मों का निर्माण करते हैं। सही अनुपात में मिश्रित करने के बाद पूरक रंग अवर्णक भूरा या सफ़ेद रंग उत्पन्न करते हैं। पूरक रंगों के उदाहरण हैं - लाल-हरा तथा पीला-नीला। लाल, हरा एवं नीला **मूल रंग** (primary colours) कहलाते हैं क्योंकि मिश्रित करने पर इन तीन रंगों के प्रकाश से कोई भी रंग बन सकता है। सबसे सामान्य उदाहरण टेलीविज़न की स्क्रीन है। उसमें नीले, लाल एवं हरे रंग के धब्बे पाए जाते हैं। इन तीन रंगों के संयोजनों से विभिन्न रंग एवं उनकी छटाएँ उत्पन्न होती हैं, जिन्हें हम टेलीविज़न की स्क्रीन पर देखते हैं।

उत्तर प्रतिमाएँ

यह दृष्टि संवेदनाओं से संबंधित एक बहुत ही रोचक गोचर है। दृष्टि क्षेत्र से चाक्षुष उद्दीपक के हट जाने के बाद भी उस उद्दीपक का प्रभाव कुछ समय तक बना रहता है। इसी प्रभाव को उत्तर प्रतिमा कहते हैं। उत्तर प्रतिमाएँ सम एवं विषम होती हैं। **सम उत्तर प्रतिमाएँ** (positive after images) वर्ण, संतृप्ति एवं द्युति के रूप में मूल उद्दीपक के सदृश होती हैं। तम-व्यनुकूलित आँखों के संक्षिप्त तीव्र उद्दीपन के बाद सामान्यतया ये घटित होती हैं। दूसरी ओर, **विषम उत्तर प्रतिमाएँ** (negative after images) पूरक रंगों में दिखाई देती हैं। जब कोई व्यक्ति एक विशेष रंग के धब्बे पर कम से कम 30 सेकण्ड तक ध्यान देता है और उसके बाद किसी तटस्थ पृष्ठभूमि (जैसे- सफ़ेद अथवा भूरी सतह) पर अपना ध्यान स्थानांतरित करता है तो ये प्रतिमाएँ उत्पन्न होती हैं। यदि व्यक्ति नीले रंग को देखता है तो विषम उत्तर प्रतिमा पीले रंग की होगी। इसी प्रकार, लाल रंग के उद्दीपक से हरे रंग की विषम उत्तर प्रतिमा उत्पन्न होगी।

श्रवण संवेदना

श्रवण भी एक महत्वपूर्ण संवेदन प्रकारता है। यह हमें विश्वसनीय स्थानिक सूचना देती है। किसी वस्तु अथवा व्यक्ति की तरफ मोड़ने के अतिरिक्त यह भाषित संप्रेषण में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती है। श्रवण संवेदना तब प्रारंभ होती है जब ध्वनि हमारे कान में प्रवेश करती है तथा सुनने के प्रमुख अंगों को उद्दीप्त करती है।

मानव कान

कान श्रवण उद्दीपकों का प्राथमिक ग्राही है। यद्यपि इसका सर्वज्ञात प्रकार्य सुनना है, किंतु यह शरीर-संतुलन को बनाए रखने में भी हमारी सहायता करता है। कान की संरचना तीन खंडों में विभक्त है- बाह्य कान, मध्य कान एवं आंतरिक कान (चित्र 5.2)।

बाह्य कान : इसमें दो प्रमुख संरचनाएँ होती हैं, इनके नाम कर्णपालि (पिन्ना) एवं *श्रवण-द्वार* हैं। पिन्ना उपास्थि की कीपदार संरचना होती है जो परिवेश से ध्वनि तरंगों को एकत्रित करती है। श्रवण-द्वार एक नलिका होती है जो बाल एवं मोम द्वारा रक्षित होती है। यह ध्वनि तरंगों को पिन्ना से *कर्ण पटह* तक ले जाती है।

मध्य कान : मध्य कान टिम्पैनम (कर्ण पटल) से प्रारंभ होता है, जो ध्वनि-कंपन के प्रति अति संवेदनशील एक पतली झिल्ली होती है। उसके बाद *टिम्पैनिक-गुहिका* होती है। यह *यूस्टेकी नली,* जो टिम्पैनिक गुहिका में वायु-दाब को बनाए रखती है, की सहायता से ग्रसनी से जुड़ी होती है। गुहिका से कंपन तीन अस्थिकाओं, जिन्हें *मैलियस* (मुग्दरक), *इनकस* (एन्विल) तथा *स्टेप्स* (स्टिरप) कहते हैं, से गुजरती है। यह ध्वनि कंपन की तीव्रता को लगभग 10 गुना बढ़ा देती है तथा उन्हें आंतरिक कान तक पहुँचाती है।

आंतरिक कान : आंतरिक कान की एक जटिल संरचना होती है जिसे झिल्लीदार-गहन कहते हैं, जो एक अस्थियुक्त आवरण (अस्थियुक्त-गहन) में रहता है। लसीका जैसा द्रव अस्थियुक्त-गहन एवं झिल्ली-गहन के बीच की जगह में पाया जाता है जिसे *परिलसीका* कहते हैं।

अस्थियुक्त-गहन में एक-दूसरे से समकोण पर तीन **अर्धवृत्ताकार नलिकाएँ** (semicircular canals), एक गुहिका जिसे **प्रघाण** (vestibule) कहते हैं तथा एक कुंडलित संरचना जिसे **कर्णावर्त** (cochlea) कहते हैं, होती

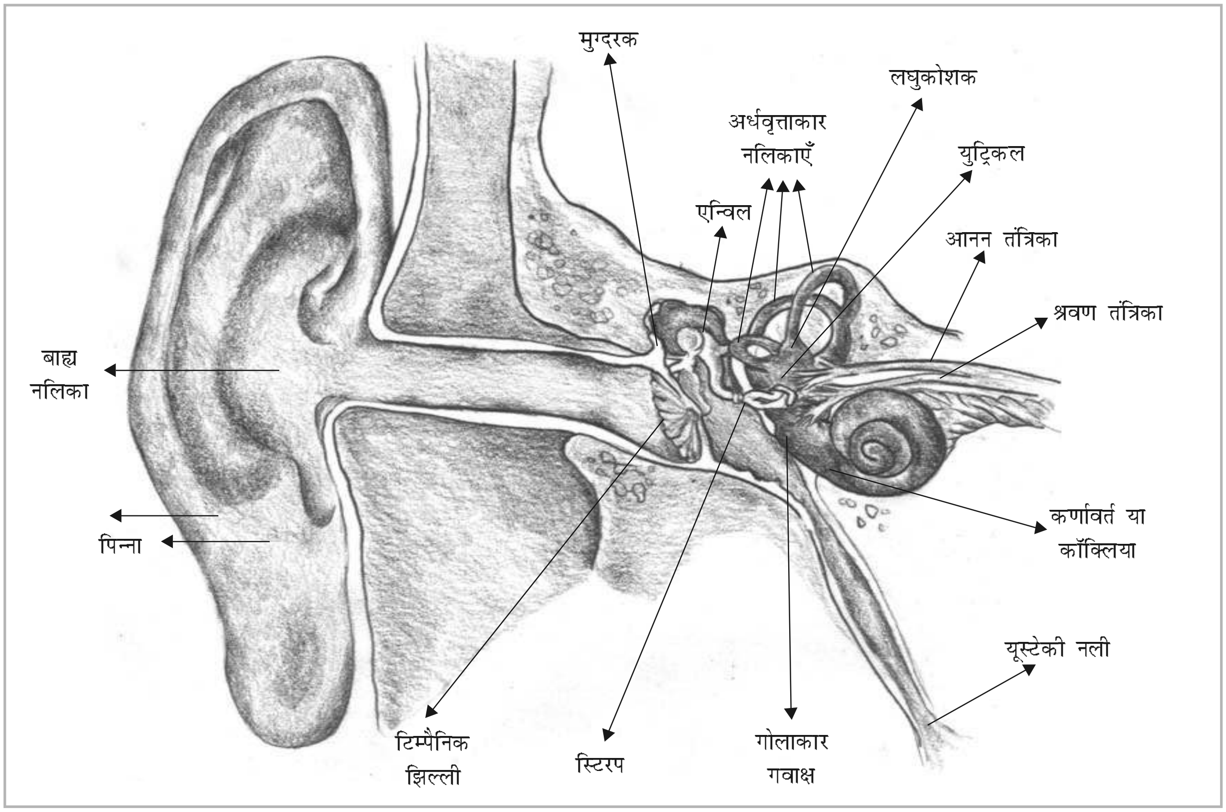

चित्र 5.2 : मानव कान की संरचना

हैं। अर्धवृत्ताकार नलिकाओं में सूक्ष्म लोम कोशिकाएँ होती हैं जो शरीर की संस्थिति में होने वाले परिवर्तनों एवं शरीर अभिविन्यास के प्रति अति संवेदनशील होती हैं। अस्थियुक्त कॉक्लिया के अंदर एक झिल्लीदार कॉक्लिया होता है जिसे **स्काला मीडिया** (scala media) कहते हैं। इसमें अंतर्लसीका भरा होता है तथा उसमें एक सर्पिल कुंडलित झिल्ली होती है जिसे **आधार झिल्ली** (basilar membrane) कहते हैं। इसमें सूक्ष्म लोम कोशिकाएँ एक शृंखला में व्यवस्थित होकर **कोर्ती अंग** (organ of corti) का निर्माण करती हैं। यही श्रवण का मुख्य अंग है।

कान की क्रियाविधि

पिन्ना ध्वनि कंपन को एकत्रित करती है तथा उसे श्रवण द्वार द्वारा कर्ण पटह तक पहुँचाती है। टिम्पैनिक गुहिका से कंपन तीन छोटी-छोटी अस्थिकाओं को स्थानांतरित होता है, जो उसकी शक्ति में वृद्धि करके उसे आंतरिक कान तक पहुँचाती हैं। आंतरिक कान के अंदर कॉक्लिया ध्वनि तरंगों को ग्रहण करता है। कंपन द्वारा अंतर्लसीका गतिमान होता है जो कोर्ती अंग में भी कंपन पैदा करता है। अंत में, आवेग श्रवण तंत्रिका को भेजा जाता है, जो कॉक्लिया के धरातल पर उत्पन्न होता है तथा श्रवण वल्कुट को जाता है जहाँ आवेग की व्याख्या होती है।

ध्वनि एक उद्दीपक के रूप में

हम सभी जानते हैं कि ध्वनि कान के लिए उद्दीपक होती है। बाह्य वातावरण में दाब विभिन्नता के कारण यह उत्पन्न होती है। कोई भी भौतिक गति आस-पास के माध्यम (जैसे- वायु) में बाधा उत्पन्न करती है तथा वायु अणुओं को आगे-पीछे करती रहती है। इससे दाब में परिवर्तन होता है, जो ध्वनि तरंगों के रूप में बाहर की तरफ फैलता है तथा 1100 फुट प्रति सेकण्ड की गति से चलता है। किसी तालाब में एक पत्थर फेंकने से जो लहरें उठती हैं, उसी प्रकार ये परिवर्तन तरंगों में चलते हैं। जब ये ध्वनि तरंगें हमारे कान से टकराती हैं, तो ये यांत्रिक दाब परिवर्तनों का एक सेट प्रारंभ करती हैं जो अंततः श्रवण ग्राहियों को उद्दीप्त करता है।

सरलतम प्रकार की ध्वनि तरंग वह होती है जो एकल पुनरावृत्ति साइन तरंग के रूप में समय के साथ-साथ दाब में आनुक्रमिक परिवर्तन करती है (चित्र 5.3)। ध्वनि तरंगों का

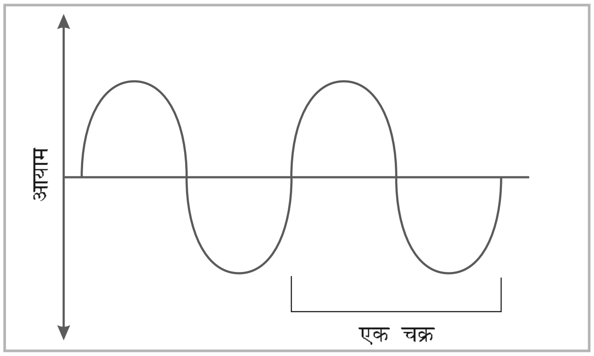

चित्र 5.3 : ध्वनि तरंग

आयाम (amplitude) एवं तरंगदैर्ध्य भिन्न-भिन्न हो सकता है। आयाम उद्दीपक के परिमाण का एक सामान्य माप होता है। यह दाब में परिवर्तन की मात्रा होती है अर्थात अणुओं की अपनी मूल स्थिति से विस्थापन की सीमा। चित्र 5.3 में ध्वनि तरंगों के आयाम को उनके माध्य स्थिति से शृंग अथवा चरम-विवृति बिंदु की दूरी के रूप में दर्शाया गया है। **तरंगदैर्ध्य** (wavelength) दो शृंगों के मध्य की दूरी होती है। ध्वनि तरंगों का निर्माण मूल रूप से वायु कणों के वैकल्पिक संपीडन एवं विसंपीडन (विरलन) के कारण होता है। संपीडन से विरलन एवं पुन: विरलन से संपीडन के कारण दाब में पूर्ण परिवर्तन से एक तरंग चक्र का निर्माण होता है।

ध्वनि तरंगों का वर्णन उनकी आवृत्ति के रूप में किया जाता है, जिन्हें चक्र प्रति सेकण्ड में मापा जाता है। इसकी इकाई को हर्ट्ज़ (hertz अथवा Hz) कहा जाता है। आवृत्ति एवं तरंगदैर्ध्य में प्रतिलोम संबंध होता है, अर्थात वे एक-दूसरे के विपरीत होते हैं। जब तरंगदैर्ध्य में वृद्धि होती है तो आवृत्ति घटती है और जब तरंगदैर्ध्य घटती है तो आवृत्ति में वृद्धि होती है। आयाम एवं आवृत्ति दोनों भौतिक विशेषताएँ हैं। इसके अतिरिक्त ध्वनि की तीन मनोवैज्ञानिक विमाएँ होती हैं - ध्वनि की तीव्रता, तारत्व और स्वर विशेषता।

ध्वनि की **तीव्रता** (loudness) उसके आयाम से निर्धारित होती है। ध्वनि तरंगें जिनका आयाम अधिक होता है वे अधिक तीव्र तथा जिनका आयाम कम होता है वे कम तीव्र या धीमी सुनाई पड़ती हैं। ध्वनि की तीव्रता डेसिबेल (db) में मापी जाती है। **तारत्व** (pitch) का संबंध ध्वनि की उच्चता अथवा न्यूनता से होता है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त होने वाले सात स्वर अपने तारत्व को क्रमिक वृद्धि के रूप में प्रदर्शित करते हैं। आवृत्ति ध्वनि तरंगों के तारत्व को निर्धारित करती है। आवृत्ति उच्च होने पर तारत्व भी उच्च होती है। श्रवण का परास सामान्यतया 20 हर्ट्ज़ से 20 हजार हर्ट्ज़ तक होता है। **ध्वनिगुण** (timbre) का संबंध ध्वनि की प्रकृति या गुणवत्ता से होता है। उदाहरण के लिए, एक कार के इंजन की ध्वनि तथा एक व्यक्ति के बातचीत करने की ध्वनि विशेषता अथवा ध्वनिगुण के आधार पर भिन्न होती है। ध्वनिगुण अपनी ध्वनि तरंगों की जटिलता को प्रदर्शित करते हैं। प्राकृतिक पर्यावरण में पाई जाने वाली अधिकांश ध्वनियाँ जटिल होती हैं।

क्रियाकलाप 5.2

दृष्टि एवं श्रवण को सामान्यतया सबसे महत्वपूर्ण संवेदनाएँ माना जाता है। यदि इनमें से कोई एक आपके पास न रहे तो आपका जीवन कैसा होगा? किसके समाप्त होने अथवा नहीं रहने को आप अधिक अभिघातज मानेंगे? क्यों? विचार करें और लिखें।

यदि आप जादू-टोने से अपनी किसी एक संवेदना के निष्पादन में सुधार कर सकें, तो आप किसमें सुधार करना चाहेंगे? क्यों? क्या आप जादू-टोने के बिना इस एक संवेदना के निष्पादन में सुधार कर सकते हैं? सोचिए और लिखिए।

अपने अध्यापक से चर्चा कीजिए।

अवधानिक प्रक्रियाएँ

पिछले खंड में हमने कुछ संवेदी प्रकारताओं की चर्चा की है जो बाह्य जगत एवं हमारी आंतरिक व्यवस्था से सूचनाएँ संग्रह करने में हमारी सहायता करती हैं। अनेक प्रकार के उद्दीपक हमारी ज्ञानेंद्रियों से एक ही समय में टकराते रहते हैं, परंतु हम एक ही साथ सब पर ध्यान नहीं दे पाते हैं। उनमें से कुछ पर ही हम ध्यान दे पाते हैं। उदाहरण के लिए, जब आप अपनी कक्षा में प्रवेश करते हैं तो आपका सामना अनेक चीज़ों; जैसे- दरवाजा, दीवार, खिड़की, दीवार पर टंगे चित्र, मेज़, कुर्सी, विद्यार्थी, उनके बैग तथा पानी की बोतल आदि से होता है। परंतु इनमें से आप चयनात्मक रूप से एक समय में एक या दो चीज़ों पर ही ध्यान दे पाते हैं। *वह प्रक्रिया जिसके आधार पर उद्दीपक समूह से कुछ उद्दीपकों का चयन किया जाता है, उसी को सामान्यतया अवधान कहा जाता है।*

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि चयन के अतिरिक्त, अवधान अन्य गुणों; जैसे- सतर्कता, एकाग्रता तथा खोज आदि

से भी संबंधित होता है। सतर्कता का आशय व्यक्ति की तत्परता से होता है जिससे वह अपने समक्ष आए उद्दीपक का सामना करता है। अपने विद्यालय की दौड़ में भाग लेते समय, आपने दौड़ प्रारंभ होने वाली रेखा पर प्रतिभागियों को दौड़ने के लिए सीटी बजने की प्रतीक्षा में सतर्क स्थिति में देखा होगा। एक समय में कुछ विशेष वस्तुओं के बोध के लिए अन्य वस्तुओं को दृष्टि से बाहर रखते हुए उस पर ध्यान केंद्रित करने की प्रक्रिया को एकाग्रता कहते हैं। उदाहरण के लिए, कक्षा में विद्यार्थी शिक्षक के भाषण पर ध्यान देते हैं तथा विद्यालय के विभिन्न भागों से आते सभी प्रकार के शोरगुल पर वे ध्यान नहीं देते हैं। खोज एक दशा होती है जिसमें प्रेक्षक वस्तुओं के समुच्चय में से उसके कुछ विशिष्ट उपसमुच्चयों पर ध्यान देता है। उदाहरण के लिए, जब आप अपने छोटे भाई या बहन को विद्यालय से लेने जाते हैं तो अनेक लड़के-लड़कियों में आप मात्र उन्हें ही देखते हैं। इस तरह के क्रियाकलापों के लिए लोगों को कुछ प्रयास करना पड़ता है। इस अर्थ में अवधान 'प्रयास नियतन' है।

अवधान का एक केंद्र और एक किनारा होता है। जब जानकारी का क्षेत्र किसी विशेष वस्तु या घटना पर केंद्रित होता है तब उसे अवधान का केंद्र या केंद्र बिंदु कहते हैं। इसके विपरीत जब वस्तुएँ या घटनाएँ जानकारी के केंद्र से दूर होती हैं और किसी व्यक्ति को उसकी जानकारी मात्र धुँधले रूप से होती है तब उसको अवधान के किनारे पर स्थित कहा जाता है।

अवधान को विविध प्रकार से वर्गीकृत किया गया है। एक प्रक्रिया-उन्मुख विचार इसे दो प्रकारों में विभाजित करता है - **चयनात्मक** (selective) और **संधृत** (sustained)। अब हम इन दो प्रकार के अवधानों की मुख्य विशेषताओं की संक्षेप में चर्चा करेंगे। कभी-कभी हम एक ही समय में दो भिन्न क्रियाकलापों पर ध्यान दे सकते हैं। जब ऐसा होता है तब हम इसे **विभक्त अवधान** (divided attention) कहते हैं। बॉक्स 5.2 में यह वर्णन किया गया है कि कब और कैसे अवधान का विभाजन संभव होता है।

चयनात्मक अवधान

चयनात्मक अवधान का संबंध मुख्यत: अनेक उद्दीपकों में से कुछ सीमित उद्दीपकों अथवा वस्तुओं के चयन से होता है। हमने पहले ही बताया है कि हमारे प्रात्यक्षिक तंत्र में सूचनाओं को प्राप्त करने एवं उनका प्रक्रमण करने की सीमित क्षमता होती है। इसका अर्थ यह है कि एक विशेष समय में वे मात्र कुछ उद्दीपकों पर ही ध्यान दे सकते हैं। प्रश्न यह है कि इनमें से किन उद्दीपकों का चयन और प्रक्रमण होगा। मनोवैज्ञानिकों ने उद्दीपकों के चयन को निर्धारित करने वाले अनेक कारकों का पता लगाया है।

चयनात्मक अवधान को प्रभावित करने वाले कारक

चयनात्मक अवधान को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। ये सामान्यतया उद्दीपकों की विशेषताओं तथा व्यक्तियों की विशेषताओं से संबंधित होते हैं। इन्हें सामान्यतया 'बाह्य' एवं 'आंतरिक' कारकों में वर्गीकृत किया जाता है।

बाह्य कारक (external factors) उद्दीपकों के लक्षणों से संबंधित होते हैं। अन्य चीज़ों के स्थिर होने पर उद्दीपकों के

बॉक्स 5.2 विभक्त अवधान

अपने दैनंदिन जीवन में हमारा एक ही समय में अनेक चीज़ों से सामना होता है। आपने कार चलाते हुए लोगों को अपने मित्र से बात करते हुए या मोबाइल फोन पर बात करते हुए अथवा चश्मा लगाते हुए अथवा संगीत सुनते हुए देखा होगा। यदि आप उन्हें निकट से देखें तो पता चलेगा कि वे अन्य क्रियाकलापों की तुलना में कार चलाने पर अधिक ध्यान दे रहे होते हैं, यद्यपि अन्य क्रियाकलापों पर भी कुछ ध्यान दिया जाता है। इससे समझ में आता है कि कुछ निश्चित दशाओं में एक से अधिक क्रियाकलापों पर एक ही समय में अधिक ध्यान दिया जा सकता है। यद्यपि ऐसा बहुत ही अभ्यस्त क्रियाकलापों के संदर्भ में ही संभव हो पाता है, क्योंकि वे लगभग स्वचालित हो जाती हैं तथा नए अथवा कम अभ्यस्त क्रियाकलापों की तुलना में उन पर कम ध्यान की आवश्यकता होती है।

स्वचालित प्रक्रमण *की तीन प्रमुख विशेषताएँ होती हैं- (1) यह बिना किसी अभिप्राय के घटित होता है, (2) यह अचेतन रूप से घटित होता है, (3) इसमें विचार प्रक्रियाओं की आवश्यकता अल्प अथवा बिलकुल नहीं होती है (उदाहरणार्थ, इन क्रियाकलापों पर विचार किए बिना हम शब्दों को पढ़ सकते हैं अथवा जूतों के फीते बाँध सकते हैं)।*

आकार, तीव्रता तथा गति अवधान के प्रमुख निर्धारक होते हैं। बड़ा, द्युतिमान तथा गतिशील उद्दीपक हमारे अवधान में शीघ्रता से आ जाता है। जो उद्दीपक नए होते हैं तथा सामान्य रूप से जटिल होते हैं वे भी सरलतापूर्वक हमारे अवधान में आ जाते हैं। अध्ययनों से ज्ञात है कि मनुष्य के फोटोचित्र अन्य निर्जीव वस्तुओं के फोटोचित्रों की तुलना में हमारे ध्यान में शीघ्रता से आ जाते हैं। इसी प्रकार, शाब्दिक कथनों की तुलना में लयबद्ध श्रवण उद्दीपक शीघ्रता से उद्दीप्त होते हैं। अवधान के लिए, आकस्मिक एवं तीव्र उद्दीपकों में ध्यानाकर्षण की अद्भुत क्षमता होती है।

आंतरिक कारक (internal factors) व्यक्ति के अंदर पाए जाते हैं। इन्हें दो मुख्य श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है; जैसे- अभिप्रेरणात्मक कारक तथा संज्ञानात्मक कारक। **अभिप्रेरणात्मक कारकों** (motivational factors) का संबंध हमारी जैविक एवं सामाजिक आवश्यकताओं से होता है। जब हम भूखे होते हैं तो भोजन की हलकी गंध को भी हम सूँघ लेते हैं। जिस विद्यार्थी को परीक्षा देनी होती है, वह परीक्षा न देने वाले विद्यार्थी की तुलना में शिक्षक के भाषण पर अधिक ध्यान केंद्रित करता है। **संज्ञानात्मक कारकों** (cognitive factors) के अंतर्गत अभिरुचि, अभिवृत्ति तथा पूर्वविन्यास आदि कारक आते हैं। वस्तुएँ अथवा घटनाएँ, जो रुचिकर होती हैं, व्यक्तियों के ध्यान में शीघ्रतापूर्वक आती हैं। इसी प्रकार, जिन वस्तुओं अथवा घटनाओं के प्रति हम अनुकूल दृष्टि से रुचि लेते हैं उन पर शीघ्रतापूर्वक ध्यान देते हैं। पूर्वविन्यास एक मानसिक स्थिति उत्पन्न करता है जो एक निश्चित दिशा में कार्य करने को प्रेरित करती है। यह तत्परता भी उत्पन्न करती है जिससे व्यक्ति एक विशेष उद्दीपक के प्रति अनुक्रिया करने को उन्मुख होता है, अन्य के प्रति नहीं।

चयनात्मक अवधान के सिद्धांत

चयनात्मक अवधान की प्रक्रिया की व्याख्या के लिए अनेक सिद्धांतों का विकास हुआ है। हम इनमें से तीन सिद्धांतों की संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

निस्यंदक सिद्धांत का विकास ब्रॉडबेन्ट (Broadbent, 1956) ने किया था। इस सिद्धांत के अनुसार, अनेक उद्दीपक एक ही साथ हमारे ग्राहियों के पास पहुँचते हैं और गत्यवरोध की स्थिति उत्पन्न करते हैं। अल्पकालिक स्मृति तंत्र से होते हुए वे चयनात्मक निस्यंदक के पास पहुँचते हैं, जो उनमें से केवल एक उद्दीपक को ही उच्च स्तरीय प्रक्रमण के लिए भेजता है। अन्य उद्दीपकों की छँटाई उसी समय हो जाती है। इस तरह हम मात्र उसी एक उद्दीपक को जान पाते हैं जो चयनात्मक निस्यंदक से होकर आता है।

निस्यंदक क्षीणन सिद्धांत का विकास ट्रायसमैन (Triesman, 1962) ने ब्रॉडबेन्ट के सिद्धांत को संशोधित करके किया था। इस सिद्धांत के अनुसार, जो उद्दीपक एक विशेष समय में चयनात्मक निस्यंदक से नहीं जा पाते हैं वे पूर्णत: अवरुद्ध नहीं होते हैं। निस्यंदक मात्र उनकी शक्ति को दुर्बल कर देता है। इसलिए कुछ उद्दीपक चयनात्मक निस्यंदक से निकल कर प्रक्रमण के उच्च स्तर तक पहुँच जाते हैं। यह बताया गया है कि वैयक्तिक रूप से सार्थक उद्दीपक (जैसे- सामूहिक भोज में किसी का नाम) बहुत धीमी ध्वनि के बाद भी सुन लिए जाते हैं। ऐसे उद्दीपक यद्यपि बड़े दुर्बल होते हैं फिर भी कभी-कभी चयनात्मक निस्यंदक से निकल कर अनुक्रिया दे सकते हैं।

बहुविधिक सिद्धांत का विकास जॉन्सटन एवं हिन्ज़ (Johnston & Heinz, 1978) ने किया था। यह सिद्धांत मानता है कि अवधान एक लचीला तंत्र है जो अन्य उद्दीपकों की तुलना में किसी एक उद्दीपक का चयन तीन अवस्थाओं पर करता है। पहली अवस्था में उद्दीपक का संवेदी प्रतिरूपण (जैसे- चाक्षुष प्रतिमाएँ) निर्मित होता है; दूसरी अवस्था में आर्थी प्रतिरूपण (जैसे- वस्तुओं के नाम) निर्मित होता है तथा तीसरी अवस्था में संवेदी एवं आर्थी प्रतिरूपण हमारी चेतना में प्रवेश करता है। यह भी माना जाता है कि जब संदेशों का चयन अवस्था प्रक्रमण (पूर्व चयन) के आधार पर होता है तो कम मानसिक प्रयास की आवश्यकता पड़ती है और जब संदेशों का चयन अवस्था तीन प्रक्रमण (उत्तर चयन) के आधार पर होता है तो अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है।

संधृत अवधान

जहाँ चयनात्मक अवधान मुख्यत: उद्दीपकों के चयन से संबंधित होता है वहीं संधृत अवधान का संबंध एकाग्रता से होता है। यह हमारी उस योग्यता से संबंधित होता है जिससे हम अपना ध्यान किसी वस्तु अथवा घटना पर देर तक बनाए रखते हैं। इसे 'सतर्कता' भी कहते हैं। कभी-कभी लोगों को एक विशेष कार्य पर घंटों तक ध्यान देना पड़ता है। हवाई यातायात नियंत्रक एवं रेडार रीडर इस गोचर के उत्तम उदाहरण हैं। उन्हें

बॉक्स 5.3 अवधान विस्तृति

हमारे अवधान में उद्दीपकों को ग्रहण करने की क्षमता सीमित होती है। वस्तुओं की संख्या, जिन पर कोई व्यक्ति बहुत कम समय (सेकण्ड का एक अंश) में ध्यान दे सकता है, उसे 'अवधान विस्तृति' अथवा 'प्रात्यक्षिक विस्तृति' कहते हैं। विशेष रूप से अवधान विस्तृति का आशय यह है कि कोई प्रेक्षक मात्र एक क्षणिक झलक देखने के बाद उद्दीपकों की एक जटिल सारणी से सूचनाओं की कितनी मात्रा ग्रहण कर सकता है। इसका निर्धारण 'टैकिस्टोस्कोप' नामक यंत्र के उपयोग से किया जा सकता है। अनेक प्रयोगों के आधार पर मिलर (Miller) ने बताया है कि हमारी अवधान विस्तृति सात से दो अधिक या दो कम की सीमा के भीतर बदलती रहती है। इसी को सामान्यतया 'जादुई संख्या' कहते हैं। इसका अर्थ है कि एक समय में लोग 5 से 7 संख्याओं पर ध्यान दे सकते हैं जो अपवाद की स्थिति में 9 या उससे अधिक हो सकती हैं। संभवत: यही कारण है कि मोटर साइकिलों या कारों की नंबर प्लेटों पर कुछ अक्षरों के साथ चार अंकों की संख्याएँ होती हैं। चालन के नियमों के उल्लंघन के समय पर यातायात पुलिस सरलता से अक्षरों सहित इन अंकों को पढ़ सकती है तथा नोट कर सकती है।

स्क्रीन पर सिगनलों को लगातार देखना एवं मॉनीटर करना पड़ता है। ऐसी स्थितियों में सिगनलों की प्राप्ति प्राय: पूर्वानुमान पर निर्भर नहीं होती है तथा सिगनलों की पहचान में हुई त्रुटियाँ घातक हो सकती हैं। इसलिए उन स्थितियों में अधिक सतर्कता की आवश्यकता होती है।

संधृत अवधान को प्रभावित करने वाले कारक

संधृत अवधान के कार्यों में व्यक्ति के निष्पादन में अनेक कारक सहायक अथवा अवरोधक हो सकते हैं। **संवेदन प्रकारता** (sensory modality) उनमें से एक है। चाक्षुष उद्दीपक की तुलना में श्रवण संबंधी उद्दीपक होने पर निष्पादन

बॉक्स 5.4 अवधान न्यूनता अतिक्रिया विकार

प्राथमिक विद्यालय के बच्चों में पाया जाने वाला यह एक अति सामान्य व्यवहार विकार है। इसमें आवेगशीलता, अधिक पेशीय सक्रियता तथा अवधान की अयोग्यता विशेष रूप से दिखाई देती हैं। लड़कियों की तुलना में यह विकार लड़कों में अधिक पाया जाता है। यदि प्रबंधन ठीक से नहीं किया जाता है तो अवधान की कठिनाइयाँ किशोरावस्था या प्रौढ़ वर्षों तक बनी रह जाती हैं। संधृत अवधान में कठिनाई इस विकार की प्रमुख विशेषता है जो बच्चों के अन्य विविध क्षेत्रों में परिलक्षित होता है। उदाहरण के लिए, ऐसे बच्चे अधिक चित्त-अस्थिर होते हैं, वे अनुदेशों का पालन नहीं करते हैं, माता-पिता के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करते हैं तथा इनके समकक्षी भी इन्हें नकारात्मक दृष्टि से देखते हैं। वे विद्यालय में अच्छा निष्पादन नहीं करते तथा विद्यालयों में मूल विषयों को पढ़ने या सीखने में बुद्धि की न्यूनता न होते हुए भी कठिनाइयों का अनुभव करते हैं।

अध्ययनों से इस विकार के जैविक आधार का कोई प्रमाण नहीं मिलता है, यद्यपि विकार का कुछ संबंध आहार संबंधी कारकों, विशेष रूप से भोजन के रंग, के साथ बताया गया है। दूसरी ओर, सामाजिक-मनोवैज्ञानिक कारक (जैसे- गृह पर्यावरण, पारिवारिक विकृति) अन्य कारकों की तुलना में अवधान न्यूनता अतिक्रिया विकार के लिए अधिक उत्तरदायी पाए गए हैं। वर्तमान परिस्थिति में अवधान न्यूनता अतिक्रिया विकार के बहुविध कारण और प्रभाव माने जाते हैं।

अवधान न्यूनता अतिक्रिया विकार के उपचार के संबंध में एक मत नहीं है। इसके लिए रिटैलिन नाम की एक दवा का अधिक उपयोग होता है जो बच्चों की अतिक्रिया एवं चित्त-अस्थिर होने की मात्रा को कम करती है तथा साथ ही उनके अवधान एवं एकाग्रता रखने की योग्यता में वृद्धि करती है। यद्यपि यह समस्या का उपचार नहीं करती है तथा इस प्रकार के नकारात्मक पार्श्व-प्रभाव; जैसे- कद एवं भार की सामान्य संवृद्धि में दमन, के रूप में परिणत होती है। दूसरी तरफ, व्यवहार प्रबंधन कार्यक्रम, जिनमें धनात्मक प्रबलन तथा सीखने वाली सामग्री एवं कृत्यों की प्रस्तुति ऐसी होती है कि उससे त्रुटियों में कमी आती है तथा तात्कालिक प्रतिप्राप्ति एवं सफलता को बढ़ावा मिलता है, बहुत उपयोगी पाए गए हैं। अवधान न्यूनता अतिक्रिया विकार का सफलतापूर्वक उपचार संज्ञानात्मक व्यवहारपरक प्रशिक्षण कार्यक्रमों के साथ अच्छा रहता है जिसमें वांछित व्यवहार का पुरस्कार शाब्दिक आत्म-अनुदेश (विराम लें, चिंतन करें और तब कार्य करें) के उपयोग के प्रशिक्षण से जुड़ा होता है। इस क्रियाविधि के साथ, अवधान न्यूनता अतिक्रिया विकार से पीड़ित बच्चे अपना ध्यान कम विरत रखना तथा सहजता के साथ व्यवहार करना सीखते हैं - अधिगम जो सापेक्ष रूप से देर तक स्थिर रहता है।

उत्कृष्ट होता है। **उद्दीपकों की स्पष्टता** (clarity of stimuli) दूसरा कारक है। तीव्र तथा देर तक बने रहने वाले उद्दीपक संधृत अवधान में सहायक होते हैं तथा अधिक अच्छा निष्पादन देते हैं। **कालिक अनिश्चितता** (temporal uncertainty) तीसरा कारक होता है। जब उद्दीपक नियमित अंतराल पर प्रकट होते हैं तो अनियमित अंतराल पर प्रकट होने वाले उद्दीपकों की तुलना में उन पर अधिक ध्यान दिया जाता है। **स्थानिक अनिश्चितता** (spatial uncertainty) चौथा कारक है। जब उद्दीपक एक निश्चित स्थान पर प्रकट होते हैं तो उन पर ठीक से ध्यान दिया जाता है, परंतु जब वे यादृच्छिक स्थितियों में प्रकट होते हैं तो उन पर ध्यान देना कठिन होता है।

अवधान के अनेक व्यावहारिक निहितार्थ होते हैं। कोई व्यक्ति वस्तुओं की कितनी संख्याओं को एक झलक में देखने के बाद ध्यान में रख सकता है, इसी आधार पर मोटरसाइकिलों एवं कारों के नंबर प्लेट बनाए जाते हैं जिससे कि यातायात नियमों के भंग होने की स्थिति में यातायात पुलिस इन नंबर प्लेटों को देख सके (बॉक्स 5.3)। विद्यालयों में बहुत से बच्चे अवधान की समस्या के कारण अच्छा निष्पादन नहीं कर पाते हैं। बॉक्स 5.4 में अवधान के एक विकार के विषय में रोचक सूचनाएँ दी गई हैं।

प्रात्यक्षिक प्रक्रियाएँ

पूर्व खंड में हमने देखा कि ज्ञानेंद्रियों के उद्दीपन के परिणामस्वरूप हम प्रकाश की क्षणदीप्ति अथवा ध्वनि अथवा घ्राण का अनुभव करते हैं। यह प्रारंभिक अनुभव, जिसे संवेदना कहते हैं, हमें ज्ञानेंद्रियों को उद्दीप्त करने वाले उद्दीपक की समझ प्रदान नहीं करता है। उदाहरण के लिए, हमें इससे प्रकाश, ध्वनि एवं सुगंध के स्रोत के विषय में जानकारी नहीं मिलती है। संवेदी तंत्र द्वारा प्रदान की गई कच्ची सामग्री से अर्थ प्राप्त करने के लिए हम इसका पुन: प्रक्रमण करते हैं। ऐसा करने से हम अपने अधिगम, स्मृति, अभिप्रेरणा, संवेग तथा अन्य मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के उपयोग द्वारा उद्दीपकों को अर्थवान बनाते हैं। *जिस प्रक्रिया से हम ज्ञानेंद्रियों द्वारा प्रदान की गई सूचनाओं की पहचान करते हैं, व्याख्या अथवा उसको अर्थवान बनाते हैं उसे प्रत्यक्षण कहा जाता है।* उद्दीपकों अथवा घटनाओं की व्याख्या करने में लोग अपने ढंग से उनको रचित करते हैं। इस प्रकार, प्रत्यक्षण बाह्य अथवा आंतरिक जगत में पाए जाने वाली वस्तुओं अथवा घटनाओं की व्याख्या मात्र नहीं है, बल्कि अपने दृष्टिकोण के अनुसार वस्तुओं या घटनाओं की एक रचना भी है। अर्थवान बनाने की प्रक्रिया में कुछ उप-प्रक्रियाएँ अन्तर्निहित हैं जो चित्र 5.4 में प्रदर्शित की गई हैं।

प्रत्यक्षण के प्रक्रमण उपागम

हम किसी वस्तु की पहचान कैसे करते हैं? क्या हम किसी कुत्ते की पहचान इसलिए करते हैं कि हम उसके रोएँदार आवरण, उसके चार पैरों, उसकी आँखों, कानों आदि की पहचान पहले कर चुके हैं अथवा इन अंगों की पहचान हम इसलिए करते है क्योंकि पहले हमने कुत्ते की पहचान की है? यह विचार कि प्रत्यभिज्ञान प्रक्रिया अंशों से प्रारंभ होती है और जो समग्र प्रत्यभिज्ञान का आधार बनती है, उसे **ऊर्ध्वगामी प्रक्रमण** (bottom-up processing) कहते हैं। जब प्रत्यभिज्ञान प्रक्रिया समग्र से प्रारंभ होती है और उसके आधार पर विभिन्न घटकों की पहचान की जाती है तो उसे **अधोगामी प्रक्रमण** (top-down processing) कहते हैं। ऊर्ध्वगामी उपागम प्रत्यक्षण उद्दीपकों के विविध लक्षणों पर बल देता है तथा प्रत्यक्षण को एक मानसिक रचना की प्रक्रिया मानता है। अधोगामी उपागम प्रत्यक्षण करने वालों को महत्त्व देता है तथा प्रत्यक्षण को उद्दीपकों की प्रत्यभिज्ञान अथवा तदात्मीकरण की प्रक्रिया माना जाता है। अध्ययनों से प्रदर्शित होता है कि प्रत्यक्षण में दोनों प्रक्रियाएँ एक दूसरे से अंत:क्रिया करती हैं और हमें जगत की समझ प्रदान करती हैं।

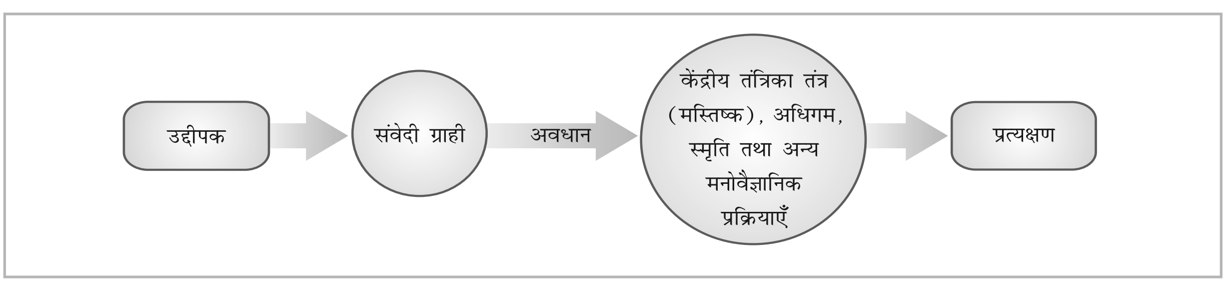

चित्र 5.4 : प्रत्यक्षण की उप-प्रक्रियाएँ

प्रत्यक्षणकर्ता

मानव बाह्य जगत से उद्दीपकों को मात्र यांत्रिक रूप से अथवा निष्क्रिय रूप से ग्रहण करने वाले नहीं होते हैं। वे सर्जनशील होते हैं तथा बाह्य जगत को अपने ढंग से समझने का प्रयास करते हैं। इस प्रक्रिया में उनकी अभिप्रेरणाएँ एवं प्रत्याशाएँ, सांस्कृतिक ज्ञान, पूर्व अनुभव, तथा स्मृतियों के साथ-साथ मूल्य, विश्वास एवं अभिवृत्तियाँ बाह्य जगत को अर्थवान बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती हैं। उनमें से कुछ कारकों का वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

अभिप्रेरणा

प्रत्यक्षणकर्ता की आवश्यकताएँ एवं इच्छाएँ उसके प्रत्यक्षण को अत्यधिक प्रभावित करती हैं। लोग विभिन्न साधनों या उपायों से अपनी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की पूर्ति करना चाहते हैं। ऐसा करने का एक तरीका चित्र में वस्तुओं का प्रत्यक्षण ऐसी चीज़ों के रूप में करना है जिनसे उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति होगी। प्रत्यक्षण पर भूख के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए अनेक प्रयोग किए गए हैं। जब भूखे लोगों को कुछ अस्पष्ट चित्र दिखाए गए तो पाया गया कि तृप्त लोगों की तुलना में उन्होंने इन चित्रों का प्रत्यक्षण बहुधा आहार सामग्री के रूप में किया।

प्रत्याशाएँ अथवा प्रात्यक्षिक विन्यास

किसी दी गई स्थिति में हम जिसका प्रत्यक्षण कर सकते हैं उसकी प्रत्याशाएँ भी हमारे प्रत्यक्षण को प्रभावित करती हैं। प्रात्यक्षिक अंतरंगता अथवा प्रात्यक्षिक सामान्यीकरण का यह गोचर इस प्रवृत्ति का द्योतक है कि जब परिणाम यथार्थ रूप से बाह्य वास्तविकता को नहीं दिखाते हैं तब भी हम वही देखते हैं जिसको देखने की हम प्रत्याशा करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि आपका दूध देने वाला प्रतिदिन लगभग सांध्य 5.30 बजे दूध देता है तो किसी के द्वारा उसी समय के आसपास दरवाज़ा खटखटाने पर लगता है कि दूध देने वाला आया है, भले ही कोई और आया हो।

क्रियाकलाप 5.3

प्रत्याशा को निदर्शित करने के लिए अपने मित्र से आँखें बंद करने को कहिए। बोर्ड पर 12, 13, 14, 15 लिखिए। उससे 5 सेकण्ड के लिए आँख खोलने के लिए कहिए और बोर्ड पर देखने के लिए कहिए। अब नोट कीजिए कि उसने क्या देखा। केवल 12, 14, 15 को अ, स, द से प्रतिस्थापित करते रहिए, जैसे- 'अ 13 स द'। उसने पुन: जो कुछ देखा उसे नोट करने को कहिए। बहुत से लोग 13 के स्थान पर 'ब' लिखते हैं।

संज्ञानात्मक शैली

संज्ञानात्मक शैली का संबंध अपने पर्यावरण के साथ संगत तरीके से व्यवहार करने से है। हम जिस तरह पर्यावरण का प्रत्यक्षण करते हैं उसे यह सार्थक रूप से प्रभावित करती है। अपने पर्यावरण का प्रत्यक्षण करने में लोग विभिन्न संज्ञानात्मक शैली का उपयोग करते हैं। अध्ययनों में व्यापक रूप से प्रयुक्त शैली 'क्षेत्र आश्रित' एवं 'क्षेत्र अनाश्रित' संज्ञानात्मक शैली है। क्षेत्र आश्रित लोग बाह्य जगत का उसकी समग्रता के रूप में प्रत्यक्षण करते हैं अर्थात उसको सर्वव्यापी अथवा समग्र रूप में देखते हैं। दूसरी तरफ, क्षेत्र अनाश्रित लोग बाह्य जगत को उसकी छोटी इकाइयों में विच्छेद करते हैं अर्थात विश्लेषणात्मक अथवा विभेदित ढंग से देखते हैं।

चित्र 5.5 को देखिए। क्या आप चित्र में छिपे त्रिभुज को देख सकते हैं? आप उसको खोजने में कितना समय लेते हैं। आप अपनी कक्षा के अन्य विद्यार्थियों को देखिए कि वे त्रिभुज खोजने में कितना समय लेते हैं। जो लोग शीघ्रतापूर्वक खोज लेते हैं उन्हें 'क्षेत्र अनाश्रित' तथा जो अधिक समय लेते हैं उन्हें 'क्षेत्र आश्रित' कहा जाता है।

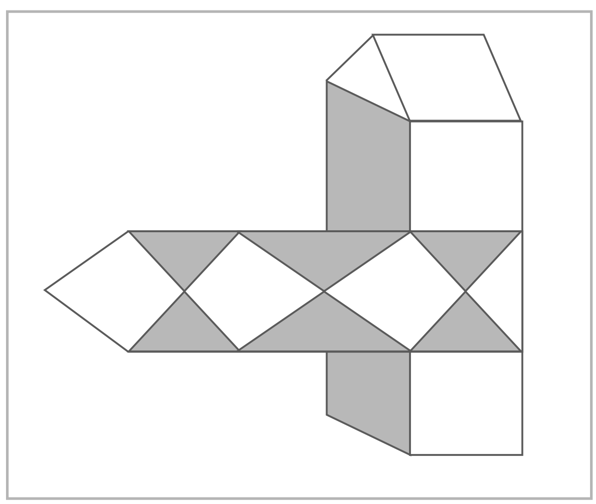

चित्र 5.5 : 'क्षेत्र आश्रित' एवं 'क्षेत्र अनाश्रित' संज्ञानात्मक शैली की जाँच के लिए एक एकांश

सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और अनुभव

विभिन्न सांस्कृतिक परिवेशों में लोगों को उपलब्ध विविध अनुभव एवं अधिगम के अवसर भी उनके प्रत्यक्षण को प्रभावित करते हैं। चित्रविहीन पर्यावरण से आने वाले लोग चित्रों में वस्तुओं की पहचान में असफल रहते हैं। हडसन (Hudson) ने अफ़्रीकी प्रयोज्यों द्वारा चित्रों के प्रत्यक्षण का अध्ययन किया तथा अनेक कठिनाइयों को देखा। बहुत से लोग चित्र में प्रदर्शित वस्तुओं की पहचान करने में सक्षम नहीं थे (जैसे – एण्टीलोप, स्पीयर)। वे चित्रों में दूरी का प्रत्यक्षण करने में भी असफल हुए तथा उन्होंने चित्रों की गलत व्याख्या की। एस्किमो बर्फ़ के विविध रूपों में अंतर करने में सक्षम होते हैं और हम वैसा नहीं कर पाते हैं। साइबेरियाई क्षेत्र में कुछ आदिवासी समूह रेण्डियर की त्वचा के रंगों में भेद कर लेते हैं जो हम नहीं कर पाते हैं।

इन अध्ययनों से ज्ञात होता है कि प्रत्यक्षण की प्रक्रिया में प्रत्यक्षणकर्ताओं की अहम भूमिका होती है। लोग अपनी व्यक्तिगत, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियों के आधार पर उद्दीपकों का प्रक्रमण एवं व्याख्या अपने ढंग से करते हैं। इन कारकों के कारण हमारा प्रत्यक्षण न केवल अच्छी प्रकार से परिष्कृत होता है, बल्कि अशोधित भी होता है।

प्रात्यक्षिक संगठन के सिद्धांत

हमारा चाक्षुष क्षेत्र विविध प्रकार के अंशों; जैसे- बिंदु, रेखा तथा रंग आदि का एक संग्रह होता है। यद्यपि हम इन अंशों को संगठित समग्र अथवा पूर्ण वस्तु के रूप में देखते हैं। उदाहरण के लिए, हम साइकिल को एक पूर्ण वस्तु के रूप में देखते हैं, न कि विभिन्न भागों (जैसे- सीट, पहिया तथा हैण्डिल) के एक संग्रह के रूप में। चाक्षुष क्षेत्र को अर्थयुक्त समग्र के रूप में संगठित करने को **आकृति प्रत्यक्षण** (form perception) कहते हैं।

आपको आश्चर्य हो सकता है कि किसी वस्तु के विभिन्न भाग कैसे एक अर्थयुक्त समग्र में संगठित होते हैं। आप यह भी पूछ सकते हैं कि वे कौन से कारक हैं जो संगठन की इस प्रक्रिया को सुगम बनाते हैं अथवा उसमें अवरोध पैदा करते हैं।

अनेक विद्वानों ने ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया है, परंतु व्यापक रूप से स्वीकृत उत्तर अनुसंधानकर्ताओं के एक समूह के द्वारा दिया गया है। इस समूह को **गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिक** (gestalt psychologists) कहते हैं। उनमें कोहलर (Kohler), कोफ्का (Koffka) तथा वर्दीमर (Wertheimer) प्रमुख हैं। गेस्टाल्ट एक नियमित आकृति अथवा रूप को कहते हैं। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, हम विभिन्न उद्दीपकों को विविक्त अंशों के रूप में नहीं देखते हैं, बल्कि एक संगठित समग्र के रूप में देखते हैं, जिसका एक निश्चित रूप होता है। इनका विश्वास है कि किसी वस्तु का रूप उसके समग्र में होता है जो उनके अंशों के योग से भिन्न होता है। उदाहरण के लिए, फूलों के गुच्छे के साथ फूलदान एक समग्र है। यदि उसमें से फूल हटा दिए जाएँ तो भी फूलदान एक समग्र बना रहेगा। यह फूलदान की समग्राकृति है जो परिवर्तित हो गई। फूल के साथ फूलदान एक समग्राकृति है; तथा बिना फूल के यह दूसरी समग्राकृति है।

गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने यह भी बताया है कि हमारी प्रमस्तिष्कीय प्रक्रियाएँ हमेशा **अच्छी आकृति** (good figure) अथवा **सौष्ठव** (pragnanz) का प्रत्यक्षण करने के लिए उन्मुख होती हैं। इसलिए प्रत्येक चीज़ को हम एक संगठित रूप में देखते हैं। आदिम संगठन **आकृति-भूमि पृथक्करण** (figure-ground segregation) के रूप में दिखते हैं। जब हम किसी सतह पर देखते हैं तो सतह का कुछ भाग बहुत ही स्पष्ट रूप से एक अलग इकाई के रूप में दिखता है जबकि दूसरा भाग नहीं। उदाहरण के लिए, जब हम एक पृष्ठ पर शब्द अथवा दीवार पर पेंटिंग अथवा आकाश में उड़ते हुए पक्षी को देखते हैं, तो शब्द पेंटिंग एवं पक्षी पृष्ठभूमि से अलग दिखते हैं और आकृति के रूप में उनका प्रत्यक्षण होता है जबकि पृष्ठ, दीवार एवं आकाश आकृति के पीछे हो जाते हैं तथा पृष्ठभूमि के रूप में उनका प्रत्यक्षण होता है।

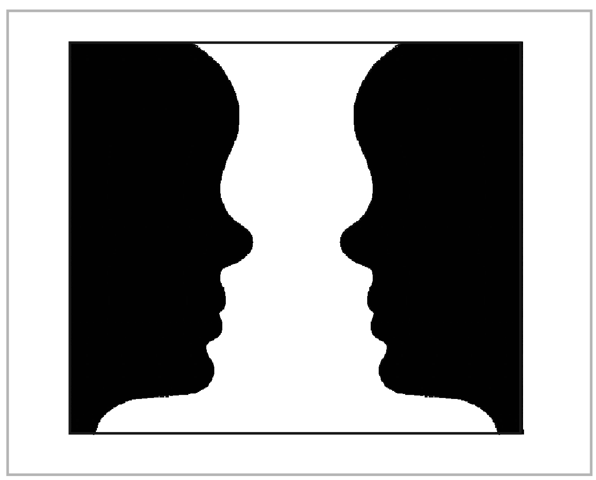

चित्र 5.6 : रूबिन का फूलदान

इस अनुभव के परीक्षण के लिए चित्र 5.6 को देखें। आप या तो आकृति का सफ़ेद भाग देखेंगे जो फूलदान की तरह दिखता है अथवा आकृति का काला भाग देखेंगे जो दो चेहरों की भाँति दिखता है।

निम्न विशेषताओं के आधार पर हम आकृति को भूमि से अलग देखते हैं :

1. आकृति का एक निश्चित रूप होता है, जबकि पृष्ठभूमि अपेक्षाकृत रूपहीन होती है।
2. आकृति अपनी पृष्ठभूमि की अपेक्षा अधिक संगठित होती है।
3. आकृति की एक स्पष्ट परिरेखा होती है, जबकि पृष्ठभूमि परिरेखाहीन होती है।
4. आकृति पृष्ठभूमि से अलग दिखती है, जबकि पृष्ठभूमि आकृति के पीछे रहती है।
5. आकृति अधिक स्पष्ट होती है, सीमित तथा अपेक्षाकृत निकट होती है, जबकि पृष्ठभूमि अपेक्षाकृत अस्पष्ट, असीमित तथा हमसे दूर दिखती है।

ऊपर प्रस्तुत परिचर्चा से पता चलता है कि मानव जाति जगत को एक संगठित समग्र के रूप में देखती है न कि उसके विविक्त खंडों में। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने हमें अनेक नियम दिए हैं जो यह बताते हैं कि क्यों और कैसे हमारे चाक्षुष क्षेत्र में उद्दीपक अर्थवान समग्र वस्तुओं के रूप में संगठित होते हैं। आइए इनमें से कुछ नियमों को देखें।

निकटता का सिद्धांत

जो वस्तुएँ किसी स्थान अथवा समय में एक दूसरे के निकट होती हैं वे एक दूसरे से संबंधित अथवा एक समूह के रूप में दिखती हैं। उदाहरण के लिए, चित्र 5.7 बिंदुओं के एक वर्ग प्रतिरूप जैसा नहीं दिखता है, बल्कि बिंदुओं के स्तंभ की एक शृंखला के रूप में दिखाई देता है। इसी प्रकार, चित्र 5.7 पंक्तियों में बिंदुओं के एक समूह के रूप में दिखाई देता है।

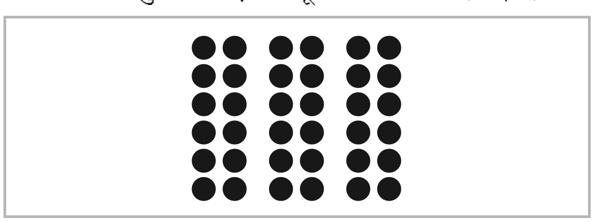

चित्र 5.7 : निकटता

समानता का सिद्धांत

जिन वस्तुओं में समानता होती है तथा विशेषताओं में वे एक दूसरे के समान होती हैं वे एक समूह के रूप में प्रत्यक्षित होती हैं। चित्र 5.8 में छोटे वृत्त एवं वर्ग क्षैतिज और उदग्र रूप से समरूप अंतराल पर हैं जिससे निकटता का प्रश्न नहीं उठता है। हम यहाँ एकांतर वृत्त एवं वर्ग के स्तंभ को देखते हैं।

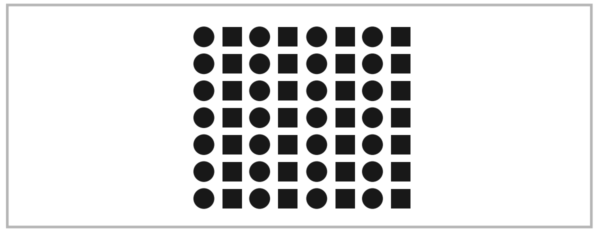

चित्र 5.8 : समानता

निरंतरता का सिद्धांत

यह सिद्धांत बताता है कि जब वस्तुएँ एक सतत प्रतिरूप प्रस्तुत करती हैं तो हम उनका प्रत्यक्षण एक दूसरे से संबंधित के रूप में करते हैं। उदाहरण के लिए, हमें *अ–ब* तथा *स–द* रेखाएँ एक दूसरे को काटती हुई दिखती हैं, तुलना में चार रेखाएँ केंद्र *प* पर मिल रही हैं।

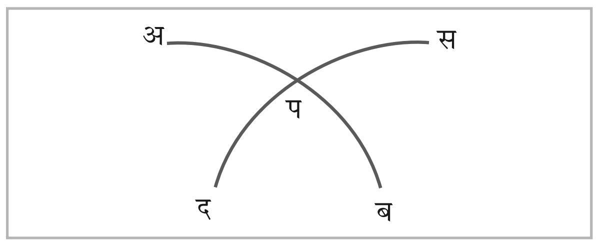

चित्र 5.9 : निरंतरता

लघुता का सिद्धांत

इस नियम के अनुसार लघुक्षेत्र बृहद् पृष्ठभूमि की तुलना में आकृति के रूप में दिखाई देते हैं। चित्र 5.10 में इस सिद्धांत के कारण हम वृत्त के अंदर काले क्रॉस को सफ़ेद क्रॉस की तुलना में आसानी से देखते हैं।

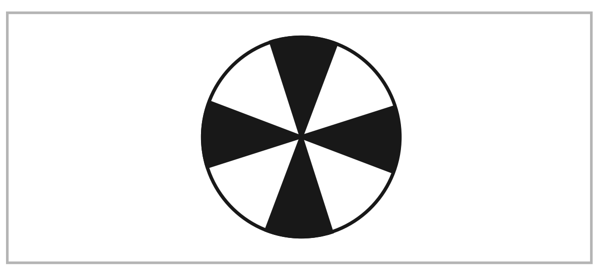

चित्र 5.10 : लघुता

सममिति का सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार असममित पृष्ठभूमि की तुलना में सममित क्षेत्र आकृति के रूप में दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए, चित्र 5.11 में काला क्षेत्र आकृति के रूप में दिखाई देता है (सममित गुणों के कारण) तथा असममित सफ़ेद क्षेत्र पृष्ठभूमि के रूप में दिखाई देता है।

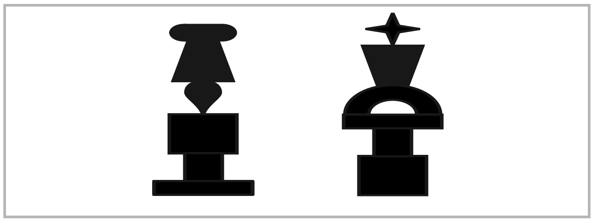

चित्र 5.11 : सममिति

अविच्छिन्नता का सिद्धांत

इस सिद्धांत के अनुसार जब एक क्षेत्र अन्य क्षेत्रों से घिरा होता है तो उसे हम आकृति के रूप में देखते हैं। उदाहरण के लिए, चित्र 5.12 की प्रतिमा सफ़ेद पृष्ठभूमि में पाँच चित्रों के रूप में दिखाई देती है न कि शब्द 'LIFT' के रूप में दिखती है।

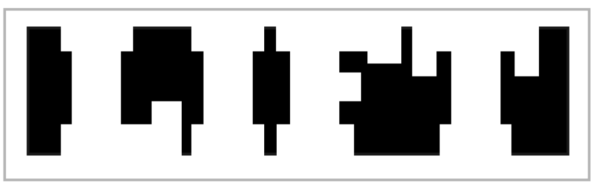

चित्र 5.12 : अविच्छिन्नता

पूर्ति का सिद्धांत

उद्दीपन में जो लुप्त अंश होता है उसे हम भर लेते हैं तथा वस्तुओं का प्रत्यक्षण उनके अलग-अलग भागों के रूप में नहीं बल्कि समग्र आकृति के रूप में करते हैं। उदाहरण के लिए, चित्र 5.13 में छोटे कोण, हमारी संवेदी आगत से प्राप्त वस्तु में रिक्ति को पूर्ण करने की प्रवृत्ति के कारण, एक त्रिभुज के रूप में दिखते हैं।

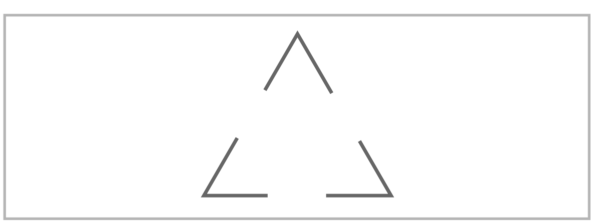

चित्र 5.13 : पूर्ति

स्थान, गहनता तथा दूरी प्रत्यक्षण

जिस चाक्षुष क्षेत्र या सतह पर वस्तुएँ रहती हैं, गतिशील होती हैं अथवा रखी जा सकती हैं उसे स्थान कहते हैं। जिस स्थान पर हम रहते हैं वह तीन विमाओं से संगठित होता है। हम विभिन्न वस्तुओं के मात्र स्थानिक अभिलक्षणों (जैसे- आकार, रूप, दिशा) को ही नहीं देखते, बल्कि उस स्थान में पाई जाने वाली वस्तुओं के बीच की दूरी को भी देखते हैं। यद्यपि हमारे दृष्टिपटल पर वस्तुओं की प्रक्षेपित प्रतिमाएँ समतल तथा द्विविम होती हैं (बाएँ, दाएँ, ऊपर, नीचे), परंतु हम स्थान में तीन विमाओं का प्रत्यक्षण करते हैं। ऐसा क्यों घटित होता हैं? यह इसलिए संभव होता है कि हम द्विविम दृष्टिपटलीय दृष्टि को त्रिविम प्रत्यक्षण के रूप में स्थानांतरित करने में समर्थ होते हैं। जगत को तीन विमाओं से देखने की प्रक्रिया को दूरी अथवा गहनता प्रत्यक्षण कहते हैं।

गहनता प्रत्यक्षण हमारे दैनंदिन जीवन में महत्वपूर्ण होता है। उदाहरण के लिए, जब हम गाड़ी चलाते हैं तो हम गहराई का उपयोग निकट आती हुई गाड़ी की दूरी जानने के लिए करते हैं अथवा जब हम सड़क पर टहलते हुए किसी व्यक्ति को पुकारते हैं तो हम यह निश्चय करते हैं कि कितनी तीव्र आवाज में पुकारा जाए।

गहराई के प्रत्यक्षण में हम दो प्रमुख सूचना स्रोतों, जिन्हें संकेत कहा जाता है, पर निर्भर करते हैं। एक को द्विनेत्री संकेत कहते हैं, क्योंकि इसमें दोनों आँखों की आवश्यकता होती है। दूसरे को एकनेत्री संकेत कहते हैं क्योंकि इसमें गहनता प्रत्यक्षण के लिए मात्र एक आँख का उपयोग होता है। ऐसे अनेक संकेतों का उपयोग द्विविम प्रतिमा को त्रिविम प्रत्यक्षण में परिवर्तित करने के लिए किया जाता है।

एकनेत्री संकेत (मनोवैज्ञानिक संकेत)

गहनता प्रत्यक्षण के एकनेत्री संकेत तब प्रभावी होते हैं जब वस्तुओं को केवल एक आँख से देखा जाता है। ऐसे संकेतों का उपयोग कलाकार अपनी द्विविम पेंटिंग में गहराई प्रदर्शित करने के लिए करते हैं। इसलिए इन्हें चित्रीय संकेत भी कहते हैं। कुछ महत्वपूर्ण एकनेत्री संकेत जो द्विविम सतहों में गहराई एवं दूरी का निर्णय लेने में हमारी सहायता करते हैं उनका वर्णन नीचे किया जा रहा है। आपको इनमें से कुछ का अनुप्रयोग चित्र 5.14 में मिलेगा।

चित्र 5.14 : एकनेत्री संकेत

ऊपर दिया गया चित्र आपको कुछ एकनेत्री संकेतों जैसे आच्छादन और सापेक्ष आकार को समझने में मदद करेगा (वृक्षों को देखिए)। इस चित्र में आप कौन-से अन्य संकेतों को ढूँढ़ सकते हैं?

सापेक्ष आकार : समान वस्तुओं के साथ वर्तमान एवं भूतकाल के अनुभव के आधार पर दूरी के निर्णय में दृष्टिपटलीय प्रतिमा का आकार सहायता करता है। जैसे ही वस्तु दूर जाती है वैसे ही दृष्टिपटलीय प्रतिमा छोटी से छोटी होती जाती है। जब कोई वस्तु छोटी दिखती है तो हम उसे दूर में स्थित तथा बड़ी दिखने पर निकट में स्थित के रूप में उसका प्रत्यक्षण करते हैं।

आच्छादन अथवा अतिव्याप्ति : ये संकेत तब प्रयुक्त होते हैं जब एक वस्तु के कुछ भाग किसी दूसरी वस्तु से आच्छादित हो जाते हैं। जो वस्तु आच्छादित होती है वह दूर तथा जो वस्तु आच्छादन करती है वह निकट दिखाई देती है।

रेखीय परिप्रेक्ष्य : इससे इस गोचर का पता चलता है कि जो वस्तुएँ दूर होती हैं वे निकट की वस्तुओं की तुलना में एक दूसरे के निकट दिखती हैं। उदाहरण के लिए, समानान्तर रेखाएँ, जैसे- रेल की पटरियाँ दूरी बढ़ने पर एक दूसरे में मिलती हुई दिखती हैं तथा लगता है कि वे क्षैतिज पर समाप्त हो गई हैं। रेखाएँ जितनी एक दूसरे में मिलती हैं वे उतनी ही दूर दिखती हैं।

आकाशी परिप्रेक्ष्य : हवा में धूल एवं आर्द्रता के सूक्ष्म कण होते हैं जिनसे दूर की वस्तुएँ धुँधली या अस्पष्ट दिखती हैं। इस प्रभाव को आकाशी परिप्रेक्ष्य कहते हैं। उदाहरण के लिए, दूर के पहाड़ वातावरण में विकीर्ण नीले प्रकाश के कारण नीले दिखाई देते हैं, जबकि यही पहाड़ निकट दिखाई देते हैं जब वातावरण स्वच्छ होता है।

प्रकाश एवं छाया : प्रकाश में वस्तु के कुछ भाग अधिक प्रकाशित होते हैं, जबकि कुछ भाग अंधकार में पड़ जाते हैं। वस्तु की दूरी के संबंध में प्रकाशित भाग एवं छाया हमें सूचनाएँ प्रदान करती हैं।

सापेक्ष ऊँचाई : लंबी वस्तुएँ प्रत्यक्षण करने पर प्रेक्षक के निकट दिखती हैं तथा छोटी वस्तुएँ बहुत दूर दिखाई देती हैं। जब हम दो वस्तुओं के एकसमान आकार के होने की प्रत्याशा करते हैं और वे समान नहीं होती हैं, तो उसमें जो बड़ी होती है वह निकट की तथा जो छोटी होती है वह दूर की दिखाई देती है।

रचनागुण प्रवणता : यह एक ऐसा गोचर है जिसके द्वारा हमारे चाक्षुष क्षेत्र, जिनमें तत्वों की सघनता अधिक होती है, दूर दिखाई देते हैं। चित्र 5.15 में जैसे-जैसे हम दूर देखते जाते हैं पत्थरों की सघनता बढ़ती जाती है।

चित्र 5.15 : रचनागुण प्रवणता

गतिदिगंतराभास : यह एक गतिक एकनेत्री संकेत होता है, इसलिए यह चित्रीय संकेत नहीं समझा जाता है। यह तब घटित होता है जब विभिन्न दूरी की वस्तुएँ एक भिन्न सापेक्ष गति से गतिमान होती हैं। निकट की वस्तुओं की तुलना में दूरस्थ वस्तुएँ धीरे-धीरे गति करती हुई प्रतीत होती हैं। वस्तुओं की गति की दर उसकी दूरी का एक संकेत प्रदान करती है। उदाहरण के लिए, जब हम एक बस में यात्रा करते हैं तो निकट की वस्तुएँ बस की दिशा के विपरीत गतिमान होती हैं, जबकि दूर की वस्तुएँ बस की दिशा के साथ गतिमान होती हैं।

द्विनेत्री संकेत (शारीरिक संकेत)

त्रिविम स्थान में गहनता प्रत्यक्षण के कुछ महत्वपूर्ण संकेत दोनों आँखों से प्राप्त होते हैं। इनमें से तीन विशेष रूप से रोचक हैं।

दृष्टिपटलीय अथवा द्विनेत्री असमता : चूँकि दोनों आँखों की स्थिति हमारे सिर में भिन्न होती है, इसलिए दृष्टिपटलीय असमता घटित होती है। वे एक दूसरे से क्षैतिज रूप से लगभग 6.5 सेंटीमीटर की दूरी पर अलग-अलग होती हैं। इस दूरी के कारण एक ही वस्तु की प्रत्येक आँख की रेटिना पर प्रक्षेपित प्रतिमाएँ कुछ भिन्न होती हैं। दोनों प्रतिमाओं के मध्य इस विभेद को दृष्टिपटलीय असमता कहते हैं। मस्तिष्क अधिक दृष्टिपटलीय असमता की व्याख्या एक निकट की वस्तु के रूप में तथा कम दृष्टिपटलीय असमता की व्याख्या एक दूर की वस्तु के रूप में करता है, क्योंकि दूर की वस्तुओं की असमता कम तथा निकट की वस्तुओं की असमता अधिक होती है।

अभिसरण : जब हम आस-पास की वस्तु को देखते हैं तो हमारी आँखें अंदर की ओर अभिसरित होती हैं, जिससे प्रतिमा प्रत्येक आँख की गर्तिका पर आ सके। मांसपेशियों का एक समूह, आँखें जिस सीमा तक अंदर की ओर परिवर्तित होती हैं के संबंध में संदेश मस्तिष्क को भेजता है और इन संदेशों की व्याख्या गहनता प्रत्यक्षण के संकेतों के रूप में की जाती है। जैसे-जैसे वस्तु प्रेक्षक से दूर होती जाती है वैसे-वैसे अभिसरण की मात्रा घटती जाती है। अभिसरण का अनुभव आप स्वयं कर सकते हैं- एक उँगली को अपनी नाक के सामने रखिए और उसे धीरे-धीरे निकट लाइए। जैसे-जैसे आपकी आँखें अंदर की ओर परिवर्तित होंगी अथवा अभिसरित होंगी, वैसे-वैसे वस्तुएँ निकट दिखाई देंगी।

समंजन : समंजन एक प्रक्रिया है जिसमें पक्ष्माभिकी पेशियों की सहायता से हम प्रतिमा को दृष्टिपटल पर फोकस करते हैं। ये मांसपेशियाँ आँख के लेन्स की सघनता को परिवर्तित कर देती हैं। यदि वस्तु दूर चली जाती है (दो मीटर से अधिक), तब मांसपेशियाँ शिथिल रहती हैं। जैसे ही वस्तु निकट आती है, मांसपेशियों में संकुचन की क्रिया होने लगती है तथा लेन्स की सघनता बढ़ जाती है। मांसपेशियों के संकुचन की मात्रा का संकेत मस्तिष्क को भेज दिया जाता है, जो दूरी के लिए संकेत प्रदान करता है।

क्रियाकलाप 5.4

अपने सामने एक पेंसिल रखिए। अपनी दायीं आँख बंद करके पेंसिल पर फोकस कीजिए। अब दायीं आँख खोलिए एवं बायीं आँख बंद कीजिए। यही कार्य क्रमश: दोनों आँखों से करते रहिए। पेंसिल आपके चेहरे के सामने एक किनारे से दूसरे किनारे तक घूमती हुई प्रतीत होगी।

प्रात्यक्षिक स्थैर्य

जब हम गतिशील होते हैं तो पर्यावरण से प्राप्त संवेदी सूचनाएँ लगातार परिवर्तित होती रहती हैं। इसके बाद भी हम वस्तु के एक स्थिर प्रत्यक्षण की रचना करते हैं चाहे उन वस्तुओं को हम किसी भी दिशा से तथा प्रकाश की किसी भी तीव्रता स्तर में देखें। संवेदी ग्राहियों के उद्दीपन में परिवर्तन के बाद भी वस्तुओं का सापेक्षिक स्थिर प्रत्यक्षण ही प्रात्यक्षिक स्थैर्य कहलाता है। यहाँ हम तीन प्रकार के प्रात्यक्षिक स्थैर्यों की विवेचना करेंगे जिनका हम सामान्यतया अपने चाक्षुष क्षेत्र में अनुभव करते हैं।

आकार स्थैर्य

आँख से वस्तु की दूरी में परिवर्तन के साथ हमारे दृष्टिपटल पर प्रतिमा के आकार में परिवर्तन होता है। जैसे-जैसे उसकी दूरी बढ़ती है, प्रतिमा छोटी होती जाती है। दूसरी तरफ हमारा अनुभव बताता है कि एक सीमा तक वस्तु एक ही आकार की लगती है और उस पर दूरी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। उदाहरण के लिए, जब आप दूर से अपने मित्र के पास पहुँचते हैं तो आपके मित्र के आकार का आपका प्रत्यक्षण बहुत परिवर्तित नहीं होता है, भले ही दृष्टिपटलीय प्रतिमा (दृष्टिपटल पर प्रतिमा) बड़ी हो जाती है। प्रेक्षक एवं दृष्टिपटलीय प्रतिमा के आकार से उनकी दूरी में होने वाले परिवर्तन के साथ वस्तुओं के प्रत्यक्षित आकार के सापेक्षिक स्थिर रहने की यह प्रवृत्ति ही आकार स्थैर्य कहलाती है।

आकृति स्थैर्य

अपनी उन्मुखता में अंतर के परिणामस्वरूप दृष्टिपटलीय प्रतिमा के रूप में परिवर्तन के बाद भी हमारे प्रत्यक्षण में परिचित वस्तुओं की आकृति अपरिवर्तित रहती है। उदाहरण के लिए, रात्रि-भोजन के प्लेट का रूप वही रहता है, चाहे उसकी

दृष्टिपटलीय प्रतिमा एक वृत्त या एक दीर्घवृत्त या एक छोटी सी रेखा (यदि प्लेट को किनारे से देखा जाए) हो। इसे आकृति स्थैर्य भी कहते हैं।

द्युति स्थैर्य

चाक्षुष वस्तुओं में केवल आकृति एवं आकार का स्थैर्य नहीं होता, बल्कि उनके सफ़ेद, भूरा अथवा काला होने की मात्रा में भी स्थैर्य होता है, भले ही उनसे परावर्तित भौतिक ऊर्जा की मात्रा में पर्याप्त परिवर्तन हो। दूसरे शब्दों में, हमारी आँखों में पहुँचने वाले परावर्तित प्रकाश की मात्रा में परिवर्तन होने के बाद भी द्युति के विषय में हमारा अनुभव परिवर्तित नहीं होता है। प्रदीप्ति की भिन्न-भिन्न मात्रा में भी द्युति को स्थिर बनाए रखने की प्रवृत्ति को आभासी द्युति स्थैर्य कहते हैं। उदाहरण के लिए, किसी काग़ज़ की सतह का प्रत्यक्षण यदि सूर्य के प्रकाश में सफ़ेद रंग का होता है तो वह कमरे के प्रकाश में भी सफ़ेद ही होगा। इसी प्रकार, कोयला जो सूर्य के प्रकाश में काला दिखता है वह कमरे के प्रकाश में भी काला ही दिखता है।

भ्रम

हमारे प्रत्यक्षण सर्वदा तथ्यानुकूल नहीं होते हैं। कभी-कभी हम संवेदी सूचनाओं की सही व्याख्या नहीं कर पाते हैं। इसके परिणामस्वरूप भौतिक उद्दीपक एवं उसके प्रत्यक्षण में सुमेल नहीं हो पाता है। हमारी ज्ञानेंद्रियों से प्राप्त सूचनाओं की गलत व्याख्या से उत्पन्न गलत प्रत्यक्षण को सामान्यतया भ्रम कहते हैं। कम या अधिक हम सभी इसका अनुभव करते हैं। ये बाह्य उद्दीपन की स्थिति में उत्पन्न होते हैं और समान रूप से प्रत्येक व्यक्ति इसका अनुभव करता है। इसलिए, भ्रम को 'आदिम संगठन' भी कहा जाता है। यद्यपि भ्रम का अनुभव हमारे किसी भी ज्ञानेंद्रिय के उद्दीपन से हो सकता है, तथापि मनोवैज्ञानिकों ने अन्य संवेदी प्रकारताओं की तुलना में चाक्षुष भ्रम का अधिक अध्ययन किया है।

कुछ प्रात्यक्षिक भ्रम सार्वभौम होते हैं और सभी लोगों में पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए, रेल की पटरियाँ आपस में मिलती हुई सभी को दिखाई देती हैं। ऐसे भ्रमों को सार्वभौम अथवा स्थायी भ्रम कहते हैं, क्योंकि ये अनुभव अथवा अभ्यास से परिवर्तित नहीं होते हैं। कुछ अन्य भ्रम एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में परिवर्तित होते रहते हैं; इन्हें 'वैयक्तिक भ्रम' कहते हैं। इस खंड में हम कुछ महत्वपूर्ण चाक्षुष भ्रमों का वर्णन करेंगे।

ज्यामितीय भ्रम

चित्र 5.16 में मूलर-लायर भ्रम प्रदर्शित किया गया है । हम सभी 'अ' रेखा को 'ब' रेखा की तुलना में छोटी देखते हैं, जबकि दोनों रेखाएँ समान हैं। यह भ्रम बच्चों द्वारा भी अनुभव किया जाता है। कुछ अध्ययन बताते हैं कि पशु भी कुछ कम या अधिक हम लोगों की तरह ही इस भ्रम का अनुभव करते हैं। मूलर-लायर भ्रम के अतिरिक्त, मानव जाति (पक्षी एवं पशु) द्वारा कई अन्य चाक्षुष भ्रमों का भी अनुभव किया जाता है। चित्र 5.17 में आप ऊर्ध्वाधर एवं क्षैतिज रेखाओं का भ्रम देख सकते हैं। यद्यपि दोनों रेखाएँ समान हैं, फिर भी हम क्षैतिज रेखा की तुलना में ऊर्ध्वाधर रेखा का प्रत्यक्षण बड़ी रेखा के रूप में करते हैं।

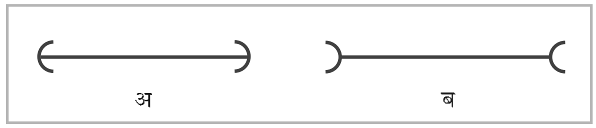

चित्र 5.16 : मूलर-लायर भ्रम

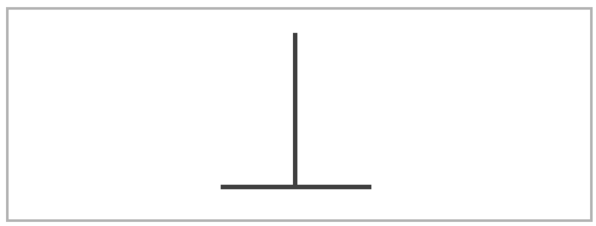

चित्र 5.17 : ऊर्ध्वाधर-क्षैतिज भ्रम

आभासी गतिभ्रम

जब कुछ गतिहीन चित्रों को एक के बाद दूसरा करके एक उपयुक्त दर से प्रक्षेपित किया जाता है तो हमें इस भ्रम का अनुभव होता है। इस भ्रम को **फ़ाई-घटना** (phi-phenomenon) कहा जाता है। जब हम गतिशील चित्रों को सिनेमा में देखते हैं तो हम इस प्रकार के भ्रम से प्रभावित होते हैं। जलते-बुझते बिजली की रोशनी के अनुक्रमण से भी इस प्रकार का भ्रम उत्पन्न होता है। एक अनुक्रम में दो या दो से अधिक बत्तियों को एक यंत्र की सहायता से प्रस्तुत करके प्रायोगिक रूप से इस घटना का अध्ययन किया जा सकता है। वर्दीमर ने द्युति, आकार, स्थानिक अंतराल एवं विभिन्न बत्तियों की कालिक सन्निधि के उपयुक्त स्तरों की उपस्थिति को महत्वपूर्ण माना है। इनकी अनुपस्थिति में प्रकाश-बिंदु गतिशील नहीं दिखते हैं। ये एक बिंदु अथवा एक के बाद दूसरा प्रकट

होने वाले विभिन्न बिंदुओं के रूप में दिखाई देंगे परंतु इनसे गति का अनुभव नहीं होगा।

भ्रमों के अनुभव से ज्ञात होता है कि संसार जैसा है लोग इसे सदा उसी रूप में नहीं देखते हैं, बल्कि वे इसके निर्माण में व्यस्त रहते हैं। कभी-कभी यह उद्दीपकों के लक्षणों पर आधारित होता है और कभी-कभी एक विशेष पर्यावरण में उनके अनुभवों पर आधारित होता है। अगले खंड में इस बात को पुनः स्पष्ट किया जाएगा।

प्रत्यक्षण पर सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव

अनेक मनोवैज्ञानिकों ने प्रत्यक्षण की प्रक्रिया का अध्ययन विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियों में किया है। जिन प्रश्नों का उत्तर वे इन अध्ययनों द्वारा खोजते हैं; वे हैं - क्या विभिन्न सांस्कृतिक स्थितियों में रहने वाले लोगों का प्रात्यक्षिक संगठन एकसमान होता है? क्या प्रात्यक्षिक प्रक्रियाएँ सार्वभौम होती हैं, अथवा विभिन्न सांस्कृतिक स्थितियों में वे बदलती रहती हैं? चूँकि हम जानते हैं कि संसार के विभिन्न भागों में रहने वाले लोग एक दूसरे से भिन्न दिखते हैं, इसलिए अनेक मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि संसार को देखने का उनका तरीका कुछ पहलुओं में भिन्न होना चाहिए। आइए चित्रों तथा अन्य चित्रीय सामग्रियों के भ्रम के प्रत्यक्षण से संबंधित कुछ अध्ययनों को देखें।

आप मूलर-लायर तथा ऊर्ध्वाधर-क्षैतिज भ्रम चित्रों से परिचित हो चुके हैं। मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे भ्रम चित्रों का उपयोग यूरोप, अफ्रीका तथा अन्य जगहों पर रहने वाले लोगों के अनेक समूहों के साथ किया है। सेगॉल (Segall), कैंपबेल (Campbell) तथा हर्सकोविट्स (Herskovits) ने भ्रम संवेद्यता के संबंध में विस्तृत अध्ययन किया है जिसमें उन्होंने अफ्रीका के दूरवर्ती गाँवों तथा पश्चिमी देश के शहरी क्षेत्रों से प्रतिदर्श लिए। यह पाया गया कि अफ्रीका वाले प्रयोज्यों में क्षैतिज-ऊर्ध्वाधर भ्रम की अधिक संवेद्यता मिली, जबकि पश्चिमी देश के प्रयोज्यों में मूलर-लायर भ्रम की अधिक संवेद्यता मिली। अन्य अध्ययनों में भी इसी तरह के परिणाम प्राप्त हुए हैं। सघन वनों में रहते हुए अफ्रीकी प्रयोज्यों ने ऊर्ध्वाधरता का नियमित रूप से अनुभव किया था (जैसे- बड़े वृक्ष) तथा उनकी यह प्रवृत्ति हो गई थी कि वे इनका अधिक अनुमान करने लगे। पश्चिमी प्रयोज्यों, जो उचित कोणों से अभिलक्षित पर्यावरण में रह रहे थे, में यह प्रवृत्ति विकसित हुई कि वे रेखाओं की लंबाई जो दोनों तरफ से बंद थी, जैसे- वाणाग्र का कम अनुमान करने लगे। इस निष्कर्ष की पुष्टि अन्य अध्ययनों में हुई। इनसे यह पता चलता है कि प्रत्यक्षण की आदतें विभिन्न सांस्कृतिक स्थितियों में अलग-अलग तरीके से सीखी जाती हैं।

कुछ अध्ययनों में विभिन्न सांस्कृतिक स्थितियों में रहने वाले लोगों को वस्तुओं की पहचान तथा उनकी गहराई की व्याख्या के लिए अथवा उनमें प्रतिरूपित अन्य घटनाओं के कुछ चित्र दिए गए थे। हडसन (Hudson) ने अफ्रीका में एक प्रारंभिक अध्ययन किया तथा पाया कि जिन लोगों ने चित्र कभी नहीं देखा था, उन्हें उनमें प्रदर्शित की गई वस्तुओं की पहचान एवं उनकी गहराई के संकेतों (जैसे- अध्यारोपण) की व्याख्या करने में बड़ी कठिनाई हुई। यह बताया गया कि घर में दिए गए अनौपचारिक अनुदेश तथा चित्रों के प्रति आभ्यासिक उद्भासन चित्रीय गहनता प्रत्यक्षण के कौशल को बनाए रखने के लिए आवश्यक होते हैं। सिन्हा (Sinha) एवं मिश्र (Mishra) ने चित्रीय प्रत्यक्षण पर कई अध्ययन किए हैं। इन्होंने विविध सांस्कृतिक स्थितियों में रहने वाले लोगों, जैसे - वन में रहने वाले शिकारी एवं जनसमूह, गाँवों में रहने वाले किसान तथा शहरों में नौकरी करने एवं रहने वालों, को विविध प्रकार के चित्र देकर उनके चित्रीय प्रत्यक्षण का अध्ययन किया था। उनके अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि चित्रों की व्याख्या लोगों के सांस्कृतिक अनुभवों से गहन रूप से संबंधित होती है। जहाँ सामान्यतया लोग चित्रों में परिचित वस्तुओं का प्रत्यभिज्ञान कर सकते हैं, वहीं जो लोग चित्रों से अधिक परिचित नहीं होते, उन्हें चित्रों में दिखाई गई क्रियाओं या घटनाओं की व्याख्या में कठिनाई होती है।

प्रमुख पद

निरपेक्ष सीमा, उत्तर प्रतिमाएँ, द्विनेत्री संकेत, ऊर्ध्वगामी प्रक्रमण, कर्णावर्त, शंकु, तम-व्यनुकूलन, गहनता प्रत्यक्षण, भेद सीमा, विभक्त अवधान, यूस्टेकी नली, आकृति-भूमि पृथक्करण, निस्यंदक सिद्धांत, निस्यंदक क्षीणता सिद्धांत, गेस्टाल्ट, प्रकाश अनुकूलन, तीव्रता, एकनेत्री संकेत, कोर्ती अंग, प्रात्यक्षिक स्थैर्य, फ़ाई घटना, तारत्व, मूल रंग, दृष्टिपटल, रोडोप्सिन, दंड, चयनात्मक अवधान, अवधान विस्तृति, संधृत अवधान, ध्वनिगुण, अधोगामी प्रकमण, चाक्षुष भ्रम, तरंगदैर्ध्य

सारांश

- *हमारे बाह्य एवं आंतरिक जगत का ज्ञान ज्ञानेंद्रियों की सहायता से संभव होता है। इनमें से पाँच बाह्य ज्ञानेंद्रियाँ तथा दो आंतरिक ज्ञानेंद्रियाँ होती हैं। ज्ञानेंद्रियाँ विभिन्न उद्दीपकों को प्राप्त करती हैं तथा उन्हें तंत्रिका आवेगों के रूप में मस्तिष्क के विशिष्ट क्षेत्रों को व्याख्या के लिए भेज देती हैं।*
- *दृष्टि एवं श्रवण दो सर्वाधिक उपयोग में आने वाली संवेदनाएँ हैं। दंड एवं शंकु दृष्टि के ग्राही होते हैं। दंड प्रकाश की निम्न तीव्रता में क्रियाशील होते हैं जबकि शंकु प्रकाश की उच्च तीव्रता में कार्य करते हैं। वे क्रमशः अवर्णक एवं वर्ण दृष्टि के लिए उत्तरदायी होते हैं।*
- *प्रकाश अनुकूलन एवं तम-व्यनुकूलन चाक्षुष व्यवस्था के दो रोचक गोचर हैं। वर्ण, संतृप्ति एवं द्युति रंग की मूल विमाएँ हैं।*
- *श्रवण संवेदना के लिए ध्वनि उद्दीपक होती है। तीव्रता, तारत्व तथा स्वर विशेषता ध्वनि की विशेषताएँ होती हैं। आधार झिल्ली में पाया जाने वाला कोर्ती अंग श्रवण का मुख्य अंग होता है।*
- *अवधान वह प्रक्रिया होती है जिसके द्वारा हम एक निश्चित समय में निरर्थक सूचनाओं का निस्यंदन कर कुछ अन्य सूचनाओं का चयन करते हैं। सक्रियता, एकाग्रता तथा खोज अवधान के महत्वपूर्ण गुण होते हैं।*
- *चयनात्मक तथा संधृत अवधान, अवधान के दो प्रमुख प्रकार होते हैं। विभक्त अवधान उन अभ्यस्त कृत्यों में स्पष्ट होता है जहाँ सूचनाओं के प्रक्रमण में एक तरह की स्वचालिता आ जाती है।*
- *अवधान विस्तृति, जादुई संख्या सात से दो अधिक अथवा दो कम होती है।*
- *प्रत्यक्षण का संबंध ज्ञानेंद्रियों से प्राप्त सूचनाओं की सुविज्ञ रचना एवं व्याख्या की प्रक्रियाओं से होता है। मानव अपनी अभिप्रेरणा, प्रत्याशा, संज्ञानात्मक शैली तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के आधार पर अपने संसार का प्रत्यक्षण करते हैं।*
- *आकार प्रत्यक्षण का संबंध दृश्य परिरेखा के क्षेत्र से हटकर जो चाक्षुष क्षेत्र होता है, उसी के प्रत्यक्षण से होता है। अति आदिम संगठन आकृति-भूमि पृथक्करण के रूप में घटित होता है।*
- *गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने अनेक सिद्धांत बताए हैं, जो हमारे प्रात्यक्षिक संगठन को निर्धारित करते हैं।*
- *दृष्टिपटल पर वस्तु की प्रक्षेपित प्रतिमा द्विविम होती है। त्रिविम प्रत्यक्षण एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया होती है जो कुछ एकनेत्री एवं द्विनेत्री संकेतों के सही उपयोग पर निर्भर करती है।*
- *प्रकाश की किसी भी तीव्रता एवं किसी भी दिशा से किसी वस्तु का प्रत्यक्षण यदि अपरिवर्तनीय हो तो उसे प्रात्यक्षिक स्थैर्य कहते हैं। आकार, आकृति एवं द्युति स्थैर्य इसके उदाहरण हैं।*
- *भ्रम यथार्थ प्रत्यक्षण के उदाहरण नहीं हैं। हमारी ज्ञानेंद्रियों द्वारा प्राप्त सूचनाओं की गलत व्याख्या से यह गलत प्रत्यक्षण होता है। कुछ भ्रम सार्वभौम होते हैं जबकि अन्य वैयक्तिक एवं संस्कृति-विशिष्ट होते हैं।*
- *सामाजिक-सांस्कृतिक कारक हमारे प्रत्यक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। वे लोगों में प्रात्यक्षिक अनुमान की कुछ आदतों एवं उद्दीपकों की प्रमुखता के प्रति विभेदक अंतरंगता उत्पन्न कर कार्य करते हैं।*

समीक्षात्मक प्रश्न

1. ज्ञानेंद्रियों की प्रकार्यात्मक सीमाओं की व्याख्या कीजिए।
2. प्रकाश अनुकूलन एवं तम-व्यनुकूलन का क्या अर्थ है? वे कैसे घटित होते हैं?
3. रंग दृष्टि क्या है तथा रंगों की विमाएँ क्या हैं?
4. श्रवण संवेदना कैसे घटित होती है?
5. अवधान को परिभाषित कीजिए। इसके गुणों की व्याख्या कीजिए।
6. चयनात्मक अवधान के निर्धारकों का वर्णन कीजिए। चयनात्मक अवधान संधृत अवधान से किस प्रकार भिन्न होता है?
7. चाक्षुष क्षेत्र के प्रत्यक्षण के संबंध में गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों की प्रमुख प्रतिज्ञप्ति क्या है?
8. स्थान प्रत्यक्षण कैसे घटित होता है?

9. गहनता प्रत्यक्षण के एकनेत्री संकेत क्या हैं? गहनता प्रत्यक्षण में द्विनेत्री संकेतों की भूमिका की व्याख्या कीजिए।
10. भ्रम क्यों उत्पन्न होते हैं?
11. सामाजिक-सांस्कृतिक कारक हमारे प्रत्यक्षण को किस प्रकार प्रभावित करते हैं?

परियोजना विचार

1. पत्रिकाओं से दस विज्ञापनों का संग्रह कीजिए। प्रत्येक विज्ञापन के विषय एवं संदेश का विश्लेषण कीजिए। किसी विशेष उत्पाद के संवर्धन के लिए विभिन्न अवधानिक एवं प्रात्यक्षिक कारकों के उपयोग पर टिप्पणी कीजिए।
2. एक घोड़े अथवा हाथी के खिलौने का प्रतिरूप दोषपूर्ण दृष्टि वाले तथा दृष्टियुक्त बच्चों को दीजिए। कुछ समय तक दोषपूर्ण दृष्टि वाले बच्चों को इन खिलौनों को स्पर्श करके इनका अनुभव करने दीजिए। बच्चों से कहिए कि वे इनका वर्णन करें। खिलौने का वही प्रतिरूप दृष्टियुक्त बच्चों को दीजिए। उनके विवरणों की तुलना कीजिए एवं समानताओं तथा असमानताओं का पता लगाइए।

   एक और खिलौने का प्रतिरूप लीजिए (जैसे- तोता) एवं कुछ दोषपूर्ण दृष्टि वाले बच्चों को स्पर्श करके इसका अनुभव करने दीजिए। उसके बाद उन्हें कागज़ का एक पन्ना एवं पेन्सिल दीजिए तथा उनसे कहिए कि वे पन्ने पर तोते का चित्र बनाएँ। वही तोता दृष्टियुक्त बच्चों को कुछ समय तक दिखाइए, अब वह तोता उनके सामने से हटा लीजिए और उनसे कहिए कि कागज़ के एक पन्ने पर तोते का चित्र बनाएँ।

   दोषपूर्ण दृष्टि वाले एवं दृष्टियुक्त बच्चों के द्वारा बनाए गए चित्रों की तुलना कीजिए एवं उनमें समानताओं एवं असमानताओं की जाँच कीजिए।

अध्याय 6

अधिगम

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- अधिगम के स्वरूप का वर्णन कर सकेंगे,
- अधिगम के विभिन्न रूपों या प्रकारों तथा इन प्रकारों में प्रयुक्त प्रक्रमों की व्याख्या कर सकेंगे,
- अधिगम के दौरान घटित होने वाली तथा उसे प्रभावित करने वाली विविध मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को समझ सकेंगे,
- अधिगम के निर्धारकों की व्याख्या कर सकेंगे, तथा
- अधिगम सिद्धांतों के कुछ अनुप्रयोगों से परिचित हो सकेंगे।

विषयवस्तु

परिचय
अधिगम का स्वरूप
अधिगम के प्रतिमान
प्राचीन अनुबंधन
प्राचीन अनुबंधन के निर्धारक
क्रियाप्रसूत / नैमित्तिक अनुबंधन
क्रियाप्रसूत अनुबंधन के निर्धारक
प्राचीन तथा क्रियाप्रसूत अनुबंधन : भिन्नताएँ (बॉक्स 6.1)
प्रमुख अधिगम प्रक्रियाएँ
अधिगत असहायपन (बॉक्स 6.2)
प्रेक्षणात्मक अधिगम
संज्ञानात्मक अधिगम
वाचिक अधिगम
संप्रत्यय अधिगम
कौशल अधिगम
अधिगम अंतरण
अधिगम को सुगम बनाने वाले कारक
अधिगमकर्ता : अधिगम शैलियाँ
अधिगम अशक्तताएँ
अधिगम सिद्धांतों के अनुप्रयोग

प्रमुख पद
सारांश
समीक्षात्मक प्रश्न
परियोजना विचार

परिचय

एक नवजात शिशु में बहुत सीमित मात्रा में अनुक्रियाएँ करने की क्षमता होती है। उसकी सारी अनुक्रियाएँ परिवेश में उपयुक्त उद्दीपकों के उपस्थित होने पर स्वत: प्रतिवर्ती रूप में घटित होती हैं। परंतु जैसे-जैसे शिशु का विकास होता है तथा परिपक्वता आती है, वैसे-वैसे उसमें भिन्न-भिन्न प्रकार की अनुक्रियाएँ करने की क्षमता बढ़ती जाती है। वह कुछ व्यक्तियों को; जैसे- अपनी माँ, पिता या दादा को पहचानना सीख लेता है। थोड़ा और विकास होने पर वह चम्मच से भोजन करना सीख लेता है, अक्षरों को पहचानना, उन्हें जोड़कर शब्द बनाना और उन्हें लिखना भी सीख लेता है। वह दूसरे व्यक्तियों को कई तरह के कार्य करते हुए देखता है और उनकी नकल करके अनेक क्रियाओं को करना सीखता है। वस्तुओं के नाम सीखना; जैसे- किताब, संतरा, आम, गाय, लड़का और लड़की इत्यादि और इन नामों को प्रतिधारित करना दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है। आयु बढ़ने के साथ-साथ वह विभिन्न प्रकार की घटनाओं तथा वस्तुओं को देखता है तथा प्रत्येक की अलग-अलग विशेषताओं को सीखता है। वह घटनाओं तथा वस्तुओं का वर्गीकरण करना भी सीख लेता है; जैसे- 'फर्नीचर', 'फल' आदि। इसके अतिरिक्त, वह अनेक पेशीय कौशलों; जैसे- स्कूटर या कार चलाना, प्रभावशाली ढंग से दूसरों से वार्तालाप करना तथा दूसरों से अंत:क्रिया करना भी सीखता है। मनुष्य में कुछ अन्य विशेषताएँ भी होती हैं; जैसे- परिश्रमी होना या अकर्मण्य होना, अपने पेशे में सक्षम बनना तथा सामाजिक क्षमता विकसित करना, जो अधिगम के कारण ही होती हैं। अधिगम तथा परिवेश के साथ अपने को अनुकूलित करने के कारण ही प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन की विभिन्न समस्याओं का समाधान कर पाता है तथा अपने जीवन को सुव्यवस्थित करता है। इस अध्याय में अधिगम के विभिन्न पक्षों का वर्णन किया गया है। इसमें सर्वप्रथम अधिगम को परिभाषित किया गया है तथा उसे एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के रूप में स्पष्ट किया गया है। इसके बाद अधिगम की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है, जो यह दर्शाता है कि कोई व्यक्ति कैसे अधिगम करता है। अधिगम की बहुत सी विधियों का वर्णन किया गया है, जो साधारण से लेकर जटिल स्तर तक के अधिगम की व्याख्या करती हैं। तीसरे खंड में अधिगम के दौरान घटित होने वाले कुछ आनुभविक गोचरों की व्याख्या की गई है। चौथे खंड में अधिगम की मात्रा तथा गति को निर्धारित करने वाले विभिन्न कारकों और विविध अधिगम शैलियों एवं अधिगम अशक्तताओं का वर्णन किया गया है।

अधिगम का स्वरूप

हम यह पहले ही बता चुके हैं कि मनुष्य के व्यवहारों में अधिगम की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। यह व्यक्ति के अनुभव के फलस्वरूप होने वाले व्यापक परिवर्तनों की शृंखला को द्योतित करता है। *अधिगम को हम अनुभवों के कारण व्यवहार में अथवा व्यवहार की क्षमता में होने वाले अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन के रूप में परिभाषित कर सकते हैं।* ध्यातव्य है कि व्यवहारों में कुछ परिवर्तन दवाओं के उपयोग अथवा थकान के कारण भी घटित होते हैं। ये परिवर्तन अस्थायी होते हैं। इनको अधिगम नहीं माना जाता है। उन *परिवर्तनों को ही अधिगम माना जाता है जो अभ्यास और अनुभव के कारण होते हैं और जो अपेक्षाकृत स्थायी होते हैं।*

अधिगम की विशेषताएँ

अधिगम की प्रक्रिया की कुछ अपनी खास विशेषताएँ हैं। *पहली विशेषता यह है कि अधिगम में सदैव किसी न किसी तरह का अनुभव सम्मिलित रहता है।* हम एक घटना को बहुत बार एक निश्चित क्रम में घटित होते हुए अनुभव करते हैं। हम जान जाते हैं कि अमुक घटना के तुरंत बाद दूसरी निश्चित

घटनाएँ होंगी। उदाहरणार्थ, छात्रावास में सूर्यास्त के बाद घंटी बजने से छात्र समझ जाते हैं कि अब भोजनालय में रात का खाना तैयार हो गया है। किसी चीज़ को एक विशेष तरीके से करने के बाद बार-बार प्राप्त संतुष्टि का अनुभव हमें उसको उसी प्रकार करने की आदत डाल देता है। कभी-कभी केवल एक बार किया गया अनुभव भी अधिगम के लिए पर्याप्त होता है। दियासलाई जलाते समय अगर तीली रगड़ते ही किसी बच्चे की अंगुली जल जाती है तो ऐसे एक ही बार के अनुभव से वह भविष्य में दियासलाई का उपयोग करते समय सावधान होना सीख लेता है।

अधिगम के कारण व्यवहार में होने वाले परिवर्तन अपेक्षाकृत स्थायी होते हैं। इनको व्यवहार में होने वाले उन परिवर्तनों से अलग पहचानना चाहिए जो न तो स्थायी होते हैं और न ही सीखे गए होते हैं। उदाहरणार्थ, थकान, औषधि, आदत आदि के कारण भी बहुधा व्यवहार में परिवर्तन होते हैं। मान लीजिए, आप मनोविज्ञान की पाठ्यपुस्तक कुछ समय से पढ़ रहे हैं या मोटरकार चलाना सीख रहे हैं, तो एक समय आता है जब आप थकान महसूस करते हैं। ऐसी स्थिति में आप पढ़ना या कार चलाना छोड़ देते हैं। व्यवहार में यह अस्थायी परिवर्तन थकान के कारण उत्पन्न हुआ है। इसे अधिगम नहीं माना जाता है।

आइए, व्यवहार में होने वाले परिवर्तन का एक दूसरा उदाहरण लिया जाए। मान लीजिए, आपके पड़ोस में विवाह हो रहा है। इससे देर रात तक काफी शोर होता है। प्रारंभ में शोर-गुल से आपके कार्य में व्यवधान पड़ता है। आप परेशानी अनुभव करते हैं। जब शोर-गुल होता रहता है तो आप कुछ *उन्मुखीकरण के प्रतिवर्त* करते हैं। ये प्रतिवर्त धीरे-धीरे कमजोर पड़ जाते हैं और अंत में इन्हें पहचानना संभव नहीं रह जाता। यह भी एक प्रकार का व्यवहार में परिवर्तन है। यह परिवर्तन उद्दीपक के लगातार उद्भासन के कारण होता है। इसे आदत बन जाना कहते हैं। यह परिवर्तन अधिगम के कारण नहीं है। आपने देखा होगा कि अनेक प्रकार के मादक-द्रव्यों के सेवन के परिणामस्वरूप व्यक्ति की दैहिक क्रियाएँ प्रभावित हो जाती हैं, जिनसे व्यवहार में परिवर्तन उत्पन्न हो जाता है। ये परिवर्तन अस्थायी होते हैं और मादक-द्रव्यों का प्रभाव समाप्त होने पर परिवर्तन भी समाप्त हो जाते हैं।

अधिगम में मनोवैज्ञानिक घटनाओं का एक क्रम निहित होता है। यदि हम एक विशिष्ट अधिगम प्रयोग का वर्णन करें, तो यह स्पष्ट हो जाएगा। मान लीजिए कि मनोवैज्ञानिकों की रुचि इस बात के समझने में है कि शब्दों की एक सूची कैसे सीखी जाती है, तो वे निम्नलिखित अनुक्रमों का अनुपालन करेंगे: (1) पूर्व-परीक्षण करना कि कोई व्यक्ति अधिगम के पहले कितना जानता है; (2) निर्धारित समय में स्मरण करने के लिए शब्दों की एक सूची प्रस्तुत करना; (3) इस समय के दौरान नूतन ज्ञान प्राप्त करने के लिए व्यक्ति के द्वारा शब्दों की सूची का प्रक्रमण करना; (4) प्रक्रमण के पूर्ण होने के उपरांत नूतन ज्ञान अर्जित होना (जो अधिगम होगा), तथा (5) कुछ समय व्यतीत हो जाने के उपरांत व्यक्ति के द्वारा प्रक्रमित सूचना का पुनः स्मरण करना। एक व्यक्ति पूर्व-परीक्षण के समय जितने शब्द जानता था, उसकी अपेक्षा अब जितने जानता है; दोनों में तुलना करके कोई भी यह अनुमान लगा सकता है कि अधिगम हुआ है।

इस प्रकार अधिगम एक अनुमानित प्रक्रिया है और **निष्पादन** (performance) से भिन्न है। निष्पादन व्यक्ति का प्रेक्षित व्यवहार या अनुक्रिया या क्रिया है। आइए, हम अनुमान पद को समझने की चेष्टा करें। मान लीजिए कि आपके अध्यापक आपको एक कविता को याद करने के लिए कहते हैं। आप उस कविता को कई बार पढ़ते हैं। तब आप कहते हैं कि आपने वह कविता सीख ली है। आपसे कविता का पाठ करने के लिए कहा जाता है और आप कविता को सुना देते हैं। आपके द्वारा कविता का पाठ करना ही आपका निष्पादन है। आपके निष्पादन के आधार पर अध्यापक यह अनुमान लगाते हैं कि आपने कविता सीख ली है।

अधिगम के प्रतिमान

अधिगम कई विधियों से होता है। इनमें से कुछ विधियों का उपयोग साधारण प्रकार की अनुक्रियाओं के अर्जन में होता है जबकि कुछ का उपयोग जटिल अनुक्रियाओं को प्राप्त करने में किया जाता है। आप इस खंड में इन सभी विधियों के बारे में पढ़ेंगे। अधिगम की सरलतम विधि को **अनुबंधन** (conditioning) कहा जाता है। इसके दो प्रमुख प्रकार पाए गए हैं। पहला **प्राचीन अनुबंधन** (classical conditioning) कहलाता है तथा दूसरा **क्रियाप्रसूत/नैमित्तिक अनुबंधन** (operant/instrumental conditioning)। इसके अतिरिक्त, **प्रेक्षणात्मक अधिगम** (observational learning), **संज्ञानात्मक अधिगम** (cognitive learning), **वाचिक अधिगम** (verbal learning), **संप्रत्यय अधिगम** (concept learning) एवं **कौशल अधिगम** (skill learning) भी होते हैं।

प्राचीन अनुबंधन

इस प्रकार के अधिगम का अध्ययन सर्वप्रथम ईवान पी. पावलव (Ivan P. Pavlov) द्वारा किया गया। पावलव का मुख्य उद्देश्य पाचन क्रिया की शरीरक्रियात्मक प्रक्रियाओं का अध्ययन करना था। उन्होंने अपने अध्ययन के दौरान देखा कि जिन कुत्तों पर वे प्रयोग कर रहे थे वे अपने भोजन की खाली प्लेट को देखते ही लार स्राव करने लगे। जैसा कि आप जानते होंगे भोजन या मुँह में कुछ होने पर लार स्राव की क्रिया होना एक स्वाभाविक प्रतिवर्त अनुक्रिया है। इस प्रक्रिया को विस्तार से समझने के लिए पावलव ने एक प्रयोग किया। उन्होंने दोबारा कुत्तों पर प्रयोग किए। प्रयोग के पहले चरण में एक कुत्ते को एक बॉक्स के अंदर शिकंजे में कस दिया गया और उसे कुछ समय के लिए इसी प्रकार रहने दिया गया। कई दिनों तक इस क्रिया को बार-बार किया गया। इसी दौरान शल्यक्रिया द्वारा कुत्ते के जबड़े में एक नली इस प्रकार फिट कर दी गई कि मुँह में निकलने वाली लार उस नली से होते हुए शीशे के एक मापन गिलास में एकत्र हो जाए। इस प्रायोगिक दशा को चित्र 6.1 में प्रदर्शित किया गया है।

प्रयोग के दूसरे चरण में कुत्ते को भूखा रखने के पश्चात शिकंजे में कस दिया गया। नली का एक सिरा जबड़े में और दूसरा शीशे के जार में रखा गया। इसके बाद एक घंटी बजाई गई और उसके बाद तुरंत उसे खाने के लिए भोजन (मांसचूर्ण) दे दिया गया। कुत्ते को भोजन करने दिया गया। अगले कुछ दिनों तक उसे हर बार घंटी की ध्वनि के बाद मांसचूर्ण प्रदान किया गया। इस तरह के कई प्रयासों के पश्चात एक परीक्षण

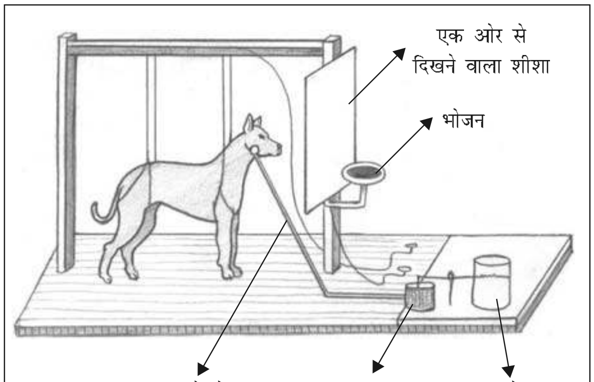

चित्र 6.1 : पावलव के शिकंजे में अनुबंधन के लिए कुत्ता

प्रयास किया गया, जिसमें हर प्रक्रिया पूर्ववत् थी सिवाय इसके कि इस प्रयास में कुत्ते को घंटी बजाने के बाद भोजन नहीं दिया गया। कुत्ता मांसचूर्ण प्राप्ति की आशा में, घंटी की ध्वनि सुनने के बाद लार टपकाता रहा क्योंकि घंटी के साथ भोजन का संबंध था। घंटी और भोजन के बीच इस साहचर्य के फलस्वरूप, घंटी की ध्वनि के प्रति कुत्ते द्वारा लार के स्राव के रूप में प्रदर्शित एक नयी अनुक्रिया की प्राप्ति हुई। इसे अनुबंधन कहा गया है। आपने देखा होगा कि कुत्ते को जब भोजन दिया जाता है तो वह लार टपकाने लगता है। अत: भोजन **अननुबंधित उद्दीपक** (unconditioned stimulus (US)) है और इसके बाद होने वाला लार स्राव **अननुबंधित अनुक्रिया** (unconditioned response (UR)) है। अनुबंधन के पश्चात घंटी की ध्वनि की उपस्थिति में लार का स्राव होने लगता है। घंटी **अनुबंधित उद्दीपक** (conditioned stimulus (CS)) बन जाती है और लार का स्राव **अनुबंधित अनुक्रिया** (conditioned response (CR))। इस प्रकार के अनुबंधन को **प्राचीन अनुबंधन** (classical conditioning) कहते हैं। इस प्रक्रिया को तालिका 6.1 में प्रदर्शित किया गया है। यह स्पष्ट है कि प्राचीन अनुबंधन में अधिगम की स्थिति में दो उद्दीपकों (घंटी की ध्वनि तथा भोजन) के बीच साहचर्य स्थापित होता है और एक उद्दीपक (घंटी की ध्वनि) दूसरे उद्दीपक (भोजन) के आने की सूचना देने वाला बन जाता है। यहाँ *एक उद्दीपक दूसरे उद्दीपक के घटित होने की संभावना को दर्शाता है।*

मनुष्य के दैनिक जीवन में प्राचीन अनुबंधन के अनेक उदाहरण मिलते हैं। कल्पना कीजिए कि आप खाना खाकर अभी-अभी तृप्त हुए हैं तभी आप देखते हैं कि बगल की मेज़ पर एक मिठाई परोसी गई है। यह आपके मुँह में अपने स्वाद का संकेत देती है और लार स्राव आरंभ हो जाता है। आप उसे खाने जैसा अनुभव करते हैं। यह एक अनुबंधित अनुक्रिया है। एक दूसरा उदाहरण लीजिए। शैशवावस्था में बच्चे तीव्र ध्वनि से स्वाभाविक रूप से डरते हैं। मान लीजिए, एक छोटा बच्चा फूला हुआ गुब्बारा पकड़ता है जो तीव्र ध्वनि के साथ उसके हाथों में फट जाता है। बच्चा डर जाता है। अब अगली बार उसे गुब्बारा पकड़ाया जाता है तो उसके लिए यह तीव्र ध्वनि का संकेत बन जाता है और भय की अनुक्रिया उत्पन्न करता है। अनुबंधित उद्दीपक (CS) के रूप में गुब्बारे एवं अननुबंधित उद्दीपक (US) के रूप में तीव्र ध्वनि के साथ-साथ प्रस्तुत किए जाने के कारण ऐसा होता है।

तालिका 6.1	अनुबंधन के चरणों और संक्रियाओं के बीच संबंध	
अनुबंधन के चरण	*उद्दीपक की प्रकृति*	*अनुक्रिया की प्रकृति*
अनुबंधन के पूर्व	भोजन (US) घंटी की ध्वनि	लार स्राव (UR) चौंकना (कोई विशेष अनुक्रिया नहीं)
अनुबंधन के समय	घंटी की ध्वनि (CS) + भोजन (US)	लार स्राव (UR)
अनुबंधन के पश्चात	घंटी की ध्वनि (CS)	लार स्राव (CR)

प्राचीन अनुबंधन के निर्धारक

प्राचीन अनुबंधन में कितनी जल्दी से और कितनी मजबूती से अनुक्रिया प्राप्त होती है, यह अनेक कारकों पर निर्भर करता है। अनुबंधित अनुक्रिया के अधिगम को प्रभावित करने वाले कुछ प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं :

1. *उद्दीपकों के बीच समय संबंध :* प्राचीन अनुबंधन प्रक्रियाएँ प्रमुखत: चार प्रकार की होती हैं। इनका आधार अनुबंधित उद्दीपक और अननुबंधित उद्दीपक की शुरूआत के बीच समय संबंध पर आधारित होता है। पहली तीन प्रक्रियाएँ **अग्रवर्ती अनुबंधन** (forward conditioning) की हैं तथा चौथी प्रक्रिया **पश्चगामी अनुबंधन** (backward conditioning) की है। इन प्रक्रियाओं की मूल प्रायोगिक व्यवस्थाएँ इस प्रकार हैं :

(अ) जब अनुबंधित तथा अननुबंधित उद्दीपक साथ-साथ प्रस्तुत किए जाते हैं तो इसे **सहकालिक अनुबंधन** (simultaneous conditioning) कहा जाता है।

(ब) **विलंबित अनुबंधन** (delayed conditioning) की प्रक्रिया में अनुबंधित उद्दीपक का प्रारंभ अननुबंधित उद्दीपक से पहले होता है। अनुबंधित उद्दीपक का अंत भी अननुबंधित उद्दीपक के पहले होता है।

(स) **अवशेष अनुबंधन** (trace conditioning) की प्रक्रिया में अनुबंधित उद्दीपक का प्रारंभ और अंत अननुबंधित उद्दीपक से पहले होता है। लेकिन दोनों के बीच में कुछ समय अंतराल होता है।

(द) **पश्चगामी अनुबंधन** (backward conditioning) की प्रक्रिया में अननुबंधित उद्दीपक का प्रारंभ अनुबंधित उद्दीपक से पहले शुरू होता है।

प्रायोगिक अध्ययनों से अब यह बिलकुल स्पष्ट हो चुका है कि विलंबित अनुबंधन की प्रक्रिया अनुबंधित अनुक्रिया प्राप्त करने की सर्वाधिक प्रभावशाली विधि है। सहकालिक तथा अवशेष अनुबंधन की प्रक्रियाओं से भी अनुबंधित अनुक्रिया प्राप्त होती है परंतु इन विधियों में विलंबित अनुबंधन प्रक्रिया की तुलना में अधिक प्रयास लगते हैं। ध्यातव्य है कि पश्चगामी अनुबंधन प्रक्रिया से अनुक्रिया प्राप्त होने की संभावना बहुत कम होती है।

2. *अननुबंधित उद्दीपकों के प्रकार :* प्राचीन अनुबंधन के अध्ययनों में प्रयुक्त अननुबंधित उद्दीपक मूलत: दो प्रकार के होते हैं - **प्रवृत्यात्मक** (appetitive) तथा **विमुखी** (aversive)। प्रवृत्यात्मक अननुबंधित उद्दीपक स्वत: सुगम्य अनुक्रियाएँ उत्पन्न करते हैं; जैसे- खाना, पीना, दुलारना आदि। ये अनुक्रियाएँ संतोष और प्रसन्नता प्रदान करती हैं। दूसरी ओर, विमुखी अननुबंधित उद्दीपक; जैसे- शोर, कड़वा स्वाद, विद्युत आघात, पीड़ादायी सूई आदि दुखदायी और क्षतिकारक होते हैं। ये परिहार और पलायन की अनुक्रियाएँ उत्पन्न करते हैं। यह ज्ञात हुआ है कि प्रवृत्यात्मक प्राचीन अनुबंधन अपेक्षाकृत धीमा होता है और इसकी प्राप्ति के लिए अधिक प्रयास करने पड़ते हैं जबकि विमुखी प्राचीन अनुबंधन दो-तीन प्रयासों में ही स्थापित हो जाता है। यह वस्तुत: विमुखी अननुबंधित उद्दीपक की तीव्रता पर निर्भर करता है।

3. *अनुबंधित उद्दीपकों की तीव्रता :* अनुबंधित उद्दीपकों की तीव्रता प्रवृत्यात्मक और विमुखी प्राचीन अनुबंधन दोनों की दिशा को प्रभावित करती है। अनुबंधित उद्दीपक जितना ही अधिक तीव्र होगा, अनुबंधित अनुक्रिया के अर्जन की गति उतनी ही अधिक होगी अर्थात अनुबंधित उद्दीपक जितना अधिक तीव्र होगा, उतने ही कम प्रयासों की जरूरत अनुबंधन की प्राप्ति के लिए पड़ेगी।

क्रियाकलाप 6.1

अनुबंधन को समझने तथा उसकी व्याख्या करने के लिए आप निम्नलिखित अभ्यास को कर सकते हैं। आम के अचार के कुछ टुकड़े प्लेट में रखिए और इसे अपनी कक्षा में विद्यार्थियों को दिखाइए। उनसे पूछिए कि उन्हें अपने मुँह के अंदर कैसा अनुभव हो रहा है?

आपके अधिकांश सहपाठी संभवत: कहेंगे कि उनके मुँह में लार आ रही है।

क्रियाप्रसूत/नैमित्तिक अनुबंधन

इस तरह के अनुबंधन का अन्वेषण सर्वप्रथम बी.एफ. स्किनर (B.F. Skinner) द्वारा किया गया। उन्होंने ऐच्छिक अनुक्रियाओं के घटित होने का अध्ययन किया, जो प्राणी द्वारा अपने पर्यावरण में सक्रिय होने पर होती हैं। स्किनर ने इसे **क्रियाप्रसूत** (operant) कहा। *क्रियाप्रसूत वे व्यवहार या अनुक्रियाएँ हैं, जो जानवरों और मानवों द्वारा ऐच्छिक रूप से प्रकट की जाती हैं और उनके नियंत्रण में रहती हैं।* क्रियाप्रसूत पद का उपयोग किया गया है क्योंकि प्राणी पर्यावरण में सक्रिय होकर कार्य करता है। क्रियाप्रसूत व्यवहार का अनुबंधन **क्रियाप्रसूत अनुबंधन** (operant conditioning) कहलाता है।

स्किनर ने क्रियाप्रसूत अनुबंधन से संबंधित अपने अध्ययन चूहों और कबूतरों पर किए थे। प्रयोग हेतु एक भूखे चूहे को (एक समय में) एक विशेष रूप से बनाए गए बॉक्स, **स्किनर बॉक्स** (Skinner box) में रख दिया जाता था। चूहा इस बॉक्स में चारों ओर घूम-फिर सकता था परंतु इससे बाहर नहीं जा सकता था। बॉक्स की एक दीवार में एक लीवर लगा था, जिसका संबंध बॉक्स की छत पर लगे एक भोजन-पात्र से होता था। लीवर के नीचे एक प्लेट भी रहती थी (चित्र 6.2 देखें)। जब लीवर को दबाया जाता था तो भोजन-पात्र से एक निश्चित मात्रा में भोजन निकलकर प्लेट में गिर जाता था। जब एक भूखा चूहा पहली बार बॉक्स में रखा गया तो उसे लीवर दबाकर भोजन प्राप्त करना तो मालूम नहीं था इसलिए वह भूख से परेशान होकर बॉक्स में इधर से उधर घूमने लगा और दीवारों को पंजों से खरोंचने लगा (अन्वेषी व्यवहार)। इस तरह खोज-बीन करते हुए संयोग से एक बार उससे लीवर दब गया। लीवर के दबते ही प्लेट में खाना गिर गया और चूहे ने उसे खा लिया। अगले प्रयास में कुछ क्षणों के पश्चात यह अन्वेषी व्यवहार पुन:आरंभ हुआ। जैसे-जैसे प्रयासों की संख्या बढ़ती गई, चूहे को बॉक्स में रखने और उसके द्वारा लीवर दबाने के बीच का समय अंतराल घटता गया। अनुबंधन पूर्ण हो जाता है जब स्किनर बॉक्स में रखते ही चूहा लीवर दबाकर भोजन प्राप्त कर लेता है। यहाँ यह स्पष्ट है कि *लीवर दबाने की अनुक्रिया क्रियाप्रसूत अनुक्रिया है जिसका परिणाम भोजन प्राप्ति है।*

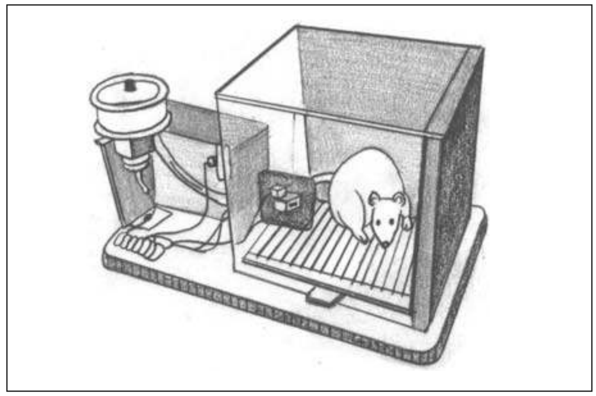

चित्र 6.2 : स्किनर बॉक्स

इस प्रयोग में हम देखते हैं कि लीवर दबाने की अनुक्रिया भोजन प्राप्त करने का निमित्त है। इसलिए इस प्रकार के अधिगम को **नैमित्तिक अनुबंधन** (instrumental conditioning) भी कहा जाता है। हमें अपने दैनिक जीवन में नैमित्तिक अनुबंधन के अनेक उदाहरण मिलते हैं। घरों में बच्चे अपनी माँ के न रहने पर मिठाई के लिए उस स्थान को खोजने का कार्य करते हैं जहाँ जार में मिठाई छिपाकर रखी गई है और मिठाई खा लेते हैं। बच्चे जिससे कुछ पाना चाहते हैं उससे अत्यंत विनम्रता से बात करते हैं। विभिन्न प्रकार के यंत्रों; जैसे- रेडियो, कैमरा, टी.वी. आदि को चलाना हम नैमित्तिक अनुबंधन के सिद्धांत के आधार पर ही सीखते हैं। वस्तुत: अपने वांछित उद्देश्य को पाने के लिए मनुष्य नैमित्तिक अनुबंधन द्वारा बहुत से कार्य संपादित करने वाले संक्षिप्त तरीके सीख लेते हैं।

क्रियाप्रसूत अनुबंधन के निर्धारक

आपने ध्यान दिया है कि *क्रियाप्रसूत या नैमित्तिक अनुबंधन अधिगम का एक प्रकार है जिसमें इसके परिणाम से व्यवहार को सीखा जाता है, बनाए रखा जाता है अथवा उसमें परिवर्तन किया जाता है।* ऐसे परिणाम को **प्रबलक** (reinforcer) कहा जाता है। *प्रबलक ऐसा कोई भी उद्दीपक या घटना है, जो*

किसी (वांछित) अनुक्रिया के घटित होने की संभावना को बढ़ाता है। प्रबलक की अनेक विशेषताएँ होती हैं जो अनुक्रिया की दिशा व शक्ति को निर्धारित करती हैं। प्रबलक की मुख्य विशेषताओं में इसका *प्रकार* (धनात्मक अथवा ऋणात्मक), *संख्या या आवृत्ति, गुणवत्ता* (उच्च अथवा निम्न), और *अनुसूची* (सतत अथवा आंशिक) आदि हैं। प्रबलक की ये सभी विशेषताएँ क्रियाप्रसूत अनुबंधन को प्रभावित करती हैं। अनुबंधित की जाने वाली अनुक्रिया या व्यवहार का स्वरूप दूसरा कारक है जो इस प्रकार के अधिगम को प्रभावित करता है। अनुक्रिया के घटित होने और प्रबलन के बीच का अंतराल भी क्रियाप्रसूत अधिगम को प्रभावित करता है। आइए, इनमें से कुछ कारकों का विस्तृत परीक्षण करें।

प्रबलन के प्रकार

प्रबलन धनात्मक अथवा ऋणात्मक हो सकता है। धनात्मक प्रबलन में वे उद्दीपक शामिल होते हैं जिनका परिणाम सुखद होता है। धनात्मक प्रबलन जिस नैमित्तिक अनुक्रिया से प्राप्त होता है उसे दृढ़ करता है और बनाए रखता है। धनात्मक प्रबलक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, जिनमें भोजन, पानी, तमगा, प्रशंसा, धन, प्रतिष्ठा, सूचनाएँ आदि शामिल हैं। ऋणात्मक प्रबलक अप्रिय एवं पीड़ादायक उद्दीपक होते हैं। *प्राणियों की ऐसी अनुक्रियाएँ जो उन्हें पीड़ादायक उद्दीपकों से छुटकारा दिलाती हैं या उनसे दूर रहने और बच निकलने के लिए पथ प्रदर्शन करती हैं, ऋणात्मक प्रबलन प्रदान करती हैं।* इस प्रकार, ऋणात्मक प्रबलन, परिहार अनुक्रिया अथवा पलायन अनुक्रिया करना सिखाते हैं। उदाहरण के लिए, दुखदायी ठंड से बचने के लिए व्यक्ति ऊनी कपड़े पहनना, लकड़ी जलाना तथा बिजली के हीटर का उपयोग करना सीखता है। व्यक्ति खतरनाक उद्दीपकों से दूर भागना सीखता है क्योंकि यह ऋणात्मक प्रबलन प्रदान करता है। ध्यातव्य है कि ऋणात्मक प्रबलन दंड नहीं है। यह उल्लेखनीय है दंड का उपयोग अनुक्रिया को कम करता है या दबाता है जबकि ऋणात्मक प्रबलक परिहार या पलायन की अनुक्रिया की संभाव्यता को बढ़ाता है। उदाहरणार्थ, दुर्घटना की स्थिति में घायल होने से बचने के लिए अथवा ट्रैफिक पुलिस के द्वारा जुर्माना किए जाने से बचने के लिए चालक एवं सहचालक सीट बेल्ट पहनते हैं।

यह विदित है कि कोई भी दंड स्थाई रूप से किसी अनुक्रिया को दबा नहीं पाता है। हलके एवं विलंबित दंड का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। दंड जितना ही कठोर होता है उसका दमन प्रभाव भी उतने ही अधिक काल तक बना रहता है, परंतु यह प्रभाव स्थायी नहीं होता।

कभी-कभी दंड चाहे जितना ही कठोर क्यों न हो इसका अनुक्रिया के दमन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसके विपरीत, दंडित किए गए व्यक्ति में दंड देने वाले व्यक्ति के प्रति घृणा व विकर्षण का भाव आ जाता है।

प्रबलन की संख्या तथा अन्य विशेषताएँ

प्रबलन की संख्या से हमारा आशय उन प्रयासों की संख्या से है, जिनमें प्राणी को प्रबलन या पुरस्कार प्राप्त हुआ हो। प्रबलन की मात्रा से आशय प्रबलित करने वाले उद्दीपक (भोजन या पानी या पीड़ादायक कारक की तीव्रता) की कितनी मात्रा को प्रत्येक प्रयास में प्राणी प्राप्त करता है। प्रबलन की गुणवत्ता से तात्पर्य प्रबलक के प्रकार से है। मटर का दाना या ब्रेड का टुकड़ा, किशमिश या केक की तुलना में निम्न गुणवत्ता वाला प्रबलक है। नैमित्तिक अनुबंधन की गति साधारणतया उतनी ही बढ़ती है जितनी प्रबलनों की संख्या, मात्रा और गुणवत्ता बढ़ती है।

प्रबलन अनुसूचियाँ

प्रबलन अनुसूची अनुबंधन के प्रयासों के दौरान प्रबलन उपलब्ध कराने की व्यवस्था को कहते हैं। प्रत्येक प्रबलन अनुसूची अनुबंधन की दिशा को अपने-अपने ढंग से प्रभावित करती है। इसके कारण अनुबंधित अनुक्रियाएँ भिन्न-भिन्न प्रकार की विशेषताओं वाली हो जाती हैं। नैमित्तिक अनुबंधन में किसी प्राणी को प्रत्येक अर्जन प्रयास में प्रबलन दिया जा सकता है अथवा कुछ प्रयासों में यह दिया जाता है और दूसरे प्रयासों में नहीं दिया जाता है। इस प्रकार प्रबलन *सतत* या *सविराम* हो सकता है। प्रत्येक बार जब वांछित अनुक्रिया घटित होती है तब उसे प्रबलन दिया जाता है तो हम उसे **सतत प्रबलन** (continuous reinforcement) कहते हैं। इसके विपरीत, सविराम अनुसूची में अनुक्रियाओं को कभी प्रबलित किया जाता है, कभी नहीं। इसे हम **आंशिक प्रबलन** (partial reinforcement) कहते हैं। यह पाया गया है कि आंशिक प्रबलन, सतत प्रबलन की अपेक्षा में विलोप के प्रति ज्यादा विरोध पैदा करता है।

विलंबित प्रबलन

किसी भी प्रबलन की प्रबलनकारी क्षमता विलंब के साथ-साथ कम होती जाती है। यह पाया गया है कि *प्रबलन प्रदान करने में विलंब से निष्पादन का स्तर निकृष्ट हो जाता है।* इस बात

बॉक्स 6.1 प्राचीन तथा क्रियाप्रसूत अनुबंधन : भिन्नताएँ

1. *प्राचीन अनुबंधन में अनुक्रियाएँ किसी उद्दीपक के नियंत्रण में होती हैं क्योंकि वे प्रतिवर्ती अनुक्रियाएँ हैं जो स्वत: ही उचित उद्दीपकों के द्वारा प्राप्त की गई हैं। ऐसे उद्दीपकों को अननुबंधित उद्दीपक के रूप में चुना जाता है और उनके द्वारा प्राप्त की गई अनुक्रियाएँ, अननुबंधित अनुक्रियाओं के रूप में चुनी जाती हैं। इस प्रकार पावलव के अनुबंधन को बहुधा अनुक्रियाकारी अनुबंधन कहा जाता है, जिसमें अननुबंधित उद्दीपक अनुक्रियाएँ उत्पन्न करते हैं।*

   नैमित्तिक अनुबंधन में अनुक्रियाएँ प्राणी के नियंत्रण में होती हैं और ऐच्छिक अनुक्रियाएँ या क्रियाप्रसूत अनुक्रिया होती हैं। इस प्रकार इन दो प्रकार के अनुबंधनों में भिन्न-भिन्न प्रकार की अनुक्रियाओं का अनुबंधन किया जाता है।
2. *प्राचीन अनुबंधन में अनुबंधित उद्दीपक तथा अननुबंधित उद्दीपक सुपरिभाषित होते हैं परंतु क्रियाप्रसूत अनुबंधन में अनुबंधित उद्दीपक परिभाषित नहीं होते हैं। इसका केवल अनुमान लगाया जा सकता है लेकिन यह सीधे तौर से ज्ञात नहीं होता है।*
3. *प्राचीन अनुबंधन में अननुबंधित उद्दीपक का प्रस्तुत किया जाना प्रयोगकर्ता के नियंत्रण में होता है, जबकि क्रियाप्रसूत अनुबंधन में प्रबलक का मिलना या न मिलना अनुक्रिया सीखने वाले प्राणी के नियंत्रण में होता है। इसलिए अननुबंधित उद्दीपक के लिए प्राचीन अनुबंधन के दौरान प्राणी निष्क्रिय रहता है, जबकि क्रियाप्रसूत अनुबंधन में प्राणी को सक्रिय होना होता है ताकि वह प्रबलित हो सके।*
4. *अनुबंधन के इन दोनों रूपों में प्रायोगिक प्रक्रियाओं को स्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त तकनीकी पद भी भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त, क्रियाप्रसूत अनुबंधन में जो प्रबलक हैं वही प्राचीन अनुबंधन में अननुबंधित उद्दीपक हैं। अननुबंधित उद्दीपक के दो कार्य होते हैं। प्रारंभिक प्रयासों में यह अनुक्रिया उत्पन्न करता है, तथा उसे प्रबलित भी करता है ताकि अनुबंधित उद्दीपक से संबंधित हो सके और बाद में उसके द्वारा उत्पन्न किया जा सके।*

को आसानी से दर्शाया जा सकता है। यदि बच्चों से यह पूछा जाए कि वे किसी काम को करने के तुरंत बाद एक छोटा पुरस्कार या लंबे अंतराल के बाद एक बड़ा पुरस्कार लेना पसंद करेंगे तो वे छोटा पुरस्कार तुरंत लेना पसंद करेंगे।

प्रमुख अधिगम प्रक्रियाएँ

जब अधिगम घटित होता है, चाहे यह प्राचीन अनुबंधन हो या क्रियाप्रसूत अनुबंधन, तब इसमें कुछ प्रक्रियाएँ घटित होती हैं। ये हैं - **प्रबलन** (reinforcement), **विलोप** (extinction) या अर्जित अनुक्रिया का घटित न होना, कुछ खास दशाओं में अधिगम का अन्य उद्दीपकों के प्रति **सामान्यीकरण** (generalisation), प्रबलन देने वाले तथा प्रबलन न देने वाले उद्दीपकों के बीच **विभेदन** (discrimination), तथा **स्वतः पुनःप्राप्ति** (spontaneous recovery)।

प्रबलन

प्रबलन प्रयोगकर्ता द्वारा प्रबलक देने की क्रिया का नाम है। प्रबलक वे उद्दीपक होते हैं जो अपने पहले घटित होने वाली अनुक्रियाओं की दर या संभावना को बढ़ा देते हैं। हमने देखा है कि प्रबलित अनुक्रियाओं की दर बढ़ जाती है जबकि अप्रबलित अनुक्रियाओं की दर घट जाती है। एक धनात्मक प्रबलक के मिलने के पहले जो अनुक्रिया घटित होती है उसकी दर बढ़ जाती है। ऋणात्मक प्रबलक अपने हटने या समापन से पहले घटित होने वाली अनुक्रिया की दर बढ़ा देते हैं। प्रबलक प्राथमिक या द्वितीयक हो सकते हैं। एक **प्राथमिक प्रबलक** (primary reinforcer) जैविक रूप से महत्वपूर्ण होता है चूँकि यह प्राणी के जीवन का निर्धारक होता है (जैसे- एक भूखे प्राणी के लिए भोजन)। एक द्वितीयक प्रबलक वह प्रबलक है जिसने पर्यावरण के साथ प्राणी के अनुभव के कारण प्रबलक की विशेषताएँ प्राप्त कर ली होती हैं। हम बहुधा धन, प्रशंसा और श्रेणियों का उपयोग इसी तरह के प्रबलक के रूप में करते हैं। इन्हें **द्वितीयक प्रबलक** (secondary reinforcer) कहते हैं। प्रबलकों के नियमित उपयोग से वांछित अनुक्रिया प्राप्त हो सकती है। ऐसी अनुक्रिया की रचना वांछित अनुक्रिया के निरंतर अनुमानों के प्रबलन द्वारा होती है।

विलोप

विलोप का तात्पर्य अधिगत अनुक्रिया के लुप्त होने से है जो प्रबलन को उस परिस्थिति से हटा लेने के कारण होती है

बॉक्स 6.2 अधिगत असहायपन

यह एक रोचक गोचर है जो दो तरह के अनुबंधनों के बीच अंत:क्रिया का परिणाम है। अधिगत असहायपन अवसादग्रस्त व्यक्तियों में पाया जाता है। सेलिगमैन (Seligman) तथा मायर (Maier) ने कुत्तों पर किए गए अध्ययन में इस गोचर को प्रदर्शित किया। उन्होंने सबसे पहले कुत्तों के सामने ध्वनि (CS) तथा विद्युत आघात (US) को प्राचीन अनुबंधन की विधि से प्रस्तुत किया। पशु को आघात से पलायन या परिहार का कोई अवसर नहीं दिया गया। इन दोनों उद्दीपकों का युग्म कई बार दुहराया गया। इसके बाद कुत्तों को क्रियाप्रसूत अनुबंधन की विधि के अंतर्गत आघात प्रस्तुत किया गया। इसमें कुत्ते आघात से पलायन कर सकते थे यदि वे अपना सिर दीवार पर दबाएँ। पावलवी परिस्थिति में न बच सकने वाले विद्युत आघात का अनुभव कर लेने के बाद ये कुत्ते क्रियाप्रसूत अनुबंधन की विधि के अंतर्गत आघात से पलायन या परिहार करने में असफल रहे। ये कुत्ते आघात सहते रहे और पलायन का कोई प्रयास नहीं किया। कुत्तों के इस व्यवहार को अधिगत असहायपन कहा गया।

यह गोचर मनुष्यों में भी पाया जाता है। यह पाया गया है कि कार्यों के निष्पादन में बार-बार मिलने वाली असफलता के कारण व्यक्तियों में असहायपन की प्रवृत्ति आ जाती है। प्रायोगिक अध्ययन के प्रथम चरण में प्रयोज्यों को प्रत्येक बार उनके काम को देखे बिना यही सूचित किया जाता है कि वे अपने निष्पादन में असफल रहे हैं। दूसरे चरण में इन्हें एक कार्य दिया जाता है। अधिगत असहायपन को बहुधा प्रयोज्य की योग्यता और कार्य त्यागने से पहले दृढ़ता से मापा जाता है। लगातार असफलता से दृढ़ता लगभग नहीं के बराबर होती है और निष्पादन निकृष्ट होता है। इस प्रकार का व्यवहार अधिगत असहायपन का द्योतक है। अनेक अध्ययनों से यह भी प्रमाणित हुआ है कि दीर्घकालिक अवसाद की दशा भी बहुधा अधिगत असहायपन के कारण ही उत्पन्न होती है।

जिसमें अनुक्रिया घटित हुआ करती थी। प्राचीन अनुबंधन में अनुबंधित उद्दीपक-अनुबंधित अनुक्रिया (CS – CR) के घटित होने के बाद यदि अननुबंधित उद्दीपक (US) घटित न हो या लीवर दबाने के बाद स्किनर बॉक्स में यदि भोजन न मिले तो इन सब स्थितियों में सीखा हुआ व्यवहार क्रमश: दुर्बल हो जाता है और अंत में लुप्त हो जाता है।

अधिगम की प्रक्रिया **विलोप का प्रतिरोध** (resistance to extinction) भी प्रदर्शित करती है। इसका तात्पर्य है कि सीखी हुई अनुक्रिया प्रबलित न होने पर भी कुछ समय तक होती रहती है। तथापि बिना प्रबलन वाले प्रयासों की संख्या बढ़ने के साथ-साथ अनुक्रिया का बल धीरे-धीरे क्षीण होता जाता है और अंततोगत्वा अनुक्रिया होनी बंद हो जाती है। कोई सीखी हुई अनुक्रिया कितने समय तक विलोप का प्रतिरोध प्रदर्शित करेगी यह कई कारकों पर निर्भर करता है। यह पाया गया है कि सीखते समय प्रबलित प्रयासों की संख्या बढ़ने के साथ विलोप का प्रतिरोध बढ़ता है और अधिगत अनुक्रिया अपने सबसे ऊँचे स्तर तक पहुँचती है। इस स्तर पर उपलब्धि स्थिर हो जाती है। इसके बाद प्रयासों की संख्या का अनुक्रिया के बल पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। विलोप का प्रतिरोध अर्जन प्रयासों के दौरान प्रबलनों की संख्या बढ़ने के साथ बढ़ता है। इस वृद्धि से ऊपर प्रबलनों की संख्या बढ़ने पर विलोप का प्रतिरोध घटता है। अध्ययनों से यह भी पता चला है कि जैसे-जैसे अर्जन प्रयासों के दौरान प्रबलन की मात्रा (भोज्य पदार्थ की संख्या) बढ़ती है, विलोप का प्रतिरोध घटता है।

यदि अर्जन प्रयासों के दौरान प्रबलन विलंब से मिले तो विलोप का प्रतिरोध बढ़ता है। प्रत्येक अर्जन प्रयास में प्रबलन सीखी हुई अनुक्रिया को विलोप के प्रति कम प्रतिरोधी बना देता है। इसके विपरीत, अर्जन के समय रुक-रुक कर या आंशिक प्रबलन देना सीखी गई अनुक्रिया को विलोप के प्रति अधिक प्रतिरोधी बना देता है।

सामान्यीकरण तथा विभेदन

सामान्यीकरण (generalisation) तथा **विभेदन** (discrimination) की प्रक्रियाएँ हर प्रकार के अधिगम में पाई जाती हैं। तथापि इनका विस्तृत अध्ययन अनुबंधन के संदर्भ में किया गया है। मान लीजिए, एक प्राणी को अनुबंधित उद्दीपक (प्रकाश या घंटी की ध्वनि) प्रस्तुत करने पर अनुबंधित अनुक्रिया (लार स्राव या कोई अन्य प्रतिवर्ती अनुक्रिया) प्राप्त करने के लिए अनुबंधित किया गया है। अनुबंधन स्थापित हो जाने के बाद जब अनुबंधित उद्दीपक के समान कोई दूसरा उद्दीपक (जैसे- टेलीफोन का बजना) प्रस्तुत किया जाए तो प्राणी इसके प्रति अनुबंधित अनुक्रिया करता है। *समान उद्दीपकों के प्रति समान अनुक्रिया करने के इस गोचर को सामान्यीकरण*

कहते हैं। दोबारा, मान लीजिए कि एक बच्चा एक खास आकार और आकृति वाले उस जार की जगह को जान गया है, जिसमें मिठाइयाँ रखी जाती हैं। जब माँ पास में नहीं रहती है तो भी बच्चा जार को खोज लेता है और मिठाई प्राप्त कर लेता है। यह एक अधिगत क्रियाप्रसूत है। अब मिठाइयाँ एक दूसरे जार में रख दी गईं, जो एक भिन्न आकार तथा आकृति का है और रसोईघर में दूसरी जगह रखा हुआ है। माँ की अनुपस्थिति में बच्चा जार को ढूँढ़ लेता है और मिठाई प्राप्त कर लेता है। यह भी सामान्यीकरण का एक उदाहरण है। *जब एक सीखी हुई अनुक्रिया की एक नए उद्दीपक से प्राप्ति होती है तो उसे सामान्यीकरण कहते हैं।*

एक दूसरी प्रक्रिया जो सामान्यीकरण की पूरक है, विभेदन कहलाती है। *सामान्यीकरण समानता के कारण होता है, जबकि विभेदन भिन्नता के प्रति अनुक्रिया होती है।* उदाहरणार्थ, मान लीजिए, एक बच्चा काले कपड़े पहने व बड़ी मूँछों वाले व्यक्ति से डरने की अनुक्रिया से अनुबंधित है। बाद में जब वह एक नए व्यक्ति से मिलता है, जो काले कपड़ों में है और दाढ़ी रखे हुए है तो बच्चा भयभीत हो जाता है। बच्चे का भय सामान्यीकृत है। वह एक दूसरे अपरिचित से मिलता है जो धूसर कपड़ों में है और दाढ़ी-मूँछ रहित है तो बच्चा नहीं डरता है। यह विभेदन का एक उदाहरण है। सामान्यीकरण होने का तात्पर्य विभेदन की विफलता है। विभेदन की अनुक्रिया प्राणी की विभेदक क्षमता या विभेदन के अधिगम पर निर्भर करती है।

स्वत: पुन:प्राप्ति

स्वत: पुन:प्राप्ति किसी अधिगत अनुक्रिया के विलोप होने के बाद होती है। मान लीजिए, एक प्राणी प्रबलन प्राप्त करने के लिए एक अनुक्रिया करना सीखता है। इसके बाद अनुक्रिया विलुप्त हो जाती है और कुछ समय बीत जाता है। यहाँ पर एक प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या अनुक्रिया पूरी तरह विलुप्त हो चुकी है और अनुबंधित उद्दीपक प्रस्तुत करने पर अनुक्रिया घटित नहीं होगी। यह पाया गया है कि काफी समय बीत जाने के बाद सीखी हुई अनुबंधित अनुक्रिया का पुनरुद्धार हो जाता है और वह अनुबंधित उद्दीपक के प्रति घटित होती है। स्वत: पुन:प्राप्ति की मात्रा विलोप के बाद बीती हुई समयावधि पर निर्भर करती है। यह अवधि जितनी ही अधिक होती है, अधिगत अनुक्रिया की पुन:प्राप्ति उतनी ही अधिक होती है। ऐसी पुन:प्राप्ति स्वाभाविक रूप से होती है। चित्र 6.3 स्वत: पुन:प्राप्ति की घटना को प्रस्तुत करता है।

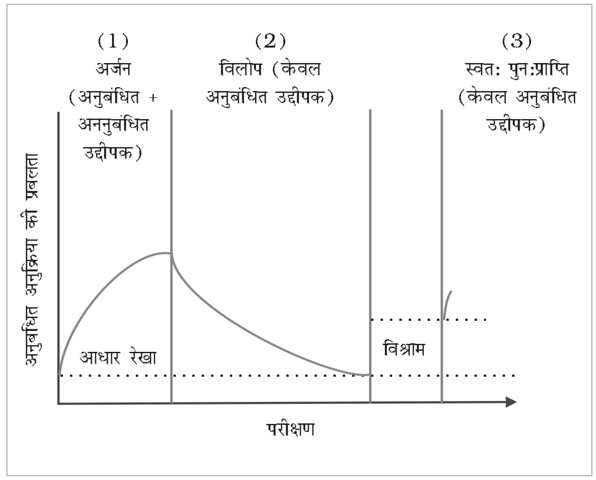

चित्र 6.3 : स्वत: पुन:प्राप्ति की घटना

प्रेक्षणात्मक अधिगम

प्रेक्षणात्मक अधिगम दूसरों का प्रेक्षण करने से घटित होता है। अधिगम के इस रूप को पहले **अनुकरण** (imitation) कहा जाता था। बंदूरा (Bandura) और उनके सहयोगियों ने कई प्रायोगिक अध्ययनों में प्रेक्षणात्मक अधिगम की विस्तृत खोजबीन की। इस प्रकार के अधिगम में व्यक्ति सामाजिक व्यवहारों को सीखता है, इसलिए इसे कभी-कभी **सामाजिक अधिगम** (social learning) भी कहा जाता है। हमारे सामने ऐसी अनेक सामाजिक स्थितियाँ आती हैं, जिनमें यह ज्ञात नहीं रहता कि हमें कैसा व्यवहार करना चाहिए। ऐसी स्थितियों में हम दूसरे व्यक्तियों के व्यवहारों का प्रेक्षण करते हैं और उनकी तरह व्यवहार करने लगते हैं। इस प्रकार के अधिगम को **मॉडलिंग** (modeling) कहा जाता है।

हमारे सामाजिक जीवन में प्रेक्षणात्मक अधिगम के अनेक उदाहरण मिलते हैं। हम जानते हैं कि फैशन डिजाइनर विशेषत: लंबी, सुंदर तथा गरिमायुक्त नवयुवतियों को और लंबे तथा आकर्षक कद-काठी वाले नवयुवकों को अपने बनाए परिधानों को लोकप्रिय बनाने के लिए नियुक्त करते हैं। लोग उन्हें टी.वी. के फैशन शो तथा पत्रिकाओं और समाचारपत्रों के विज्ञापनों में देखते हैं। वे इन आदर्श लोगों का अनुकरण करते हैं। अपने से श्रेष्ठ और पसंदीदा लोगों को देखना और नयी सामाजिक परिस्थिति में उनके व्यवहारों का अनुकरण करना एक सामान्य अनुभव है।

प्रेक्षणात्मक अधिगम के स्वरूप को समझने के लिए बंदूरा के अध्ययनों का वर्णन करना उचित होगा। बंदूरा ने एक

प्रसिद्ध प्रायोगिक अध्ययन में बच्चों को पाँच मिनट की अवधि की एक फिल्म दिखाई। फिल्म में एक बड़े कमरे में बहुत से खिलौने रखे थे और उनमें एक खिलौना एक बड़ा-सा गुड्डा (बोबो डॉल) था। अब कमरे में एक बड़ा लड़का प्रवेश करता है और चारों ओर देखता है। लड़का सभी खिलौनों के प्रति क्रोध प्रदर्शित करता है और बड़े खिलौने के प्रति तो विशेष रूप से आक्रामक हो उठता है। वह गुड्डे को मारता है, उसे फर्श पर फेंक देता है, पैर से ठोकर मारकर गिरा देता है और फिर उसी पर बैठ जाता है। इसके बाद का घटनाक्रम तीन अलग रूपों में तीन फिल्मों में तैयार किया गया। एक फिल्म में बच्चों के एक समूह ने देखा कि आक्रामक व्यवहार करने वाले लड़के (मॉडल) को पुरस्कृत किया गया और एक प्रौढ़ व्यक्ति ने उसके आक्रामक व्यवहार की प्रशंसा की। दूसरी फिल्म में बच्चों के दूसरे समूह ने देखा कि उस लड़के को उसके आक्रामक व्यवहार के लिए दंडित किया गया। तीसरी फिल्म में बच्चों के तीसरे समूह ने देखा कि लड़के को न तो पुरस्कृत किया गया है और न ही दंडित।

इस प्रकार बच्चों के तीन समूहों को तीन अलग-अलग फिल्में दिखाई गईं। फिल्में देख लेने के बाद सभी बच्चों को एक अलग प्रायोगिक कक्ष में बिठाकर उन्हें विभिन्न प्रकार के खिलौनों से खेलने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया गया। इन समूहों को छिपकर देखा गया और उनके व्यवहारों को नोट किया गया। उन लोगों ने पाया कि जिन बच्चों ने फिल्म में खिलौने के प्रति किए जाने वाले आक्रामक व्यवहार को पुरस्कृत होते हुए देखा था, वे खिलौनों के प्रति सबसे अधिक आक्रामक थे। सबसे कम आक्रामकता उन बच्चों ने दिखाई जिन्होंने फिल्म में आक्रामक व्यवहार को दंडित होते हुए देखा था। इस प्रयोग से यह स्पष्ट होता है कि सभी बच्चों ने फिल्म में दिखाए गए घटनाक्रम से आक्रामकता सीखी और मॉडल का अनुकरण भी किया। *प्रेक्षण द्वारा अधिगम की प्रक्रिया में प्रेक्षक मॉडल के व्यवहार का प्रेक्षण करके ज्ञान प्राप्त करता है परंतु वह किस प्रकार से आचरण करेगा यह इस पर निर्भर करता है कि उसने मॉडल को पुरस्कृत होते हुए देखा है या दंडित होते हुए।*

आपने देखा होगा कि छोटे शिशु भी घर में तथा सामाजिक उत्सवों एवं समारोहों में प्रौढ़ व्यक्तियों के अनेक प्रकार के व्यवहारों का ध्यान से प्रेक्षण करते हैं; इसके बाद अपने खेल में उनको दुहराते हैं। उदाहरणार्थ, छोटे बच्चे विवाह समारोह, जन्मदिन प्रीतिभोज, चोर और सिपाही, घर-रखाव आदि के खेल खेलते हैं। वे अपने खेलों में ऐसा सब करते हैं जैसा वे समाज में और टेलीविज़न पर देखते हैं तथा पुस्तकों में पढ़ते हैं।

बच्चे अधिकांश सामाजिक व्यवहार प्रौढ़ों का प्रेक्षण तथा उनकी नकल करके सीखते हैं। कपड़े पहनना, बालों को सँवारने की शैली और समाज में कैसे रहा जाए यह सब दूसरों को देखकर सीखा जाता है। विभिन्न अध्ययनों से यह भी ज्ञात हुआ है कि बच्चों में व्यक्तित्व का विकास भी प्रेक्षणात्मक अधिगम के द्वारा होता है। आक्रामकता, परोपकार, आदर, नम्रता, परिश्रम, आलस्य आदि गुण भी अधिगम की इसी विधि द्वारा अर्जित किए जाते हैं।

क्रियाकलाप 6.2

निम्नलिखित अभ्यास द्वारा आप स्वयं प्रेक्षणात्मक अधिगम का अनुभव प्राप्त कर सकते हैं।

विद्यालय जाने वाले चार-पाँच बच्चों को एकत्र करके उनके सामने कागज़ की नाव बनाने का प्रदर्शन कीजिए। इस क्रिया को दो या तीन बार दुहराइए और बच्चों से उसे ध्यान से देखने के लिए कहिए। इसे बार-बार दुहराने के बाद कि कागज़ को कैसे विभिन्न प्रकार से मोड़ा जाए, बच्चों को एक-एक कागज़ दे दीजिए और नाव बनाने के लिए कहिए।

अधिकतर बच्चे कुछ हद तक इसे सफलतापूर्वक कर पाएँगे।

संज्ञानात्मक अधिगम

कुछ मनोवैज्ञानिक अधिगम को उन संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के रूप में देखते हैं जो अधिगम के मूल में होती हैं। उन्होंने अधिगम के ऐसे उपागम विकसित किए हैं जो उन प्रक्रियाओं पर फोकस करते हैं जो अधिगम करते समय घटित होती हैं, न कि केवल S-R या S-S संबंधों पर ध्यान केंद्रित करके जैसा कि प्राचीन एवं क्रियाप्रसूत अनुबंधन में किया जाता है। अतः, संज्ञानात्मक अधिगम में सीखने वाले व्यक्ति के कार्यकलापों की बजाय उसके ज्ञान में परिवर्तन आता है। *अंतर्दृष्टि अधिगम* एवं *अव्यक्त अधिगम* में इस प्रकार का अधिगम परिलक्षित होता है।

अंतर्दृष्टि अधिगम

कोहलर (Kohler) ने अधिगम का एक ऐसा मॉडल प्रदर्शित किया जिसकी व्याख्या अनुबंधन के आधार पर सरलता से नहीं

की जा सकती। उन्होंने चिम्पैंज़ी पर अनेक प्रयोग किए, जिसमें चिम्पैंज़ी को जटिल समस्याओं का समाधान करना था। कोहलर ने चिम्पैंज़ी को एक बंद खेल क्षेत्र में रखा जहाँ भोजन था, लेकिन चिम्पैंज़ी की पहुँच के बाहर था। इस खेल क्षेत्र में कुछ उपकरण; जैसे- डंडे तथा बॉक्स भी रख दिए गए थे। चिम्पैंज़ी ने तेज़ी से बॉक्स पर खड़े होना या डंडे से भोज्य पदार्थ को अपनी ओर खिसकाना सीख लिया। इस प्रयोग में अधिगम प्रयत्न-त्रुटि तथा प्रबलन के परिणामस्वरूप घटित नहीं हुआ, बल्कि अकस्मात अंतर्दृष्टिय दीप्ति द्वारा घटित हुआ। चिम्पैंज़ी कुछ समय तक खेल क्षेत्र में घूमता रहा, फिर एकाएक एक बक्से पर खड़ा हो जाता, एक डंडा उठाकर केले पर मारता, जो कि सामान्यत: उनकी पहुँच के बाहर ऊँचाई पर थे। चिम्पैंज़ी ने जो अधिगम प्रदर्शित किया उसे कोहलर ने *अंतर्दृष्टि अधिगम* कहा। यह ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी समस्या का समाधान एकाएक स्पष्ट हो जाता है।

अंतर्दृष्टि अधिगम के एक सामान्य प्रयोग में एक समस्या प्रस्तुत की जाती है, उसके पश्चात कुछ समय तक प्रगति का आभास नहीं होता, फिर अंत में एकाएक समस्या समाधान उत्पन्न होता है। अंतर्दृष्टि अधिगम में अचानक समाधान प्राप्त होना अनिवार्य है। एक बार समाधान मिल जाने पर, अगली बार समस्या उपस्थित होने पर उसकी पुनरावृत्ति तत्काल की जा सकती है। अत: यह स्पष्ट है कि जो अधिगत किया गया है वह उद्दीपकों तथा अनुक्रियाओं के बीच अनुबंधित साहचर्यों का विशिष्ट समूह नहीं है, बल्कि साधन तथा साध्य के बीच एक संज्ञानात्मक संबंध है। इसके परिणामस्वरूप अंतर्दृष्टि अधिगम का सामान्यीकरण अन्य मिलती हुई समस्याओं की परिस्थितियों में भी हो सकता है।

अव्यक्त अधिगम

एक अन्य प्रकार के संज्ञानात्मक अधिगम को *अव्यक्त अधिगम* कहते हैं। अव्यक्त अधिगम में एक नया व्यवहार सीख लिया जाता है, किंतु व्यवहार दर्शाया नहीं जाता, जब तक कि उसे दर्शाने के लिए प्रबलन प्रदान नहीं किया जाता है। टोलमैन (Tolman) ने अव्यक्त अधिगम के संप्रत्यय को अपना प्रारंभिक योगदान दिया। अव्यक्त अधिगम को समझने के लिए उनके एक प्रयोग का संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है। टोलमैन ने चूहों के दो समूहों को भूल-भुलैया में छोड़ा तथा उन्हें अन्वेषण करने का अवसर दिया। चूहों के एक समूह को भूल-भुलैया के अंत में भोजन मिला और उन्होंने भूल-भुलैया में प्रारंभ से अंत तक का रास्ता तेज़ी से ढूँढ़ लिया। दूसरी ओर, चूहों के दूसरे समूह को कोई पुरस्कार नहीं दिया गया तथा उन्होंने अधिगम के कोई स्पष्ट संकेत भी प्रदर्शित नहीं किए। किंतु बाद में जब उन्हें प्रबलित किया गया तो वे भी भूल-भुलैया के रास्ते में प्रारंभ से अंत तक उतनी ही सक्षमता से दौड़ने लगे जितना कि पुरस्कृत समूह के चूहे दौड़ते थे।

टोलमैन ने यह प्रतिपादित किया कि अप्रबलित समूह के चूहों ने भी भूल-भुलैया के मानचित्र को अन्वेषण करके जल्दी ही सीख लिया था। केवल उन्होंने अपने अव्यक्त अधिगम का प्रदर्शन तब तक नहीं किया था जब तक कि ऐसा करने के लिए उन्हें प्रबलन प्रदान नहीं किया गया। इसके बजाय चूहों ने भूल-भुलैया का एक **संज्ञानात्मक मानचित्र** (cognitive map) विकसित किया, अर्थात अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उन्हें जिन दिशाओं और स्थानिक अवस्थितियों की आवश्यकता थी उनका मानस चित्रण किया।

वाचिक अधिगम

वाचिक अधिगम अनुबंधन से भिन्न है और यह अधिगम मनुष्यों तक ही सीमित है। आप जानते हैं कि मनुष्य विभिन्न वस्तुओं, घटनाओं तथा इन सबके लक्षणों के बारे में मुख्यत: शब्दों के माध्यम से ही ज्ञान अर्जित करते हैं। एक शब्द का दूसरे शब्द से साहचर्य बन जाता है। मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगशाला में इस तरह से सीखने की प्रक्रिया के अध्ययन के लिए कई विधियों का विकास किया है। प्रत्येक विधि का किसी न किसी तरह की शाब्दिक सामग्री के अधिगम से जुड़े विशिष्ट प्रश्नों की खोज के लिए उपयोग किया जाता है। वाचिक अधिगम की प्रक्रिया के अध्ययन में मनोवैज्ञानिक कई तरह की सामग्रियों का उपयोग करते हैं; जैसे - निरर्थक शब्दांश, परिचित शब्द, अपरिचित शब्द (प्रतिदर्श एकांशों के लिए तालिका 6.2 देखें), वाक्य तथा अनुच्छेद।

वाचिक अधिगम के अध्ययन में प्रयुक्त विधियाँ

1. *युग्मित सहचर अधिगम* : यह विधि उद्दीपक-उद्दीपक अनुबंधन और उद्दीपक-अनुक्रिया अधिगम के समान है। इस विधि का उपयोग मातृभाषा के शब्दों के किसी विदेशी भाषा के पर्याय सीखने में किया जाता है। पहले युग्मित सहचरों की एक सूची बनाई जाती है। युग्मों के पहले शब्द का उपयोग उद्दीपक के रूप में किया जाता है और दूसरे शब्द का अनुक्रिया के रूप में। प्रत्येक युग्म के शब्द एक ही भाषा से

तालिका 6.2	वाचिक अधिगम प्रयोगों में प्रयुक्त एकांशों की प्रतिदर्श सूची	
निरर्थक शब्दांश	*अपरिचित शब्द*	*परिचित शब्द*
क इ म	गवाक्ष	कमल
च ओ प	तितिक्षा	महेश
ग अ ख	यौगपद्य	नयन
प उ य	तुक्तक	दिवस
ट ए घ	चतुष्पद	गणेश
ख ऐ ज्ञ	विषण्ण	उद्योग
न अ ड	कुलिश	प्रसाद
य उ घ	सुतक्षणीय	समीर
ज्ञ ओ ग	काकल	अर्जुन
घ इ क	संकुल	सुवर्ण
ल ए प	कर्मीदल	मलय
र ओ य	जम्बुमणि	कपाल
ड ए क	आप्लावन	रमण
त अ ग	दाड़िम	विक्रम
न उ य	हुतात्मा	निगम

या दो भिन्न भाषाओं से हो सकते हैं। ऐसे शब्दों की एक सूची तालिका 6.3 में दी गई है।

युग्मों के पहले शब्द (उद्दीपक शब्द) निरर्थक शब्दांश (व्यंजन-स्वर-व्यंजन) हैं और दूसरे शब्द अंग्रेज़ी संज्ञाएँ (अनुक्रिया शब्द) हैं। अधिगमकर्ता को पहले दोनों उद्दीपक-अनुक्रिया युग्मों को एक साथ दिखाया जाता है और उसे अनुक्रिया शब्द को प्रत्येक उद्दीपक शब्द को प्रस्तुत करने के बाद पुनःस्मरण करने के निर्देश दिए जाते हैं। इसके बाद सीखने का प्रयास शुरू होता है। एक-एक करके उद्दीपक शब्द दिखाए जाते हैं और प्रतिभागी सही अनुक्रिया शब्द देने का प्रयास करता है। असफल होने पर उसे अनुक्रिया शब्द दिखाया जाता है। पहले प्रयास में सारे उद्दीपक शब्द दिखाए जाते हैं। प्रयासों का यह क्रम तब तक जारी रहता है जब तक कि प्रतिभागी सारे अनुक्रिया शब्दों को बिना किसी त्रुटि के बता नहीं देता है। इस मानदंड तक पहुँचने के लिए प्रयासों की कुल संख्या युग्मित सहचर अधिगम की मापक बन जाती है।

2. *क्रमिक अधिगम* : वाचिक अधिगम की इस विधि का उपयोग यह जानने के लिए किया जाता है कि प्रतिभागी किसी शाब्दिक एकांशों की सूची को किस तरह सीखता है और सीखने में कौन-कौन सी प्रक्रियाएँ शामिल हैं। सबसे पहले शब्दों की एक सूची तैयार कर ली जाती है। सूची में निरर्थक शब्दांश, अधिक परिचित शब्द, कम परिचित शब्द, आपस में संबंधित शब्द आदि हो सकते हैं। प्रतिभागी को सारी सूची प्रस्तुत की जाती हैं और उसको निर्देश दिया जाता है कि वह

तालिका 6.3	युग्मित सहचर अधिगम में प्रयुक्त उद्दीपक-अनुक्रिया युग्म
उद्दीपक-अनुक्रिया	*उद्दीपक-अनुक्रिया*
कएड - समय	मइक - पहाड़
खअग - हिरण	डअन - नाम
पओच - कोयला	गओज्ञ - छत
पएल - बकरी	छएट - नाव
गईत - सोना	लऊट - बाघ
नउय - निगम	सआक - नग

एकांशों को उसी क्रम में बताए जिस क्रम में वे सूची में हैं। पहले प्रयास में, सूची का सबसे पहला एकांश दिखाया जाता है और प्रतिभागी को दूसरा एकांश बताना होता है। यदि वह निर्धारित समय में बताने में असफल रहता है, तो प्रयोगकर्ता उसे दूसरा एकांश प्रस्तुत करता है। अब यह एकांश उद्दीपक बन जाता है और प्रतिभागी को तीसरा एकांश यानी अनुक्रिया शब्द बताना होता है। अगर वह असफल होता है तो प्रयोगकर्ता उसे सही एकांश बता देता है जो चौथे एकांश के लिए उद्दीपक बन जाता है। इस विधि को **क्रमिक पूर्वाभास विधि** (serial anticipation method) कहा जाता है। अधिगम के प्रयास तब तक चलते रहते हैं जब तक कि प्रतिभागी सभी एकांशों का सही-सही क्रमिक पूर्वाभास न कर ले।

3. *मुक्त पुन:स्मरण* : इस विधि में प्रतिभागियों को शब्दों की एक सूची प्रस्तुत की जाती है जिसे वे पढ़ते हैं और बोलते हैं। प्रत्येक शब्द एक निश्चित समय तक ही दिखाया जाता है। इसके बाद प्रतिभागियों को शब्दों को किसी भी क्रम में पुन:स्मरण करने के निर्देश दिए जाते हैं। सूची में शब्द आपस में संबंधित या असंबंधित हो सकते हैं। सूची में दस से ज्यादा शब्द शामिल किए जाते हैं। शब्दों के प्रस्तुतीकरण का क्रम एक प्रयास से दूसरे प्रयास में भिन्न होता है। इस विधि का उपयोग यह जानने के लिए किया जाता है कि प्रतिभागी शब्दों को स्मृति में संचित करने के लिए किस तरह से संगठित करता है। अध्ययनों से यह पता चलता है कि सूची के आरंभ और अंत में स्थित शब्दों का पुन:स्मरण, सूची के बीच में स्थित शब्दों की तुलना में अधिक सरल होता है।

वाचिक अधिगम के निर्धारक

वाचिक अधिगम की अत्यंत व्यापक स्तर पर प्रायोगिक जाँच पड़ताल की गई है। इन अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि वाचिक अधिगम की प्रक्रिया को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। इन निर्धारकों में सबसे महत्वपूर्ण वे हैं जो सीखी जाने वाली सामग्री की विभिन्न विशेषताओं से संबंधित हैं। *सूची की लंबाई* तथा *सामग्री की अर्थपूर्णता* इनमें प्रमुख हैं। सामग्री की अर्थपूर्णता का मापन कई विधियों से किया जा सकता है। एक निश्चित समय में प्राप्त साहचर्यों की संख्या, सामग्री की जानकारी और उपयोगों की आवृत्ति, सूची के शब्दों के बीच संबंध तथा पहले आए शब्दों पर सूची के प्रत्येक शब्द की क्रमिक निर्भरता का उपयोग अर्थपूर्णता के मापन के लिए किया जाता है। निरर्थक शब्दांशों की सूची साहचर्यों के भिन्न-भिन्न स्तरों के साथ उपलब्ध हैं। निरर्थक शब्दांशों का चयन एक-से साहचर्य मूल्यों वाली सूची से करना चाहिए। इस संबंध में किए गए शोध अध्ययनों के आधार पर अधोलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं।

शब्दों की सूची जितनी लंबी होगी, कम साहचर्य मूल्य वाले शब्द जितने ज्यादा होंगे या शब्दों के बीच संबंध का अभाव जितना ज्यादा होगा, सूची के अधिगम में उतना ही अधिक समय लगेगा। जितना अधिक समय सूची को याद करने में लगेगा, अधिगम उतना ही शक्तिशाली होगा। इस परिप्रेक्ष्य में मनोवैज्ञानिकों ने पाया है कि *संपूर्ण काल नियम* काम करता है। इस नियम के अनुसार किसी सामग्री की निश्चित मात्रा को सीखने के लिए एक निश्चित समयावधि आवश्यक होती है। इस अवधि को चाहे जितने प्रयासों में विभक्त कर लिया जाए इससे कोई अंतर नहीं पड़ता है। *अधिगम में जितना ज्यादा समय लगता है, अधिगम उतना ही प्रभावी होता है।*

यदि सूची को कोई प्रतिभागी क्रमिक अधिगम विधि से न सीखकर मुक्त पुन:स्मरण विधि से सीखे तो वाचिक अधिगम संगठनात्मक हो जाता है। इसका अर्थ है कि मुक्त पुन:स्मरण विधि से सीखते समय प्रतिभागी शब्दों का पुन:स्मरण उस क्रम में नहीं करता, जिस क्रम में वे प्रस्तुत किए गए होते हैं, बल्कि वह शब्दों को एक नए क्रम में पुन:स्मरण करता है। सर्वप्रथम बोसफील्ड (Bousfield) ने इसे प्रायोगिक रीति से प्रदर्शित किया। उन्होंने साठ शब्दों की एक सूची का निर्माण किया, जिसमें पंद्रह-पंद्रह शब्द चार अलग-अलग वर्गों से लिए गए थे। ये चार वर्ग थे – नाम, पशु, पेशा, तथा सब्जी। इन शब्दों को प्रतिभागियों के सम्मुख एक-एक करके यादृच्छिक क्रम से प्रस्तुत किया गया। इसके बाद प्रतिभागियों को सभी शब्दों का मुक्त पुन:स्मरण करने को कहा गया। तथापि उन्होंने प्रत्येक वर्ग के शब्दों को एक साथ पुन:स्मरण किया। उन्होंने इस प्रक्रिया को **वर्ग-गुच्छन** (category clustering) कहा। यहाँ महत्वपूर्ण यह है कि प्रतिभागियों को शब्दों का प्रस्तुतीकरण तो यादृच्छिक क्रम में किया गया था परंतु प्रतिभागियों ने उन शब्दों को पुन:स्मरण में वर्गानुसार संगठित किया। इस प्रयोग में वर्ग-गुच्छन की क्रिया सूची के शब्दों के स्वरूप के कारण हुई। यह भी दर्शाया गया है कि मुक्त पुन:स्मरण को हमेशा व्यक्तिनिष्ठता से संगठित किया जाता है। व्यक्तिनिष्ठ संगठन दर्शाता है कि प्रतिभागी शब्दों या एकांशों को अपने-अपने तरीके से संगठित और तदनुसार उनका पुन:स्मरण करते हैं।

वाचिक अधिगम प्राय: साभिप्राय होता है पर लोग शब्दों की कुछ विशेषताओं को अनजाने में या अनायास ही सीख लेते हैं। इस प्रकार के अधिगम में प्रतिभागी उन विशेषताओं को देखते हैं; जैसे- दो या अधिक शब्दों की तुक मिलती है, एक जैसे अक्षरों से शुरू होते हैं, स्वर एकसमान हैं, आदि। इस तरह वाचिक अधिगम साभिप्राय तथा प्रासंगिक दोनों तरह का होता है।

क्रियाकलाप 6.3

नीचे दिए गए शब्दों को अलग-अलग कार्ड पर लिखिए और प्रतिभागियों से एक-एक कर जोर से पढ़ने को कहिए। दो बार पढ़ने के बाद उनसे शब्दों को किसी भी क्रम में लिखने के लिए कहिए : पुस्तक, कानून, रोटी, कमीज़, कोट, कागज़, पेंसिल, बिस्कुट, कलम, जीवन, इतिहास, चावल, दही, जूते, समाजशास्त्र, मिठाई, सरोवर, आलू, आइसक्रीम, मफ़लर और गद्य। शब्दों को प्रस्तुत करने के बाद उनसे पढ़े गए शब्दों को प्रस्तुति के क्रम की परवाह किए बिना लिखने को कहिए।

अपने प्रदत्त का यह देखने के लिए विश्लेषण कीजिए कि पुन:स्मरण किए गए शब्द कोई संगठन प्रदर्शित करते हैं।

संप्रत्यय अधिगम

जिस संसार में हम रहते हैं उसमें अनगिनत प्रकार की वस्तुएँ, घटनाएँ तथा प्राणी होते हैं। ये वस्तुएँ और घटनाएँ संरचना और कार्यों में एक दूसरे से भिन्न होती हैं। बहुत-सी चीज़ें जो मनुष्यों को करनी होती हैं उनमें से एक है—वस्तुओं, घटनाओं, पशुओं आदि को वर्गों में सुव्यवस्थित करना ताकि एक वर्ग की वस्तुओं को एक जैसा जाना जा सके हालाँकि वे अपने लक्षणों में भिन्न होते हैं। इस प्रकार के वर्गीकरणों में संप्रत्यय अधिगम अंतर्निहित होता है।

संप्रत्यय क्या है?

संप्रत्यय *(concept) एक श्रेणी है, जिसका उपयोग अनेक वस्तुओं और घटनाओं के लिए किया जाता है।* 'पशु', 'फल', 'भवन' और 'भीड़' संप्रत्ययों या श्रेणियों के उदाहरण हैं। याद रहे कि संप्रत्यय और श्रेणी दोनों पद एक-दूसरे के बदले में प्रयुक्त हो सकते हैं। *संप्रत्यय की व्याख्या विशेषताओं या गुणों के समूह के रूप में की गई है जो किसी नियम से जुड़े हों।* संप्रत्यय के उदाहरण वे वस्तुएँ, व्यवहार या घटनाएँ होती हैं, जिनमें समान विशेषताएँ हों। *विशेषता वस्तु या घटना या जीवित प्राणियों का ऐसा गुण या पहलु हो सकता है जो उनमें पाया जाए तथा दूसरी भिन्न वस्तुओं में पाई गई या विभेदित की गई कुछ विशेषताओं के तुल्य समझा जाए।* विशेषताएँ अनगिनत प्रकार की हो सकती हैं और उनकी विभेदनीयता प्रेक्षक की प्रात्यक्षिक भावुकता की मात्रा पर निर्भर करती है। रंग, आकार, संख्या, आकृति, चिकनापन, रुक्षता, कोमलता और कड़ापन जैसे गुणों को विशेषता कहते हैं।

संप्रत्यय बनाने के उद्देश्य से विशेषताओं को जोड़ने के लिए प्रयुक्त नियम बहुत सरल या जटिल हो सकते हैं। *एक नियम कुछ करने के लिए एक अनुदेश है।* संप्रत्ययों को परिभाषित करने में प्रयुक्त नियमों को ध्यान में रख कर मनोवैज्ञानिकों ने दो प्रकार के संप्रत्ययों का अध्ययन किया है : **कृत्रिम संप्रत्यय** (artificial concepts) तथा **स्वाभाविक संप्रत्यय या श्रेणियाँ** (natural concepts or categories)। कृत्रिम संप्रत्यय वे होते हैं जो सुपरिभाषित होते हैं और विशेषताओं को जोड़ने वाले नियम परिशुद्ध और कठोर होते हैं। *एक सुपरिभाषित संप्रत्यय में संप्रत्यय का प्रतिनिधित्व करने वाली विशेषताएँ अकेले आवश्यक और विशेषताओं के साथ मिलकर पर्याप्त होती हैं।* संप्रत्यय का उदाहरण होने के लिए जरूरी है कि उस वस्तु में सभी विशेषताएँ मौजूद रहें। दूसरी ओर, स्वाभाविक संप्रत्यय या श्रेणियाँ अक्सर ठीक तरह से परिभाषित नहीं होती हैं। स्वाभाविक संप्रत्यय के उदाहरणों में बहुत-सी विशेषताएँ पाई जाती हैं। इन संप्रत्ययों में जैविक वस्तुएँ, वास्तविक जीवन के उत्पाद तथा मनुष्यों द्वारा बनाई गई विभिन्न कलाकृतियाँ; जैसे- औज़ार, कपड़े, मकान आदि सम्मिलित हैं।

आइए, 'वर्ग' के संप्रत्यय का उदाहरण लिया जाए। यह एक सुपरिभाषित संप्रत्यय है। इसमें चार विशेषताएँ अवश्य होनी चाहिए अर्थात घिरी हुई आकृति, चार भुजाएँ, प्रत्येक भुजा समान लंबाई की और समान कोणों वाली। इस प्रकार एक वर्ग में चार विशेषताएँ होती हैं जो एक **संयोजक नियम** (conjunctive rule) से जुड़ी होती हैं। सुपरिभाषित संप्रत्यय बनाने में प्रयुक्त विभिन्न नियमों को समझने के लिए चित्र 6.4 देखिए।

चित्र 6.4 में एक-दूसरे से भिन्न 16 कार्ड हैं। इन पर दो आकृतियाँ - वर्ग और त्रिभुज, दो रंग - गुलाबी तथा धूसर, क्रॉस का निशान ऊपर या नीचे, और एक छोटा वृत्त दाहिनी ओर या बायीं ओर बना है। इन कार्डों की सहायता से विभिन्न

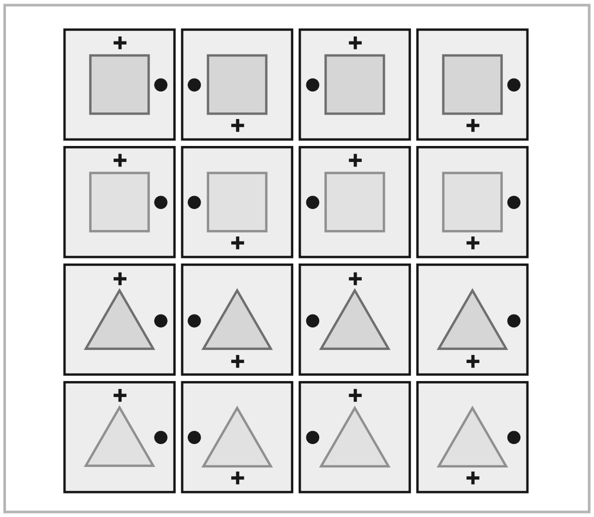

चित्र 6.4 : सोलह चित्र जिनमें दो आकृतियाँ - वर्ग और त्रिभुज, दो रंग - गुलाबी तथा धूसर, ऊपर और नीचे क्रॉस, आकृति के दाएँ या बाएँ वृत्त। कृत्रिम संप्रत्यय के उदाहरण तथा गैर-उदाहरण को व्यक्त करने हेतु प्रयुक्त सामग्री।

नियमों के उपयोग से बहुत से संप्रत्यय बनाए जा सकते हैं। विशेषताओं का वह समूह, जो किसी नियम से जुड़ा रहता है, उसे **प्रासंगिक विशेषता** (relevant features) कहते हैं। नियम से बाहर स्थित विशेषताएँ अप्रासंगिक विशेषताएँ होती हैं। उदाहरणार्थ, चित्र 6.4 में दिए गए कार्डों में चार विशेषताएँ हैं - आकृति, रंग, ऊपर क्रॉस या क्रॉस नहीं और वृत्त दाहिनी

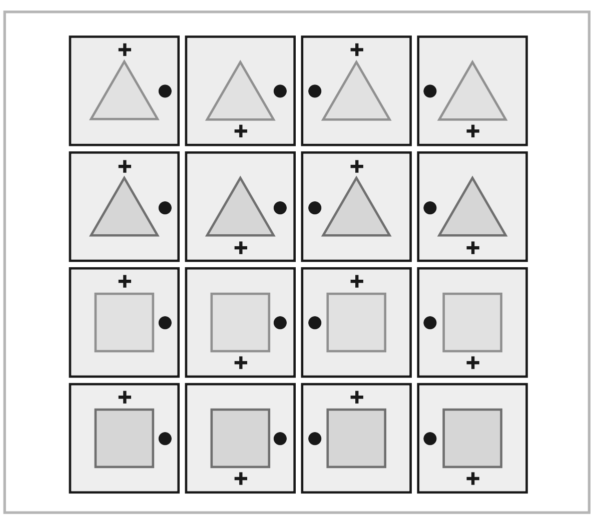

चित्र 6.5 : शीर्ष के चार चित्र संप्रत्यय के प्रतिमान हैं और शेष चित्र प्रतिमान नहीं हैं। संप्रत्यय के उदाहरण त्रिभुज तथा धूसर होने चाहिए। अन्य विशेषताएँ अप्रासंगिक हैं।

ओर या बायीं ओर। दो विशेषताओं का उपयोग करके एक **संयोजी संप्रत्यय** (conjunctive concept) बनाने के लिए व्यक्ति आकृति और भुजाओं का उपयोग प्रासंगिक विशेषताओं के रूप में कर सकता है और दो अन्य विशेषताओं को अप्रासंगिक विशेषताओं के रूप में छोड़ सकता है। इस प्रकार के संप्रत्यय के लिए प्रतिमान और गैर-प्रतिमान चित्र 6.5 में दिए गए हैं। संप्रत्यय के बारे में अधिक जानकारी आप अध्याय 8 'चिंतन' में प्राप्त करेंगे।

कौशल अधिगम

कौशल का स्वरूप

कौशल को किसी जटिल कार्य को आसानी से और दक्षता से करने की योग्यता के रूप में परिभाषित किया गया है। कार चलाना, हवाई जहाज उड़ाना, समुद्री जहाज़ चलाना, आशुलिपि में लिखना तथा लिखना एवं पढ़ना आदि कौशल के उदाहरण हैं। ये कौशल अनुभव और अभ्यास से सीखे जाते हैं। *किसी कौशल में प्रात्यक्षिक-पेशीय अनुक्रियाओं की एक शृंखला अथवा उद्दीपक-अनुक्रिया साहचर्यों की एक श्रेणी होती है।*

कौशल अर्जन के चरण

कौशल अधिगम गुणात्मक रूप से भिन्न कई चरणों से गुजरता है। किसी कौशल को सीखने के प्रत्येक क्रमिक प्रयास के साथ निष्पादन निर्बाध अधिक होता जाता है और निष्पादन करने में प्रयास की आवश्यकता भी कम होती जाती है। दूसरे शब्दों में, निष्पादन अधिक स्वाभाविक या स्वचालित हो जाता है। यह भी देखा गया है कि प्रत्येक चरण में निष्पादन के स्तर में सुधार आता है। सीखने के एक चरण से जब व्यक्ति दूसरे चरण में प्रवेश करता है तो इस संक्रमण काल में निष्पादन के स्तर में सुधार रुक जाता है। इस रुके हुए स्तर को निष्पादन पठार कहा जाता है। अगला चरण प्रारंभ होने के पश्चात निष्पादन का स्तर सुधरने लगता है और ऊपर बढ़ना शुरू हो जाता है।

कौशल अर्जन के चरणों के सर्वाधिक प्रभावशाली वर्णनों में से एक वर्णन फिट्स (Fitts) नामक मनोवैज्ञानिक ने प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार, कौशल अधिगम की प्रक्रिया तीन चरणों में होती है - **संज्ञानात्मक** (cognitive), **साहचर्यात्मक** (associative) तथा **स्वायत्त** (autonomous)। प्रत्येक चरण में भिन्न-भिन्न प्रकार की मानसिक प्रक्रियाएँ होती हैं। कौशल अधिगम के संज्ञानात्मक चरण में अधिगमकर्ता को दिए

गए निर्देशों को समझना और याद करना पड़ता है। उसे यह भी समझना पड़ता है कि कार्य का निष्पादन किस प्रकार किया जाना है। इस चरण में व्यक्ति को परिवेश से मिलने वाले सभी संकेतों, दिए गए निर्देशों की माँग तथा अपनी अनुक्रियाओं के परिणामों को सदा अपनी चेतना में रखना होता है।

कौशल अधिगम का दूसरा चरण साहचर्यात्मक होता है। इसमें विभिन्न प्रकार की सांवेदिक सूचनाओं अथवा उद्दीपकों को उपयुक्त अनुक्रियाओं से जोड़ना होता है। अभ्यास की मात्रा जैसे-जैसे बढ़ती जाती है त्रुटियों की मात्रा घटती जाती है, निष्पादन की गुणवत्ता बढ़ती जाती है और किसी अनुक्रिया को करने में लगने वाला समय भी घटता जाता है। यद्यपि लगातार अभ्यास करते रहने से अधिगमकर्ता त्रुटिहीन निष्पादन करने लगता है तथापि इस चरण में उसे प्राप्त होने वाली समस्त संवेदी सूचनाओं के प्रति सचेत रहना होता है तथा कार्य पर एकाग्रता बनाए रखनी होती है। इसके बाद तीसरा चरण यानी स्वायत्त चरण प्रारंभ होता है। इस चरण में निष्पादन में दो महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। साहचर्यात्मक चरण की **अवधानिक माँगें** (attentional demands) कम हो जाती हैं और बाह्य कारकों द्वारा उत्पन्न की गई बाधाएँ घट जाती हैं। अंत में सचेतन प्रयत्न की अल्प माँगों के साथ कौशलपूर्ण निष्पादन स्वचालिता प्राप्त कर लेता है।

एक चरण से दूसरे चरण में संक्रमण यह स्पष्टतया दर्शाता है कि अभ्यास ही कौशल अधिगम का एकमात्र साधन है। अधिगम के लिए निरंतर अभ्यास और प्रयोग करते रहने की आवश्यकता होती है। अभ्यास के बढ़ने के साथ-साथ सुधार की दर धीरे-धीरे बढ़ती जाती है और त्रुटिहीन निष्पादन की स्वचालिता, कौशल का प्रमाणक बन जाती है। इसी से कहा जाता है कि 'अभ्यास मनुष्य को पूर्ण बनाता है'।

अधिगम अंतरण

अधिगम अंतरण को प्राय: प्रशिक्षण अंतरण या अंतरण प्रभाव कहा जाता है। इसका तात्पर्य *नए अधिगम पर पूर्व अधिगम के प्रभाव से है।* यदि पूर्व अधिगम नए अधिगम में सहायक होता है तो अंतरण को धनात्मक कहा जाता है। यदि नया अधिगम पहले के अधिगम के कारण मंद हो जाता है तो इसे ऋणात्मक अंतरण कहते हैं। सहायक या मंदक प्रभाव की अनुपस्थिति शून्य अंतरण को व्यक्त करती है। अंतरण प्रभाव के अध्ययन के लिए मनोवैज्ञानिक एक विशेष प्रायोगिक अभिकल्प का उपयोग करते हैं। यह अभिकल्प तालिका 6.4 में प्रस्तुत किया गया है।

मान लीजिए, आप यह जानना चाहते हैं कि क्या अंग्रेजी भाषा का सीखना फ्रांसीसी भाषा के सीखने को प्रभावित करता है? इसका अध्ययन करने के लिए आप प्रतिभागियों का एक बड़ा प्रतिदर्श चुनते हैं और उसे यादृच्छिक रूप से दो समूहों में बाँट देते हैं। एक समूह का उपयोग प्रायोगिक दशा के लिए और दूसरा समूह नियंत्रित दशा के लिए तय किया जाता है। प्रायोगिक समूह के प्रतिभागी एक वर्ष तक अंग्रेज़ी भाषा सीखते हैं और उनका परीक्षण कर लिया जाता है कि एक वर्ष में उनको अंग्रेज़ी भाषा का कितना ज्ञान हुआ। दूसरे वर्ष में वे फ्रांसीसी भाषा सीखना प्रारंभ करते हैं और एक वर्ष बीतने पर उनके फ्रांसीसी भाषा के ज्ञान का परीक्षण कर लिया जाता है। नियंत्रित समूह के प्रतिभागी पहले वर्ष में अंग्रेज़ी भाषा सीखने की बजाय अपना दैनिक कार्य ही करते हैं और एक वर्ष के बाद वे भी फ्रांसीसी भाषा सीखना प्रारंभ कर देते हैं। एक वर्ष तक फ्रांसीसी भाषा सीखने के बाद इनके भी फ्रांसीसी भाषा के ज्ञान की उसी तरह परीक्षा ली जाती है। इसके बाद दोनों समूहों के फ्रांसीसी भाषा की परीक्षा में प्राप्त अंकों की तुलना की जाती है। यदि प्रायोगिक समूह के अंक नियंत्रित समूह के अंकों से अधिक हैं तो इसका अर्थ होगा कि अंग्रेज़ी भाषा सीखने का फ्रांसीसी भाषा सीखने पर धनात्मक अंतरण प्रभाव पड़ा। परंतु यदि प्रायोगिक समूह के अंक नियंत्रित समूह से कम आते हैं तो इसका अर्थ होगा कि अंग्रेज़ी भाषा सीखने का फ्रांसीसी भाषा सीखने पर ऋणात्मक अंतरण प्रभाव पड़ा। इसी प्रकार यदि दोनों समूहों के अंकों में सार्थक अंतर न मिले तो यह कहा जाएगा कि अंग्रेज़ी भाषा सीखने का फ्रांसीसी भाषा सीखने पर अंतरण प्रभाव की मात्रा शून्य है।

तालिका 6.4 **अधिगम अंतरण प्रभावों के अध्ययन में प्रयुक्त प्रायोगिक अभिकल्प**

प्रतिभागियों के समूह	*प्रथम चरण*	*द्वितीय चरण*
प्रायोगिक	कार्य अ को सीखना	कार्य ब को सीखना
नियंत्रित	सीखने का कार्य न करके विश्राम	कार्य ब को सीखना

ध्यातव्य है कि अंतरण प्रभाव के अध्ययन में **अविशिष्ट अंतरण** (general transfer) और **विशिष्ट अंतरण** (specific transfer) में भेद किया जाता है। यह सुपरिचित तथ्य है कि पूर्व अधिगम सदा ही धनात्मक अविशिष्ट अंतरण की ओर ले जाता है। यह केवल विशिष्ट अंतरण में ही होता है कि अंतरण प्रभाव धनात्मक या ऋणात्मक होता है और कुछ अवस्थाओं में प्रभाव शून्य भी होता है। हालाँकि वास्तव में, अविशिष्ट अंतरण के कारण शून्य अंतरण सैद्धांतिक रूप से अतर्कसंगत है। आइए, अविशिष्ट तथा विशिष्ट अंतरण की प्रकृति को समझने का प्रयास करें।

अविशिष्ट अंतरण

अविशिष्ट अंतरण के संबंध में स्पष्ट रूप से विचार नहीं किया गया है और ना ही विस्तार से उसे परिभाषित किया गया है। तथापि पूर्व अधिगम व्यक्ति को दूसरे कार्य को अच्छे तरीके से सीखने के अनुकूल बना देता है। एक कार्य का सीखना अधिगमकर्ता को अगला कार्य ज़्यादा सुविधा से सीखने के लिए स्फूर्ति प्रदान करता है। आपने क्रिकेट के खिलाड़ियों को पिच पर विकेट के नजदीक जाकर अपना स्थान ग्रहण करते हुए देखा होगा। ये खिलाड़ी एक पैर से कूदते हुए चलते हैं फिर दूसरे पैर से कूदते हैं। वे बल्ला पकड़े हुए अपने दोनों हाथों को घुमाते हैं ताकि उनके हाथों की मांसपेशियाँ ढीली हो जाएँ। इसी तरह परीक्षा में अपने उत्तर लिखते समय आपने पाया होगा कि शुरू में लिखने की गति धीमी रहती है और बैठने का तरीका लिखने के लिए बहुत प्रभावी नहीं रहता है। दो-तीन पृष्ठ लिखने के बाद आप पूरी तरह तैयार हो जाते हैं। आपकी लिखने की गति तेज हो जाती है तथा शरीर लिखने के कार्य के साथ समायोजित हो जाता है, जो तब तक चलता रहता है जब तक कि अंतिम उत्तर आप नहीं लिख लेते हैं। कुछ देर के पश्चात स्फूर्ति परिणाम समाप्त हो जाता है। स्फूर्ति परिणाम अधिगम के एक सत्र तक रहता है और उसी में व्यक्ति दो या अधिक कार्यों को सीख सकता है।

विशिष्ट अंतरण

जब कभी प्राणी कुछ सीखता है तो उससे उद्दीपक-अनुक्रिया साहचर्यों की शृंखला होती है। किसी भी कार्य में विभेदनीय उद्दीपकों की एक कड़ी होती है, जिसमें प्रत्येक उद्दीपक का एक विशिष्ट अनुक्रिया के साथ साहचर्य बनाना होता है। यदि पहले सीखे जाने वाले कार्य 'अ' का अंतरण प्रभाव बाद में सीखे जाने वाले कार्य 'ब' पर पड़े तो इसे विशिष्ट अंतरण कहते हैं। कार्य 'अ' का सीखना कार्य 'ब' के सीखने को सरल या अधिक कठिन या बिना किसी प्रभाव का बना सकता है। विशिष्ट अंतरण प्रभाव पहले सीखे जाने वाले कार्य और दूसरे कार्य के बीच समानता-असमानता पर निर्भर करता है। तालिका 6.5 में उद्दीपकों और अनुक्रियाओं के बीच संभव संबंधों को प्रदर्शित किया गया है।

प्रायोगिक अध्ययनों की बड़ी शृंखला के आधार पर विशिष्ट अंतरण के संबंध में तालिका 6.5 में दर्शायी गई दशाओं के प्रसंग में निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं :

1. पहली दशा में जब दोनों कार्यों के उद्दीपक तथा अनुक्रिया एक दूसरे से भिन्न हैं तो किसी विशिष्ट अंतरण की प्रत्याशा नहीं की जा सकती। अविशिष्ट अंतरण के कारण थोड़ी मात्रा में धनात्मक अंतरण दिखाई पड़ सकता है।
2. दूसरी दशा में जहाँ दोनों कार्यों के उद्दीपक समान हैं और अनुक्रियाएँ भी बहुत समान हैं, अत्यधिक मात्रा में अंतरण होता है। यह नियमित रूप से दर्शाया गया है कि इस दशा में धनात्मक अंतरण होता है।
3. तीसरी दशा में जब दोनों कार्यों के उद्दीपक तो समान हैं परंतु अनुक्रियाएँ अलग-अलग हैं, थोड़ी मात्रा में धनात्मक अंतरण होता है।

तालिका 6.5 समानता-असमानता के आधार पर प्रारंभिक तथा अनुवर्ती अधिगम कार्यों के बीच संबंध

क्रम सं.	*आरंभिक कार्य*	*दूसरा कार्य*	*टिप्पणी*
1.	$S_A - R_A$	$S_C - R_D$	उद्दीपक तथा अनुक्रियाएँ दोनों ही भिन्न हैं।
2.	$S_A - R_A$	$S_A - R_A$	उद्दीपक वही हैं और अनुक्रियाएँ समान हैं।
3.	$S_A - R_A$	$S_A - R_D$	उद्दीपक समान हैं परंतु अनुक्रियाएँ भिन्न हैं।
4.	$S_A - R_A$	$S_C - R_A$	उद्दीपक भिन्न हैं परंतु अनुक्रियाएँ समान हैं।
5.	$S_A - R_A$	$S_A - R_A$	उद्दीपक तथा अनुक्रियाएँ वही हैं पर साहचर्य बदल गया है।

4. चौथी दशा में दोनों कार्यों के उद्दीपक भिन्न-भिन्न हैं परंतु अनुक्रियाएँ एकसमान हैं। इस दशा में अनुक्रियाओं के साथ नए साहचर्य सीखने होंगे। इस दशा में धनात्मक अंतरण प्राप्त होता है।
5. पाँचवीं दशा में उद्दीपक तथा अनुक्रियाएँ तो दोनों ही कार्यों में समान हैं परंतु युग्मों की रचना बदल जाने के कारण दूसरे कार्य को सीखने में ऋणात्मक अंतरण होता है। ऐसा इसलिए होता है कि आरंभिक कार्य में सीखे गए साहचर्य नए साहचर्यों को सीखने में अवरोध पैदा करते हैं। इस तरह के अवरोधों का वर्णन अध्याय 7 'मानव स्मृति' में किया गया है।

अधिगम को सुगम बनाने वाले कारक

इस अध्याय के पिछले खंड में हमने अधिगम के विशिष्ट निर्धारकों का परीक्षण किया है। उदाहरण के लिए, प्राचीन अनुबंधन में अनुबंधित तथा अननुबंधित उद्दीपकों का समीपस्थ प्रस्तुतीकरण; क्रियाप्रसूत अनुबंधन में प्रबलित प्रयासों की संख्या, प्रबलन की मात्रा, तथा प्रबलन प्राप्त होने में विलंब; प्रेक्षणात्मक अधिगम में मॉडल की प्रतिष्ठा तथा आकर्षकता; वाचिक अधिगम में सीखने की विधि; तथा संप्रत्यय अधिगम में घटनाओं और वस्तुओं के प्रात्यक्षिक लक्षणों तथा नियमों के स्वरूप आदि का विवरण दिया गया है। इस खंड में अब हम अधिगम के कुछ सामान्य कारकों का वर्णन प्रस्तुत करेंगे। यह विवेचन व्यापक न होकर कुछ प्रमुख कारकों पर केंद्रित होगा जो अधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

सतत बनाम आंशिक प्रबलन

अधिगम के प्रयोगों में प्रयोगकर्ता एक विशेष अनुसूची के अनुसार प्रबलन प्रदान करने का प्रबंध कर सकता है। अधिगम के प्रसंग में दो प्रकार की प्रबलन अनुसूचियों का विशेष महत्त्व है - **सतत** (continuous) तथा **आंशिक** (partial)। सतत प्रबलन में प्रतिभागी को प्रत्येक लक्षित अनुक्रिया के बाद प्रबलन दिया जाता है। इस प्रबलन अनुसूची का उपयोग करने पर अनुक्रिया की दर बहुत अधिक होती है परंतु जब प्रबलन देना बंद कर दिया जाता है तो अनुक्रिया की दर बहुत तेजी से घट भी जाती है और अनुक्रिया का विलोप शीघ्र होता है। चूँकि प्राणी को प्रत्येक प्रयास में प्रबलन मिलता है अत: प्रबलक की प्रभावकता कम हो जाती है। ऐसी अनुसूचियों में जहाँ प्रबलन लगातार नहीं किया जाता है वहाँ पर कुछ अनुक्रियाओं को प्रबलित नहीं किया जाता है। इसलिए इसे आंशिक या सविराम प्रबलन अनुसूची कहा जाता है। आंशिक अनुसूची में नैमित्तिक अनुक्रियाओं को कब-कब प्रबलित किया जाएगा और कब-कब नहीं, इसके निर्धारण की अनेक विधियाँ हैं। आंशिक प्रबलन अनुसूची द्वारा प्रबलन देने पर भी अनुक्रिया की दर अत्यंत अधिक होती है, विशेष रूप से उस समय जब अनुक्रियाएँ अनुपात अनुसूची के अनुसार प्रबलित की जाती हैं। इस प्रकार की अनुसूची में प्राणी बहुधा बहुत सी अनुक्रियाएँ करता है जिन्हें प्रबलित नहीं किया जाता है। अत: उसे यह जान पाना कठिन होता है कि कब कोई प्रबलन देना पूर्णत: बंद कर दिया गया है या कब प्रबलन देने में विलंब किया जा रहा है। सतत प्रबलन अनुसूची में तो यह कहना सरल है कि कब प्रबलन देना बंद कर दिया गया है। इस प्रकार का अंतर विलोप के लिए निर्णायक पाया गया है। यह देखा गया है कि *सतत प्रबलन की तुलना में आंशिक प्रबलन अनुसूची द्वारा सिखाई गई अनुक्रिया का विलोप अत्यंत कठिनाई से होता है।* इस तथ्य-आंशिक प्रबलन में प्राप्त की गई अनुक्रियाएँ विलोप का ज़्यादा प्रतिरोध करती हैं-को **आंशिक प्रबलन प्रभाव** (partial reinforcement effect) कहा जाता है।

अभिप्रेरणा

जीवन-रक्षा की आवश्यकता सभी जीवित प्राणियों में होती है और मनुष्यों में जीवन-रक्षा के साथ-साथ संवृद्धि की भी आवश्यकता होती है। अभिप्रेरणा से हमारा तात्पर्य प्राणी की एक ऐसी मानसिक तथा शारीरिक अवस्था से है जो प्राणी को उसकी वर्तमान आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए उद्वेलित करती है। दूसरे शब्दों में, अभिप्रेरणा प्राणी को लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रबलता से काम करने के लिए ऊर्जा प्रदान करती है। ऐसे अभिप्रेरित व्यवहार तब तक होते रहते हैं जब तक कि लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाए और आवश्यकता की पूर्ति न हो जाए। अधिगम के लिए प्राणी का अभिप्रेरित होना अनिवार्य है। जब घर में माँ नहीं होती तो बच्चे रसोईघर में घुसकर खाने-पीने की चीज़ें क्यों खोजते हैं? चूँकि मिठाई खाने की उनकी वर्तमान में आवश्यकता है और इस आवश्यकता की पूर्ति हेतु वे उन बर्तनों को टटोलते हैं जिनमें मिठाई रखी जाती है। खोजने की इस क्रिया से बच्चे मिठाई के बर्तन को पाना सीख लेते हैं। जब किसी बॉक्स में किसी भूखे चूहे को बंद कर दिया जाता है तो भोजन की आवश्यकता के कारण वह बॉक्स में चारों ओर घूम-घूमकर भोजन की तलाश करता

है। इसी कार्य को करने में संयोग से उससे बॉक्स की दीवार में बना एक लीवर दब जाता है और बॉक्स में भोजन का एक टुकड़ा गिर जाता है। भूखा चूहा उसे खा लेता है। बार-बार यही क्रिया दुहराते रहने से चूहा यह सीख जाता है कि लीवर दबाने से भोजन मिलता है।

क्या आपने कभी यह सोचा है कि आप 11वीं कक्षा में मनोविज्ञान तथा अन्य विषयों का अध्ययन क्यों कर रहे हैं ? आप ऐसा वार्षिक परीक्षा में अच्छे अंकों या ग्रेड से उत्तीर्ण होने के लिए कर रहे हैं। आप में अभिप्रेरणा जितनी ही अधिक होगी, आप विभिन्न विषयों को सीखने में उतना ही अधिक परिश्रम करेंगे। आप में सीखने की अभिप्रेरणा उत्पन्न होने के दो स्रोत हैं। कभी तो आप कोई कार्य इसलिए सीखते हैं, क्योंकि उस कार्य का करना अपने आप में आपको आनंद प्रदान करता है (अंतर्भूत अभिप्रेरणा) या इससे किसी अन्य लक्ष्य की प्राप्ति होती है (बहिर्निहित अभिप्रेरणा)।

अधिगम की तत्परता

विभिन्न प्रजातियों के प्राणी अपनी संवेदी क्षमताओं तथा अनुक्रिया करने की योग्यताओं में एक-दूसरे से बहुत भिन्न होते हैं। साहचर्यों को स्थापित करने के लिए जरूरी क्रियाविधियाँ; जैसे- उद्दीपक-उद्दीपक (S – S) अथवा उद्दीपक-अनुक्रिया (S – S) भी भिन्न-भिन्न प्रजातियों में भिन्न-भिन्न होती हैं। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक प्रजाति के प्राणियों में अधिगम की क्षमता उनकी जैविक क्षमता के कारण परिसीमित हो जाती है। कोई प्राणी सीखते समय किस प्रकार के उद्दीपक-उद्दीपक (S – S) या उद्दीपक-अनुक्रिया (S – R) साहचर्य निर्मित कर सकेगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसे प्रकृति द्वारा किस सीमा तक साहचर्य कार्यविधि संबंधी आनुवंशिक क्षमता प्राप्त हुई है। एक विशेष प्रकार का सहचारी अधिगम मनुष्यों तथा वनमानुषों के लिए तो आसान है परंतु बिल्लियों तथा चूहों के लिए वैसे साहचर्यों का सीखना अत्यंत कठिन होता है और कभी-कभी तो असंभव होता है। इसका अर्थ यह है कि कोई प्राणी मात्र उन्हीं साहचर्यों को सीख सकता है, जिसके लिए वह आनुवंशिक रूप से सक्षम है।

तत्परता के संप्रत्यय को एक ऐसी सतत विमा या आयाम के रूप में अच्छी तरह से समझा जा सकता है जिसके एक छोर पर वे साहचर्य या सीखे जाने वाले कार्य रखे जा सकते हैं जिनको सीखना किसी प्रजाति के प्राणियों के लिए सरल है तथा दूसरे छोर पर वे साहचर्य या सीखे जाने वाले कार्य रखे जा सकते हैं, जिनको सीखने के लिए किसी प्रजाति के प्राणियों में तत्परता बिलकुल भी नहीं है। अतः वे उन्हें नहीं सीख सकते। इस विमा के दोनों छोरों के बीच के विभिन्न स्थानों पर वे कार्य या साहचर्य रखे जा सकते हैं, जिनको सीखने के लिए प्राणी न तत्पर है न उसमें तत्परता का अभाव है। वे ऐसे कार्यों को सीख तो सकते हैं परंतु कठिनाई और सतत प्रयास के बाद।

अधिगमकर्ता : अधिगम शैलियाँ

आपने देखा होगा कि कुछ बच्चे, कभी-कभी एक ही परिवार के, विद्यालय में बहुत अच्छा निष्पादन करते हैं, जबकि दूसरे नहीं। पिछले कई दशकों में *अधिगम शैलियों* पर बहुत शोध किए गए हैं। यह एक ही वर्ग, संस्कृति, समुदाय अथवा सामाजिक-आर्थिक समूह तथा विभिन्न समूहों के सदस्यों की सीखने की शैली में भिन्नताओं को प्रदर्शित करते हैं।

अधिगम शैली को *'अधिगम के संदर्भ में किसी अधिगमकर्ता द्वारा उद्दीपकों का उपयोग करने तथा अनुक्रिया करने की सुसंगत शैली'* के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, *यह ऐसी शैली है जिसमें प्रत्येक अधिगमकर्ता ध्यान केंद्रित करना प्रारंभ करता है तथा नयी एवं जटिल सूचनाओं का प्रक्रमण कर उन्हें याद रखता है।'* ज्ञातव्य है कि यह अंतःक्रिया प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग-अलग प्रकार से होती है। उदाहरण के लिए, आपने देखा होगा कि आपकी कक्षा के बच्चे अपने व्यक्तित्व, सांस्कृतिक अनुभवों तथा मूल्यों में अनन्य हैं। विभिन्न विद्यार्थी, भिन्न-भिन्न अधिगम परिवेश, अधिगम प्रकारताएँ पसंद करते हैं तथा उन सबकी अलग-अलग शक्तियाँ, प्रतिभाएँ तथा दुर्बलताएँ होती हैं।

अतएव, यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत विशेषताओं का परीक्षण कर यह निर्धारित किया जाए कि प्रत्येक अधिगमकर्ता में एकाग्रता उत्पन्न करने तथा उसे बनाए रखने, उसके प्रक्रमण की नैसर्गिक शैली के प्रति अनुक्रिया करने तथा दीर्घकालिक स्मृति को सुगम बनाने के लिए क्या सर्वाधिक उपयुक्त है। किसी विद्यार्थी की अधिगम शैली का निर्धारण करने के लिए अनेक उपकरणों का उपयोग किया जाता है।

अधिगम शैलियाँ मुख्यतः प्रात्यक्षिक प्रकारता, सूचना प्रक्रमण, तथा व्यक्तित्व प्रतिरूप से व्युत्पन्न होती हैं। इन उपागमों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :

1. भौतिक पर्यावरण के प्रति जैविक रूप से आधारित प्रतिक्रियाएँ *प्रात्यक्षिक प्रकारता* कहलाती हैं। इसका तात्पर्य व्यक्तियों

के अधिमानों से है जिनके द्वारा वे सूचनाओं को ग्रहण करते हैं; जैसे- श्रवण, दृष्टि, घ्राण, गति तथा स्पर्श संबंधी सूचनाएँ।

2. *सूचना प्रक्रमण* हमारी संरचना के अनुसार हमारे सोचने और समस्या समाधान करने के तरीके तथा सूचना याद करने के तरीके के बीच भेद करता है। इसको सूचना प्रक्रमण के तरीके के रूप में सोचा जा सकता है। उदाहरणार्थ, सक्रिय/विमर्शी, संवेदी/अंत:प्रज्ञात्मक, अनुक्रमिक/ सार्वभौमिक, क्रमिक/सहकालिक, इत्यादि।
3. *व्यक्तित्व प्रतिरूप* हमारे अपने परिवेश के साथ अन्त:क्रिया करने के तरीके हैं। हममें से प्रत्येक का, सूचनाओं को देखने, व्यवस्थित एवं याद करने का एक पसंदीदा, सुसंगत तथा विशिष्ट तरीका होता है। यह उपागम इस बात को समझने पर बल देता है कि कैसे व्यक्तित्व परिवेश के साथ लोगों के अन्त:क्रिया करने के तरीके को प्रभावित करता है, तथा यह कैसे अधिगम परिवेश में व्यक्तियों के एक दूसरे के साथ अनुक्रिया करने के तरीके को प्रभावित करता है।

अधिगम शैलियाँ कई आयामों में भिन्न होती हैं। उदाहरण के लिए, एन्डरसन (Anderson) ने अधिगम की *विश्लेषणात्मक* तथा *संबंधात्मक* शैलियों में विभेद किया है। इन्हें तालिका 6.6 में प्रदर्शित किया गया है। यह स्पष्ट है कि संबंधात्मक शैली वाले व्यक्ति एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में प्रदर्शित सामग्री का अधिगम सबसे अच्छी तरह से करते हैं। वे इकाई के अंशों को संपूर्ण के साथ उनके संबंध के आधार पर ही समझते हैं। दूसरी ओर, विश्लेषणात्मक अधिगम शैली वाले व्यक्ति तब अधिक सुगमता से सीख पाते हैं जब सूचनाएँ एक-एक सोपान करके संचयी अनुक्रमिक प्रतिरूप में प्रस्तुत की जाती हैं जो उनमें संप्रत्ययात्मक समझ के रूप में विकसित होती हैं।

यह याद रखना होगा कि विभिन्न अधिगम शैलियाँ एक पैमाने पर विभिन्न बिंदुओं के समान हैं जो हमें विभिन्न प्रकार के मानस चित्रण को समझने में सहायता करते हैं। ये व्यक्तियों की विशेषताएँ नहीं बताते। अतएव, हमें जनसंख्या को एक विशिष्ट श्रेणी (जैसे- दृष्टियुक्त व्यक्ति, बहिर्मुखी इत्यादि) में नहीं बाँटना चाहिए। चाहे हमारी वरीयता कोई भी हो हम किसी भी शैली के द्वारा अधिगम करने की क्षमता रखते हैं।

तालिका 6.6 अधिगम शैलियाँ

संबंधात्मक शैली	*विश्लेषणात्मक शैली*
1. *सूचना को समग्र चित्र के अंश के रूप में प्रत्यक्षण करना।*	1. *समग्र चित्र में से किसी सूचना को निकाल लेने में सक्षम होना (विस्तृत आरेख पर फोकस)।*
2. *अंतर्ज्ञानात्मक चिंतन का प्रदर्शन।*	2. *अनुक्रमिक एवं संरचित चिंतन का प्रदर्शन।*
3. *मानवीय एवं सामाजिक विषयवस्तु से संबंधित तथा आनुभविक/सांस्कृतिक प्रासंगिकता की सामग्री का सुगमतापूर्वक अधिगम करना।*	3. *उन सामग्रियों का सुगमता से अधिगम करना जो अचेतन तथा अवैयक्तिक हों।*
4. *मौखिक रूप से प्रस्तुत विचारों एवं सूचनाओं के लिए अच्छी स्मृति होना, विशेषत: यदि वे प्रासंगिक हों।*	4. *अमूर्त विचारों एवं अप्रासंगिक सूचनाओं के लिए अच्छी स्मृति होना।*
5. *अशैक्षणिक क्षेत्रों में अधिक कार्योन्मुख होते हैं।*	5. *शैक्षणिक संदर्भ में अधिक कार्योन्मुख होते हैं।*
6. *विद्यार्थियों की योग्यता में प्राधिकारियों के विश्वास अथवा संशय की अभिव्यक्ति से प्रभावित होते हैं।*	6. *दूसरों के अभिमत से अधिक प्रभावित न होना।*
7. *उद्दीप्त न करने वाले कार्य निष्पादन से अलग हटना।*	7. *उद्दीप्त न करने वाले कार्यों में भी सतत रूप से लगे रहने की क्षमता का प्रदर्शन करना।*
8. *पारंपरिक विद्यालयी परिवेश के साथ इस शैली का द्वंद्व होना।*	8. *अधिकांश विद्यालयी परिवेशों से इस शैली का मेल होना।*

अधिगम अशक्तताएँ

आपने अवश्य सुना होगा, पढ़ा होगा या स्वयं देखा होगा कि विद्यालयों में हजारों बच्चे पढ़ने के लिए प्रवेश तो ले लेते हैं परंतु उनमें से कुछ बच्चों के लिए शिक्षण प्रक्रिया की मांग को पूरा कर पाना बहुत कठिन होता है और परिणामस्वरूप वे विद्यालय की पढ़ाई बीच में ही छोड़ देते हैं। ऐसे विद्यार्थियों को बीच में पढ़ाई छोड़ देने वाले छात्र कहते हैं। पढ़ाई को बीच में छोड़ देने के अनेक कारण हो सकते हैं; जैसे – संवेदी अक्षमता, मानसिक मंदन, सामाजिक एवं सांवेगिक व्यतिक्रम, परिवार की गरीबी, सांस्कृतिक विश्वास और मानक या अन्य पर्यावरणी प्रभाव। इन कारकों के अतिरिक्त अधिगम अशक्तता भी एक ऐसा कारक है, जो पढ़ाई को जारी रखने में व्यवधान डालता है। इसके कारण विद्यालय अधिगम अर्थात ज्ञान तथा विभिन्न कौशलों का अर्जन करना बहुत कठिन हो जाता है। सीखने में अशक्त बच्चे परीक्षा उत्तीर्ण करके अगली कक्षा में नहीं जा पाते और पढ़ाई बीच में छोड़ देते हैं।

अधिगम अशक्तता (learning disability) एक सामान्य पद है। इसका अर्थ विभिन्न प्रकार के उन विकारों के समूह से है, जिनके कारण किसी व्यक्ति में सीखने, पढ़ने, लिखने, बोलने, तर्क करने तथा गणित के प्रश्न हल करने आदि में कठिनाई होती है। इन विकारों के स्रोत बच्चे में जन्मजात रूप से अंतर्निहित होते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि केंद्रीय तंत्रिका तंत्र की कार्यविधि में समस्याओं के कारण अधिगम अशक्तता पाई जाती है। अधिगम अशक्तता के साथ-साथ किसी बच्चे में शारीरिक अक्षमता, संवेदी अक्षमता, मानसिक मंदन भी हो सकता है या अधिगम अशक्तता इनके बिना भी हो सकती है।

बच्चों में पाई जाने वाली अधिगम अशक्तता एक पृथक प्रकार की अक्षमता है, जो उन बच्चों में भी पाई जा सकती है, जो सामान्य से श्रेष्ठ बुद्धि वाले, सामान्य संवेदी प्रेरक तंत्र वाले हैं तथा जिनको सीखने के पर्याप्त अवसर प्राप्त होते हैं। यदि अधिगम अशक्तता का समुचित प्रबंध नहीं किया जाए तो यह जीवनपर्यंत बनी रहती है और व्यक्ति के आत्म-सम्मान, पेशा, सामाजिक संबंधों तथा दिन-प्रतिदिन की क्रियाओं को प्रभावित करती है।

अधिगम अशक्तता के लक्षण

अधिगम अशक्तता के अनेक लक्षण हैं। अधिगम अशक्तता वाले बच्चों में ये लक्षण भिन्न-भिन्न संयोजनों में प्रकट होते हैं चाहे उनकी बुद्धि, अभिप्रेरणा तथा अधिगम के लिए किया गया परिश्रम कुछ भी हो।

1. अक्षरों, शब्दों तथा वाक्यांशों को लिखने में, लिखी हुई सामग्री को पढ़ने में तथा बोलने में बहुधा कठिनाई पाई जाती है। यद्यपि उनमें श्रवण दोष नहीं होता है तथापि उनमें सुनने की समस्याएँ पाई जाती हैं। ऐसे बच्चे सीखने के लिए योजना बनाने या इसके लिए कोई तरकीब खोजने में अन्य बच्चों की अपेक्षा बहुत भिन्न होते हैं।
2. अधिगम अशक्तता वाले बच्चों में अवधान से जुड़े विकार पाए जाते हैं। वे किसी एक विषय पर देर तक ध्यान केंद्रित नहीं कर पाते तथा उनका ध्यान शीघ्र ही टूट जाता है। अवधान की इस कमी के कारण अनेक बार उनमें अतिक्रिया उत्पन्न हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप वे हमेशा गतिशील रहते हैं, कुछ न कुछ करते रहते हैं तथा विभिन्न सामानों को अनवरत रूप से इधर से उधर हटाते रहते हैं।
3. अधिगम अशक्तता वाले बच्चों में स्थान व समय की समझदारी की कमी आम लक्षण हैं। ये नयी जगहों को आसानी से नहीं पहचान पाते और अक्सर खो जाते हैं। कालबोध की कमी के कारण ये अपने काम के स्थान पर या तो समय से बहुत पहले या फिर बहुत विलंब से पहुँचते हैं। इसी तरह इनमें दिशाबोध की भी कमी होती है। ऊपर, नीचे, दाएँ, बाएँ आदि में भेद करते हुए कार्य करने में इनसे अक्सर गलतियाँ होती हैं।
4. अधिगम अशक्तता वाले बच्चों का पेशीय समन्वय तथा हस्त-निपुणता अपेक्षाकृत निम्न कोटि का होता है। यह उनके शारीरिक संतुलन के अभाव, पेंसिल को नुकीला करने तथा दरवाज़े का दस्ता (हैंडिल) पकड़ने में अक्षमता एवं साइकिल चलाना सीखने में कठिनाई से स्पष्ट होता है।
5. ये बच्चे काम करने के मौखिक अनुदेशों को समझने और अनुसरण करने में असफल होते हैं।
6. सामाजिक संबंधों का मूल्यांकन भी ये ठीक से नहीं कर पाते। उदाहरण के लिए, ये नहीं जान पाते कि कौन सा सहपाठी इनका अधिक मित्र है और तटस्थ कौन है। ये शरीर भाषा को सीखने एवं समझने में भी अक्षम होते हैं।
7. अधिगम अशक्तता वाले बच्चों में आम तौर से प्रात्यक्षिक विकार भी पाए जाते हैं। दृष्टि, श्रवण, स्पर्श तथा गति से जुड़े संकेतों का प्रत्यक्षण करने में इनसे अधिक त्रुटियाँ होती हैं। ये दरवाजे की घंटी तथा फोन की घंटी में विभेद करने में असफल होते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि

इनमें संवेदी तीक्ष्णता नहीं होती है। ये सिर्फ निष्पादन में इसका उपयोग करने में असफल रहते हैं।

8. अधिगम अशक्तता वाले अधिकांश बच्चों में **पठनवैकल्य** (dyslexia) के लक्षण पाए जाते हैं। ये बहुत बार अक्षर और शब्दों की नकल नहीं कर पाते हैं; जैसे- *कमर* तथा *रकम* में, *सपूत* और *कपूत* में, *'ट'* तथा *'ठ'*, *'प'* तथा *'फ'* में अंतर करना इनके लिए बहुत कठिन होता है। ये शब्दों को वाक्यों के रूप में संगठित करने में अपेक्षाकृत अक्षम होते हैं।

ऐसा सोचना गलत है कि अधिगम अशक्तता वाले बच्चों का इलाज नहीं हो सकता है। उपचारी अध्यापन विधि के उपयोग से बहुत लाभ होता है और कक्षा में ये अन्य बच्चों की तरह हो सकते हैं। शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने ऐसी शिक्षण विधियों का विकास किया है जिनसे अधिगम अशक्तता वाले बच्चों में पाए जाने वाले अनेक लक्षणों को दूर किया जा सकता है।

अधिगम सिद्धांतों के अनुप्रयोग

मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को समृद्ध करने में अधिगम के सिद्धांत अत्यंत मूल्यवान हैं। वे सभी व्यवहार जो जीवन के व्यक्तिगत, सामाजिक तथा आर्थिक पक्षों को शांतिपूर्ण और आनंददायक बनाते हैं, सीखे जाते हैं। ये सभी व्यवहार मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होकर सीखे जाने चाहिए। जीवन के विभिन्न पक्षों में सुधार लाने के लिए समकालीन मनोवैज्ञानिकों ने प्राचीन तथा क्रियाप्रसूत अनुबंधन, सामाजिक अधिगम, वाचिक अधिगम, संप्रत्यय अधिगम, कौशल अधिगम आदि के सिद्धांतों के आधार पर अनेक तकनीकों तथा विधियों का विकास किया है। उदाहरणार्थ, हम व्यवहार के चार क्षेत्रों में अधिगम सिद्धांतों के अनुप्रयोग की चर्चा करेंगे। ये चार क्षेत्र हैं- संगठन, कुसमायोजित व्यवहारों के उपचार, बच्चों का पालन-पोषण, तथा विद्यालय अधिगम।

किसी भी संगठन में व्यक्तियों का कार्य से अनुपस्थित रहना, बार-बार बीमारी की छुट्टी लेना, अनुशासनहीनता तथा आवश्यक कौशलों के अभाव आदि से गंभीर समस्याएँ पैदा होती हैं। अधिगम के सिद्धांतों के अनुप्रयोग से इन समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। कुछ संगठनों ने अपने कर्मचारियों की उपस्थिति बढ़ाने के लिए और कार्य से अनुपस्थित रहने को कम करने के लिए एक रोचक युक्ति का उपयोग किया है। प्रत्येक तीन महीने बीतने पर ऐसे कर्मचारियों के नामों की पर्चियाँ बना ली जाती हैं जो एक दिन भी काम पर अनुपस्थित नहीं हुए और पर्चियों को ड्रम में रख दिया जाता है। लाटरी विधि से ऐसे कर्मचारियों में से चार से पाँच प्रतिशत कर्मचारियों को प्रतिदिन काम पर आने के लिए आकर्षक **पुरस्कार** (rewards) दिया जाता है। पाया गया है कि ऐसी युक्ति से उन संगठनों में अनुपस्थित रहने की प्रवृत्ति घटी है। इसी प्रकार जो कर्मचारी पूरे वर्ष में एक दिन भी बीमारी की छुट्टी नहीं लेते उनको भी पुरस्कृत किया जाता है। इस प्रकार के आंशिक पुरस्कार बीमारी की छुट्टी लेने के प्रसंग को कम करते हैं। अनुशासन सुधारने के लिए प्रबंधक कर्मचारियों के लिए मॉडल के रूप में कार्य करना शुरू करते हैं या कर्मचारियों को ऐसे मॉडल प्रबंधकों के अधीन कर दिया जाता है।

अधिगम के सिद्धांतों के आधार पर अनेक ऐसे चिकित्सात्मक उपचारों का विकास किया गया है जो समायोजन में कठिनाई पैदा करने वाली तथा सामाजिक अक्षमता पैदा करने वाली आदतों व व्यवहारों को सुधारने में सहायक होते हैं। इन विधियों में **विलोप** (extinction) के सिद्धांत का उपयोग किया गया है। असामान्य, अतार्किक भय तथा परिहार अनुक्रिया से ग्रस्त बच्चों तथा प्रौढ़ों के विषय में इस भय को दूर करने के लिए **अंतःस्फोटक चिकित्सा** (implosive therapy) तथा **आप्लावन** (flooding) का उपयोग किया जाता है। अंतःस्फोटक चिकित्सा में व्यक्ति कल्पना करता है कि उसका डराने वाली घटना के साथ बहुत डरावना संपर्क हो रहा है। साथ ही साथ चिकित्सक उसे उस घटना का स्पष्ट मौखिक विवरण भी देता है। भय के इस उपचार में चिकित्सक एक प्रशिक्षक की भाँति काम करता है। दूसरी ओर, आप्लावन में व्यक्ति का वास्तविक डरावनी वस्तु के साथ सामना कराया जाता है और भय के उपचार के लिए इसे सबसे प्रभावकारी माना गया है। अत्यधिक दुश्चिंता तथा भय से पीड़ित व्यक्तियों की चिकित्सा **क्रमिक विसंवेदनीकरण** (systematic desensitisation) तकनीक द्वारा की जाती है। यह व्यवहार चिकित्सा का एक रूप है जिसका उपयोग भयाक्रांत रोगी की दुश्चिंता अनुक्रियाओं को प्रति-अनुबंधन के माध्यम से कम करने के लिए किया जाता है अर्थात इसमें प्राचीन अनुबंधन की प्रक्रिया को निर्णायक उद्दीपक के साथ एक नयी अनुबंधित अनुक्रिया जोड़ने के द्वारा उलटने का प्रयास किया जाता है। स्वास्थ्य और खुशी के लिए हानिकारक तथा अवांछनीय आदतों को छुड़ाने के लिए **विरुचि चिकित्सा** (aversion therapy) का उपयोग किया जाता है। विरुचि चिकित्सा में चिकित्सक कुछ ऐसी व्यवस्था करता है कि व्यक्ति अनुभव करे कि जब वह अपनी कुसमायोजित आदतों के अनुसार

व्यवहार करता है तो उसका परिणाम पीड़ादायक हो जाता है। इसी पीड़ा से बचने के लिए व्यक्ति धीरे-धीरे अपनी आदत छोड़ना सीख जाता है। उदाहरण के लिए, मद्य को वमनकारी दवा, जो गंभीर मिचली एवं वमन पैदा करती है, के साथ युग्मित किया जाता है, जिससे मिचली और वमन मद्य के प्रति अनुबंधित अनुक्रिया बन सके। व्यवहार को अच्छा स्वरूप प्रदान करने तथा क्षमताओं का विकास करने के लिए **मॉडलिंग** (modeling) तथा **प्रबलन** (reinforcement) का व्यवस्थित उपयोग किया जाता है। जो व्यक्ति शर्मीले स्वभाव के हैं और अंतर्वैयक्तिक अंत:क्रिया करने में जिन्हें कठिनाई होती है, उन्हें **आग्रहिता प्रशिक्षण** (assertiveness training) दिया जाता है। यह चिकित्सा भी अधिगम के सिद्धांतों पर आधारित है। ऐसे अनेक व्यक्ति हैं, जिनको यदि थोड़ा-सा भी कोई उकसा दे तो उनमें मानसिक अशांति हो जाती है और श्वास गति बढ़ जाना, भूख का समाप्त हो जाना, रक्तचाप बढ़ जाना आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे रोगियों को **जैवप्रतिप्राप्ति** (biofeedback) चिकित्सा दी जाती है। यह चिकित्सा प्राचीन तथा नैमित्तिक अनुबंधन के बीच अंत:क्रिया पर आधारित है। जैवप्रतिप्राप्ति में शारीरिक क्रिया (जैसे- हृदय गति या रक्तचाप) को मॉनीटर किया जाता है तथा शरीरक्रियात्मक प्रक्रिया के समुन्नत नियंत्रण को सुगम बनाने के लिए व्यक्ति को क्रिया की सूचना प्रदान की जाती है। उपरोक्त चिकित्साओं के संबंध में आप कक्षा 12 में विस्तार से पढ़ेंगे।

शिक्षण में भी अधिगम के सिद्धांतों का विस्तृत उपयोग होता है। शैक्षिक कार्यों का विश्लेषण करने के पश्चात और उन्हें विभिन्न प्रकार के अधिगम; जैसे- उद्दीपक-उद्दीपक, उद्दीपक-अनुक्रिया, वाचिक, प्रेक्षणात्मक और कौशल अधिगम आदि में प्रयुक्त करके शैक्षिक उद्देश्यों का निर्णय किया जाता है। विद्यार्थियों को बताया जाता है कि उन्हें क्या सीखना है और उन्हें **उपयुक्त अभ्यास दशाएँ** (appropriate practice conditions) प्रदान की जाती हैं। उनसे सूचनाओं के संकलन तथा अर्जन, अर्थ सीखने में तथा सही अनुक्रिया को सीखने में सक्रिय सहभागिता कराई जाती है। अध्यापक एक **मॉडल** (model) और **परामर्शदाता** (mentor) की भांति आचरण करता है ताकि विद्यार्थी उसका अनुकरण कर सके, जिससे उनमें उचित सामाजिक व्यवहारों तथा वैयक्तिक आदतों का विकास हो सके। विद्यार्थियों को नियमित रूप से गृहकार्य दिए जाते हैं ताकि उन्हें अभ्यास के बहुत अवसर मिलें। कौशल के शिक्षण में कौशलों का उद्दीपक-अनुक्रिया शृंखलाओं के रूप में विश्लेषण किया जाता है और विद्यार्थियों को कौशलों को व्यावहारिक रूप से सीखने दिया जाता है।

अधिगम सिद्धांतों का सबसे अच्छा उपयोग बच्चों के पालन-पोषण में हो सकता है बशर्ते माता-पिता दोनों ही अधिगम के सिद्धांतों से परिचित हों। प्राचीन अनुबंधन के सिद्धांतों का उपयोग करके बच्चों को खतरे तथा सुरक्षा के जरूरी संकेतों को सिखाया जाता है। क्रियाप्रसूत अनुबंधन के सिद्धांतों का उपयोग करके बच्चों के व्यवहारों को आसानी से सुधारा जा सकता है और वांछित रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। पुरस्कार के उचित उपयोग से माता-पिता बच्चों को उत्साही अधिगमकर्ता बना सकते हैं। मॉडल और परामर्शदाता के रूप में माता-पिता बच्चों को सामाजिक व्यवहारों में दक्ष, कर्तव्यपरायण तथा साधनसंपन्न बनाते हैं।

प्रमुख पद

सहचारी अधिगम, जैवप्रतिप्राप्ति, संज्ञानात्मक मानचित्र, संप्रत्यय, अनुबंधित अनुक्रिया, अनुबंधित उद्दीपक, अनुबंधन, विभेदन, पठनवैकल्य, विलोप, मुक्त पुन:स्मरण, सामान्यीकरण, अंतर्दृष्टि, अधिगम अशक्तताएँ, मानसिक विन्यास, मॉडलिंग, ॠणात्मक प्रबलन, क्रियाप्रसूत अथवा नैमित्तिक अनुबंधन, धनात्मक प्रबलन, दंड, प्रबलन, क्रमिक अधिगम, स्वत: पुन:प्राप्ति, अधिगम अंतरण, अननुबंधित अनुक्रिया, अननुबंधित उद्दीपक, वाचिक अधिगम

सारांश

- *अधिगम का तात्पर्य अनुभव और अभ्यास के द्वारा व्यवहार में अथवा व्यवहार की क्षमता में उत्पन्न होने वाले अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन से है। अधिगम अनुमान पर आधारित प्रक्रिया है और निष्पादन से भिन्न है। निष्पादन व्यक्ति का प्रेक्षित अनुक्रिया/व्यवहार/क्रिया है।*

- *प्राचीन अनुबंधन एवं क्रियाप्रसूत अनुबंधन, प्रेक्षणात्मक अधिगम, संज्ञानात्मक अधिगम, वाचिक अधिगम, संप्रत्यय अधिगम तथा कौशल अधिगम, अधिगम के प्रमुख प्रकार हैं।*
- *कुत्तों की पाचन क्रिया का अध्ययन करते समय सर्वप्रथम पावलव ने प्राचीन अनुबंधन की जाँच पड़ताल की। इस प्रकार के अधिगम में एक प्राणी दो उद्दीपकों के मध्य साहचर्य को सीखता है। एक तटस्थ उद्दीपक (अनुबंधित उद्दीपक) एक अननुबंधित उद्दीपक (US) के आने का संकेत देता है। अनुबंधित उद्दीपक के प्रस्तुत होते ही वह अननुबंधित उद्दीपक के आने की प्रत्याशा में अनुबंधित अनुक्रिया (CR) करने लगता है।*
- *सर्वप्रथम स्किनर ने क्रियाप्रसूत अथवा नैमित्तिक अनुबंधन की जाँच पड़ताल की। कोई भी अनुक्रिया क्रियाप्रसूत हो सकती है जो एक प्राणी द्वारा स्वेच्छा से प्रकट की जाती है। क्रियाप्रसूत अनुबंधन अधिगम का एक प्रकार है जिसमें अनुक्रिया को प्रबलन द्वारा मज़बूत बनाया जाता है। कोई भी घटना एक प्रबलक हो सकती है जो पूर्वगामी अनुक्रिया की आवृत्ति को बढ़ाती है। इस प्रकार एक अनुक्रिया का परिणाम निर्णायक होता है। क्रियाप्रसूत अनुबंधन की दर प्रबलन के प्रकार, प्रबलित प्रयासों की संख्या, प्रबलन अनुसूची और प्रबलन में विलंब से प्रभावित होती है।*
- *प्रेक्षणात्मक अधिगम के अंतर्गत अनुकरण, मॉडलिंग तथा सामाजिक अधिगम सम्मिलित हैं। इसमें हम किसी मॉडल के व्यवहारों का प्रेक्षण करके ज्ञान प्राप्त करते हैं। निष्पादन इस पर निर्भर करता है कि मॉडल के व्यवहार को पुरस्कृत या दंडित किया गया है।*
- *वाचिक अधिगम में विभिन्न शब्द एक-दूसरे से संरचनात्मक, स्वनिक अथवा आर्थी समानता तथा असमानता के आधार पर संबद्ध हो जाते हैं। सीखे गए शब्दों को प्राय: गुच्छों में संगठित किया जाता है। प्रायोगिक अध्ययनों में युग्मित सहचर अधिगम, क्रमिक अधिगम तथा मुक्त पुन:स्मरण विधियों का उपयोग किया जाता है। सामग्री की अर्थपूर्णता तथा व्यक्तिनिष्ठ संगठन अधिगम को प्रभावित करते हैं। यह प्रासंगिक भी हो सकता है।*
- *संप्रत्यय का अर्थ एक श्रेणी से है। इसमें विशेषताओं का एक समूह अंतर्निहित है जो एक नियम या अनुदेश से जुड़ा होता है। संप्रत्यय कृत्रिम या स्वाभाविक हो सकते हैं। कृत्रिम संप्रत्यय सुपरिभाषित होते हैं जबकि स्वाभाविक संप्रत्यय प्राय: कुपरिभाषित। सुपरिभाषित संप्रत्ययों के प्रायोगिक अध्ययन चयन अथवा ग्रहण की क्रियाविधियों से किए गए हैं। स्वाभाविक संप्रत्ययों की परिभाषा अथवा सीमाएँ धुँधली होती हैं।*
- *कौशल का अर्थ जटिल कार्यों को दक्षतापूर्वक निर्बाध रूप से करने की योग्यता से है। कौशलों का अर्जन अनुभव और अभ्यास द्वारा होता है। किसी कौशलपूर्ण निष्पादन का तात्पर्य उद्दीपक-अनुक्रिया शृंखला का बड़े अनुक्रिया प्रतिरूपों में संगठन से है। इसके तीन चरण होते हैं : संज्ञानात्मक, साहचर्यात्मक तथा स्वायत्त।*
- *नए अधिगम पर पूर्व अधिगम के प्रभाव को अधिगम अंतरण कहा जाता है। यह विशिष्ट अथवा अविशिष्ट हो सकता है। यह दोनों अधिगम कार्यों में उद्दीपक-अनुक्रिया साहचर्यों की समानता पर निर्भर करता है।*
- *अधिगम को सुगम बनाने वाले कारकों में अभिप्रेरणा तथा प्राणी की तत्परता प्रमुख हैं।*
- *अधिगम शैली का तात्पर्य उस शैली से है जिसमें प्रत्येक अधिगमकर्ता ध्यान केंद्रित करना प्रारंभ करता है और नयी एवं जटिल सूचनाओं का प्रकमण कर उन्हें याद रखता है।*
- *अधिगम अशक्तता व्यक्तियों द्वारा सीखने (जैसे- पढ़ना, लिखना) में बाधक होती है। सीखने में अक्षम व्यक्तियों में अतिक्रियाशीलता, कालबोध का अभाव तथा नेत्र-हस्त समन्वय की कमी होती है।*
- *अधिगम के सिद्धांतों का अनुप्रयोग संगठन, कुसमायोजित प्रतिक्रियाओं के उपचार, बच्चों का पालन-पोषण, तथा विद्यालय अधिगम के लिए किया जाता है।*

समीक्षात्मक प्रश्न

1. अधिगम क्या है? इसकी प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं?
2. प्राचीन अनुबंधन किस प्रकार साहचर्य द्वारा अधिगम को प्रदर्शित करता है?
3. क्रियाप्रसूत अनुबंधन की परिभाषा दीजिए। क्रियाप्रसूत अनुबंधन को प्रभावित करने वाले कारकों पर चर्चा कीजिए।
4. एक विकसित होते हुए शिशु के लिए एक अच्छा भूमिका-प्रतिरूप अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। अधिगम के उस प्रकार पर विचार-विमर्श कीजिए जो इसका समर्थन करता है।
5. वाचिक अधिगम के अध्ययन में प्रयुक्त विधियों की व्याख्या कीजिए।

6. कौशल से आप क्या समझते हैं? किसी कौशल के अधिगम के कौन-कौन से चरण होते हैं?
7. सामान्यीकरण तथा विभेदन के बीच आप किस तरह अंतर करेंगे?
8. अधिगम अंतरण कैसे घटित होता है?
9. अधिगम के लिए अभिप्रेरणा का होना क्यों अनिवार्य है?
10. अधिगम के लिए तत्परता के विचार का क्या अर्थ है?
11. संज्ञानात्मक अधिगम के विभिन्न रूपों की व्याख्या कीजिए।
12. अधिगम अशक्तता वाले छात्रों की पहचान हम कैसे कर सकते हैं?

परियोजना विचार

1. आपके माता-पिता आपको वैसा व्यवहार करने के लिए कैसे प्रबलित करते हैं जैसा कि वे आपके लिए अच्छा समझते हैं? पाँच भिन्न-भिन्न दृष्टांतों का चयन कीजिए। कक्षा में अध्यापकों द्वारा प्रयुक्त प्रबलन की तुलना इन दृष्टांतों से कीजिए और कक्षा में पढ़ाए गए संप्रत्ययों से उनका संबंध स्थापित कीजिए।
2. यदि आपके छोटे भाई या बहन किसी अवांछित व्यवहार में आसक्त हों तो आप उस व्यवहार से मुक्ति पाने में उनकी कैसे सहायता करेंगे? अध्याय में वर्णित अधिगम सिद्धांतों का उपयोग कीजिए।

अध्याय 7

मानव स्मृति

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- स्मृति के स्वरूप को समझ सकेंगे,
- विभिन्न प्रकार की स्मृतियों के बीच विभेद कर सकेंगे,
- दीर्घकालिक स्मृति की सामग्री के संगठन एवं प्रस्तुतीकरण की व्याख्या कर सकेंगे,
- स्मृति की रचनात्मक एवं पुनर्रचनात्मक प्रक्रिया के गुणों की विवेचना कर सकेंगे,
- विस्मरण के स्वरूप एवं कारणों को समझ सकेंगे, तथा
- स्मृति सुधार के उपायों को सीख सकेंगे।

विषयवस्तु

परिचय
स्मृति का स्वरूप
सूचना प्रक्रमण उपागम : अवस्था मॉडल
स्मृति तंत्र : संवेदी, अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक स्मृतियाँ
कार्यकारी स्मृति (बॉक्स 7.1)
प्रक्रमण स्तर
दीर्घकालिक स्मृति के प्रकार
घोषणात्मक एवं प्रक्रियामूलक; घटनापरक एवं आर्थी
दीर्घकालिक स्मृति वर्गीकरण (बॉक्स 7.2)
स्मृति मापन की विधियाँ (बॉक्स 7.3)
स्मृति में ज्ञान का संगठन एवं प्रतिनिधान
स्मृति निर्माण : प्रत्यक्षसाक्षी एवं असत्य स्मृतियाँ (बॉक्स 7.4)
स्मृति एक रचनात्मक प्रक्रिया के रूप में
विस्मरण के स्वरूप एवं कारण
चिह्न ह्रास, अवरोध एवं पुनरुद्धार की असफलता के कारण विस्मरण
दमित स्मृतियाँ (बॉक्स 7.5)
स्मृति वृद्धि
प्रतिमाओं के उपयोग से स्मृति-सहायक संकेत
संगठन के उपयोग से स्मृति-सहायक संकेत

प्रमुख पद
सारांश
समीक्षात्मक प्रश्न
परियोजना विचार

परिचय

स्मृति हमारे जीवन में किस प्रकार का खेल करती है इससे हम सभी अवगत हैं। क्या आपने कभी इस कारण उलझन महसूस की है कि जिस जानकार व्यक्ति से आप बात कर रहे थे उसका नाम आपको याद नहीं आ रहा था? या दुश्चिंतित और असहाय महसूस किया है जब परीक्षा से एक दिन पहले आपने जो कुछ अच्छी तरह से याद किया था वह परीक्षा के दौरान याद नहीं आ रहा है? या खुद को उत्साहित महसूस किया है, क्योंकि जो प्रसिद्ध कविता आपने बचपन में याद की थी, बिना किसी त्रुटि के आप उसकी पंक्तियाँ दुहरा सकते हैं? स्मृति वास्तव में मनुष्य की एक अत्यंत रोचक किंतु घटनाजटिल शक्ति है। हम कौन हैं, हमारे अंतर्वैयक्तिक संबंधों को बनाए रखने में, हमारी समस्याओं का समाधान करने में, तथा निर्णय लेने जैसे कार्यों में यह हमारी मदद करती है। चूँकि स्मृति सभी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं; जैसे- प्रत्यक्षण, चिंतन तथा समस्या समाधान में प्रमुख है, अतएव मनोवैज्ञानिकों ने यह जानने का प्रयास किया है कि किस प्रकार सूचना स्मृति में क्रमबद्ध की जाती है, किस युक्ति से लंबे समय तक धारित की जाती है, स्मृति किन कारणों से खो जाती है, और किन प्रविधियों द्वारा स्मृति में सुधार लाया जा सकता है। इस अध्याय में हम स्मृति के इन सभी पक्षों की जाँच करेंगे तथा स्मृति तंत्र को समझने के लिए प्रतिपादित विभिन्न सिद्धांतों का अवलोकन करेंगे।

स्मृति पर किए गए मनोवैज्ञानिक शोध का इतिहास लगभग सौ वर्षों का है। स्मृति के पहले क्रमिक अध्ययन का श्रेय हर्मन एबिन्गहास (Hermann Ebbinghaus) को जाता है जो उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध (1885) के जर्मन मनोवैज्ञानिक थे। उन्होंने अपने ऊपर ही कई प्रयोग किए और पाया कि हम कोई भी अधिगत सामग्री, समान गति से या पूरी तरह से भूल नहीं जाते। प्रारंभ में भूलने की गति तेज़ होती है किंतु क्रमशः यह स्थिर होती जाती है। एक अन्य दृष्टिकोण फ्रेड्रिक बार्टलेट (Frederick Bartlett, 1932) द्वारा प्रतिपादित किया गया था, जिसके अनुसार स्मृति निष्क्रिय नहीं बल्कि एक सक्रिय प्रक्रिया है। सार्थक शाब्दिक सामग्री; जैसे- कहानियाँ और गद्यांशों की सहायता से उन्होंने प्रदर्शित किया कि स्मृति एक रचनात्मक प्रक्रिया है। इसका तात्पर्य यह है कि जो कुछ भी हम स्मरण और संचित करते हैं उसमें समय के साथ बहुत परिवर्तन और संशोधन होते हैं। अतएव जो प्रारंभ में हमने याद किया था और बाद में उसका पुनरुद्धार या प्रत्याह्वान किया, उसमें गुणात्मक भेद होते हैं। कुछ अन्य मनोवैज्ञानिक भी हैं जिन्होंने स्मृति के शोधों को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित किया है। इस अध्याय में समुचित स्थानों पर हम उनके योगदान का पुनरावलोकन करेंगे।

स्मृति का स्वरूप

स्मृति किसी सूचना को एक समय तक धारित करना तथा उसका प्रत्याह्वान करना है जो इस बात पर निर्भर करता है कि किस तरह का संज्ञानात्मक कार्य किया जाना है। कभी किसी सूचना को कुछ क्षणों के लिए रोक कर रखना होता है। उदाहरणार्थ, एक अपरिचित टेलीफोन नंबर को तब तक धारित रखना पड़ता है जब तक कि आप टेलीफोन यंत्र तक उस नंबर को डायल करने के लिए पहुँच नहीं जाते या अपने स्कूल के प्रारंभिक दिनों में जोड़-घटाव करने की जो विधि आपने सीखी थी वह कई वर्षो बाद भी याद रहती है। स्मृति एक प्रक्रिया है जिसमें तीन स्वतंत्र किंतु अंतःसंबंधित अवस्थाएँ होती हैं। ये हैं- **कूट संकेतन** (encoding), **भंडारण** (storage) एवं **पुनरुद्धार** (retrieval)। कोई भी सूचना जो हमारे द्वारा ग्रहण की जाती है वह इन अवस्थाओं से अवश्य प्रवाहित होती है।

(अ) *कूट संकेतन* पहली अवस्था है जिसका तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा सूचना स्मृति तंत्र में पहली बार पंजीकृत की जाती है, ताकि इसका पुनः उपयोग किया जा सके। जब भी कोई बाह्य उद्दीपक हमारी ज्ञानेंद्रियों को प्रभावित करता है तो वह तांत्रिका आवेग उत्पन्न करता है और इन्हें हमारे मस्तिष्क के विभिन्न क्षेत्रों में पुनः प्रक्रमण के लिए ग्रहण किया जाता है। कूट संकेतन में आने वाली सूचना को

ग्रहण किया जाता है तथा उससे कोई अर्थ व्युत्पन्न किया जाता है। उसे इस प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है कि उसका पुन: प्रक्रमण किया जा सके।

(ब) *भंडारण* स्मृति की द्वितीय अवस्था है। सूचना, जिसका कूट संकेतन किया गया, उसका भंडारण भी आवश्यक है जिससे उस सूचना का बाद में उपयोग किया जा सके। अत: भंडारण उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसके द्वारा सूचना कुछ समय सीमा तक धारण की जाती है।

(स) *पुनरुद्धार* स्मृति की तीसरी अवस्था है। सूचना का उपयोग तभी किया जा सकता है जब कोई व्यक्ति अपनी स्मृति से उसे वापस प्राप्त करने में समर्थ हो। विभिन्न प्रकार के संज्ञानात्मक कार्यों; जैसे- समस्या समाधान, निर्णयन इत्यादि को करने के लिए जब संचित सूचना को पुन: चेतना में लाया जाता है तो इस प्रक्रिया को पुनरुद्धार कहा जाता है। यह एक रोचक तथ्य है कि स्मृति की विफलता इनमें से किसी भी अवस्था में हो सकती है। आप किसी सूचना का पुन:स्मरण इसलिए नहीं कर पाते हैं क्योंकि आपने उसका ठीक ढंग से कूट संकेतन नहीं किया या आपका भंडारण कमज़ोर था। अत: आवश्यकता पड़ने पर उसका पुनरुद्धार नहीं किया जा सका।

सूचना प्रक्रमण उपागम : अवस्था मॉडल

प्रारंभ में यह समझा जाता था कि हम जो कुछ भी सीखते हैं या अनुभव करते हैं उन समस्त सूचनाओं को संचित करने की क्षमता स्मृति में होती है। इसे एक वृहद् भंडार की भाँति समझा जाता था जिससे आवश्यकता पड़ने पर उस सूचना को वहाँ से निकाल कर उसका उपयोग किया जा सके। किंतु कंप्यूटर के आविष्कार से मानव स्मृति को भी उसी तंत्र के रूप में देखा जाने लगा है जिसमें सूचनाओं का प्रक्रमण कंप्यूटर की भाँति होता है। दोनों ही बड़ी मात्रा में सूचना का पंजीकरण, भंडारण और उसमें फेरबदल करते हैं और इस फेरबदल के परिणामस्वरूप कार्य करते हैं। यदि आपने कभी कंप्यूटर पर काम किया होगा तो आपको पता होगा कि इसमें एक अस्थायी स्मृति (यादृच्छिक अभिगम स्मृति) और एक स्थायी स्मृति (जैसे- हार्ड डिस्क) होती है। कार्यक्रम आदेश के आधार पर कंप्यूटर अपनी स्मृति की सूचना में फेरबदल करके उत्पादित सूचना को कंप्यूटर की स्क्रीन पर प्रदर्शित करता है। उसी प्रकार मनुष्य भी सूचना को पंजीकृत करता है, संचित करता है तथा आवश्यकतानुसार संचित सूचना में फेरबदल करता है। उदाहरणार्थ, जब आपको किसी गणितीय समस्या का समाधान करना हो तो गणितीय संक्रिया से संबंधित स्मृति, जैसे- भाग या घटाव इत्यादि का उपयोग किया जाता है और इससे स्मृति क्रियाशील होती है तथा समस्या का समाधान उत्पादित सामग्री के रूप में प्राप्त किया जाता है। इस सादृश्य से प्रेरित होकर एटकिंसन (Atkinson) एवं शिफ्रिन (Shiffrin) ने 1968 में स्मृति का प्रथम मॉडल प्रस्तुत किया, जिसे **अवस्था मॉडल** (stage model) के रूप में जाना जाता है।

स्मृति तंत्र : संवेदी, अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक स्मृतियाँ

अवस्था मॉडल के अनुसार स्मृति तंत्र तीन प्रकार के होते हैं: **संवेदी स्मृति** (sensory memory), **अल्पकालिक स्मृति** (short-term memory) एवं **दीर्घकालिक स्मृति** (long-term memory)। प्रत्येक तंत्र की अपनी अलग विशेषताएँ होती हैं तथा इनके द्वारा संवेदी सूचनाओं के संबंध में भिन्न-भिन्न प्रकार्य निष्पादित किए जाते हैं (चित्र 7.1 देखें)। आइए, देखें ये तंत्र क्या हैं।

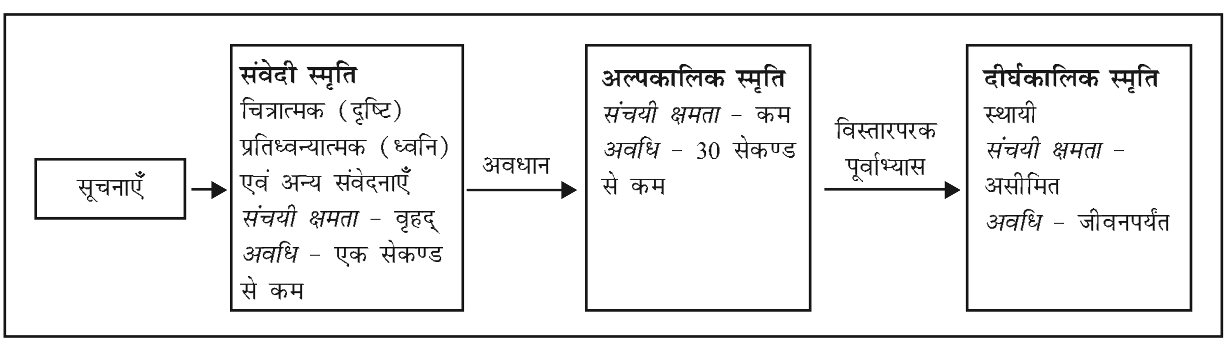

चित्र 7.1 : स्मृति का अवस्था मॉडल

संवेदी स्मृति

कोई भी नयी सूचना पहले संवेदी स्मृति में आती है। संवेदी स्मृति की संचयी क्षमता तो बहुत होती है किंतु इसकी अवधि बहुत कम होती है, एक सेकण्ड से भी कम। यह एक ऐसा स्मृति तंत्र है जो प्रत्येक संवेदना को परिशुद्धता से ग्रहण करता है। अक्सर इस तंत्र को संवेदी स्मृति या संवेदी पंजिका कहते हैं, क्योंकि समस्त संवेदनाएँ यहाँ उद्दीपक की प्रतिकृति के रूप में ही संग्रहित की जाती हैं। यदि आपने कभी दृश्य–उत्तर–बिंब (बल्ब बुझने के बाद भी जो छाया रह जाती है) का अनुभव किया हो या आवाज़ के बंद हो जाने के बाद भी उसकी प्रतिध्वनि सुनी हो तो इसका तात्पर्य है कि आप चित्रात्मक एवं प्रतिध्वन्यात्मक संवेदी पंजिका से परिचित हैं।

अल्पकालिक स्मृति

आप इस बात से सहमत होंगे कि हम उन सभी सूचनाओं पर ध्यान नहीं देते जो हमारे संवेदी ग्राहकों को प्रभावित करती हैं। जिन सूचनाओं पर हम ध्यान देते हैं वे हमारी द्वितीय स्मृति भंडार में प्रवेश करती हैं जिसे अल्पकालिक स्मृति कहा जाता है, जो थोड़ी सूचना को थोड़े समय तक (सामान्यत: 30 सेकण्ड या उससे कम) ही रख पाती है। एटकिंसन एवं शिफ्रिन के अनुसार अल्पकालिक स्मृति में सूचना का कूट संकेतन मुख्य रूप से ध्वन्यात्मक होता है। यदि इसका निरंतर अभ्यास न किया जाए तो 30 सेकण्ड से कम समय में ही अल्पकालिक स्मृति से बाहर चली जाती है। ध्यान दीजिए कि अल्पकालिक स्मृति कमज़ोर तो होती है लेकिन संवेदी पंजिका की भाँति नहीं, जहाँ एक सेकण्ड से भी कम समय में सूचना का क्षय हो जाता है।

दीर्घकालिक स्मृति

ऐसी सामग्री, जो अल्पकालिक स्मृति की क्षमता एवं धारण अवधि की सीमाओं को पार कर जाती है, वह दीर्घकालिक स्मृति में प्रवेश करती है जिसकी क्षमता व्यापक है। यह स्मृति का ऐसा स्थायी भंडार है जहाँ सूचनाएँ, चाहे वह कितनी भी नयी क्यों न हों, जैसे आपने कल क्या नाश्ता किया था? से लेकर इतनी पुरानी, जैसे आपने अपना छठा जन्मदिन कैसे मनाया था? सभी संचित होती हैं। यह प्रदर्शित किया गया है कि कोई सूचना एक बार दीर्घकालिक स्मृति के भंडार में चली जाती है तो उसे हम कभी नहीं भूलते क्योंकि वह शब्दार्थ कूट संकेतन, अर्थात किसी सूचना का क्या अर्थ है? द्वारा संग्रहित की जाती है। आप जिस सूचना को भूलते हैं वह पुनरुद्धार की विफलता के कारण होती है। पुनरुद्धार की विफलता कई कारणों से हो सकती है, जिसकी चर्चा हम इस अध्याय में आगे करेंगे।

अभी तक हमने अवस्था मॉडल के संरचनात्मक स्वरूप की ही चर्चा की है। जिन प्रश्नों के उत्तर अभी शेष हैं, वे हैं – सूचना एक भंडार से दूसरे भंडार तक कैसे पहुँचती है?

बॉक्स 7.1 कार्यकारी स्मृति

हाल के वर्षों में मनोवैज्ञानिकों ने सुझाया है कि अल्पकालिक स्मृति ऐकिक नहीं होती है, बल्कि इसमें बहुत से घटक हो सकते हैं। अल्पकालिक स्मृति का यह बहु-घटकीय दृष्टिकोण सबसे पहले बेडेले (Baddeley) ने 1986 में प्रस्तावित किया था। उन्होंने सुझाया कि अल्पकालिक स्मृति निष्क्रिय भंडार नहीं है बल्कि एक कार्य-मेज़ है जिस पर स्मृति की बहुत प्रकार की सामग्री रखी रहती है। जब-जब लोग विभिन्न संज्ञानात्मक कार्य करते हैं तब-तब इस सामग्री का लगातार उपयोग किया जाता है, इसको नियंत्रित और परिवर्तित किया जाता है। इस कार्य-मेज़ को कार्यकारी स्मृति कहा जाता है। इस कार्यकारी स्मृति का पहला घटक स्वनिमिक घेरा है जिसमें ध्वनियों की सीमित संख्या होती है और अगर उनको दोहराया न जाए तो वे दो सेकण्ड के भीतर क्षय हो जाती है। इस स्मृति का दूसरा घटक दृष्टि-स्थानिक स्केचपैड है जिसमें चाक्षुष और स्थानिक सूचनाएँ संचित होती हैं। इस स्केचपैड की क्षमता स्वनिमिक घेरे की तरह सीमित होती है। इस स्मृति का तीसरा घटक जिसको बेडेले केंद्रीय प्रबंधक कहता है, सूचनाओं को स्वनिमिक घेरे से, दृष्टि-स्थानिक स्केचपैड से तथा दीर्घकालिक स्मृति से संगठित करता है। एक सच्चे प्रबंधक की तरह ये अवधानिक साधनों का नियतन करता है। इन साधनों को दिए हुए संज्ञानात्मक कार्य को करने के लिए आवश्यक विभिन्न सूचनाओं को वितरित करता है और व्यवहार का परिवीक्षण, नियोजन और नियंत्रण करता है।

और किस तंत्र के द्वारा वह एक विशिष्ट स्मृति-भंडार में संगृहीत रहती है? आइए, देखें ऐसा कैसे होता है?

सूचना एक भंडार से दूसरे भंडार तक कैसे पहुँचती है? इस प्रश्न के उत्तर में एटकिंसन एवं शिफ्रिन ने *नियंत्रण प्रक्रियाओं* का विचार प्रस्तुत किया है जो स्मृति के विभिन्न भंडारों से सूचना के प्रवाह का परिवीक्षण करती हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि वे सभी सूचनाएँ, जो हमारे संवेदी ग्राहक प्राप्त करते हैं, पंजीकृत नहीं की जातीं। यदि ऐसा होता तो कल्पना कीजिए कि हमारे स्मृति तंत्र पर कितना दबाव होता। केवल वे ही सूचना, जिस पर ध्यान दिया जाता है, हमारे संवेदी ग्राहकों द्वारा *अल्पकालिक स्मृति* में प्रवेश करती हैं। जैसा कि अध्याय 5 में आप पढ़ चुके हैं कि *चयनात्मक अवधान* पहली नियंत्रण प्रक्रिया है जो यह सुनिश्चित करती है कि कौन-सी सूचना संवेदी ग्राहकों से *अल्पकालिक स्मृति* में प्रवेश करेगी। ऐसे संवेदी चिह्न जिन पर ध्यान नहीं दिया जाता, शीघ्र ही धूमिल हो जाते हैं। *अल्पकालिक स्मृति* फिर दूसरी नियंत्रण प्रक्रिया *अनुरक्षण पूर्वाभ्यास* को सक्रिय करती है जिससे सूचना को वांछित समय तक धारित किया जा सके। जैसा कि इसके नाम से प्रतीत होता है, यह पूर्वाभ्यास सूचना को दुहरा कर अनुरक्षित करता है तथा जब पूर्वाभ्यास रुक जाता है तब सूचना की क्षति हो जाती है। *अल्पकालिक स्मृति* की क्षमता को बढ़ाने के लिए एक और नियंत्रण प्रक्रिया, जो *अल्पकालिक स्मृति* में गतिशील होती है, **खंडीयन विधि** (chunking) है। इसके द्वारा *अल्पकालिक स्मृति* की क्षमता, जो वैसे तो 7$\pm$2 होती है, बढ़ाई जा सकती है (क्रियाकलाप 7.1 देखें)। उदाहरणार्थ, यदि आपको अंकों की एक शृंखला याद करनी हो जैसे - 194719492004 (ध्यान दें कि संख्या *अल्पकालिक स्मृति* की क्षमता से अधिक है) तो आप 1947, 1949 और 2004 के खंड बना सकते हैं तथा इसे भारतवर्ष की स्वतंत्रता का वर्ष, भारतीय संविधान को अपनाने का वर्ष तथा भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया के तटीय क्षेत्रों में सुनामी आने के वर्ष के रूप में याद कर सकते हैं।

सूचना *अल्पकालिक स्मृति* से दीर्घकालिक स्मृति में *विस्तारपरक पूर्वाभ्यास* के द्वारा प्रवेश करती है। अनुरक्षण पूर्वाभ्यास के विपरीत, जिसमें मूक या वाचिक रूप से दुहराया जाता है, इसमें धारित की जाने वाली सूचना को दीर्घकालिक स्मृति में पूर्व निहित सूचना के साथ जोड़ने का प्रयास किया जाता है। उदाहरण के लिए, 'मानवता' शब्द का अर्थ याद करना सरल होगा, यदि पहले से हम 'करुणा' 'सत्य' और 'सद्भावना' के संप्रत्ययों का तात्पर्य जानते हों। नयी सूचना के साथ आप कितना साहचर्य उत्पन्न कर सकते हैं, यह उसके स्थायित्व को निर्धारित करेगा। विस्तारपरक पूर्वाभ्यास में व्यक्ति एक सूचना को उससे उद्वेलित विभिन्न साहचर्यों के आधार पर विश्लेषित करता है। इसमें सूचना को विभिन्न संभावित तरीकों से संगठित किया जाता है। सूचना को किसी तार्किक ढाँचे में विस्तृत किया जा सकता है, समान स्मृतियों से जोड़ा जा सकता है, अथवा कोई मानसिक प्रतिमा बनाई जा सकती है। चित्र 7.1 स्मृति के अवस्था मॉडल को प्रदर्शित करता है, जिसमें बने हुए तीर यह दिखाते हैं कि सूचना कैसे एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक प्रवाहित होती है।

अवस्था मॉडल का परीक्षण करने हेतु जो प्रयोग किए गए उनसे मिश्रित परिणाम प्राप्त हुए हैं। जहाँ कुछ प्रयोग स्पष्टत:

क्रियाकलाप 7.1

I. *नीचे लिखे गए अंकों की सूची (प्रत्येक अंक) को याद करने का प्रयत्न कीजिए :*

1 9 2 5 4 9 8 1 1 2 1

अब इन्हें निम्न समूहों में याद करने का प्रयास कीजिए :

1 9 25 49 81 121

अंत में इन्हें निम्नलिखित तरीके से याद कीजिए :

1^2 3^2 5^2 7^2 9^2 11^2

आपने इनमें क्या अंतर पाया?

II. *नीचे की पंक्ति में दी गई सूची का एक-एक अंक प्रति सेकण्ड की गति से पढ़िए तथा अपने मित्र को उसी क्रम में अंकों को दोहराने के लिए कहिए :*

सूची	अंक
1 (6 अंक)	2-6-3-8-3-4
2 (7 अंक)	7-4-8-2-4-1-2
3 (8 अंक)	4-3-7-2-9-0-3-6
4 (10 अंक)	9-2-4-1-7-8-2-6-5-3
5 (12 अंक)	8-2-5-4-7-4-7-7-3-9-1-6

याद रखिए कि आपके द्वारा एक पंक्ति के सभी अंकों को पढ़ लेने के बाद आपका मित्र प्रत्याह्वान करेगा। आपके मित्र द्वारा प्रत्याह्वान की गई अंकों की सही मात्रा ही उसका स्मृति प्राप्तांक होगा। अपने सहपाठियों और शिक्षक के साथ अपने परिणाम की विवेचना कीजिए।

यह सिद्ध करते हैं कि अल्पकालिक स्मृति और दीर्घकालिक स्मृति वास्तव में दो भिन्न स्मृति भंडार हैं, वहीं अन्य प्रयोगों ने इनकी विभिन्नता पर प्रश्नचिह्न लगाया है। उदाहरणार्थ, पहले दिखाया गया कि अल्पकालिक स्मृति की सूचना प्रतिध्वन्यात्मक रूप से संकेतित की जाती है जबकि दीर्घकालिक स्मृति की सूचना शब्दार्थ रूप से, किंतु बाद के प्रायोगिक प्रमाण यह प्रदर्शित करते हैं कि अल्पकालिक स्मृति में सूचना शब्दार्थ के रूप में तथा दीर्घकालिक स्मृति में प्रतिध्वन्यात्मक रूप में भी संकेतित की जा सकती है।

सन् 1970 में शैलिस (Shallice) एवं वारिंगटन (Warrington) ने एक ऐसे व्यक्ति का उद्धरण प्रस्तुत किया जो KF के नाम से जाना जाता था, जिसके प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्ध का बायाँ हिस्सा चोट के कारण क्षतिग्रस्त हो गया था। कालांतर में यह पाया गया कि उसकी दीर्घकालिक स्मृति तो सुरक्षित थी किंतु अल्पकालिक स्मृति बुरी तरह से प्रभावित थी। अवस्था मॉडल यह इंगित करता है कि सूचनाएँ दीर्घकालिक स्मृति में अल्पकालिक स्मृति से होकर ही जाती हैं। यदि KF की अल्पकालिक स्मृति प्रभावित थी तो दीर्घकालिक स्मृति कैसे सामान्य थी? कई अन्य अध्ययनों ने यह प्रदर्शित किया है कि स्मृति की प्रक्रियाएँ सभी सूचनाओं के लिए समान होती हैं, चाहे वे कुछ सेकण्ड के लिए धारित की गई हों या कई सालों के लिए। साथ ही, स्मृति भंडारों को अलग किए बिना भी स्मृति को पर्याप्त रूप से समझा जा सकता है। इन सभी प्रमाणों के फलस्वरूप स्मृति की अन्य संकल्पना-निर्धारण विधि का विकास हुआ जिसे यहाँ स्मृति के दूसरे मॉडल के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रक्रमण स्तर

प्रक्रमण स्तर दृष्टिकोण क्रैक (Craik) एवं लॉकहार्ट (Lockhart) द्वारा सन् 1972 में प्रतिपादित किया गया था। इस दृष्टिकोण के अनुसार किसी भी नयी सूचना का प्रक्रमण इस बात से संबंधित है कि उसका किस प्रकार से प्रत्यक्षण एवं विश्लेषण किया जा रहा है तथा उसे किस प्रकार से समझा जा रहा है। प्रक्रमण का स्तर यह सुनिश्चित करता है कि किस सीमा तक सूचना धारित की जाएगी। यद्यपि तब से इस दृष्टिकोण में कई संशोधन किए जा चुके हैं, किंतु फिर भी इसके मूलभूत पक्ष समान हैं। आइए, इस दृष्टिकोण की विस्तार से जाँच करें।

क्रैक एवं लॉकहार्ट ने बताया कि सूचना का कई स्तरों पर विश्लेषण संभव है। कोई भी इसके भौतिक या संरचनात्मक गुणों के आधार पर विश्लेषण कर सकता है। उदाहरणार्थ, '*बिल्ली*' शब्द के लिए कोई भी इस बात पर ध्यान दे सकता है कि वह बड़े अक्षरों में लिखा गया है या छोटे अक्षरों में, या उसकी स्याही का रंग कैसा है। यह प्रथम एवं सबसे निम्न स्तर का प्रक्रमण है। मध्य स्तर पर कोई इस शब्द के उच्चारण की ध्वनि पर ध्यान दे सकता है अर्थात इसकी संरचनात्मक विशेषताओं के आधार पर इसका अर्थ निकाल सकता है कि बिल्ली शब्द में दो पूर्ण अक्षर तथा एक आधा अक्षर है। इन दो स्तरों पर सूचना का विश्लेषण किए जाने पर स्मृति कमज़ोर रहती है और शीघ्र ही उसका क्षय हो जाता है। सूचना का प्रक्रमण एक तीसरे और गहन स्तर पर भी किया जा सकता है। कोई भी सूचना लंबे समय तक हमारी स्मृति में रहे, इसके लिए आवश्यक है कि उसका अर्थ समझ कर उस सूचना का विश्लेषण किया जाए। उदाहरणार्थ, आप यह सोच सकते हैं कि बिल्ली एक जानवर है जिसके रोएँ होते हैं, चार पैर होते हैं, एक पूँछ होती है और यह स्तनधारी होती है। आप बिल्ली की प्रतिमा भी अपने मन में ला सकते हैं और उसे अपने अनुभव से जोड़ सकते हैं। संक्षेप में, जब हम सूचना की संरचनात्मक और स्वनिक विशेषताओं पर ध्यान देते हैं तो यह निचले स्तर का प्रक्रमण है जबकि इसके शब्दार्थ के आधार पर कुछ संकेतन करना गहन स्तर का प्रकमण है, इससे ऐसी स्मृति बनती है कि उसका विस्मरण अपेक्षाकृत कम होता है।

हम किसी सूचना को जिस तरह से संकेतित करते हैं, हमारी स्मृति उसी का परिणाम होती है। इस तथ्य का महत्त्व अधिगम की प्रक्रिया में सर्वाधिक है। स्मृति के इस पक्ष से आप यह अनुभव करेंगे कि जब भी आप कोई नया पाठ सीख रहे होते हैं तो यथासंभव सामग्री के अर्थ पर विस्तारपूर्वक ध्यान देना आवश्यक होता है न कि केवल रट कर याद करना। इस युक्ति का प्रयोग कीजिए और आप शीघ्र ही महसूस करेंगे कि किसी सूचना के अर्थ को समझना तथा उसे दूसरे संप्रत्ययों, तथ्यों एवं अपने जीवन के अनुभवों से जोड़ना, दीर्घकालिक धारण का सुनिश्चित उपाय है।

दीर्घकालिक स्मृति के प्रकार

जैसा कि आपने बॉक्स 7.1 में पढ़ा कि अल्पकालिक स्मृति या कार्यकारी स्मृति में एक से अधिक घटक होते हैं। उसी

तरह दीर्घकालिक स्मृति भी ऐकिक नहीं है, क्योंकि इसमें भिन्न प्रकार की सूचनाएँ होती हैं। इस दृष्टिकोण से दीर्घकालिक स्मृति के कई प्रकार होते हैं। उदाहरण के लिए, दीर्घकालिक स्मृति का एक प्रमुख वर्गीकरण, **घोषणात्मक** (declarative) एवं **प्रक्रियामूलक** (procedural) (कभी-कभी अघोषणात्मक) स्मृतियाँ है। सभी सूचनाएँ जिनमें तथ्य, नाम, तिथि; जैसे- रिक्शा के तीन पहिए होते हैं, भारत 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्र हुआ, मेंढक उभयचर प्राणी है, तथा आप और आपके मित्र का एक ही नाम है, घोषणात्मक स्मृति के अंग हैं। दूसरी ओर, प्रक्रियामूलक स्मृति उन स्मृतियों से संबंधित है जिनमें किसी कार्य को पूरा करने के लिए कुछ कौशल की आवश्यकता होती है; जैसे- साइकिल चलाना, बास्केटबॉल खेलना, चाय बनाना इत्यादि। घोषणात्मक स्मृति से संबंधित तथ्यों का शाब्दिक वर्णन किया जा सकता है जबकि प्रक्रियामूलक स्मृति को सहजता से वर्णित नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, आप यह तो बता सकते हैं कि क्रिकेट कैसे खेला जाता है, लेकिन यदि कोई पूछे कि साइकिल कैसे चलाई जाती है तो यह बताना आपके लिए कठिन होता है।

टलविंग (Tulving) ने एक अन्य वर्गीकरण सुझाया कि घोषणात्मक स्मृति **घटनापरक** (episodic) या **आर्थी** (semantic) स्मृति के रूप में वर्गीकृत की जा सकती है।

घटनापरक स्मृति में जीवन चरित से संबंधित सूचनाएँ होती हैं। हमारे निजी जीवन से संबंधित स्मृतियाँ घटनापरक स्मृति बनाती हैं, इसलिए सामान्यतया इनका सांवेगिक स्वरूप होता है। आप जब कक्षा में प्रथम आए तो आपको कैसा लगा? या आपका मित्र आपसे गुस्सा हुआ या उसने आपसे कुछ कहा जब आपने अपना वादा पूरा नहीं किया? यदि इस तरह की घटनाएँ वास्तव में आपके जीवन में घटित हुई हों तो संभवतः आप इन सभी प्रश्नों का सही उत्तर देने में समर्थ होंगे। इस

बॉक्स 7.2 दीर्घकालिक स्मृति वर्गीकरण

दीर्घकालिक स्मृति का अध्ययन एक रोचक विषय है तथा शोधकर्ताओं ने कई नवीन तथ्यों को उद्घाटित किया है। निम्न विवरण मानव स्मृति की जटिल एवं गत्यात्मक प्रकृति को प्रदर्शित करते हैं।

क्षणदीप स्मृतियाँ : *यह ऐसी घटनाओं की स्मृतियाँ होती हैं जो बहुत आश्चर्यचकित और उद्दीप्त करने वाली होती हैं। ऐसी स्मृतियाँ बहुत विशद होती हैं। यह ठीक उसी तरह होती हैं जैसा कि किसी आधुनिक कैमरे से लिया गया फोटो। आप बटन दबाइए और एक मिनट के बाद वह चित्र आपके सामने होता है। आप जब चाहें उस चित्र को देख सकते हैं। क्षणदीप स्मृतियाँ किसी विशेष स्थान, तिथि व समय से जुड़े ऐसे चित्रों की होती हैं जो हमारी स्मृति में लगभग स्थिर हो जाती हैं। संभवतः लोग इस प्रकार की स्मृतियों को बनाने का अधिक प्रयास करते हैं, तथा उसके विस्तृत गुणों पर अधिक प्रकाश डालते हैं जिसके कारण गहन स्तर का प्रक्रमण हो जाता है एवं पुनरुद्धार के लिए अधिक संकेत प्राप्त हो जाते हैं।*

जीवनचरित स्मृति : *यह व्यक्तिगत जीवन से संबंधित स्मृतियाँ होती हैं जो पूरे जीवन में समान रूप से वितरित नहीं होती हैं। हमारे जीवन में कुछ काल दूसरे काल की अपेक्षा अधिक स्मृतियाँ उत्पन्न करते हैं। जैसे कि प्रारंभिक बाल्यावस्था विशेषतः प्रथम 4 से 5 वर्ष के आयु की स्मृतियाँ हम नहीं बता पाते हैं। इसे* ***बाल्यावस्था स्मृतिलोप*** *कहते हैं। प्रारंभिक प्रौढ़ावस्था के तुरंत बाद अर्थात् 20 के दशक में स्मृतियों की संख्या में नाटकीय वृद्धि होती है। संभवतः घटनाओं की सांवेगिकता, नवीनता एवं महत्त्व का इसमें योगदान होता है। वृद्धावस्था के दौरान जीवन के हाल ही के वर्षों की स्मृतियाँ सबसे अधिक होती हैं। हालाँकि 30 वर्ष की आयु के आसपास कुछ स्मृतियों में अवनति प्रारंभ हो जाती है।*

निहित स्मृतियाँ : *नवीन अध्ययनों से यह प्रदर्शित हुआ है कि कुछ स्मृतियाँ व्यक्ति की चेतन अभिज्ञा से बाहर रहती हैं। निहित स्मृतियाँ वे स्मृतियाँ हैं जिनके प्रति व्यक्ति अनभिज्ञ होता है तथा जो स्वचालित रूप से पुनरुद्धत होती हैं। यदि कोई व्यक्ति टंकण जानता है तो वह यह भी जानता है कि कौन से अक्षर कुंजीपटल पर हैं। यदि कुंजीपटल के चित्र में रिक्त कुंजी दी जाए तो कई टंकक सही कुंजी नहीं बता पाते। निहित स्मृतियाँ हमारी अभिज्ञा की सीमाओं से बाहर होती हैं। दूसरे शब्दों में, हम नहीं जानते कि हमारे स्मृतिकोष में कोई अनुभव संचित है या नहीं, तथापि निहित स्मृतियाँ हमारे व्यवहारों को प्रभावित करती रहती हैं। इस प्रकार की स्मृति उन मरीज़ों में पाई गई, जिन्हें मस्तिष्क में चोटें लगी थीं। उनको कुछ सामान्य शब्दों की एक सूची दिखाई गई। कुछ मिनट के पश्चात् मरीज़ों से सूची के शब्द पूछे गए तो वे नहीं बता पाए। किंतु दो अक्षरों को देकर उनसे बनने वाले शब्दों के लिए उन्हें उकसाया गया तो मरीज़ शब्दों का प्रत्याह्वान कर सके। जिन लोगों की स्मृतियाँ सामान्य होती हैं उनमें भी निहित स्मृतियाँ पाई जाती हैं।*

तरह के अनुभवों को भूलना सरल नहीं होता, किंतु यह भी सत्य है कि बहुत सारी घटनाएँ जीवन में लगातार होती रहती हैं जिसमें सभी को हम याद नहीं रखते। दु:खद एवं कष्टप्रद अनुभवों को हम उतना नहीं याद रखते जितना सुखद अनुभवों को।

आर्थी स्मृति सामान्य ज्ञान एवं जागरूकता की स्मृति है। सभी प्रकार के संप्रत्यय, विचार तथा तर्कसंगत नियम आर्थी स्मृति में संचित होते हैं। उदाहरणार्थ, अर्थगत स्मृति के कारण ही हम 'अहिंसा' का अर्थ याद रख पाते हैं या हम यह भी याद कर पाते हैं कि 2+6=8 होता है, या नयी दिल्ली का

क्रियाकलाप 7.2

1. विद्यालय के अपने प्रारंभिक दिनों को याद कीजिए। उन दिनों में घटित हुई दो अलग-अलग घटनाओं को लिखिए जो आपको सजीव रूप से याद हों। प्रत्येक घटना को अलग-अलग कागज़ पर लिखिए।

2. कक्षा 11 के प्रथम माह के बारे में सोचिए। उस माह जो घटनाएँ घटित हुई उनमें से दो के बारे में अलग-अलग लिखिए जो आपको सजीव रूप से याद हों। प्रत्येक के लिए अलग कागज़ प्रयोग कीजिए।

घटनाओं की लंबाई, अनुभूत संवेग एवं संगति के आधार पर इनकी तुलना कीजिए।

क्रियाकलाप 7.3

निम्नलिखित वाक्यों को अलग-अलग कार्ड पर लिखिए। अपने से निचली कक्षा के विद्यार्थियों को यह खेल खेलने के लिए आमंत्रित कीजिए। उसे अपनी मेज़ की दूसरी ओर सामने बिठाइए। उसे बताइए कि "इस खेल में आपको कुछ कार्ड एक-एक करके धीरे-धीरे से दिखाए जाएँगे। आपको प्रत्येक कार्ड पर लिखे प्रत्येक प्रश्न को ध्यानपूर्वक पढ़ना है तथा उसका उत्तर 'हाँ' या 'नहीं' में देना है।" दिए गए उत्तरों को लिखिए।

1.	*क्या यह शब्द बड़े अक्षरों में लिखा है?*	*BELT*
2.	*क्या यह शब्द हाल शब्द से तुकबंदी करता है?*	*चाल*
3.	*क्या यह शब्द नीचे दिए गए वाक्य में सही बैठता है?* *------ विद्यालय में पढ़ते हैं?*	*विद्यार्थी*
4.	*क्या यह शब्द सोना शब्द से तुकबंदी करता है?*	*सोहर*
5.	*क्या यह शब्द अंग्रेज़ी के बड़े अक्षरों में लिखा है?*	*bread*
6.	*क्या यह शब्द नीचे दिए गए वाक्य में सही बैठता है?* *मेरे चाचा का पुत्र मेरा------- है।*	*चचेरा भाई*
7.	*क्या यह शब्द नीचे दिए गए वाक्य में सही बैठता है?* *मेरा-----एक सब्जी है।*	*घर*
8.	*क्या यह शब्द नीचे दिए गए वाक्य में सही बैठता है?* *------- एक फर्नीचर है।*	*आलू*
9.	*क्या यह शब्द अंग्रेज़ी के बड़े अक्षरों में लिखा है?*	*TABLE*
10.	*क्या यह शब्द बंदूक शब्द से तुकबंदी करता है?*	*संदूक*
11.	*क्या यह शब्द अंग्रेज़ी के बड़े अक्षरों में लिखा है?*	*marks*
12.	*क्या यह शब्द पुस्तक शब्द से तुकबंदी करता है?*	*महान*
13.	*क्या यह शब्द नीचे दिए गए वाक्य में सही बैठता है?* *बच्चे-----खेलना पसंद करते हैं।*	*खेल*
14.	*क्या यह शब्द नीचे दिए गए वाक्य में सही बैठता है?* *लोग प्राय:-----से बाल्टी में मिलते हैं।*	*मित्रों*
15.	*क्या यह शब्द नीचे दिए गए वाक्य में सही बैठता है?* *मेरी कक्षा -----से भरी हुई है।*	*कमीज़ों*
16.	*क्या यह शब्द नीचे दिए गए वाक्य में सही बैठता है?* *मेरी माँ मुझे पर्याप्त जेब-----देती हैं।*	*खर्च*

कार्ड पढ़ने के बाद विद्यार्थियों से उन शब्दों का प्रत्याह्वान करने के लिए कहिए जिनके बारे में प्रश्न पूछे गए थे। याद किए गए शब्दों को लिख लीजिए। प्रश्न में वांछित प्रक्रमण के आधार पर संरचनात्मक, स्वानिमिक एवं शब्दार्थपरक प्रकार से प्रत्याह्वान किए गए शब्दों की संख्या लिख लीजिए। अपने अध्यापक के साथ परिणामों की विवेचना कीजिए।

बॉक्स 7.3 स्मृति मापन की विधियाँ

स्मृति का मापन प्रायोगिक रूप से कई प्रकार से किया जा सकता है। चूँकि कई प्रकार की स्मृतियाँ होती हैं, अत: एक विधि जो एक स्मृति का अध्ययन करने के लिए उपयुक्त होती है वह दूसरे प्रकार की स्मृति का अध्ययन करने के लिए अनुपयुक्त हो सकती है। स्मृति मापन की प्रमुख विधियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं:

(अ) मुक्त प्रत्याह्वान अथवा पुन:स्मरण एवं प्रत्यभिज्ञान (तथ्य/घटना से संबंधित स्मृति मापन हेतु): मुक्त प्रत्याह्वान विधि में प्रतिभागियों को कुछ शब्द प्रस्तुत किए जाते हैं जो उन्हें याद करने होते हैं और कुछ समय के बाद उन्हें शब्दों को किसी भी क्रम में प्रत्याह्वान करने को कहा जाता है। जितना अधिक वे पुन:स्मरण कर पाते हैं उतनी अच्छी उनकी स्मृति मानी जाती है। प्रत्यभिज्ञान विधि में प्रतिभागी याद किए हुए शब्दों को अपरिचित शब्दों (जिसे उसने पहले नहीं देखा) के साथ देखता है, और उसका काम उनमें से याद किए गए शब्दों को पहचानना होता है। जो जितना अधिक याद किए गए शब्दों को पहचान लेता है उसकी स्मृति उतनी अच्छी होती है।

(ब) वाक्य सत्यापन कार्य (आर्थी स्मृति मापन हेतु): जैसाकि आपने अभी तक पढ़ा है कि आर्थी स्मृति किसी प्रकार के विस्मरण के अधीन नहीं होती, क्योंकि इसमें वह सामान्य ज्ञान सम्मिलित होता है जो हमारे पास होता है। वाक्य सत्यापन कार्य में प्रतिभागियों को यह बताना होता है कि दिए हुए वाक्य सही हैं या गलत। जितनी तीव्र गति से प्रतिभागी उत्तर देता है, उतनी अच्छी तरह से सूचना धारित होती है, जो वाक्यों को सत्यापित करने के लिए आवश्यक होती है (आर्थी ज्ञान का मापन करने के लिए इस क्रिया का उपयोग कैसे किया जाए, उसके लिए क्रियाकलाप 7.3 देखें)।

(स) प्राथमिक लेप (उन सूचनाओं का मापन करने के लिए जिन्हें हम शाब्दिक रूप से नहीं बता सकते) : हम कई प्रकार की सूचनाओं को संचित करते हैं जिन्हें हम शाब्दिक रूप से वर्णित नहीं कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, साइकिल चलाने या सितार बजाने के लिए आवश्यक सूचना। इसके अलावा वे सूचनाएँ भी हम संचित करते हैं जिनके प्रति हम अनभिज्ञ होते हैं, जिसे निहित स्मृति भी कहते हैं। प्राथमिक लेप विधि में प्रतिभागियों को शब्दों की एक सूची दिखाई जाती है; जैसे- बंदरगाह, अस्पताल, फुर्तीला इत्यादि। फिर उन्हें इन शब्दों के कुछ अंश; जैसे- बंद, अस्प, फुर दूसरे शब्दों के अंश, जिन्हें प्रतिभागियों ने पहले से नहीं देखा है, के साथ मिलाकर दिखाए जाते हैं। प्रतिभागी पहले देखे हुए शब्दों के अंश को अनदेखे शब्दों के अंश की तुलना में शीघ्रता से पूरा करते हैं। पूछे जाने पर अक्सर वे इस बात से अनभिज्ञ रहते हैं तथा यह कहते हैं कि उन्होंने केवल अंदाज से इसे पूरा किया है।

STD कोड 011 है या 'कीताब' में 'ई' की मात्रा गलत है। घटनापरक स्मृति की भाँति हम इसमें तिथि नहीं याद रख पाते। जैसे कि आप यह याद नहीं रख पाते कि कब आपने 'अंहिसा' का अर्थ जाना या किस तिथि को यह जाना कि कर्नाटक की राजधानी बैंगलूर है। चूँकि घटनापरक स्मृति तथ्यों, विचारों तथा सामान्य ज्ञान एवं जागरूकता से संबंधित होती है, इसलिए इसकी सामग्री भाव-तटस्थ होती है। अत: इसकी विस्मृति नहीं होती। दीर्घकालिक स्मृति के विविध अन्य वर्गीकरणों के लिए बॉक्स 7.2 देखें।

स्मृति में ज्ञान का संगठन एवं प्रतिनिधान

इस खंड में हम यह देखेंगे कि दीर्घकालिक स्मृति में सूचनाएँ किस प्रकार संगठित होकर एक प्रारूप धारण करती हैं। चूँकि दीर्घकालिक स्मृति में वृहद् मात्रा में सूचनाएँ होती हैं जिनका उपयोग हम कुशलतापूर्वक करते हैं, अत: यह जानना बहुत उपयोगी होगा कि हमारा स्मृति तंत्र किस प्रकार से इन सूचनाओं को संगठित करता है जिससे कि सही समय पर सही सूचना हमें प्राप्त हो जाती है। यहाँ इस बात पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि दीर्घकालिक स्मृति में सूचना-संगठन से संबंधित बहुत से विचार उन प्रयोगों से प्राप्त परिणामों के आधार पर हैं जो आर्थी पुनरुद्धार कार्यों के उपयोग से प्राप्त हुए हैं। संभवत: आप इस बात से सहमत होंगे कि आर्थी स्मृति की सामग्री के पुन:स्मरण में कोई त्रुटि नहीं हो सकती। यदि कोई व्यक्ति यह जानता है कि पक्षी उड़ते हैं तो वह कभी इस प्रश्न का गलत उत्तर नहीं देगा कि – क्या पक्षी उड़ते हैं? उत्तर हमेशा सहमति में होगा। किंतु लोग उन प्रश्नों का उत्तर देने में भिन्न-भिन्न समय ले सकते हैं जिनमें आर्थी निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। क्या पक्षी उड़ते हैं? इस प्रश्न का उत्तर देने में कोई व्यक्ति एक सेकण्ड से ज़्यादा का समय नहीं लेगा किंतु यदि यह पूछा जाए कि क्या पक्षी जानवर हैं? तो उत्तर देने में समय लग सकता है। इस तरह के प्रश्नों का उत्तर देने

में लोगों को कितना समय लगता है, इसके आधार पर दीर्घकालिक स्मृति में संगठन के स्वरूप का अनुमान लगाया गया है।

दीर्घकालिक स्मृति में ज्ञान–प्रतिनिधान की सबसे महत्वपूर्ण इकाई संप्रत्यय है। **संप्रत्यय** (concepts) उन वस्तुओं और घटनाओं के मानसिक संवर्ग हैं जो कई प्रकार से एक दूसरे के समान हैं।

एक बार जब संप्रत्यय बन जाते हैं तो वह वर्गों में संगठित हो जाते हैं। वर्ग स्वयं ही एक संप्रत्यय है किंतु इनका प्रकार्य दूसरे संप्रत्ययों में सामान्य विशेषताओं के आधार पर सामान्यताएँ संगठित करना है। उदाहरणार्थ, आम शब्द एक वर्ग है क्योंकि भिन्न–भिन्न प्रकार के आमों को इस एक वर्ग में रख सकते हैं, तथा साथ ही यह एक संप्रत्यय भी है जो फल की श्रेणी में आता है। संप्रत्यय स्कीमा में भी संगठित होते हैं, जो एक मानसिक ढाँचा होता है तथा जो इस वस्तु जगत के बारे में हमारे ज्ञान एवं अभिग्रह का प्रतिनिधान करते हैं। उदाहरणार्थ, हमारे पास बैठक का एक स्कीमा हो सकता है जो हमें बताता है बैठक में क्या–क्या चीज़ें हो सकती हैं (जैसे सोफा, मेज़, तस्वीरें आदि) और हमें उन्हें बैठक में कहाँ ढूँढ़ना चाहिए।

अभी तक हमने संप्रत्यय को ज्ञान के मूलभूत स्तर के रूप में जाँचा जहाँ वह दीर्घकालिक स्मृति में निरूपित होता है, तथा वर्ग और स्कीमा के विचारों को जाना, जहाँ संप्रत्यय प्राथमिक स्तर पर संगठित होते हैं। आइए, देखें कि दीर्घकालिक स्मृति में उच्च स्तर पर संप्रत्यय का संगठन कैसे होता है?

सन् 1969 में एलन कोलिन्स (Allan Collins) एवं रॉस क्विलियन (Ross Quillian) ने एक ऐतिहासिक शोधपत्र प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने बताया कि दीर्घकालिक स्मृति में सूचना श्रेणीबद्ध रूप से संगठित होती है तथा उसकी एक जालीदार संरचना होती है। इस संरचना के तत्वों को *निष्पंद बिंदु* कहा जाता है। निष्पंद बिंदु संप्रत्यय होते हैं किंतु इनके बीच के संबंध को नामपत्रित संबंध कहते हैं जो संप्रत्ययों के गुणधर्म या श्रेणी सदस्यता दर्शाते हैं।

दीर्घकालिक ज्ञान की इस प्रस्तावित जालीदार संरचना की पुष्टि के लिए प्रयोगों के प्रतिभागियों से कुछ वाक्यों को सत्यापित करने को कहा गया, जैसे 'केनेरी एक पक्षी है' (उत्तर हाँ/नहीं में था) या 'केनेरी एक जानवर है'। ये सामान्यत: वर्ग समावेश के कथन थे, इनमें 'केनेरी' शब्द कर्ता (शायद आप जानते हैं कि यह एक पक्षी है) तथा 'एक पक्षी है' विधेय है। इन प्रयोगों से जो समीक्षात्मक निष्कर्ष मिला, वह

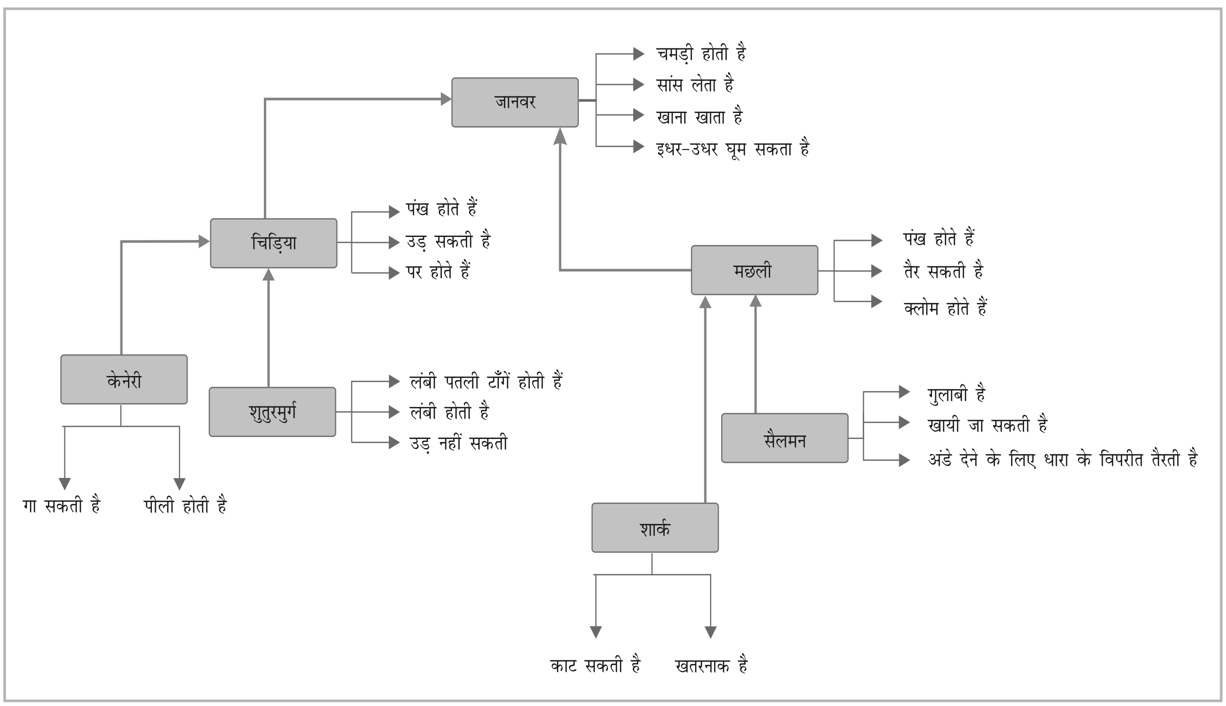

चित्र 7.2 : जालीदार श्रेणीबद्ध मॉडल

यह था कि जैसे-जैसे विधेय किसी वाक्य में कर्ता से पदानुक्रम में दूर होता गया, लोगों ने सही या गलत बताने में अधिक समय लिया। अर्थात लोगों ने पहले कथन की तुलना में कि 'केनेरी एक पक्षी है' दूसरे कथन को कि 'केनेरी एक जानवर है', जाँचने में अधिक समय लिया। क्योंकि पक्षी एक पास की उच्च श्रेणी है जिसमें केनेरी को रखा जा सकता है जबकि जानवर एक ऐसी उच्च श्रेणी है जो केनेरी के संप्रत्यय से दूर एवं परोक्ष है। इस दृष्टिकोण के अनुसार, हम सभी सूचनाओं को एक निश्चित स्तर पर संचित कर सकते हैं जो 'उस श्रेणी के सभी सदस्यों पर लागू होती है तथा निचले क्रमिक स्तर पर इसे अधिक दोहराने की आवश्यकता नहीं पड़ती।' यह एक उच्चस्तरीय **संज्ञानात्मक लाघव** (cognitive economy) को सुनिश्चित करती है जिसका तात्पर्य यह है कि दीर्घकालिक स्मृति की क्षमता का अधिकाधिक एवं कुशलतापूर्वक तथा कम से कम व्यतिरिक्तता में उपयोग किया जा सकता है।

अभी तक हमने संप्रत्यय की दीर्घकालिक स्मृति में ज्ञान-प्रतिनिधान की एक इकाई के रूप में चर्चा की है तथा यह देखा कि किस प्रकार से संप्रत्यय संगठित होते हैं। क्या इसका तात्पर्य यह है कि कोई भी ज्ञान केवल शब्दों के प्रारूप में ही संकेतित होता है या कूट संकेतन अन्य प्रकारों से भी हो सकता है? यह दिखाया जा चुका है कि सूचना प्रात्यक्षिक रूप

बॉक्स 7.4 स्मृति निर्माण : प्रत्यक्षसाक्षी एवं असत्य स्मृतियाँ

प्रत्यक्षसाक्षी स्मृति

कोर्ट में आपराधिक मामलों की कार्यवाही का यदि आपको कुछ अनुमान है तो आप जानते होंगे कि दोषी के प्रति प्रत्यक्ष का साक्ष्य सबसे विश्वसनीय साक्ष्य माना जाता है। 1970 के दशक के मध्य में लॉफ्टस (Loftus) और उनके सहकर्मियों के द्वारा किए गए प्रयोगों ने यह प्रदर्शित किया कि प्रत्यक्षसाक्षी की स्मृति में कई दोष हो सकते हैं।

लॉफ्टस ने अपने सरल प्रयोग में प्रतिभागियों को कार-दुर्घटना की एक फ़िल्म दिखाई और बाद में प्रश्न इस प्रकार से पूछा जो कि घटना के कूट संकेतन में बाधा पहुँचाने वाला था। एक प्रश्न था, ''कारें कितनी तीव्र गति से जा रही थीं जब दोनों ने एक-दूसरे को भीषण टक्कर दी और चकनाचूर कर दिया।'' एक दूसरा प्रश्न पूछा कि कारें किस गति से जा रही थीं जब दोनों एक-दूसरे के संपर्क में आईं। जिनसे चकनाचूर वाला पहला प्रश्न पूछा गया था उन्होंने कारों की गति का अनुमान 40.8 मील प्रति घंटा लगाया, जबकि दूसरे प्रश्न वाले प्रतिभागियों ने 31.8 मील प्रति घंटा बताया। स्पष्टत: प्रश्न पूछे जाने के तरीके ने स्मृति में परिवर्तन कर दिया। दिग्भ्रमित करने वाले प्रश्नों में घटना अधिलिखित थी। इस प्रयोग से और अन्य प्रयोगों के परिणाम से लॉफ्टस ने यह स्पष्ट प्रदर्शित किया कि स्मृति में विभिन्न प्रकार की त्रुटियाँ हो सकती हैं। कुछ त्रुटियाँ दिग्भ्रमित प्रश्नों के कारण, तो कुछ घटना की भावात्मक प्रकृति के कारण हो सकती हैं। चूँकि दुर्घटना या हिंसा की घटनाएँ तीव्र संवेग उत्पन्न करती हैं और प्रत्यक्षसाक्षी इतना अभिभूत हो जाता है कि कूट संकेतन के समय छोटी-छोटी बातों पर ध्यान नहीं देता।

असत्य स्मृति

नवीन शोधों से एक रोचक घटना सामने आई है जिसे मिथ्या स्मृति कहा जाता है। जो घटनाएँ कभी घटित नहीं हुईं उनकी स्मृति भी शक्तिशाली कल्पनाशीलता से उत्पन्न कराई जा सकती है। आप आश्चर्यचकित हो गए होंगे। आइए, गैरी (Garry), मैनिंग (Manning) एवं लॉफ्टस के द्वारा 1996 में किए गए एक ऐसे प्रयोग के माध्यम से मिथ्या स्मृति की विशेषताओं को समझें।

अपने प्रयोग के प्रतिभागियों के सामने उन्होंने कुछ घटनाओं की सूची दी जो उनके जीवन में घटित हो सकती थीं। प्रयोग के प्रथम चरण में उन्होंने यह जाना कि बचपन की घटनाओं को यथासंभव याद करके बताएँ कि क्या वास्तव में इनमें से कोई घटना उनके जीवन में घटी थी। दो सप्ताह बाद उन्हें प्रयोगशाला में पुन: बुलाकर उन घटनाओं की कल्पना करने या चाक्षुष प्रत्यक्षण करने को कहा जैसे कि वे घटनाएँ वास्तव में उनके जीवन में घटित हुई हों। विशेषकर उन घटनाओं के लिए यह क्रिया करवाई जिनके घटित होने की संभाव्यता बहुत कम थी। यह प्रयोग का दूसरा चरण था। अंत में, तीसरे चरण में प्रयोगकर्ताओं ने बहाना बनाया कि पहले चरण में घटनाओं की मूल्यांकन सूची उनसे खो गई है, अत: वे फिर से सूची लेकर मूल्यांकन करें कि उनमें से किन घटनाओं की उनके जीवन में घटित होने की संभाव्यता है। रोचक बात यह थी कि पहले चरण में जो घटनाएँ निम्न मूल्यांकित की गई थीं और जिनको चाक्षुष प्रत्यक्षण तथा कल्पना करने को कहा गया था अब उनका उच्च मूल्यांकन किया गया था। प्रतिभागियों ने बताया कि वे घटनाएँ उनके जीवन में वास्तव में घटित हुई थीं। इस परिणाम से यह संकेत मिलता है कि स्मृतियाँ उत्पन्न कराई जा सकती हैं तथा कल्पना स्फीति के द्वारा आरोपित की जा सकती हैं। यह एक ऐसा परिणाम है जो स्मृति की प्रक्रियाओं को एक उपयोगी अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

में या प्रतिमाओं के रूप में संकेतित की जा सकती है। प्रतिमा किसी भी प्रतिनिधान का स्थूल रूप है जो किसी वस्तु के प्रात्यक्षिक गुणधर्म को बताती है। यदि आपके सामने 'विद्यालय' शब्द बोला जाए तो आपके सामने अपने विद्यालय की प्रतिमा उभर कर आएगी। वास्तव में, सभी मूर्त वस्तुएँ (तथा संप्रत्यय) कुछ प्रतिमाएँ उत्पन्न करती हैं जिन्हें हम शाब्दिक एवं चाक्षुष रूप से संकेतित करते हैं। इसे **द्वि-संकेत परिकल्पना** (dual-code-hypothesis) कहते हैं जिसे मूलत: पैवियो (Paivio) ने प्रतिपादित किया था। इस परिकल्पना के अनुसार, मूर्त संज्ञाएँ एवं मूर्त वस्तुओं से संबंधित सूचनाएँ प्रतिमाओं के रूप में संकेतित एवं संचित की जाती हैं जबकि अमूर्त संप्रत्ययों से संबंधित सूचनाएँ शाब्दिक एवं वर्णनात्मक कोड धारण कर लेती हैं। उदाहरण के लिए, यदि आपसे पक्षी का वर्णन करने को कहा जाए तो सर्वप्रथम आप उसकी एक प्रतिमा का निर्माण करेंगे एवं उसके आधार पर पक्षी का वर्णन करेंगे। किंतु दूसरी ओर, 'सत्यता' या 'ईमानदारी' जैसे संप्रत्ययों के अर्थ के साथ, उस प्रकार से अनुषंगी प्रतिमाएँ नहीं होंगी। इसलिए, जो भी सूचना शाब्दिक तथा प्रतिमा के रूप में संकेतित की जाती है उसका अधिक आसानी से पुन: स्मरण किया जा सकता है।

सूचना को प्रतिमा के रूप में संकेतित तथा संचित करने के कारण मानसिक प्रतिरूप विकसित होते हैं। बहुत-से प्रतिदिन के क्रियाकलापों में *मानसिक प्रतिरूप* की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरणार्थ, किसी सड़क पर दिशा निर्देश का पालन करना, साइकिल के पुर्जों को जोड़ना या किसी पाकशास्त्र की किताब में दिए गए निर्देशों का पालन करते हुए कोई व्यंजन बनाना। इन सभी में शाब्दिक वर्णन से देशिक मानसिक प्रतिरूप बनते हैं। अत:, मानसिक प्रतिरूप वह विश्वास है जो हमारे वातावरण की संरचना से संबंधित होते हैं तथा शाब्दिक वर्णन एवं मूर्त प्रतिमाओं की मदद से बनते हैं।

स्मृति एक रचनात्मक प्रक्रिया के रूप में

यदि स्मृति प्रक्रिया के प्रारंभिक अन्वेषण को देखें तो संभवत: आप इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि स्मृति मूलत: संचित सामग्री से पुनरुत्पादन की प्रक्रिया है। यह दृष्टिकोण एबिंगहास (Ebbinghaus) एवं उनके अनुयायिओं का था जिन्होंने स्मृति में संचित की जाने वाली सूचना की मात्रा पर बल दिया तथा संचित एवं पुनरुत्पादित सामग्री का मिलान करके उसकी परिशुद्धता की जाँच की। यदि पुनरुत्पादित सामग्री और संचित सामग्री में कुछ विचलन पाया जाता है तो वह त्रुटि एवं स्मृति की विफलता मानी जाती है। स्मृति में भंडारण का यह लक्षण यह प्रदर्शित करता है कि स्मृति सीखी हुई सामग्री को दीर्घकालिक स्मृति में संग्रहित करने की एक निष्क्रिय घटना मात्र है। इस स्थिति को सन् 1930 के दशक के प्रारंभिक दिनों में बार्टलेट (Bartlett) ने चुनौती दी जिनका मानना था कि स्मृति एक सक्रिय प्रक्रिया है और जो कुछ भी हम संचित करते हैं उसमें निरंतर परिवर्तन और संशोधन होते रहते हैं। जो कुछ भी हम याद करते हैं वह इस बात से प्रभावित होता है कि हम कैसे उद्दीपक सामग्री को अर्थ प्रदान करते हैं और एक बार जब उसे स्मृति तंत्र में भेज देते हैं तो वह अन्य संज्ञानात्मक क्रियाओं से अलग नहीं रह सकती।

सारांश यह है कि बार्टलेट ने स्मृति को रचनात्मक प्रक्रिया माना है न कि पुनरुत्पादक प्रक्रिया। अर्थपूर्ण सामग्री यथा, कहानियाँ, गद्य, दंतकथाएँ इत्यादि का उपयोग करते हुए बार्टलेट ने यह समझने का प्रयास किया कि किस प्रकार कोई विशिष्ट स्मृति व्यक्ति के ज्ञान, लक्ष्यों, अभिप्रेरणा, वरीयता तथा अन्य मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं से प्रभावित होती है। उन्होंने सरल प्रयोग किए जिनमें पहले उपरोक्त प्रकार की सामग्री को प्रतिभागी पढ़ते थे, फिर 15 मिनट के अंतराल के बाद जो पढ़ा था उसका प्रत्याह्वान करते थे। बार्टलेट ने *क्रमिक पुनरुत्पादन विधि* का प्रयोग किया जिसमें प्रतिभागी याद की हुई सामग्री को भिन्न-भिन्न समयांतरालों पर प्रत्याह्वान करते थे। इन क्रमिक पुनरुत्पादनों में उनके प्रतिभागियों ने कई प्रकार की 'गलतियाँ' कीं जिसे बार्टलेट ने स्मृति की रचनात्मक प्रक्रिया को समझने के लिए उपयोगी माना। उनके प्रतिभागियों ने मूल पाठ को अपने ज्ञान के ज़्यादा अनुकूल बनाने के लिए परिवर्तित कर दिया, अनावश्यक वर्णनों की व्याख्या की, मुख्य कथावस्तु को विस्तृत किया तथा सामग्री को पूर्ण रूप से बदल दिया ताकि वह अधिक तार्किक एवं समनुगत लगे।

इस प्रकार के परिणामों की व्याख्या हेतु बार्टलेट ने *स्कीमा* शब्द का उपयोग किया जिसका तात्पर्य 'भूतपूर्व अनुभवों और प्रतिक्रियाओं का एक सक्रिय संगठन था'। स्कीमा भूतपूर्व अनुभवों और ज्ञान का एक संगठन है जो आने वाली नयी सूचना के विश्लेषण, भंडारण तथा पुनरुद्धार को प्रभावित करता है। अत: स्मृति एक रचनात्मक सक्रिय प्रक्रिया है जहाँ सूचनाएँ व्यक्ति के पूर्व ज्ञान, समझ एवं प्रत्याशाओं के अनुसार संकेतित एवं संचित की जाती हैं।

विस्मरण के स्वरूप एवं कारण

हममें से सबने लगभग प्रतिदिन विस्मरण एवं उसके परिणामों का अनुभव किया होगा। हम भूलते क्यों हैं? क्या जो सामग्री हमने दीर्घकालिक स्मृति में रखी थी वह खो गई? या हमने उसे अच्छी तरह से याद नहीं किया? या हमने सूचना का सही तरीके से कूट संकेतन नहीं किया? या भंडारण के समय इसमें कुछ तोड़-मरोड़ हो गई और गलत स्थान पर संचित कर दी गई? विस्मरण को समझने के लिए कई सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं और हम उनका पुनरावलोकन करेंगे जो संभावित हैं तथा जिन पर समुचित ध्यान दिया गया है।

हर्मन एबिंगहास ने विस्मरण के स्वरूप को समझने के लिए सर्वप्रथम क्रमिक प्रयास किया। उन्होंने निरर्थक शब्दांशों की सूची (जो व्यंजन-स्वर-व्यंजन अक्षरों से बना था तथा जिन्हें CVC ट्राईग्राम कहा गया जैसे NOK या SEP इत्यादि) को याद किया। उस सूची को भिन्न-भिन्न समयांतरालों पर पुनः याद किया तथा प्रत्येक बार प्रयासों की संख्या का मापन किया। उन्होंने पाया कि विस्मरण के क्रम का एक निश्चित प्रारूप होता है जो आप चित्र 7.3 में देख सकते हैं।

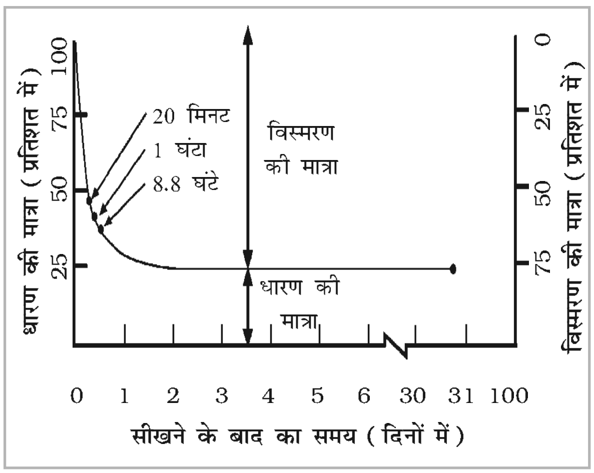

चित्र 7.3 : एबिंगहास का विस्मरण वक्र

जैसा कि ग्राफ से प्रतीत होता है कि विस्मरण की दर प्रारंभिक 9 घंटों में, विशेषतः प्रारंभिक पहले घंटे में सबसे ज़्यादा है। उसके बाद गति धीमी हो जाती है तथा कई दिनों के बाद भी ज़्यादा नहीं भूला गया है। यद्यपि एबिंगहास के प्रयोग प्रारंभिक अन्वेषण थे तथा बहुत परिष्कृत भी नहीं थे, तथापि स्मृति शोधों को इसने कई महत्वपूर्ण तरीकों से प्रभावित किया है। अब यह सर्वसम्मति से माना जाता है कि शुरू में स्मृति में तीव्र ह्रास होता है, उसके बाद अवनति बहुत क्रमिक और धीमी गति से होती है। आइए, विस्मरण की व्याख्या हेतु प्रतिपादित मुख्य सिद्धांतों का अवलोकन करें।

चिह्न ह्रास के कारण विस्मरण

चिह्न ह्रास (अनुपयोग का सिद्धांत भी कहलाता है) विस्मरण का सर्वप्रथम सिद्धांत है। इसकी अवधारणा है कि स्मृति केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में कुछ संशोधन करती है जो मस्तिष्क में होने वाले शारीरिक परिवर्तन हैं जिन्हें *स्मृति चिह्न* कहा जाता है। जब इन चिह्नों का लंबे समय तक उपयोग नहीं होता है, तो ये धूमिल हो जाते हैं और हमें प्राप्त नहीं होते हैं। कई कारणों से यह सिद्धांत अपर्याप्त माना जाता है। यदि स्मृति अनुपयोग के कारण स्मृति चिह्नों का ह्रास होता है तो जो लोग याद करने के बाद सो जाते हैं, उनमें जागने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक विस्मरण होना चाहिए क्योंकि निद्रा के दौरान स्मृति चिह्नों का उपयोग नहीं होता। परिणाम इसके बिलकुल विपरीत पाए गए हैं। याद करने के बाद जागने वालों में याद करने के बाद सो जाने वालों की अपेक्षा अधिक विस्मरण पाया गया।

चूँकि चिह्न ह्रास का सिद्धांत विस्मरण की पर्याप्त रूप से व्याख्या नहीं कर पाया, इसलिए शीघ्र ही एक नए सिद्धांत ने इसका स्थान ले लिया जिसके अनुसार नयी सूचना जो दीर्घकालिक स्मृति में प्रवेश करती है वह पूर्वसंचित सामग्री के प्रत्याह्वान में बाधा पहुँचाती है। अतः विस्मरण का मुख्य कारण अवरोध है।

अवरोध के कारण विस्मरण

यदि विस्मरण चिह्न ह्रास के कारण नहीं है तो यह क्यों होता है? विस्मरण का सिद्धांत जो संभवतः सबसे अधिक प्रभावकारी है वह अवरोध का सिद्धांत है। इसके अनुसार स्मृति भंडार में संचित विभिन्न सामग्री के बीच अवरोध के कारण विस्मरण होता है। इस सिद्धांत के अनुसार सीखने और याद करने में विभिन्न पदों के बीच साहचर्य स्थापित होता है और एक बार साहचर्य स्थापित हो जाने के बाद यह स्मृति में अक्षत रहता है। व्यक्ति बहुत सारे साहचर्य अर्जित करते रहते हैं और ये बिना किसी आपसी द्वंद्व के स्वतंत्र रूप से स्मृति में रहते हैं। तथापि पुनरुद्धार के समय इनमें अवरोध उत्पन्न होता है क्योंकि भिन्न-भिन्न साहचर्यों में पुनरुद्धार के लिए प्रतिस्पर्धा होती है। एक सरल क्रिया से अवरोध की यह प्रक्रिया स्पष्ट हो जाएगी। अपने मित्र से निरर्थक शब्दांशों की दो अलग-अलग सूची (सूची A एवं सूची B) एक के बाद एक याद करने को

तालिका 7.1 पूर्वलक्षी तथा अग्रलक्षी अवरोध के लिए प्रायोगिक अभिकल्प

पूर्वलक्षी अवरोध	*चरण 1*	*चरण 2*	*परीक्षण चरण*
प्रायोगिक प्रतिभागी/समूह	अधिगम A	अधिगम B	प्रत्याह्वान A
नियंत्रित प्रतिभागी/समूह	अधिगम A	आराम (कोई अधिगम नहीं)	प्रत्याह्वान A
अग्रलक्षी अवरोध			
प्रायोगिक प्रतिभागी/समूह	अधिगम A	अधिगम B	प्रत्याह्वान B
नियंत्रित प्रतिभागी/समूह	आराम (कोई अधिगम नहीं)	अधिगम B	प्रत्याह्वान B

कहिए। थोड़ी देर के बाद सूची A के निरर्थक शब्दांशों का प्रत्याह्वान करवाइए। यदि सूची A को दोहराते समय सूची B के कुछ शब्दों का भी प्रत्याह्वान किया जाता है तो यह इसलिए होता है क्योंकि सूची B को याद करते समय जो साहचर्य स्थापित हुआ था, वह सूची A को याद करते समय बने साहचर्य में अवरोध उत्पन्न करता है।

विस्मरण में दो प्रकार के अवरोध उत्पन्न होते हैं। अवरोध *अग्रलक्षी* (आगे की ओर चलने वाले) हो सकते हैं, तात्पर्य यह है कि जो क्रिया आपने पहले सीखी है वह बाद में सीखी गई क्रिया को याद करने में अवरोध उत्पन्न करती है, या ये *पूर्वलक्षी* (पीछे की ओर चलने वाले) हो सकते हैं, तात्पर्य यह है कि जब आपको पहले सीखी गई क्रिया का प्रत्याह्वान करने में कठिनाई हो, जो किसी नयी सामग्री के अधिगम के कारण हो सकती है। दूसरे शब्दों में, अग्रलक्षी अवरोध में पूर्व अधिगम, पश्चात अधिगम के प्रत्याह्वान में अवरोध पहुँचाता है जबकि पूर्वलक्षी अवरोध में पश्चात अधिगम, पूर्व अधिगम सामग्री के प्रत्याह्वान में अवरोध पहुँचाता है। उदाहरणार्थ, यदि आप अंग्रेज़ी जानते हों और फ्रेंच सीखने में कठिनाई महसूस कर रहे हों तो यह अग्रलक्षी अवरोध के कारण है। दूसरी ओर, यदि आप अंग्रेज़ी के शब्द, जो फ्रेंच शब्द के पर्याय हों, का प्रत्याह्वान नहीं कर पा रहे हैं, तो यह पूर्वलक्षी अवरोध का उदाहरण है। अग्रलक्षी एवं पूर्वलक्षी अवरोध को प्रदर्शित करने के लिए जो प्रायोगिक अभिकल्प प्रयुक्त होते हैं, उसे सारणी 7.1 में प्रस्तुत किया गया है।

पुनरुद्धार असफलता के कारण विस्मरण

विस्मरण न केवल एक समय के बाद स्मृति चिह्नों के ह्रास के कारण होता है (जैसा अनुपयोग सिद्धांत सुझाता है) या प्रत्याह्वान के समय स्वतंत्र रूप से संचित साहचर्यों के बीच प्रतिद्वंद्विता के कारण होता है (जैसा अवरोध सिद्धांत सुझाता

बॉक्स 7.5 दमित स्मृतियाँ

कुछ लोगों को अभिघातज अनुभव होते हैं। अभिघातज अनुभव संवेगात्मक रूप से दुखदायी होते हैं। सिगमंड फ्रायड (Sigmund Freud) के अनुसार ऐसे अनुभव अचेतन मन में दमित कर दिए जाते हैं और स्मृति में पुनरुद्धार के लिए प्राप्त नहीं होते हैं। यह एक ऐसा दमन है जिसमें दर्दनाक, धमकी वाली और उलझन वाली स्मृतियाँ चेतना के बाहर रखी जाती हैं।

कुछ लोगों में अभिघातज अनुभव के कारण मनोवैज्ञानिक स्मृतिलोप हो सकता है। कुछ लोग संकट की स्थिति का अनुभव करते हैं और इस तरह की घटनाओं से बिलकुल समायोजन नहीं कर पाते हैं। जीवन के कठिन यथार्थ के प्रति वे अपनी आँखें, कान और मन को बंद करके उनसे मानसिक रूप से पलायन कर जाते हैं। यह सामान्यीकृत स्मृतिलोप के रूप में परिणत हो जाता है। इसका परिणाम एक विकार के रूप में होता है जो फ़्यूग अवस्था कहलाती है। जो व्यक्ति इस अवस्था का शिकार होता है वह एक नयी पहचान, नया नाम, पता इत्यादि अपना लेता है। इनके दो व्यक्तित्व होते हैं और एक को दूसरे व्यक्तित्व के बारे में कुछ भी पता नहीं होता।

विस्मरणशीलता या दबाव एवं अति दुश्चिंता के कारण स्मृतिनाश बहुत असामान्य नहीं है। बहुत सारे महत्वाकांक्षी एवं कठिन परिश्रम करने वाले विद्यार्थी परीक्षा में उच्च अंक प्राप्त करने की आकांक्षा रखते हैं और घंटों पढ़ाई करते हैं। लेकिन जब परीक्षा में प्रश्नपत्र मिलता है तो बहुत अधिक घबरा जाते हैं और जो कुछ भी उन्होंने अच्छी तरह से तैयार किया था उसे भूल जाते हैं।

क्रियाकलाप 7.4

नीचे शब्दों की दो सूचियाँ दी गई हैं। पहली सूची को इस तरह याद कीजिए कि आप सभी शब्दों को बिना किसी त्रुटि के प्रत्याह्वान कर सकें। अब दूसरी सूची लीजिए और उसे सभी शब्दों के सही प्रत्याह्वान की कसौटी तक याद कीजिए। अब सूचियों के बारे में भूल जाइए और एक घंटे तक कुछ और पढ़िए। अब पहली सूची के शब्दों को प्रत्याह्वान कीजिए और उन्हें लिखिए। सही प्रत्याह्वान किए गए शब्दों की कुल संख्या तथा गलत प्रत्याह्वान किए गए शब्दों की कुल संख्या को लिखिए।

सूची 1

बकरी	*भेड़*	*तेंदुआ*
सियार	*बंदर*	*ऊँट*
खच्चर	*हिरन*	*गिलहरी*
घोड़ा	*चीता*	*भेड़िया*
साँप	*खरगोश*	*तोता*

सूची 2

सूअर	*हाथी*	*गधा*
कबूतर	*कोबरा*	*बाघ*
मैना	*शेर*	*बछड़ा*
भालू	*लोमड़ी*	*कौआ*
भैंस	*चूहा*	

अपने एक मित्र का सहयोग लीजिए और उससे सूची 1 के शब्दों को उपरोक्त कसौटी तक याद करने का अनुरोध कीजिए। इसके बाद उससे एक गाना गाने का तथा अपने साथ एक प्याली चाय पीने का अनुरोध कीजिए। उसे लगभग एक घंटे तक बातचीत में व्यस्त रखिए। फिर उसे पहले याद किए गए शब्दों को लिखने का अनुरोध कीजिए।

अपने प्रत्याह्वान की अपने मित्र द्वारा किए गए प्रत्याह्वान के साथ तुलना कीजिए।

है), बल्कि प्रत्याह्वान के समय पुनरुद्धार के संकेतों के अनुपस्थित रहने या अनुपयुक्त होने के कारण भी होता है। पुनरुद्धार के संकेत वे साधन हैं जो हमें स्मृति में संचित सूचनाओं को पुन: प्राप्त करने में मदद करते हैं। यह विचार टलविंग (Tulving) और उनके साथियों द्वारा प्रतिपादित किया गया था, जिन्होंने यह दिखाने के लिए कई प्रयोग किए कि स्मृति की सामग्री अक्सर हमें इसलिए नहीं प्राप्त होती, क्योंकि पुनरुद्धार के संकेत प्रत्याह्वान के समय या तो अनुपस्थित होते हैं या अनुपयुक्त।

आइए, इसे एक उदाहरण की सहायता से समझें। मान लीजिए कि आपने सूची में कुछ शब्द; जैसे- झोपड़ी, बर्रे, मकान, सोना, ताँबा, चींटी इत्यादि जो कि छ: श्रेणियों से संबंधित हैं (यथा, रहने का स्थान, कीटों का नाम, धातु का प्रकार इत्यादि) को याद किया। यदि कुछ देर के बाद आपको उसका प्रत्याह्वान करने को कहा जाए तो आप उनमें से कुछ का पुन:स्मरण तो कर पाएँगे लेकिन यदि दूसरे पुन:स्मरण प्रयास में आपको श्रेणियों का नाम भी बता दिया जाए तो आपको प्रतीत होगा कि आपने पूरा पुन:स्मरण कर लिया है। इसमें श्रेणी के नाम पुनरुद्धार के संकेतों का काम करते हैं। श्रेणी नाम के अलावा जिस भौतिक संदर्भ में आप याद करते हैं वह भी एक प्रभावी पुनरुद्धार संकेत प्रदान करता है।

स्मृति वृद्धि

हम सब एक उत्कृष्ट स्मृति तंत्र की कामना करते हैं जो सुदृढ़ और विश्वसनीय हो। कौन ऐसी स्थितियों का सामना करना चाहेगा जिसमें स्मृति की विफलता के कारण उलझन और दुश्चिंता हो? स्मृति से संबंधित विभिन्न प्रक्रियाओं को जानने के बाद आप अवश्य ही यह जानना चाहेंगे कि हम अपनी स्मृति को कैसे सुधार सकते हैं। स्मृति सुधार की बहुत सारी युक्तियाँ हैं जिन्हें *स्मृति-सहायक संकेत* कहा जाता है। इनमें से कुछ प्रतिमाओं के उपयोग पर ज़ोर देते हैं तो कुछ अधिगम सामग्री के स्वयं-निर्मित संगठन पर। आइए, इन युक्तियों और स्मृति सुधार के अन्य सुझावों पर दृष्टि डालें तथा इनका पुनरावलोकन करें।

प्रतिमाओं के उपयोग से स्मृति-सहायक संकेत

इस प्रकार की स्मृति सुधार विधि में याद की जाने वाली सामग्री तथा उसके इर्द-गिर्द सुस्पष्ट प्रतिमाओं की रचना की जाती है। इनमें से दो प्रमुख विधियाँ जो प्रतिमाओं का रोचक उपयोग करती हैं वे हैं : *मुख्य शब्द विधि* तथा *स्थान विधि*।

(अ) *मुख्य शब्द विधि* : मान लीजिए कि आपको अंग्रेज़ी आती है और आप अन्य किसी विदेशी भाषा को सीखना चाहते हैं, तो अंग्रेज़ी का कोई शब्द जिसकी ध्वनि उस विदेशी भाषा के शब्द से मिलती-जुलती हो, उसकी पहचान कर लीजिए। यही अंग्रेज़ी शब्द मुख्य शब्द की तरह कार्य करेगा। उदाहरणार्थ, आपको स्पैनिश भाषा का शब्द *Pato* याद करना है जिसका अर्थ है बत्तख, तो आप अंग्रेज़ी का Pot शब्द ले सकते हैं। फिर मुख्य शब्द Pot और याद किए जाने वाले शब्द *Pato*, दोनों को एक अंत:क्रिया करते हुए कल्पना कीजिए कि एक पानी के बर्तन (Pot) में एक बत्तख (*Pato*, स्पैनिश शब्द) है। विदेशी भाषा को सीखने की यह विधि रटने की विधि से अधिक अच्छी होती है।

(ब) *स्थान विधि* : स्थान विधि का उपयोग करने के लिए याद किए जाने वाले पदों को पहले वस्तुओं की दृष्टि प्रतिमा के रूप में एक स्थान में व्यवस्थित कीजिए। एक क्रम में पदों को याद रखने में यह विधि बहुत उपयोगी है। इसके लिए पहले उन वस्तुओं और स्थानों की कल्पना कीजिए जिनके क्रम से आप भली-भाँति परिचित हों, फिर जिन वस्तुओं को आप याद रखना चाहते हैं उन्हें एक-एक स्थान से संबंधित कीजिए। उदाहरणार्थ, बाज़ार जाते समय आपको ब्रेड, अंडा, टमाटर, साबुन याद रखना है तो आप मन में सोचिए कि ब्रेड और अंडा रसोईघर में, टमाटर मेज़ पर और साबुन स्नानघर में रखा है। जब आप बाज़ार पहुँचें तो अपने रसोईघर से स्नानघर तक मानसिक रूप से चलिए और जिन वस्तुओं को खरीदना है उसका पुन: स्मरण करते जाइए।

संगठन के उपयोग से स्मृति-सहायक संकेत

संगठन का तात्पर्य याद की जाने वाली सामग्री में एक क्रम सुनिश्चित करना है। इस प्रकार के स्मृति-सहायक संकेत लाभदायक होते हैं क्योंकि संगठन के समय जो ढाँचा आप बनाते हैं वह पुनरुद्धार का कार्य सरल कर देता है।

(अ) *खंडीयन विधि* : अल्पकालिक स्मृति का उल्लेख करते समय हमने देखा कि किस प्रकार खंडीयन से अल्पकालिक स्मृति की क्षमता बढ़ाई जा सकती है। इसमें कई छोटी-छोटी इकाइयों को मिलाकर एक बड़ा खंड बनाया जाता है। खंड बनाने के लिए छोटी इकाइयों को जोड़ने के संगठन के कुछ सिद्धांतों को जानना आवश्यक है। अत: अल्पकालिक स्मृति की क्षमता को बढ़ाने वाले नियंत्रण तंत्र के अलावा खंडीयन का उपयोग स्मृति सुधार के लिए भी किया जा सकता है।

(ब) *प्रथम अक्षर तकनीक* : प्रथम अक्षर तकनीक को प्रयुक्त करने के लिए, याद किए जाने वाले प्रत्येक शब्द के पहले अक्षर को लेकर उससे एक शब्द या वाक्य बनाया जाता है। उदाहरणार्थ, इंद्रधनुष के रंगों को VIBGYOR की तरह याद किया जाता है, जिसमें V=बैंगनी (violet), I=जामुनी (indigo), B=नीला (blue), G=हरा (green), Y=पीला (yellow), O=नारंगी (orange) और R=लाल (red)।

हाल के वर्षों में स्मृति-सहायक संकेतों पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया जा रहा है, क्योंकि ये बहुत सरल हैं तथा शायद स्मृति कार्यों की जटिलताओं और याद करने में होने वाली कठिनाइयों का न्यूनानुमान करते हैं। कई मनोवैज्ञानिकों ने स्मृति सुधार के लिए स्मृति-सहायक संकेतों की तुलना में अधिक बोधगम्य उपागम बताए हैं। इसमें स्मृति सुधार के लिए स्मृति प्रक्रियाओं के ज्ञान पर बल दिया गया है। आइए, हम इनमें से कुछ सुझावों को देखें।

आवश्यक रूप से करने योग्य बातें :

(अ) *गहन स्तर का प्रक्रमण कीजिए* : यदि आप किसी सूचना को अच्छी तरह से याद करना चाहते हैं तो गहन स्तर का प्रक्रमण कीजिए। क्रैक एवं लॉकहार्ट ने यह प्रदर्शित किया है कि सूचना के सतही गुणों पर ध्यान देने के बजाय उसके अर्थ के रूप में प्रक्रमण किया जाए तो अच्छी स्मृति होती है। गहन स्तर के प्रक्रमण में सूचना से संबंधित जितना संभव हो ऐसे प्रश्न पूछे जाएँ जो उसके अर्थ तथा संबंधों से जुड़े हों। इस प्रकार नयी सूचना आपके पूर्वस्थापित ज्ञान तथा दृष्टिकोण का एक हिस्सा बन जाएगी, और इसके याद रहने की संभाव्यता बढ़ जाएगी।

(ब) *अवरोध घटाइए* : जैसा कि हमने पढ़ा है अवरोध विस्मरण का प्रमुख कारण है अत: जितना संभव हो सके इसे दूर रखने का प्रयास कीजिए। आपको पता है कि जब बिलकुल समान सामग्री एक साथ सीखी जाती है तो अवरोध सबसे ज़्यादा होता है। इससे बचिए और अपने अध्ययन के विषयों को इस प्रकार व्यवस्थित कीजिए कि आप एक के बाद एक

समान विषय को याद न करें। बल्कि पूर्व अभ्यास से असंबंधित किसी अन्य विषय को याद कीजिए। यदि यह संभव न हो तो अपने अधिगम-अभ्यासों का वितरण कीजिए। इसका तात्पर्य यह है कि अवरोध को कम से कम करने के लिए अपने अध्ययन के दौरान में बीच-बीच में आराम कीजिए।

(स) *पर्याप्त पुनरुद्धार संकेत रखिए* : जब आप कुछ याद कर रहे हों तो उस सामग्री में निहित कुछ पुनरुद्धार संकेतों को पहचानिए और अपने पढ़ने या याद करने की सामग्री के अंशों को इनसे जोड़िए। पूरी सामग्री की तुलना में संकेतों को याद रखना सरल होता है और सामग्री तथा संकेतों के बीच जो संबंध आप बनाते हैं वह पुनरुद्धार की प्रक्रिया को बढ़ाएगा।

थामस (Thomas) और रॉबिन्सन (Robinson) ने अधिक याद रखने में विद्यार्थियों की मदद के लिए एक और युक्ति का विकास किया जिसे वे P Q R S T विधि कहते हैं, जिसमें प्रत्येक अक्षर क्रमश: पूर्व-अवलोकन (Preview), प्रश्न करना (Question), पढ़ना (Read), स्वत: जोर से पढ़ना (Self-recitation) और परीक्षण (Test) करने का द्योतक है। पूर्व-अवलोकन का तात्पर्य किसी भी अध्याय की पूरी सामग्री पर एक सरसरी दृष्टि डालना तथा उससे अवगत होना है। प्रश्न करने से तात्पर्य अध्याय में से प्रश्न करना एवं उसका उत्तर खोजना है। अब पढ़ना शुरू कीजिए और जिन प्रश्नों को आपने उठाया है उनके उत्तर ढूँढ़िए। पढ़ने के बाद जो कुछ भी आपने पढ़ा है उसे लिखिए और अंत में अपना परीक्षण स्वयं कीजिए कि आप कितना समझ पाए हैं।

अंत में आपको सावधान एवं सतर्क करना आवश्यक है। ऐसी कोई भी विधि नहीं है जो याद करने से संबंधित सारी समस्याओं का निवारण कर सके तथा रातों-रात स्मृति में सुधार कर दे। अपनी स्मृति को सुधारने के लिए आपको कई कारकों की ओर ध्यान देना होगा जो आपकी स्मृति को प्रभावित करते हैं; जैसे- आपका स्वास्थ्य, आपकी रुचि एवं अभिप्रेरणा, याद की जाने वाली सामग्री से आपका परिचय इत्यादि। इसके साथ-साथ स्मृति सुधार युक्तियों को सामग्री की प्रकृति के अनुसार उपयोग करना भी आपको सीखना होगा।

प्रमुख पद

खंडीयन, संज्ञानात्मक लाघव, संप्रत्यय, नियंत्रण प्रक्रिया, द्वि-संकेतन, प्रतिध्वन्यात्मक स्मृति, कूट संकेतन, घटनापरक स्मृति, विस्तृत पूर्वाभ्यास, फ़्यूग अवस्था, सूचना प्रक्रमण उपागम, अनुरक्षण पूर्वाभ्यास, असत्य संसूचक, स्मृति निर्माण, स्मृति-सहायक संकेत, स्कीमा, आर्थी स्मृति, क्रमिक पुनरुत्पादन, कार्यकारी स्मृति

सारांश

- *स्मृति में तीन अंत:संबंधित प्रक्रियाएँ, कूट संकेतन, भंडारण एवं पुनरुद्धार सम्मिलित हैं।*
- *कूट संकेतन का तात्पर्य आने वाली सूचना को इस प्रकार पंजीकृत करना है कि वह स्मृति तंत्र के अनुरूप हो, भंडारण और पुनरुद्धार का तात्पर्य क्रमश: सूचना को एक समय तक रखना तथा फिर पुन: चेतना में लाना है।*
- *स्मृति का अवस्था मॉडल स्मृति प्रक्रियाओं की तुलना कंप्यूटर से करता है तथा इसके अनुसार स्मृति में आने वाली सूचना का तीन भिन्न अवस्थाओं - संवेदी स्मृति, अल्पकालिक स्मृति एवं दीर्घकालिक स्मृति - में प्रक्रमण होता है।*
- *स्मृति के प्रक्रमण स्तर दृष्टिकोण के अनुसार सूचना का किसी भी स्तर-संरचनात्मक, ध्वन्यात्मक या आर्थी स्तर पर कूट संकेतन हो सकता है। यदि कोई सूचना आर्थी स्तर, जो सबसे गहन स्तर है, पर विश्लेषित एवं संकेतित होती है तो यह धारण क्षमता को बेहतर करती है।*
- *दीर्घकालिक स्मृति का वर्गीकरण कई प्रकार से किया गया है। घोषणात्मक एवं प्रक्रियात्मक स्मृति एक मुख्य वर्गीकरण है तथा दूसरा वर्गीकरण है घटनापरक एवं आर्थी स्मृति।*
- *दीर्घकालिक स्मृति में सामग्री संप्रत्यय, श्रेणियों एवं प्रतिमाओं के रूप में प्रस्तुत होती है तथा श्रेणीबद्ध रूप से संगठित होती है।*
- *स्मृति एक पुनरुत्पादक ही नहीं बल्कि रचनात्मक प्रक्रिया भी है। हम जो कुछ भी संचित करते हैं उसमें व्यक्ति के पूर्व ज्ञान और स्कीमा के अनुसार परिवर्तन एवं संशोधन होते हैं।*

- *विस्मरण किसी समयावधि तक संचित सामग्री की हानि से संबंधित है। किसी सामग्री को सीखने के तुरंत बाद सबसे अधिक क्षति होती है, बाद में यह क्षति धीमी गति से होती है।*
- *विस्मरण चिह्नों के ह्रास तथा अवरोध के कारण होता है। पुनरुद्धार के समय पर्याप्त संकेतों के अभाव में भी विस्मरण हो सकता है।*
- *स्मृति-सहायक संकेत स्मृति में सुधार लाने के लिए होते हैं। कुछ संकेत प्रतिमा पर तो कुछ सीखी जाने वाली सामग्री के संगठन पर बल देते हैं।*

समीक्षात्मक प्रश्न

1. कूट संकेतन, भंडारण और पुनरुद्धार का क्या तात्पर्य है?
2. संवेदी, अल्पकालिक तथा दीर्घकालिक स्मृति तंत्र से सूचना का प्रक्रमण किस प्रकार होता है?
3. अनुरक्षण एवं विस्तृत पूर्वाभ्यास में क्या अंतर है?
4. घोषणात्मक एवं प्रक्रियामूलक स्मृतियों में क्या अंतर है?
5. दीर्घकालिक स्मृति में श्रेणीबद्ध संगठन क्या है?
6. विस्मरण क्यों होता है?
7. अवरोध के कारण विस्मरण, पुनरुद्धार से संबंधित विस्मरण से किस प्रकार भिन्न है?
8. 'स्मृति एक रचनात्मक प्रक्रिया है' से क्या तात्पर्य है?
9. स्मृति-सहायक संकेत क्या हैं? अपनी स्मृति सुधार के लिए एक योजना के बारे में सुझाव दीजिए?

परियोजना विचार

1. अपने जीवन की कोई घटना जो बहुत स्पष्ट रूप से आपको याद हो उसे पुन:स्मरण करें और लिखें। उस घटना में जो अन्य लोग सम्मिलित थे, यथा, भाई/बहन, माता-पिता/रिश्तेदार, उन्हें भी लिखने को कहें। दोनों के प्रत्याह्वान की तुलना कीजिए तथा समानता और भिन्नता ढूँढ़ने का प्रयास कीजिए।
2. अपने मित्र को एक कहानी सुनाइए। फिर एक घंटे बाद उससे लिखने को कहिए। उससे वही कहानी, जो उसने लिखी है, दूसरे को सुनाने को कहिए। ऐसा तब तक कीजिए जब तक आपको मूल कहानी के पाँच भाषांतरण प्राप्त न हो जाएँ। विभिन्न भाषांतरणों की तुलना कीजिए और स्मृति की रचनात्मक प्रक्रियाओं को पहचानिए।

अध्याय 8

चिंतन

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- चिंतन एवं तर्कना के स्वरूप का वर्णन कर सकेंगे,
- समस्या समाधान एवं निर्णय लेने में निहित कुछ संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं की समझ को प्रदर्शित कर सकेंगे,
- सर्जनात्मक चिंतन के स्वरूप व प्रक्रिया एवं इसे विकसित करने के तरीकों को समझ सकेंगे,
- भाषा एवं विचार के मध्य संबंध को समझ सकेंगे, तथा
- भाषा के विकास की प्रक्रिया एवं इसके उपयोग का वर्णन कर सकेंगे।

विषयवस्तु

परिचय
चिंतन का स्वरूप
चिंतन के आधारभूत तत्व
संस्कृति एवं चिंतन (बॉक्स 8.1)
चिंतन की प्रक्रिया
समस्या समाधान
तर्कना
निर्णयन
सर्जनात्मक चिंतन का स्वरूप एवं प्रक्रिया
सर्जनात्मक चिंतन का स्वरूप
पार्श्विक चिंतन (बॉक्स 8.2)
सर्जनात्मक चिंतन की प्रक्रिया
सर्जनात्मक चिंतन का विकास
सर्जनात्मक चिंतन के अवरोध
सर्जनात्मक चिंतन के उपाय
विचार एवं भाषा
भाषा एवं भाषा के उपयोग का विकास
द्विभाषिकता एवं बहुभाषिता (बॉक्स 8.3)

प्रमुख पद
सारांश
समीक्षात्मक प्रश्न
परियोजना विचार

परिचय

कुछ क्षण के लिए सोचें : अपने दिन-प्रतिदिन की बातचीत में आप कितनी बार और किस रूप में 'चिंतन' शब्द का उपयोग करते हैं। कभी-कभी आप इसे याद करने (मैं उसका नाम नहीं सोच पा रहा हूँ), ध्यान देने (इसके बारे में सोचें या चिंतन करें), या अनिश्चितता (मैं सोचता हूँ कि आज मेरा मित्र मेरे पास आएगा) के पर्यायवाची के रूप में उपयोग करते हैं। चिंतन का अर्थ विस्तृत है जिसमें अनेक मनोवैज्ञानिक प्रक्रम सम्मिलित हैं। फिर भी मनोविज्ञान में अपने एक अर्थ के साथ चिंतन का स्वतंत्र अस्तित्व है। इस अध्याय में हम चिंतन की विवेचना, समस्या समाधान, निष्कर्ष निकालने या अनुमान करने, कुछ तथ्यों को समझने, एवं विकल्पों के मध्य निर्णय व चयन करने में निर्दिष्ट एक मानसिक क्रिया के रूप में करेंगे। इसके अतिरिक्त, सर्जनात्मक चिंतन के स्वरूप एवं विशेषताओं, उसमें क्या निहित है तथा इसे कैसे विकसित किया जा सकता है, की भी परिचर्चा की जाएगी। क्या आपने कभी एक छोटे बच्चे को बालू या गुटकों से एक किला या मीनार बनाते देखा है? बच्चा एक किला बनाएगा, उसे तोड़ेगा, एक दूसरा किला बनाएगा, इत्यादि। ऐसा करते समय बच्चा कभी-कभी स्वयं से बात करता है। बातचीत में मुख्यतया प्रारूप का मूल्यांकन ('सुंदर') एवं वे चरण सम्मिलित होंगे जिनका वह अनुसरण कर रहा होगा या करना चाहता होगा ('यह नहीं', 'थोड़ा छोटा', 'पीछे एक पेड़')। समस्या समाधान करते समय स्वयं से बातचीत करने का अनुभव आपने स्वयं भी किया होगा। जब हम सोचते या विचार करते हैं तो बात क्यों करते हैं? भाषा और विचार के बीच क्या संबंध है? इस अध्याय में हम लोग भाषा के विकास तथा भाषा एवं विचार के बीच संबंध की विवेचना करेंगे। चिंतन पर अपनी परिचर्चा प्रारंभ करने से पहले चिंतन की विवेचना मानव संज्ञान के आधार के रूप में करना आवश्यक है।

चिंतन का स्वरूप

चिंतन सभी संज्ञानात्मक गतिविधियों या प्रक्रियाओं का आधार है तथा एकमात्र मानव जाति में ही पाया जाता है। इसमें वातावरण से प्राप्त सूचनाओं का प्रहस्तन एवं विश्लेषण सम्मिलित है। उदाहरण के लिए, एक पेंटिंग (चित्र) को देखते समय आप मात्र पेंटिंग के रंग अथवा रेखा एवं स्पर्श पर ही ध्यान नहीं देते हैं, बल्कि आप उसके अर्थ को समझने के लिए चित्र से परे जाते हैं तथा सूचना को अपने वर्तमान ज्ञान से जोड़ने का प्रयास करते हैं। अत: पेंटिंग की समझ में नए अर्थ का सृजन सम्मिलित है जो आपके ज्ञान में वृद्धि करता है। इस प्रकार चिंतन एक उच्चतर मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम अर्जित अथवा वर्तमान सूचना का प्रहस्तन एवं विश्लेषण करते हैं। इस प्रकार का प्रहस्तन एवं विश्लेषण सार प्रस्तुत करने, तर्क करने, कल्पना करने, समस्या का समाधान करने, समझने एवं निर्णय लेने के माध्यम से उत्पन्न होता है।

चिंतन प्राय: संगठित और लक्ष्य निर्देशित होता है। खाना बनाने से लेकर गणित की समस्या का हल करने तक दिन-प्रतिदिन की सभी गतिविधियों का एक लक्ष्य होता है। एक व्यक्ति यदि कार्य से सुपरिचित है तो योजना बना कर, पूर्व में अपनाए गए उपायों को पुन:स्मरण कर (यदि कृत्य सुपरिचित है), या यदि कृत्य नया है तो रचना-कौशल का अनुमान कर लक्ष्य तक पहुँचना चाहता है।

चिंतन एक आंतरिक मानसिक प्रक्रिया है जिसका अनुमान बाह्य या प्रकट व्यवहार से लगाया जा सकता है। एक चाल चलने से पहले कई मिनट तक चिंतन में तल्लीन किसी शतरंज के खिलाड़ी को क्या आपने देखा है? आप यह नहीं देख सकते कि वह क्या सोच रहा है। आप उसकी अगली चाल से मात्र यह अनुमान लगा सकते हैं कि वह क्या सोच रहा था या वह किन युक्तियों का मूल्यांकन कर रहा था।

चिंतन के आधारभूत तत्व

हम पहले से ही जानते हैं कि चिंतन हमारे पहले से विद्यमान ज्ञान पर निर्भर करता है। ऐसे ज्ञान का प्रतिनिधित्व मानसिक प्रतिमा या शब्द के रूप में निरूपित होता है। लोग प्राय: मानसिक प्रतिमा या शब्द के माध्यम से सोचते हैं। मान

लीजिए, आप सड़क मार्ग से उस स्थान की यात्रा कर रहे हैं जहाँ आप बहुत पहले गए थे। आप मार्ग एवं अन्य जगहों के दृष्टि प्रतिनिधान का उपयोग करेंगे। दूसरी ओर जब आप एक कहानी की किताब खरीदना चाहेंगे तो आपकी पसंद विभिन्न लेखकों एवं विषयवस्तु के बारे में आपकी जानकारी पर निर्भर करेगी। यहाँ आपका चिंतन शब्दों या संप्रत्ययों पर आधारित है। हम पहले मानसिक प्रतिमा पर विचार करेंगे और फिर मानव चिंतन के आधार के रूप में संप्रत्ययों का वर्णन करेंगे।

मानसिक प्रतिमा

मान लीजिए कि मैं आपको पेड़ पर पूँछ ऊपर की ओर मोड़ कर बैठी एक बिल्ली की कल्पना करने के लिए कहता हूँ। बहुत हद तक संभव है कि आप संपूर्ण स्थिति की एक दृश्य प्रतिमा कुछ इस प्रकार बनाने का प्रयास करेंगे, जैसा कि चित्र 8.1 में लड़की कर रही है।

चित्र 8.1 : मानसिक प्रतिमा की रचना करती हुई लड़की

दूसरी स्थिति पर विचार करें जिसमें आप से यह कल्पना करने के लिए कहा जाता है कि आप ताजमहल के सामने खड़े हैं और आप जो कुछ देख रहे हैं उसका वर्णन कीजिए। ऐसा करते समय आप वस्तुत: घटना की एक दृश्य प्रतिमा बनाते हैं। आप जिस तरह से एक चित्र को देखेंगे संभवत: वैसा ही आप अपने मन की आँखों से देखने का प्रयास करेंगे। किसी को दिशा-निर्देश देते समय एक मानचित्र बनाना क्यों उपयोगी होता है? मानचित्र पढ़ने के अपने पूर्व अनुभव को याद करने का प्रयास करें, आप परीक्षा में विभिन्न स्थानों का स्मरण करते हैं और बाद में भौतिक मानचित्र में आप उन्हें चिह्नित करते हैं। ऐसा करने में आप प्राय: मानसिक प्रतिमाओं का निर्माण एवं उपयोग कर रहे थे। प्रतिमा संवेदी अनुभवों का एक मानस चित्रण है; इसका उपयोग वस्तुओं, स्थानों, और घटनाओं के बारे में चिंतन करने में किया जा सकता है। आप क्रियाकलाप 8.1 को करने का प्रयास कर सकते हैं जो यह प्रदर्शित करता है कि प्रतिमा का निर्माण कैसे होता है।

क्रियाकलाप 8.1

नीचे दिए गए चित्र 8.2 (अ) की तरह एक मानचित्र अपने मित्र को दो मिनट के लिए देखने को दें और उससे कहें कि बाद में उसे एक रिक्त मानचित्र में इन स्थानों को चिह्नित करने के लिए कहा जाएगा। इसके बाद विभिन्न स्थानों का कोई संकेत न देते हुए चित्र 8.2 (ब) की तरह एक मानचित्र प्रस्तुत करें। अपने मित्र से उन स्थानों को चिह्नित करने के लिए कहें जिन्हें उसने पहले मानचित्र में देखा था। इसके बाद पूछें कि वह स्थानों को कैसे चिह्नित कर पाया। संभवत: वह आपको यह बताने में सक्षम होगा कि उसने किस प्रकार संपूर्ण स्थिति की प्रतिमा (मानस-चित्र) बनाई।

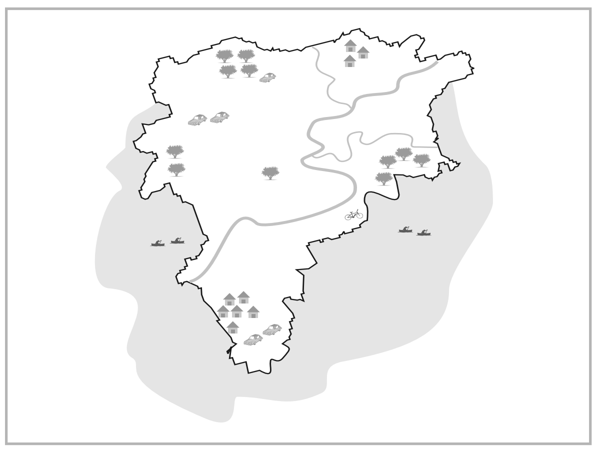

चित्र 8.2 (अ) : स्थानों को प्रदर्शित करता एक मानचित्र

संप्रत्यय

आप यह कैसे जानते हैं कि शेर एक पक्षी नहीं है जबकि तोता है? आप यह अध्याय 7 में पहले ही पढ़ चुके हैं। जब हम एक परिचित अथवा अपरिचित वस्तु या घटना को देखते हैं

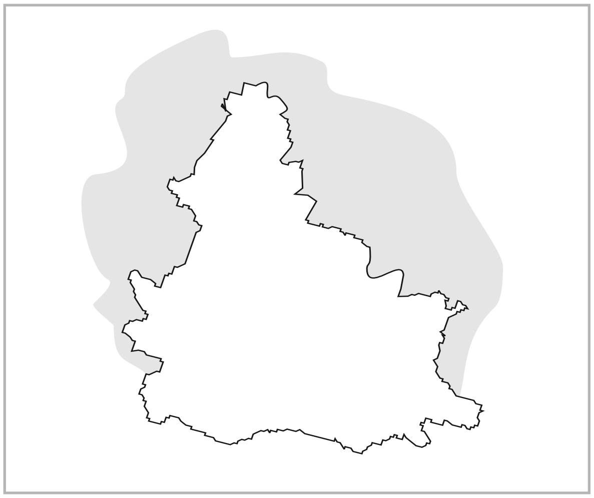

चित्र 8.2 (ब) : एक रिक्त उलटा मानचित्र

तब हम वस्तु या घटना के लक्षणों को ढूँढ़ कर उनका मिलान पहले से विद्यमान वस्तुओं एवं घटनाओं के संवर्ग से करते हुए उसको पहचानने का प्रयास करते हैं। उदाहरणार्थ, जब हम एक सेब को देखते हैं तो इसे हम फल के रूप में वर्गीकृत करते हैं, जब हम एक मेज़ को देखते हैं तो इसे हम फर्नीचर के रूप में वर्गीकृत करते हैं, जब हम एक कुत्ते को देखते हैं तो इसे हम पशु के रूप में वर्गीकृत करते हैं इत्यादि। जब हम एक नयी वस्तु को देखते हैं, हम उसके लक्षणों को ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं, पहले से विद्यमान संवर्ग के लक्षणों से मिलान करते हैं और यदि मिलान पूर्ण है तो हम उसे उस संवर्ग का नाम दे देते हैं। उदाहरणार्थ, सड़क पर टहलते समय आपको बहुत छोटे आकार का एक चतुष्पाद मिल जाता है, चेहरा कुत्ते की तरह है, अपनी पूँछ हिला रहा है और अपरिचितों पर भौंक रहा है। आप नि:संदेह उसकी पहचान एक कुत्ते के रूप में करेंगे और संभवत: सोचेंगे कि यह एक नयी प्रजाति का है जिसे आपने पहले कभी नहीं देखा था। आप यह भी निष्कर्ष निकालेंगे कि यह अपरिचितों को काटेगा। संप्रत्यय एक संवर्ग का मानस चित्रण है। यह एकसमान या उभयनिष्ठ विशेषता रखने वाली वस्तु, विचार या घटना का वर्ग है।

संप्रत्यय निर्माण की आवश्यकता हमें क्यों पड़ती है? संप्रत्यय निर्माण हमें अपने ज्ञान को व्यवस्थित या संगठित करने में सहायता करता है जिससे कि हमें जब भी अपने ज्ञान के उपयोग की आवश्यकता पड़े तो हम इसे कम समय एवं प्रयास में कर सकें। यह कुछ वैसा ही है जैसा कि हम घर में अपने सामानों को व्यवस्थित करने के लिए करते हैं। वे बच्चे जो बहुत क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित होते हैं, अपने सामानों; जैसे- पुस्तक, कॉपी, कलम, पेंसिल एवं अन्य उपकरणों को अलमारी में विशिष्ट स्थानों पर रखते हैं जिससे प्रात: उन्हें किसी विशिष्ट पुस्तक अथवा ज्यामिति बॉक्स को खोजने के लिए हाथ-पैर न मारना पड़े। पुस्तकालयों में भी आपने देखा है कि पुस्तकें विषय क्षेत्र के अनुसार व्यवस्थित व नामांकित होती हैं जिससे कि उन्हें आप शीघ्रता एवं आसानी से खोजने में सक्षम हों। अपने विचार या चिंतन प्रक्रिया को तीव्र एवं दक्ष बनाने के लिए हम संप्रत्यय निर्माण करते हैं तथा वस्तुओं एवं घटनाओं को वर्गीकृत करते हैं। आप क्रियाकलाप 8.2 को करके यह जान सकते हैं कि बच्चे संप्रत्यय का निर्माण किस प्रकार करते हैं।

क्रियाकलाप 8.2

कार्डबोर्ड का एक टुकड़ा लें और तीन विभिन्न आकार के (छोटा, मध्यम, व बड़ा) त्रिभुज, वृत्त तथा वर्ग काटें। इन्हें पीले रंग से रँग दें। इसी प्रकार एक दूसरा सेट बनाएँ और उसे हरे रंग से रँग दें तथा तीसरा सेट लाल रंग से रँग दें। अब आपके पास रूप, आकार, व रंग में भिन्न 27 कार्डों का एक सेट है। पाँच-छ: वर्ष के एक बच्चे से एक जैसे कार्डों को एक साथ वर्गीकृत करने के लिए कहें।

यदि छोटे बच्चों के एक समूह के साथ आप इस क्रियाकलाप का परीक्षण करेंगे तो आप देखेंगे कि बच्चों के अनुक्रिया करने के अनेक तरीके होंगे। वे उन्हें विभिन्न समूहों में निम्न आधार पर एकत्र करेंगे :

1. आकार: सभी छोटे त्रिभुज, वर्ग एवं वृत्त एक साथ, सभी मध्यम आकार के एक साथ इत्यादि ।
2. रूप: सभी त्रिभुज एक साथ, सभी वृत्त एक साथ इत्यादि।
3. रंग: सभी लाल रंग एक साथ सभी पीले रंग एक साथ इत्यादि।
4. आकार एवं रूप दोनों: सभी छोटे त्रिभुज एक साथ, सभी मध्यम त्रिभुज एक साथ इत्यादि।
5. आकार, रूप, और रंग: सभी लाल रंग के छोटे वृत्त एक साथ, सभी पीले रंग के मध्यम वृत्त एक साथ इत्यादि।

आप अध्याय 6 में संप्रत्यय अधिगम एवं अध्याय 7 में मानव स्मृति में संप्रत्ययों के उपयोग के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं। संप्रत्यय प्राय: समझ के श्रेणीबद्ध संगठन या स्तरों में

पाए जाते हैं। इन स्तरों को प्रधान (सर्वोच्च स्तर), मौलिक (मध्य स्तर), तथा गौण (निम्न स्तर) के रूप में वर्गीकृत किया जाता है। बोलते समय हम प्राय: मौलिक स्तर के संप्रत्ययों का उपयोग करते हैं। जब एक व्यक्ति कहता है, 'मैंने एक कुत्ते को देखा' तो यह मौलिक स्तर के संप्रत्यय का उपयोग होता है। ऐसे कथन के बोले जाने की संभावना कहीं अधिक है तुलना में इसके कि 'मैंने एक चार पैर वाले पशु को देखा जो भौंकता है एवं अपनी पूँछ हिलाता है' या 'एक पशु'। पहला कथन (गौण), वार्तालाप के लिए आवश्यकता से कहीं अधिक विशिष्ट है जबकि दूसरा कथन (प्रधान) अभीष्ट संदेश संप्रेषित करने के लिए अधिक अस्पष्ट है। बच्चे भी पहले मौलिक स्तर के संप्रत्यय को सीखते हैं और फिर दूसरे स्तरों को।

अधिकांश संप्रत्यय जिनका उपयोग लोग चिंतन में करते हैं वे न तो स्पष्ट होते हैं और न ही असंदिग्ध। वे अस्पष्ट होते हैं। वे एक दूसरे से कुछ अंश तक मिलते हैं और प्राय: अस्पष्ट रूप से परिभाषित होते हैं। उदाहरणार्थ, एक छोटे स्टूल को आप किस संवर्ग में रखेंगे? क्या आप इसे कुर्सी अथवा मेज़ के अंतर्गत रखेंगे? इसका उत्तर संभवत: यह होगा कि हम एक प्रतिमान या *आदि-प्ररूप* का निर्माण करेंगे। किसी संवर्ग का सर्वोत्तम प्रतिनिधि सदस्य आदि-प्ररूप होता है। एलिनार रौश (Eleanor Rosch) का तर्क है कि यह समझने में कि लोग संप्रत्यय के विषय में कैसे सोचते हैं, वास्तविक जीवन में प्राय: आदि-प्ररूप की आवश्यकता पड़ती है। आदि-प्ररूप मिलान करने में लोग एक वस्तु की एक संवर्ग की सबसे प्रतिनिधिक वस्तुओं से तुलना करके यह निश्चित करते हैं कि क्या वह उस संवर्ग का सदस्य है। अत: स्टूल के उपर्युक्त उदाहरण में आप इसकी तुलना एक स्तरीय या मानक अध्ययन कुर्सी (यदि आप इसे कुर्सी का एक प्रतिनिधि उदाहरण मानते हैं) एवं एक छोटे अध्ययन मेज़ (यदि आप इसे मेज़ का एक प्रतिनिधि उदाहरण मानते हैं) से करेंगे और इसके बाद स्टूल की विशेषताओं का मिलान इन दोनों संप्रत्ययों से करेंगे। यदि यह कुर्सी से मेल खाता है तो इसे आप कुर्सी संवर्ग में रखेंगे अन्यथा इसे मेज़ संवर्ग में रखेंगे। दूसरे उदाहरण को लें: 'कप' का संप्रत्यय। कप: (1) मूर्त वस्तु हैं, (2) उन्नतोदर हैं,

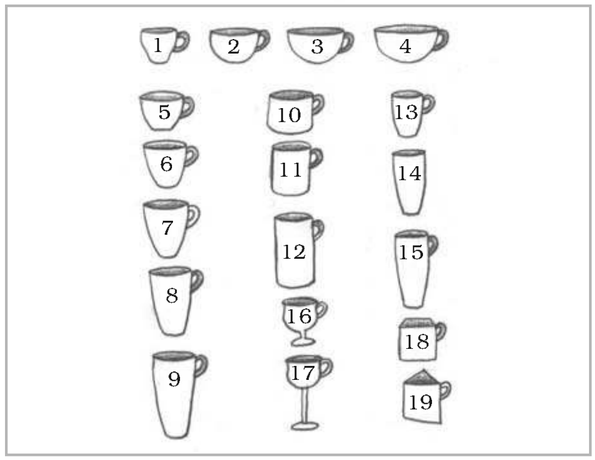

चित्र 8.3 : एक कप कब 'कप' होता है?

बॉक्स 8.1 संस्कृति एवं चिंतन

हमारे चिंतन करने के तरीके को हमारे विश्वास, मूल्य, एवं सामाजिक (प्रथा) प्रचलन प्रभावित करते हैं। अमरीकी एवं एशियाई विद्यार्थियों पर किए गए एक अध्ययन में निम्न प्रकार के एक चित्र (जल के अंदर का दृश्य) का उपयोग किया गया। प्रयोज्यों से कहा गया कि दृश्य को थोड़े समय के लिए देखें और इसके बाद उन्होंने जो देखा उसका वर्णन करने के लिए कहा गया। अमरीकी विद्यार्थियों ने सबसे बड़े, सबसे चमकदार, तथा सबसे विशिष्ट अभिलक्षणों पर ध्यान दिया (उदाहरणार्थ, 'दायीं ओर तैरती हुई बड़ी मछली')। इसके विपरीत जापानी विद्यार्थियों ने पृष्ठभूमि पर ध्यान दिया (जैसे- 'तल पथरीला था' या 'पानी हरा था')। इस प्रकार के परिणामों के आधार पर शोधकर्ताओं ने यह निष्कर्ष निकाला कि अमरीकी प्राय: प्रत्येक वस्तु का अलग-अलग विश्लेषण करते हैं जिसे 'विश्लेषणात्मक चिंतन' कहा जाता है। एशियाई लोग (जापानी, चीनी, कोरियाई) वस्तु एवं पृष्ठभूमि के संबंध के बारे में अधिक सोचते हैं जिसे 'समग्र चिंतन' कहा जाता है।

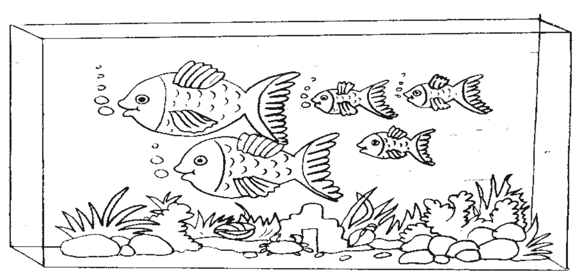

(3) इनमें ठोस या द्रव को रखा जा सकता है, (4) इनमें हैंडल होते हैं। उन कपों के विषय में क्या कहेंगे जिन्हें हम बाज़ार में देखते हैं: जिनमें हैंडल नहीं हैं, रूप में वर्गाकार हैं अथवा आकार में बड़े हैं? एक प्रयोग में प्रतिभागियों को चित्र 8.3 की तरह कपों के चित्र दिखाए गए और डब्ल्यू लैबाव (W. Labov) ने उनसे पूछा: आप इनमें से किसे 'कप' संप्रत्यय का आदि-प्ररूप कहेंगे। प्रतिभागियों ने प्राय: 5 नंबर को चुना। रोचक बात यह रही कि कुछ प्रतिभागियों ने 4 नंबर को एक कटोरा तथा 9 नंबर को एक फूलदान कहा क्योंकि वे बहुत भिन्न थे।

चिंतन की प्रक्रिया

अभी तक हम लोग यह परिचर्चा कर रहे थे कि चिंतन से हम क्या समझते हैं और चिंतन का स्वरूप क्या है। हम यह भी पढ़ चुके हैं कि मानसिक प्रतिमाओं एवं संप्रत्ययों का उपयोग चिंतन के आधार के रूप में होता है। अब हम एक विशिष्ट क्षेत्र : समस्या समाधान, में चिंतन किस प्रकार किया जाता है, की परिचर्चा करेंगे।

समस्या समाधान

जब हम एक टूटी हुई साइकिल की मरम्मत करते हैं या ग्रीष्मकाल में यात्रा की योजना बनाते हैं अथवा मित्रता में आए मनमुटाव को दूर करते हैं तो हम किस प्रकार अग्रसर होते हैं? कुछ स्थितियों जैसे कि टूटी हुई साइकिल की मरम्मत में तत्काल उपलब्ध संकेतों के आधार पर समाधान शीघ्र प्राप्त हो जाता है जबकि दूसरी स्थितियाँ अधिक जटिल होती हैं और इनके लिए अधिक समय एवं प्रयास की आवश्यकता होती है। समस्या समाधान ऐसा चिंतन है जो लक्ष्य निर्दिष्ट होता है। हमारे दिन-प्रतिदिन की लगभग सभी गतिविधियाँ एक लक्ष्य की ओर निर्दिष्ट होती हैं। यहाँ यह जानना महत्वपूर्ण है कि

तालिका 8.1 किसी समस्या के समाधान में निहित मानसिक संक्रियाएँ

आइए विद्यालय में शिक्षक दिवस के अवसर पर एक नाटक के आयोजन की समस्या को देखें। समस्या-समाधान निम्न अनुक्रम में होगा।

	मानसिक संक्रियाएँ	समस्या की प्रकृति
1.	समस्या की पहचान	शिक्षक दिवस के लिए एक सप्ताह रह गया है और आपको एक नाटक का आयोजन करने का कार्य दिया गया है।
2.	समस्या का निरूपण	नाटक के आयोजन में उपयुक्त कथानक या प्रसंग को ढूँढ़ना, अभिनेताओं व अभिनेत्रियों की खोज करना, धन की व्यवस्था करना इत्यादि शामिल होंगे।
3.	समाधान की योजना बनाना: उप-लक्ष्यों का निर्धारण करना	एक नाटक के लिए उपलब्ध विभिन्न कथानकों का सर्वेक्षण एवं खोज करना और उन अध्यापकों एवं मित्रों से सलाह लेना जिनके पास अनुभव है। लागत, कालावधि, अवसर के लिए उपयुक्तता आदि पर विचार के आधार पर नाटक का निर्धारण करना।
4.	सभी समाधानों (नाटकों) का मूल्यांकन	सभी सूचनाओं को एकत्र करें / मंच पूर्व अभ्यास।
5.	एक समाधान को चुनें और उसका क्रियान्वयन करें	सर्वोत्तम हल या समाधान (नाटक) पाने के लिए विभिन्न विकल्पों की तुलना एवं सत्यापन करना।
6.	प्रतिफल या परिणाम का मूल्यांकन	यदि नाटक (समाधान) की प्रशंसा की जाती है, तो अपने तथा अपने मित्रों के लिए भावी संदर्भ हेतु उन तरीकों या चरणों पर विचार करें जिनका अनुसरण आपने किया है।
7.	समस्या एवं समाधान को पुनर्परिभाषित करें और उन पर पुनर्विचार करें	इस विशिष्ट अवसर के बीतने के बाद आप भविष्य में एक बेहतर नाटक की योजना बनाने के तरीकों पर भी विचार कर सकते हैं।

समस्या हमेशा व्यक्ति द्वारा सामना किए जाने वाले अवरोध या बाधा के रूप में नहीं आती है। यह एक निश्चित लक्ष्य तक पहुँचने के लिए संपादित कोई सरल कार्य भी हो सकता है। उदाहरणार्थ, अपने मित्र के लिए हलका नाश्ता बनाना जो आपके पास अभी-अभी पहुँचा है। समस्या समाधान में एक प्रारंभिक अवस्था (अर्थात समस्या) होती है तथा एक अंतिम अवस्था (लक्ष्य) होती है। इन दोनों स्थिरकों को अनेक चरणों या मानसिक संक्रियाओं के द्वारा जोड़ा जाता है। एक समस्या का समाधान करने में किसी व्यक्ति द्वारा अपनाए गए विभिन्न चरणों को आप तालिका 8.1 में स्पष्ट रूप से समझ सकेंगे। आप क्रियाकलाप 8.3 में दी गई समस्याओं की अपने मित्रों पर जाँच कर सकते हैं और देख सकते हैं कि वे समस्या तक कैसे पहुँच रहे हैं। आप उनसे पूछ सकते हैं कि इन समस्याओं को हल करने के लिए उन्होंने कौन-कौन से कदम उठाए।

क्रियाकलाप 8.3

समस्या 1

वर्ण विपर्यास : वर्णों को पुन: क्रम में रखते हुए शब्द बनाइए। (आप कुछ मिलते जुलते शब्द भी बना सकते हैं)।

NAGMARA
BOLMPER
SLEVO
STGNIH
TOLUSONI

समस्या 2

बिंदुओं को जोड़ना : चार सीधी रेखाएँ खींचकर सभी नौ बिंदुओं को कागज़ से अपनी पेंसिल हटाए बिना जोड़ें।

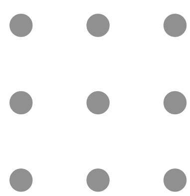

समस्या 3

अपने मित्र के साथ 'तीन बोतलों में पानी' वाले क्रियाकलाप को करने का प्रयास कीजिए।

तीन बोतल अ, ब और स हैं। बोतल अ में 21 मि.ली., ब में 127 मि.ली. और स में 3 मि.ली. जल आ सकता है। इन तीन बोतलों की सहायता से आपके मित्र को 100 मि.ली. जल लेना है। यहाँ इस तरह की 6 और समस्याएँ हैं। ये सातों समस्याएँ नीचे प्रस्तुत की गई हैं।

समस्याएँ	*वांछित मात्रा*	*बोतलों की क्षमता मि.ली. में*		
		अ	*ब*	*स*
1.	100	21	127	3
2.	99	14	163	25
3.	5	18	43	10
4.	21	9	42	6
5.	31	20	59	4
6.	20	23	49	3
7.	25	28	76	3

उत्तर अध्याय के अंत में दिए गए हैं।

समस्या समाधान में अवरोध

समस्या समाधान में मानसिक विन्यास तथा अभिप्रेरणा का अभाव दो प्रमुख अवरोध हैं।

मानसिक विन्यास

मानसिक विन्यास व्यक्ति के समस्या समाधान करने की एक प्रवृत्ति है जिसमें वह पहले से प्रयोग की गई मानसिक संक्रियाओं या उपायों का अनुसरण करता है। किसी विशिष्ट युक्ति की पूर्व सफलता नयी समस्या के समाधान में कभी-कभी सहायक होगी। यद्यपि यह प्रवृत्ति मानसिक दृढ़ता भी उत्पन्न करती है जो समस्या के समाधानकर्ता के लिए नए नियमों या युक्तियों के बारे में सोचने में बाधक बनती है। अत: कुछ स्थितियों में जहाँ मानसिक विन्यास समस्या समाधान की गुणवत्ता और गति में वृद्धि करता है वहीं अन्य स्थितियों में यह समस्या समाधान को बाधित करता है। आपने इसका अनुभव अपनी पाठ्यपुस्तक की गणितीय समस्याओं को हल करते समय किया होगा। कुछ प्रश्नों को हल कर लेने के बाद आप इन प्रश्नों को हल करने के लिए आवश्यक नियमों के बारे में एक धारणा विकसित कर लेते हैं और बाद में आप उन्हीं नियमों का अनुसरण करते चले जाते हैं, उस समय तक जब तक कि आप असफल नहीं हो जाते। इस समय आप पहले से प्रयुक्त नियमों का परिहार करने में कठिनाई का अनुभव कर सकते हैं। ये नियम आपको नयी युक्तियों पर विचार करने में बाधा उत्पन्न करेंगे। फिर भी हम दिन-प्रतिदिन के कार्यों में प्राय: मिलती-जुलती या संबंधित समस्याओं के पूर्व अनुभव पर निर्भर करते हैं।

मानसिक विन्यास की तरह ही समस्या समाधान में **प्रकार्यात्मक स्थिरता** (functional fixedness) तब उत्पन्न होती है जब लोग किसी चीज़ या परिस्थिति के सामान्य प्रकार्यों पर स्थिर हो जाने के कारण समस्या का हल करने में विफल हो जाते हैं। यदि आपने कभी मोटी दफ़्ती मढ़ी हुई

पुस्तक का उपयोग कील ठोकने के लिए किया है, तो आप मानसिक स्थिरता को पार कर चुके हैं।

अभिप्रेरणा का अभाव

लोग समस्या का समाधान करने में कुशल हो सकते हैं। परंतु यदि वे अभिप्रेरित नहीं हैं तो उनकी दक्षता एवं योग्यता किसी काम की नहीं है। कभी-कभी लोग जब पहले ही चरण को पूरा करने में कठिनाई या असफलता का अनुभव करते हैं तो वे शीघ्र ही निराश होकर कार्य छोड़ देते हैं। अत: समस्या का समाधान या हल ढूँढ़ने के लिए कठिनाई के बाद भी उन्हें अपने प्रयास में निरंतर लगे रहने की आवश्यकता है।

तर्कना

यदि आप रेलवे प्लेटफार्म पर एक व्यक्ति को व्यग्रता से दौड़ते हुए देखते हैं तो आप अनेक तरह के अनुमान लगा सकते हैं, जैसे: वह उस रेलगाड़ी को पकड़ने के लिए दौड़ रहा है जो अभी छूटने वाली है, वह अपने मित्र को विदा करना चाहता है जो उस छूटने वाली रेलगाड़ी में बैठा है, उसने अपना बैग गाड़ी में छोड़ दिया है और उसे गाड़ी छूटने से पहले प्राप्त कराना चाहता है। यह समझने या अनुमान करने के लिए कि वह व्यक्ति क्यों दौड़ रहा है, आप भिन्न प्रकार के तर्कना, निगमनात्मक अथवा आगमनात्मक का उपयोग कर सकते हैं।

निगमनात्मक तथा आगमनात्मक तर्कना

चूँकि आपका पूर्व अनुभव बताता है कि प्लेटफार्म पर लोग रेलगाड़ी पकड़ने के लिए दौड़ते हैं, आप यह निष्कर्ष निकालेंगे कि इस व्यक्ति को विलंब हो रहा है और वह रेलगाड़ी पकड़ने के लिए दौड़ रहा है।

तर्कना का वह प्रकार जो एक अभिग्रह या पूर्वधारणा से प्रारंभ होता है उसे निगमनात्मक तर्कना कहते हैं। अत: निगमनात्मक तर्कना एक सामान्य अभिग्रह को विकसित करना है जिसे आप जानते हैं या विश्वास करते हैं कि सही है और फिर इस अभिग्रह के आधार पर विशिष्ट निष्कर्ष निकालते हैं। दूसरे शब्दों में यह समान्य से विशिष्ट की ओर तर्कना है। आपका सामान्य अभिग्रह यह है कि लोग प्लेटफार्म पर तब दौड़ते हैं जब उन्हें गाड़ी पकड़ने में विलंब हो रहा होता है। आदमी प्लेटफार्म पर दौड़ रहा है अत: उसे गाड़ी पकड़ने के लिए विलंब हो रहा है। एक गलती जो आप कर रहे हैं (और निगमनात्मक तर्कना में आमतौर पर लोग इस प्रकार की गलती करते ही हैं) वह यह है कि आप मान लेते हैं परंतु हमेशा नहीं जानते हैं कि मूल कथन या अभिग्रह सही है। यदि आधारभूत सूचना सही नहीं है, अर्थात लोग दूसरे कारणों से भी प्लेटफार्म पर दौड़ते हैं, तो आपका निष्कर्ष अवैध या गलत होगा। चित्र 8.4 में चुहिया को देखें।

चित्र 8.4 : क्या चुहिया सही और वैध निष्कर्ष निकाल रही है?

यह जानने के लिए कि आदमी प्लेटफार्म पर क्यों दौड़ रहा है, एक दूसरा तरीका है आगमनात्मक तर्कना का उपयोग करना। कभी-कभी आप अन्य संभावित कारणों का विश्लेषण करते एवं देखते हैं कि वास्तव में व्यक्ति क्या कर रहा है और तब उसके व्यवहार के बारे में निष्कर्ष निकालते हैं। वह तर्कना जो विशिष्ट तथ्यों एवं प्रेक्षण पर आधारित होती है उसे आगमनात्मक तर्कना कहते हैं। आगमनात्मक तर्कना विशिष्ट प्रेक्षणों पर आधारित सामान्य निष्कर्ष निकालना है। पूर्व के उदाहरण में, आप अन्य व्यक्ति की अनुवर्ती क्रिया या गतिविधियों का प्रेक्षण करते हैं, जैसे - रेलगाड़ी के डिब्बे में प्रवेश करना और एक बैग के साथ वापस आना। अपने प्रेक्षण के आधार पर आप निष्कर्ष निकालेंगे कि व्यक्ति ने रेलगाड़ी में अपना बैग छोड़ दिया था। यहाँ आप संभवत: सभी तथ्यों को जाने बिना एक निष्कर्ष पर पहुँचने की गलती करते हैं।

उपर्युक्त विवेचना से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि तर्कना एक निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए सूचनाओं को एकत्रित एवं विश्लेषित करने की एक प्रक्रिया है। इस अर्थ में तर्कना समस्या समाधान का भी एक प्रकार है। यह निर्धारित करना लक्ष्य है कि दी गई सूचनाओं से कौन से निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

वैज्ञानिक तर्कना की अधिकांश स्थितियाँ आगमनात्मक स्वरूप की होती हैं। वैज्ञानिक और आम आदमी भी अनेक

दृष्टांतों पर विचार करते हैं और यह निर्धारित करने का प्रयास करते हैं कि कौन से सामान्य नियम सभी की व्याख्या करते हैं। कल्पना करें कि एक परियोजना को संपादित करने के लिए आप नाटक की योजना के अंतर्गत पूर्व में वर्णित समस्या समाधान के चरणों के अपने ज्ञान का उपयोग कर रहे हैं। यहाँ पर आपकी आगमनात्मक तर्कना का प्रयोग किया जा रहा है।

साम्यानुमान तर्कना का एक दूसरा रूप है जिसमें चार भाग होते हैं, जैसे 'अ' से 'ब' संबंधित है वैसे ही 'स' से 'द' जिसमें प्रथम दो भागों में ठीक वैसा ही संबंध होता है जैसा कि अंतिम दो भागों में। इन उदाहरणों पर विचार करें: जैसे जल से मछली संबंधित है वैसे ही हवा से मनुष्य; जैसे सफ़ेद से बर्फ संबंधित हैं वैसे ही काले से कोयला। यह एक वस्तु या घटना के गुणों की पहचान और उनकी सजीव कल्पना करने में हमारी सहायता करते हैं, जो अन्यथा अनदेखे रह जाते हैं।

निर्णयन

निगमनात्मक एवं आगमनात्मक तर्कना हमें निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करते हैं। **निर्णय** (judgment) लेने में हम ज्ञान एवं उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर निष्कर्ष निकालते हैं, धारणा बनाते हैं, घटनाओं और वस्तुओं का मूल्यांकन करते हैं। इस उदाहरण पर विचार करें, यह आदमी बहुत वाचाल है, लोगों से मिलना पसंद करता है, दूसरों को सरलता से सहमत कर लेता है – वह बिक्रीकर्ता की नौकरी के लिए सबसे उपयुक्त होगा। इस व्यक्ति के बारे में हमारा निर्णय एक निपुण बिक्रीकर्ता के लक्षणों या विशेषताओं पर आधारित है। हम निर्णयन और निर्णय कैसे करते हैं इसकी परिचर्चा हम यहाँ करेंगे।

कभी-कभी निर्णय स्वचालित होते हैं और इसके लिए व्यक्ति की तरफ़ से किसी चेतन प्रयास की आवश्यकता नहीं होती है तथा ये आदतवश हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, लाल बत्ती देखने पर ब्रेक लगाना। किंतु उपन्यास या साहित्यिक पुस्तक के मूल्यांकन में आपके पूर्व ज्ञान एवं अनुभव के संदर्भ की आवश्यकता होती है। एक पेंटिंग के सौंदर्य के मूल्यांकन में आपकी व्यक्तिगत अभिरुचियाँ और पसंद सम्मिलित होंगी। अत: हमारे निर्णय हमारे विश्वासों और अभिवृत्तियों से स्वतंत्र नहीं होते हैं। नवीन अर्जित सूचना के आधार पर हम अपने निर्णय में परिवर्तन भी करते हैं। इस उदाहरण पर विचार करें – एक नया अध्यापक विद्यालय में पद-भार ग्रहण करता है, विद्यार्थी तत्काल निर्णय लेते हैं कि अध्यापक बहुत कठोर है। बाद की कक्षाओं में वे अध्यापक से घुलमिल जाते हैं और अपने निर्णय में परिवर्तन कर लेते हैं। अब वे अध्यापक का मूल्यांकन अत्यंत छात्र-मित्र के रूप में करते हैं।

बहुत सी समस्याएँ जिनका समाधान आप प्रतिदिन करते हैं जिसमें निर्णयन की आवश्यकता पड़ती है। पार्टी में जाने के लिए क्या पहनें? रात के भोजन में क्या खाएँ? आपको मित्र से क्या कहना है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर अनेक विकल्पों में से किसी एक विकल्प को चुनने में निहित होता है। निर्णयन में हम विकल्पों में चयन करते हैं जो कभी-कभी व्यक्तिगत महत्त्व के विकल्पों पर आधारित होता है। निर्णयन और निर्णय परस्पर संबंधित प्रक्रियाएँ हैं। निर्णयन में हमारे सामने जो समस्या होती है वह है प्रत्येक विकल्प से संबंधित लागत-लाभ का मूल्यांकन करते हुए विकल्पों में से चयन करना। उदाहरणार्थ, कक्षा 11 के विषय के रूप में मनोविज्ञान एवं अर्थशास्त्र में से किसी एक के चयन करने का विकल्प जब आपके पास है तो आपका निर्णयन आपकी रुचि, भावी अवसर, पुस्तकों की उपलब्धता, अध्यापकों की दक्षता इत्यादि पर आधारित होगा। वरिष्ठ छात्रों और अध्यापकों से बातचीत, कुछ कक्षाओं में पढ़ लेना आदि के द्वारा आप इनका मूल्यांकन कर सकते हैं। निर्णयन अन्य तरह की समस्या समाधान से भिन्न होता है। निर्णयन में हम पहले से ही विभिन्न समाधान या विकल्पों को जानते हैं और उनमें से एक का चयन करना होता है। कल्पना कीजिए कि आपका मित्र बैडमिंटन का बहुत अच्छा खिलाड़ी है। उसे राज्य स्तर पर खेलने का अवसर मिल रहा है। उसी समय अंतिम परीक्षा नज़दीक आ रही है और उसके लिए उसे गहन अध्ययन की ज़रूरत है। उसे दो विकल्पों – बैडमिंटन के लिए अभ्यास या अंतिम परीक्षा के लिए अध्ययन में से एक को चुनना होगा। इस स्थिति में उसका निर्णय तमाम संभव परिणामों के मूल्यांकन पर आधारित होगा।

आप देखेंगे कि लोग अपनी प्राथमिकताओं में भिन्न होते हैं और इसलिए उनका निर्णय भी भिन्न होता है। वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में हम त्वरित निर्णय लेते हैं और इसलिए प्रत्येक परिस्थिति का गहनता एवं पूर्णता से मूल्यांकन हमेशा संभव नहीं हो पाता है।

सर्जनात्मक चिंतन का स्वरूप एवं प्रक्रिया

यदा-कदा आपको यह जानने की उत्सुकता अवश्य होती होगी कि कैसे किसी व्यक्ति ने पहली बार ऐसे कार्यों; जैसे- बीज बोना, या पहिया बनाना, या गुफाओं की दीवारों को चित्रों से सजाना, आदि के बारे में सोचा होगा। दिन-प्रतिदिन के कार्यों

को करने के पुराने तरीकों से संतुष्ट न होने के कारण ऐसे व्यक्तियों ने कुछ मौलिक चीज़ों के बारे में सोचा होगा। ऐसे असंख्य लोग हैं जिनकी सर्जनात्मकता ने आज की वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति को जन्म दिया है जिसका आनंद हम आज लेते हैं। संगीत, पेंटिंग, काव्य और कला के अन्य रूप जो हमें आनंद और हर्ष प्रदान करते हैं, सभी सर्जनात्मक चिंतन के उत्पाद हैं।

आपने अपने ही देश के एक वनस्पतिशास्त्री ए.डी. कार्वे (A.D. Karve) का नाम अवश्य सुना होगा जिन्होंने धुआँ रहित चूल्हा बनाने के लिए यू.के. का सर्वोच्च ऊर्जा पुरस्कार पाया। इन्होंने गन्ने के अनुपयोगी सूखे पत्तों को स्वच्छ ईंधन में परिवर्तित किया। आपने 11वीं कक्षा के विद्यार्थी आशिष पंवार का भी नाम अवश्य सुना होगा जिसने ग्लासगो में आयोजित प्रथम अंतर्राष्ट्रीय रोबोटिक ओलंपियाड में एक पाँच फुट ऊँचा यंत्र मानव (रोबोट) बनाने के लिए कांस्य पदक प्राप्त किया। ये सर्जनात्मकता के मात्र कुछ उदाहरण हैं। आप विभिन्न क्षेत्रों में सर्जनात्मकता के अनेक उदाहरणों को अपने स्मृति पटल पर ला सकते हैं।

यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि सर्जनात्मक चिंतन हमेशा असाधारण कार्यों में ही व्यक्त नहीं होता है। सर्जनात्मक चिंतक बनने के लिए किसी व्यक्ति को एक वैज्ञानिक अथवा एक कलाकार होना आवश्यक नहीं है। सर्जनात्मक होने की सामर्थ्य सभी में होती है। इसके अतिरिक्त, मानवीय गतिविधि के लगभग सभी क्षेत्रों में विभिन्न स्तरों पर सर्जनात्मक चिंतन का अनुप्रयोग किया जा सकता है। यह ऐसी गतिविधियों में प्रदर्शित हो सकता है जैसे – लेखन, अध्यापन, भोजन बनाना, भूमिका निर्वहन, कहानी सुनाना, वार्तालाप, संवाद, प्रश्न पूछना, खेलना, दिन-प्रतिदिन की समस्याओं को हल करने के प्रयास, कार्यों को आयोजित करना, दूसरों के द्वंद्व को दूर करने में सहायता करना इत्यादि। 'साधारण सर्जनात्मकता' का यह संप्रत्यय जो एक व्यक्ति के प्रेक्षण, चिंतन, एवं समस्या समाधान में प्रदर्शित होता है वह असाधारण सर्जनात्मक उपलब्धियों में दिखने वाली 'विशिष्ट प्रतिभा सर्जनात्मकता' से भिन्न होता है।

सर्जनात्मक चिंतन का स्वरूप

अन्य प्रकार के चिंतन से सर्जनात्मक चिंतन को इस तथ्य के आधार पर विभेदित किया जाता है कि इसमें समस्याओं के समाधान के लिए नवीन एवं मौलिक विचारों या समाधानों का उत्पादन शामिल है। सर्जनात्मक चिंतन को कभी-कभी मात्र नए तरीके से सोचने या भिन्न प्रकार से सोचने के रूप में समझा जाता है। यद्यपि यह जानना महत्वपूर्ण है कि नवीनता के अतिरिक्त मौलिकता भी सर्जनात्मक चिंतन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। हर वर्ष उत्पादित गृहोपयोगी उपकरणों, टेप-रिकार्डरों, कारों, स्कूटरों, टेलीविज़न सेटों के नए मॉडल मौलिक नहीं हो सकते जब तक कि इन उत्पादों में कोई अनोखी विशेषता न जोड़ी जाए। अतः सर्जनात्मक चिंतन विचारों या समाधानों की मौलिकता एवं अनोखेपन से संबंधित है जो पहले अस्तित्व में नहीं थे। सर्जनात्मक चिंतन आमतौर पर उस विशेषता से भी परिभाषित होता है जिसे ब्रुनर (Bruner) 'प्रभावी आश्चर्य' कहते हैं। यदि उत्पाद या विचार असाधारण है तो ऐसा करने वाले अधिकांश लोगों की अनुक्रिया तात्कालिक आश्चर्य या चौंकाने वाली होती है।

सर्जनात्मक चिंतन की विशेषता को बताने वाला जो एक दूसरा महत्वपूर्ण मापदंड है वह है विशिष्ट संदर्भ में इसकी उपयुक्तता। बिना किसी उद्देश्य के अलग तरीके से सोचना, कार्यों को अपने तरीके से करना, सामान्य स्वीकृत नियमों के विपरीत कार्य करना, बिना किसी उद्देश्य के कल्पना में लिप्त रहना, या विचित्र विचार प्रस्तुत करने को कभी-कभी गलती से सर्जनात्मक चिंतन समझ लिया जाता है। शोधकर्ताओं में इस बात पर सहमति है कि चिंतन को तब सर्जनात्मक कहा जाता है जब वह *वास्तविकता की ओर उन्मुख, उपयुक्त, रचनात्मक*, तथा *सामाजिक रूप से वांछित हो।*

सर्जनात्मकता शोध के अग्रणी, जे.पी. गिलफर्ड (J.P. Guilford) ने चिंतन के दो प्रकार प्रस्तावित किए हैं : *अभिसारी* तथा *अपसारी।* अभिसारी चिंतन वह चिंतन है जिसकी आवश्यकता वैसी समस्याओं को हल करने में पड़ती है जिनका मात्र एक सही उत्तर होता है। मन सही उत्तर की ओर अभिमुख हो जाता है। इसको समझने के लिए निम्न प्रश्नों को ध्यान से देखें। यह अंक शृंखला पर आधारित है जिसमें आपको अगले अंक को बताना है। मात्र एक सही उत्तर अपेक्षित है।

प्रश्न: 3, 6, 9, ... अगला अंक क्या होगा?

उत्तर: 12

अब आप कुछ ऐसे प्रश्नों पर विचार करें जिनके लिए कोई एक नहीं बल्कि अनेक सही उत्तर होते हैं। इस तरह के कुछ प्रश्न नीचे दिए गए हैं:

- *कपड़ों के कौन-कौन से उपयोग हैं?*
- *आप एक कुर्सी में क्या सुधार सुझाएँगे जिससे कि वह अधिक आरामदेह और सौंदर्य की दृष्टि से सुखद बन जाए?*

बॉक्स 8.2 पार्श्विक चिंतन

जिसे गिल्फर्ड ने अपसारी चिंतन कहा हैं उसे एडवर्ड डी बोनो (Edward de Bono) ने 'पार्श्विक चिंतन' कहा है। वे ऊर्ध्व चिंतन तथा पार्श्विक चिंतन में विभेद करते हैं। ऊर्ध्व चिंतन में वैसी मानसिक संक्रियाएँ सम्मिलित हैं जो निम्न एवं उच्च स्तर के संप्रत्ययों के मध्य एक सीधी रेखा में ऊपर नीचे चलती रहती हैं जबकि पार्श्विक चिंतन में समस्या को परिभाषित करने तथा उसकी व्याख्या करने के लिए वैकल्पिक तरीकों को खोजा जाता है। उनका कहना है, 'ऊर्ध्व (तार्किक) चिंतन एक ही छिद्र को अधिक गहरा खोदता है, अर्थात एक ही दिशा में गहन चिंतन करना; जबकि पार्श्विक चिंतन दूसरी जगह पर एक छिद्र करने से संबंधित है'। डी बोनो बताते हैं कि पार्श्विक चिंतन मानसिक छलाँग लगाने में सहायता कर सकता है और इसमें सोचने के अनेक तरीकों को उत्पन्न करने की संभावना रहती है।

डी बोनो ने चिंतन के विभिन्न तरीकों को उद्दीप्त करने के लिए 'छः चिंतन टोप' प्रविधि का विकास किया है। अपेक्षित प्रकार के चिंतन के अनुसार कोई इन 'टोपों' को पहन सकता है अथवा उतार सकता है। सफ़ेद टोप का अभिप्राय सूचनाओं, तथ्यों एवं आकृतियों का संकलन करना तथा सूचनाओं की रिक्तियों की पूर्ति करना है। लाल टोप विषय से संबंधित संवेदनाओं की अभिव्यक्ति एवं संवेगों का संकलन करता है। काला टोप निर्णय, सावधानी एवं तर्क को दर्शाता है। पीला टोप उस चिंतन को दर्शाता है जिसके अनुसार हम यह सोचते हैं कि काम किससे चलेगा और वह क्यों लाभकारी होगा। हरा टोप सर्जन विकल्प एवं परिवर्तन का सूचक है। नीला टोप स्वयं विचारों या योजनाओं के बारे में चितंन न करके प्रक्रमों का प्रक्रियाओं के बारे में चिंतन करने का परिचायक है। एक समस्या या मुद्दे को जिन विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में देखा जाता है उसको चिंतन करने वाले 'छः चिंतन टोप' प्रतिबिंबित करते हैं। इस तकनीक को वैयक्तिक रूप से अथवा समूह में उपयोग किया जा सकता है।

- *यदि विद्यालयों से परीक्षा समाप्त कर दी जाए तो क्या होगा?*

उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर के लिए अपसारी चिंतन की आवश्यकता है जो एक मुक्त चिंतन है जहाँ व्यक्ति अपने अनुभवों के आधार पर प्रश्नों या समस्याओं के अनेक उत्तर सोच सकता है। इस प्रकार का चिंतन नवीन एवं मौलिक विचारों को उत्पन्न करने में सहायक होता है।

अपसारी चिंतन योग्यताओं के अंतर्गत सामान्यतया चिंतन प्रवाह, लचीलापन, मौलिकता एवं विस्तारण आते हैं।

- **चिंतन प्रवाह** एक दिए हुए कृत्य या समस्या के लिए अनेक विचार उत्पन्न करने की योग्यता है। एक व्यक्ति जितने अधिक विचार उत्पन्न करता है उसके चिंतन प्रवाह की योग्यता भी उतनी ही अधिक उच्च होती है। उदाहरण के लिए, एक कागज़ के कप के बताए गए उपयोग की संख्या जितनी अधिक होगी उतना ही अधिक विचार प्रवाह होगा।
- **लचीलापन** चिंतन में विविधता को इंगित करता है। यह एक वस्तु के विभिन्न उपयोगों के बारे में चिंतन करना अथवा एक चित्र या कहानी की अलग-अलग तरह की व्याख्या प्रस्तुत करना अथवा एक समस्या का समाधान करने की विविध पद्धतियों की विभिन्न व्याख्याओं के संबंध में चिंतन हो सकता है। उदाहरण के लिए, एक कागज़ के कप के उपयोग के संबंध में कोई यह विचार दे सकता है कि इसका प्रयोग बर्तन के रूप में अथवा वृत्त खींचने के लिए किया जा सकता है आदि।

चित्र 8.5 : अपसारी ढंग से सोचना

- **मौलिकता** नवीन संबंधों का प्रत्यक्षण नए विचारों के साथ पुराने विचारों को जोड़ना, चीज़ों को भिन्न परिप्रेक्ष्य में देखना इत्यादि के द्वारा दुर्लभ या असाधारण विचारों को उत्पन्न करने की योग्यता है। शोधकर्ताओं ने यह प्रदर्शित किया है कि मौलिकता के लिए चिंतन प्रवाह एवं लचीलापन आवश्यक शर्तें हैं। कोई व्यक्ति जितने अधिक एवं विविध विचार प्रस्तुत करता है, उनमें

मौलिक विचारों के उत्पन्न होने की संभावना भी उतनी ही अधिक होती है।

- **विस्तारण** वह योग्यता है जो एक व्यक्ति को नए विचार के विस्तार में जाने तथा उसके निहितार्थ को समझने में सक्षम बनाती है।

अपसारी चिंतन से विविध प्रकार के ऐसे विचारों को उत्पन्न करना सुगम हो जाता है जो एक दूसरे से जुड़े हुए प्रतीत होते हों। उदाहरण के लिए, खाद्य उत्पादन को बढ़ाने के लिए आम तौर पर कौन से उपाय बताए जाते हैं? संभावित उत्तर का संबंध बीज़ की गुणवत्ता, खाद, सिंचाई इत्यादि से होगा। यदि कोई व्यक्ति खर-पतवार से प्रोटीन निकालने के लिए ऊसर या रेगिस्तान में खेती करने का विचार करता है तो यह एक दूर की कौड़ी होगी (यह एक दूरस्थ योजना होगी)। यहाँ जो साहचर्य है वह 'खाद्य उत्पादन' एवं 'ऊसर/रेगिस्तान' या 'खर-पतवार' के मध्य है। सामान्यतया, हम इन्हें एक साथ नहीं जोड़ते हैं। परंतु, हम यदि अपने मन को नए एवं दूरस्थ साहचर्यों को खोजने के लिए स्वतंत्र या मुक्त कर देते हैं तो इससे विचारों की अनेक संयुक्तियाँ उत्पन्न हो सकती हैं।

आपको यह अवश्य याद रखना चाहिए कि सर्जनात्मक चिंतन के लिए अभिसारी एवं अपसारी चिंतन दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। अपसारी चिंतन विविध प्रकार के विचार को उत्पन्न करने के लिए आवश्यक है। सबसे उपयोगी या उपयुक्त विचार की पहचान में अभिसारी चिंतन महत्वपूर्ण है।

क्रियाकलाप 8.4

यातायात व्यवस्था/प्रदूषण/भ्रष्टाचार/अशिक्षा/गरीबी के मुद्दों एवं समस्याओं से संबंधित वैविध्यपूर्ण चिंतन करने के लिए अलग-अलग तरह के पाँच प्रश्नों का निर्माण कीजिए जिसमें अपसारी चिंतन होता हो। अपनी कक्षा में मिलजुलकर इन प्रश्नों के संबंध में बताइए एवं उन पर परिचर्चा कीजिए।

सर्जनात्मक चिंतन की प्रक्रिया

मानव मन किस प्रकार कार्य करता है इस पर हाल के वर्षों में अधिकाधिक ध्यान दिया गया है। शोध अध्ययन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि नए एवं असाधारण विचारों के बारे में चिंतन में तात्कालिक अंतर्दृष्टि के अतिरिक्त अन्य तत्व भी निहित हैं। नए विचारों के उत्पन्न होने के पहले एवं बाद के कई चरण होते हैं।

सर्जनात्मक प्रक्रिया का प्रारंभिक बिंदु है कुछ नयी चीज़ों को सोचने या उत्पन्न करने की आवश्यकता जिससे प्रयास

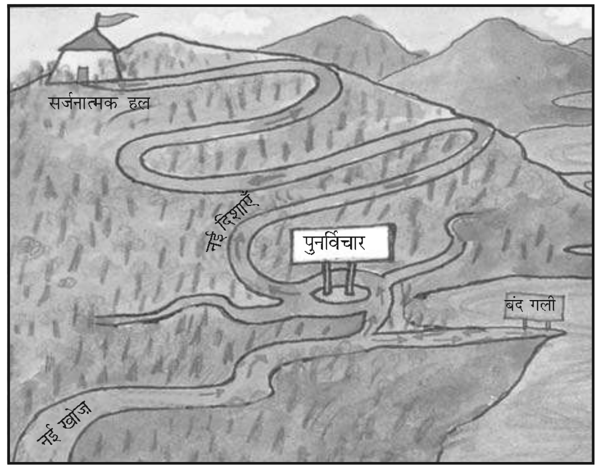

चित्र 8.6 : सर्जनात्मक प्रक्रिया

आरंभ होता है। दिन-प्रतिदिन के सामान्य कार्यों को संपादित करने में व्यक्ति इस आवश्यकता का अनुभव नहीं करता है क्योंकि व्यक्ति इससे प्रसन्न एवं संतुष्ट भी रह सकता है। उपलब्ध सूचनाओं में कमी अथवा समस्या को भाँपने से नए विचारों एवं समाधानों की खोज की आवश्यकता उत्पन्न होती है। सर्जनात्मक चिंतन की प्रक्रिया **तैयारी** (preparation) की अवस्था से प्रारंभ होती है जिसमें व्यक्ति को दिए गए कार्य या समस्या को समझने तथा समस्या का विश्लेषण करने की आवश्यकता होती है। यह प्रक्रिया विभिन्न दिशाओं में अधिकाधिक चिंतन करने की उत्सुकता एवं उत्तेजना उत्पन्न करती है। व्यक्ति समस्या या कार्य को अलग-अलग परिप्रेक्ष्य एवं दृष्टिकोण से देखने का प्रयास करता है। यहाँ पूर्व वर्णित अपसारी चिंतन योग्यताएँ व्यक्ति को नयी दिशा में बढ़ने में अपनी भूमिका निभाती हैं।

जब व्यक्ति वैकल्पिक विचारों या योजनाओं को उत्पन्न करने तथा समस्या या कार्य को असाधारण परिप्रेक्ष्य से देखने का प्रयास करता है तो रुक जाने या ठहर जाने की अनुभूति भी हो सकती है। यहाँ तक कि किसी व्यक्ति में असफलता के कारण विरक्ति या प्रबल अनिच्छा का भाव उत्पन्न हो सकता है और कुछ समय के लिए वह समस्या या कार्य को छोड़ सकता है। यह **उद्भवन** (incubation) की अवस्था है। शोध अध्ययन से यह प्रदर्शित होता है कि उद्भवन के दौरान, जब व्यक्ति समस्या के संबंध में चेतन रूप से नहीं सोच रहा होता है, बल्कि चेतन प्रयास से हट कर विश्राम कर रहा होता है तो हो सकता है कि सर्जनात्मक विचार तत्काल उत्पन्न न हों। यह तब उत्पन्न हो सकते हैं जब व्यक्ति कुछ और कर रहा

हो; जैसे- सोने जा रहा हो, सो के उठ रहा हो, स्नान कर रहा हो, या फिर टहल रहा हो। उद्‌भवन के बाद आने वाली अवस्था है **प्रदीप्ति** (illumination) - 'अहा!' या 'मैंने इसे पा लिया है' का अनुभव, वह क्षण जिसे हम सामान्यतया सर्जनात्मक विचार या उसके उत्पन्न होने के साथ जोड़ते हैं। सामान्यतया सर्जनात्मक विचार प्राप्त कर लेने पर एक उत्तेजना या संतुष्टि की अनुभूति होती है। अंतिम अवस्था है **सत्यापन** (verification) जिसमें योजना, विचार या समाधान के महत्त्व व उपयुक्तता का परीक्षण या मूल्यांकन किया जाता है। यहाँ, उपयुक्त योजना या समाधान, जो सफल या प्रभावी हो, के चयन में अभिसारी चिंतन अपनी भूमिका निभाता है।

सर्जनात्मक चिंतन का विकास

जैसा कि पिछले खंड में चर्चा की गई है, आप पुन:स्मरण कर सकते हैं कि सर्जनात्मक चिंतन का सामर्थ्य हम सब में है। यह कुछ थोड़े से प्रतिभाशाली कलाकारों या वैज्ञानिकों या कुछ चुनिंदा लोगों तक ही सीमित नहीं है। सर्जनात्मक चिंतन की अभिव्यक्ति एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न हो सकती है। कोई व्यक्ति किस सीमा तक सर्जनात्मक हो सकता है इसके निर्धारण में यद्यपि आनुवंशिक कारक महत्वपूर्ण हैं, तथापि पर्यावरणीय कारक सर्जनात्मक चिंतन योग्यताओं के विकास को प्रोत्साहित या बाधित करते हैं। भारत सहित विभिन्न देशों में शोधकर्ताओं ने परिवेशीय कारकों के कारण विभिन्न अवस्थाओं के स्कूल के बच्चों के सर्जनात्मक चिंतन के स्तर में गिरावट प्रदर्शित की है। इसके विपरीत शोधकर्ताओं ने यह भी प्रदर्शित किया है कि निम्न सामाजिक-आर्थिक समूहों, सजातीय और अल्पसंख्यक वर्ग के बच्चों में काफी अविकसित सर्जनात्मकता होती है और वे बहुत तरह से सर्जनात्मक होते हैं।

शोध यह भी बताते हैं कि हम सभी अभ्यास एवं प्रशिक्षण के द्वारा अपनी सर्जनात्मक चिंतन योग्यताओं का समुचित उपयोग कर सकते हैं। दिन-प्रतिदिन की समस्याओं का सर्जनात्मक एवं प्रभावशाली समाधान करने में हम अधिक कल्पनाशील, लचीला एवं मौलिक बन सकते हैं। एक व्यक्ति के विकास एवं परिपूर्णता के लिए सर्जनात्मक चिंतन का विकास महत्वपूर्ण है।

सर्जनात्मक चिंतन के अवरोध

सर्जनात्मक चिंतन के विकास का प्रथम चरण है सर्जनात्मक अभिव्यक्ति को बाधित करने वाले अवरोधी कारकों की पहचान करना और इसके बाद उनको दूर करने का प्रयास करना।

सर्जनात्मक चिंतन करने में अवरोध आते हैं जिन्हें आभ्यासिक, प्रात्यक्षिक, अभिप्रेरणात्मक, संवेगात्मक एवं सांस्कृतिक वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है। नियमित कार्यों को सरलता एवं दक्षता से करने के लिए यद्यपि आभ्यासिक अधिगम की अधिक आवश्यकता होती है, फिर भी आदतों के वशीभूत हो जाने, विशेष रूप से सोचने या चिंतन करने के तरीकों में, की प्रवृत्ति सर्जनात्मक अभिव्यक्ति के लिए हानिकारक हो सकती है। हम किसी घटना या वस्तु के सुपरिचित तरीके से चिंतन और प्रत्यक्षण के इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि नए तरीके से सोचना कठिन हो जाता है। शीघ्रता से निष्कर्ष पर पहुँचने की हमारी यह प्रवृत्ति, समस्याओं को नए परिप्रेक्ष्य में न देखने, कार्य करने के सामान्य एवं घिसे-पिटे तरीके से संतुष्ट हो जाने या पूर्वकल्पित धारणाओं से ऊपर उठने की इच्छा का अभाव, तात्कालिक निर्णय में परिवर्तन की अयोग्यता इत्यादि से संबंधित हो सकती है। प्रात्यक्षिक अवरोध हमें नए और मौलिक विचारों के प्रति खुला दृष्टिकोण रखने से रोकते हैं। क्रियाकलाप 8.3 में बिंदुओं को जोड़ने की समस्या को याद करने का प्रयास कीजिए जिसमें कागज़ से पेन या पेंसिल उठाए बिना आपको एक बिंदु से मात्र एक बार गुजरते हुए सभी नौ बिंदुओं को चार सीधी रेखाओं से जोड़ना था। इस समस्या का समाधान सीमा रेखा से परे जाने पर मिलता है। हम मान लेते हैं कि सीमा रेखाएँ हैं जबकि वे नहीं थीं। बहुत से लोग नौ बिंदुओं से बनने वाले वर्ग में रहते हुए ही समस्या का समाधान करने का प्रयास करेंगे। ऐसा करने के लिए निर्देश में कुछ नहीं कहा गया है। बिंदुओं को जोड़ने की समस्या कल्पित या आत्म-आरोपित परिधियों और सीमाओं की सूचक है।

अभिप्रेरणात्मक एवं संवेगात्मक रोधन भी सर्जनात्मक चिंतन में बाधा पहुँचाते हैं जो यह प्रदर्शित करते हैं कि सर्जनात्मक चिंतन मात्र एक संज्ञानात्मक प्रक्रिया नहीं है, बल्कि अभिप्रेरणा का अभाव, असफलता का भय, भिन्न होने का भय, हँसी का पात्र बनने या तिरस्कृत होने का भय, दुर्बल आत्म-धारणा, नकारवृत्ति आदि सर्जनात्मक चिंतन को बाधित करते हैं। उदाहरणार्थ, कुछ लोग जी-जान से लग जाने और अतिरिक्त प्रयास करने के लिए पर्याप्त रूप से अभिप्रेरित नहीं होते हैं। एक व्यक्ति को लग सकता है कि वह आगे इसको नहीं कर सकता, समस्या को बीच में ही छोड़ सकता है या मध्यवर्ती विचार को ही अंतिम संकेत के रूप में स्वीकार कर सकता है। इसके अतिरिक्त, कुछ लोग स्वयं के प्रति नकारात्मक

धारणा रखते हैं। उन्हें प्रतीत होता है कि वे कुछ कार्य करने में सक्षम नहीं हैं। यह जान कर आपको आश्चर्य होगा कि बल्ब के आविष्कारक थॉमस अल्वा एडिसन (Thomas Alva Edison) ने वर्षों के प्रयोग और सैकड़ों असफलताओं के बाद पहला बल्ब बनाया।

सांस्कृतिक अवरोधों का संबंध परंपरा का अत्यधिक अनुपालन, अपेक्षाएँ, अनुरूपता दबाव तथा रूढ़ियों से है। सामाजिक अस्तित्व के लिए अनुरूपता कुछ सीमा तक आवश्यक है परंतु परंपरा, संस्कार तथा कार्यविधि के अत्यधिक अनुपालन से सर्जनात्मक चिंतन के अवरुद्ध होने की संभावना बनी रहती है। भिन्न होने का भय, यथास्थिति बनाए रखने की प्रवृत्ति, सामान्यता को स्वीकार करने के लिए तैयार रहना, व्यक्तिगत सुरक्षा का संरक्षण, सामाजिक दबाव, दूसरों पर अत्यधिक निर्भरता आदि के कारण सांस्कृतिक अवरोध उत्पन्न होते हैं।

यह तथ्य कि हर व्यक्ति में सर्जनात्मक होने की समर्थता होती है और उनके सर्जनात्मक चिंतन की अभिव्यक्ति में अंतर हो सकता है। यह इस आवश्यकता को दर्शाता है कि हम सब अपनी सर्जनात्मक समर्थता को विकसित करें तथा अवरोधों को दूर करें जैसा कि हम ऊपर चर्चा कर चुके हैं।

क्रियाकलाप 8.5

कुछ ऐसे कथनों पर विचार कीजिए जिनका प्रयोग हम प्राय: करते हैं और जो सर्जनात्मक विचार की उत्पत्ति को बाधित अथवा प्रोत्साहित कर सकते हैं। नए विचारों को अवरुद्ध करने वाले कथनों; जैसे- 'यह तार्किक नहीं है', 'और अधिक सोचने के लिए समय कम है', 'इससे काम नहीं चलेगा' इत्यादि तथा ऐसे सकारात्मक कथनों; जैसे- 'क्या कोई और तरीका है? और क्या हो सकता है? इत्यादि को सूचीबद्ध कीजिए।

सर्जनात्मक चिंतन के उपाय

सर्जनात्मक लोगों पर किए गए शोध अध्ययनों से यह प्रकट होता है कि कुछ ऐसी अभिवृत्तियाँ, प्रवृत्तियाँ तथा कौशल हैं जो सर्जनात्मक चिंतन को बढ़ावा देते हैं। यहाँ आपके सर्जनात्मक चिंतन क्षमताओं एवं कौशलों को बढ़ाने में सहायक कुछ उपाय प्रस्तुत किए जा रहे हैं :

- अपने चारों तरफ की अनुभूतियों, दृश्यों, ध्वनियों तथा रचनागुणों के प्रति ध्यान देने तथा अनुक्रिया करने में सक्षम बने रहने के लिए अधिक सजग एवं संवेदनशील बनें। समस्याओं, लुप्त सूचनाओं, असंगतियों, कमियों, अपूर्णताओं आदि को चिह्नित करें। परिस्थितियों में विरोधाभास तथा अपूर्णता को देखने का प्रयास करें जो दूसरे नहीं देख पाते हैं। इसके लिए विस्तृत अध्ययन, विविध प्रकार की सूचनाओं को प्राप्त करने की आदत विकसित करें, तथा प्रश्न पूछने, परिस्थितियों एवं वस्तुओं के रहस्य पर मनन करने की कला का विकास करें।
- अपने विचार के प्रवाह को बढ़ाने के लिए एक दिए हुए कार्य या परिस्थिति के लिए जितना हो सके योजना, प्रतिक्रिया, समाधान अथवा सुझाव उत्पन्न करें। अपने चिंतन में लचीलापन बढ़ाने के लिए एक कार्य या परिस्थिति के विभिन्न पक्षों को विमर्शपूर्वक खोजने का प्रयास करें। उदाहरण के लिए यह, एक कमरे में स्थान बढ़ाने के लिए फर्नीचर की व्यवस्था के विकल्पों पर विचार करना, विभिन्न लोगों से बात-चीत करना, एक अध्ययन पाठ्यक्रम अथवा व्यवसाय की लागतों और लाभों का पता लगाना, एक क्रोधी मित्र के प्रति व्यवहार करने या उससे निबटने के तरीकों को जानना, दूसरों की सहायता करना इत्यादि हो सकता है।
- मुक्त परिस्थितियों में विचार के प्रवाह एवं लचीलेपन को बढ़ाने के लिए आसबर्न (Osborn) के विचारावेश प्रविधि का उपयोग किया जा सकता है। विचारावेश इस सिद्धांत पर आधारित है कि विचारों को उत्पन्न करने को उनके महत्त्व के मूल्यांकन से पृथक रखना चाहिए। इसकी मूलभूत पूर्वधारणा है कि मन को मुक्त रूप से सोचने दें और विचारों के महत्त्व के मूल्यांकन की प्रवृत्ति को रोक दें अर्थात जब तक विचार आना समाप्त न हो जाए तब तक कल्पना को मूल्यांकन की तुलना में वरीयता देनी चाहिए। यह विचार के प्रवाह को बढ़ाने तथा विकल्पों को एकत्रित करने में सहायक होता है। विचारावेश खेलों के नियमों को ध्यान में रखते हुए इसे परिवार के सदस्यों तथा मित्रों के साथ खेल कर विचारावेश का अभ्यास किया जा सकता है। चिह्नांकन-सूची एवं प्रश्नों का उपयोग विचारों को नए मोड़ प्रदान करते हैं; जैसे- अन्य परिवर्तन क्या हो सकते हैं? इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है? इसे कितने प्रकार से किया जा सकता है? इस वस्तु के अन्य उपयोग क्या हो सकते हैं? इत्यादि।
- चिंतन प्रवाह का अभ्यास करके, लचीलापन, सहचारी चिंतन की आदत, सहलग्नता अन्वेषण कर, या भिन्न दूरस्थ विचारों को जोड़ कर विकसित किया जा सकता है।

यह कहा जाता है कि एक सर्जनात्मक चिंतक नए विचारों को उत्पन्न नहीं करता है, बल्कि विचारों के नए संयोजन को विकसित करता है। यह विचारों कीशृंखला तथा योजनाओं का अन्त:निषेचन ही है जो कुछ नया प्रकट करता है। 'दोलन कुर्सी' का विचार 'सी-सॉ' (उपर-नीचे होने वाला झूला) तथा 'कुर्सी' के संयोजन से आया है। सादृश्यता का प्रयोग करते हुए असाधारण और अप्रत्याशित विचारों का साहचर्य बनाने का अभ्यास कीजिए। कभी-कभी मौलिक विचार/समाधान पाने के लिए ध्यान को आकस्मिक रूप से परिवर्तित करने की आवश्यकता होती है। जिसे ऐसे प्रश्नों को पूछकर सहज बनाया जा सकता है, जैसे समस्या के सधे-सधाए या सामान्य समाधान के विपरीत क्या समाधान है? विरोधी विचारों को साथ-साथ बने रहने दीजिए। स्पष्ट समाधानों के विपरीत समाधानों को खोजना मौलिक समाधान की ओर ले जाता है।

- नित्यचर्या के कार्यों में नहीं बल्कि अपनी रुचि एवं शौक के अनुसार स्वयं को ऐसे कार्यों में लगाइए जिसमें कल्पना एवं मौलिक चिंतन की आवश्यकता हो। यह कुछ भी हो सकता है; जैसे- घर को सजाना, पुरानी वस्तुओं को ठीक-ठाक करना तथा नया रूप देना, रद्दी उत्पाद या वस्तुओं का विविध रूप में उपयोग करना, अधूरी योजनाओं को अलग तरीके से पूरा करना, कहानियों या कविताओं को नया मोड़ देना, पहेलियों तथा प्रहेलिकाओं का विकास करना, रहस्यों को सुलझाना आदि।
- प्रथम विचार या समाधान को कभी स्वीकार न करें। बहुत से विचार इसलिए समाप्त हो जाते हैं क्योंकि उन्हें हम यह सोच कर त्याग देते हैं कि वह विचार मूर्खतापूर्ण हो सकता है। आपको पहले अनेक संभव विचार एवं समाधान उत्पन्न करने हैं, इसके बाद उनमें से सर्वश्रेष्ठ का चयन करना है।
- जिन समाधानों का आप निश्चय करते हैं उनपर आप उन लोगों से प्रतिप्राप्ति प्राप्त करें जो इनसे व्यक्तिगत रूप से कम संबद्ध हों।
- यह सोचने का प्रयास करें कि आपकी समस्या पर कोई दूसरा व्यक्ति क्या समाधान प्रस्तुत कर सकता है।
- अपने विचार को उद्भवित होने का अवसर प्रदान करें। विचारों के उत्पादन तथा उनके मूल्यांकन की अवस्थाओं के मध्य उद्भवन के लिए समय देना 'अहा!' अनुभव उत्पन्न कर सकता है।
- कभी-कभी विचार वृक्ष की शाखाओं की तरह एकत्रित होते हैं। अपने चिंतन को चित्रित करना लाभदायक है क्योंकि इससे आप उसकी समाप्ति तक प्रत्येक संभव शाखा का अनुसरण कर सकते हैं।
- तात्कालिक पुरस्कार तथा सफलता के लोभ का प्रतिरोध कीजिए तथा कुंठा एवं असफलता से सामंजस्य स्थापित कीजिए। आत्म-मूल्यांकन को प्रोत्साहित कीजिए।
- निर्णय लेने एवं चीज़ों की कल्पना करने में बिना किसी सहायता या संसाधनों के स्वतंत्र चिंतन का विकास कीजिए।
- कारणों एवं परिणतियों को मानसिक रूप से देखें या कल्पना करें तथा आगे की सोचें, जो चीज़ें कभी नहीं हुई हैं उनका पूर्वानुमान करें। जैसे- यदि समय पीछे की ओर चलना प्रारंभ हो तो क्या होगा? यदि शून्य नहीं होता तो क्या होता? इत्यादि।
- समस्या से संबंधित स्वयं की रक्षा युक्तियों के प्रति सजग रहें। जब हम किसी समस्या से भय या संकट का अनुभव करते हैं तो सर्जनात्मक विचारों के बारे में सोचने की हमारी संभावना भी कम होती है।
- पूर्वोक्त के अतिरिक्त आत्मविश्वासी तथा सकारात्मक बनें। अपनी सर्जनात्मक क्षमता को दुर्बल न समझें। अपने सर्जन के आनंद का अनुभव करें।

विचार एवं भाषा

अब तक हम लोगों ने चिंतन के अर्थ एवं स्वरूप तथा किस प्रकार से चिंतन बिंबों एवं संप्रत्ययों पर आधारित है इसकी परिचर्चा की है। चिंतन की विभिन्न प्रकार की प्रक्रियाओं की परिचर्चा भी हम लोगों ने की है। संपूर्ण परिचर्चा में क्या आपने अनुभव किया कि जो हम सोचते हैं उसकी अभिव्यक्ति के लिए शब्द या भाषा आवश्यक है। यह खंड भाषा एवं विचार के मध्य संबंध की परीक्षा करता है : भाषा विचार को निर्धारित करती है और विचार भाषा को तथा भाषा एवं विचार के उद्गम भिन्न-भिन्न हैं। आइए इन तीनों दृष्टिकोणों की परीक्षा कुछ विस्तार से करें।

विचार के निर्धारक के रूप में भाषा

हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं में बंधुत्व संबंधों के लिए हम भिन्न-भिन्न तरह के अनेक शब्दों का उपयोग करते हैं। माता के भाई, पिता के बड़े भाई, पिता के छोटे भाई, माता की बहन के पति, पिता की बहन के पति, आदि के लिए हमारे पास

अलग-अलग शब्द हैं। एक अंग्रेज़ इन सभी बंधुत्व संबंधों के लिए मात्र एक शब्द 'अंकल' (अर्थात 'चाचा') का उपयोग करता है। अंग्रेज़ी भाषा में रंगों के लिए दर्जनों शब्द हैं जबकि कुछ जनजातीय भाषाओं में केवल दो से चार रंगों के नाम हैं। क्या ऐसी भिन्नताएँ हमारे सोचने या चिंतन करने के तरीके के लिए महत्त्व रखती हैं? क्या एक भारतीय बच्चे के लिए रिश्ते-नातों में विभेद करना अपने अंग्रेज़ी भाषी प्रतिपक्षी की तुलना में सरल है? क्या हमारी चिंतन प्रक्रिया इस बात पर निर्भर करती है कि हम उसका वर्णन भाषा में किस प्रकार करते हैं?

बेंजामिन ली व्होर्फ (Benjamin Lee Whorf) का मत यह था कि भाषा विचार की अंतर्वस्तु का निर्धारण करती है। यह दृष्टिकोण **भाषाई सापेक्षता प्राक्कल्पना** (linguistic relativity hypothesis) के नाम से जाना जाता है। इसके एक प्रभावशाली रूपांतर में इस प्राक्कल्पना की मान्यता है कि व्यक्ति संभवत: क्या और किस प्रकार से सोच सकता है इसका निर्धारण उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा एवं भाषाई वर्गों **भाषा नियतित्ववाद** (linguistic determinism) से होता है। प्रायोगिक साक्ष्य यह बताता है कि भाषाई वर्गों एवं संरचनाओं की उपलब्धता के आधार पर सभी भाषाओं में विचार की गुणवत्ता का एक ही स्तर पाया जाना संभव है। कुछ विचार एक भाषा की तुलना में दूसरी भाषा में सरल हो सकते हैं।

भाषा निर्धारक के रूप में विचार

ख्याति प्राप्त स्विस मनोवैज्ञानिक जीन पियाजे (Jean Piaget) का मानना है कि भाषा न केवल विचार का निर्धारण करती है, अपितु यह इसके पहले भी उत्पन्न होती है। पियाजे ने प्रमाणित किया कि बच्चे संसार का आंतरिक निरूपण चिंतन के माध्यम से ही करते हैं। उदाहरणार्थ, जब बच्चे किसी चीज़ को देखते हैं और बाद में इसकी नकल करते हैं (एक प्रक्रिया जिसे अनुकरण कहा जाता है) तो चिंतन की प्रक्रिया, जिसमें भाषा निहित नहीं होती है, निश्चित रूप से घटित होती है। बच्चे का दूसरे के व्यवहार का प्रेक्षण करने और उसी व्यवहार का अनुकरण करने में निस्संदेह चिंतन का उपयोग होता है, भाषा का नहीं। चिंतन के साधनों में भाषा मात्र एक साधन है। जैसे ही क्रियाएँ स्वयं के अंदर समाहित हो जाती हैं, भाषा बच्चे के अनेक प्रकार के प्रतीक चिंतन को प्रभावित कर सकती है, परंतु यह विचार के उत्पन्न होने के लिए आवश्यक नहीं होती है। पियाजे का मानना था कि यद्यपि भाषा बच्चों को सिखाई जा सकती है, किंतु शब्दों को समझने के लिए उसके मूल में निहित संप्रत्ययों के ज्ञान (अर्थात चिंतन) की आवश्यकता होती है। इसलिए भाषा को समझने के लिए विचार आधारभूत एवं आवश्यक तत्व है।

भाषा एवं विचार के भिन्न उद्‌गम

रूसी मनोवैज्ञानिक लेव वायगोत्सकी (Lev Vyogotsky) ने यह सिद्ध किया कि लगभग दो वर्ष की उम्र तक, जहाँ भाषा एवं विचार दोनों मिल जाते हैं, बच्चे में विचार एवं भाषा का विकास अलग-अलग होता है। दो वर्ष की आयु के पहले विचार पूर्व-वाचिक होते हैं और इनका अनुभव क्रियाओं में अधिक होता है (पियाजे की संवेदी प्रेरक अवस्था)। बच्चे का उद्‌गार विचार की तुलना में स्वचालित सहज प्रतिवर्त- जब कष्ट में हों तो रोने पर अधिक आधारित होता है। लगभग दो वर्ष की अवस्था में बच्चा अपने विचार को वाचिक रूप से अभिव्यक्त करता है और उसकी वाणी में तार्किकता झलकती है। इस अवस्था तक बच्चे ध्वनि रहित भाषा के उपयोग से विचार में हेर-फेर करने में सक्षम हो जाते हैं। उनका मानना था कि इस अवस्था के दौरान भाषा एवं विचार का विकास एक दूसरे पर निर्भर हो जाता है; संप्रत्ययात्मक चिंतन का विकास आंतरिक भाषा की गुणवत्ता पर निर्भर करता है एवं आंतरिक भाषा की गुणवत्ता संप्रत्ययात्मक चिंतन पर। जब चिंतन का माध्यम अवाचिक, जैसे- चाक्षुष या क्रिया से संबंधित होता है तो विचार का उपयोग बिना भाषा के किया जाता है। भाषा का उपयोग बिना चिंतन या विचार के तब किया जाता है जब भावनाओं को अभिव्यक्त करना हो अथवा हँसी-दिल्लगी करना हो, उदाहरणार्थ, 'नमस्कार, आप कैसे हैं?' 'बहुत बढ़िया, मैं ठीक-ठाक हूँ।' जब दोनों प्रक्रियाएँ एक दूसरे में परस्पर व्याप्त होती हैं तो वाचिक विचार एवं तार्किक भाषा को उत्पन्न करने में इनका उपयोग एक साथ किया जा सकता है।

भाषा एवं भाषा के उपयोग का विकास

भाषा का अर्थ एवं स्वरूप

पूर्व खंड में हम लोगों ने भाषा एवं चिंतन के संबंध की विवेचना की। आयु के विभिन्न स्तरों पर मनुष्य किस प्रकार भाषा को अर्जित करता है एवं कैसे उसका उपयोग करता है इसका विस्तृत विवरण हम लोग इस खंड में करेंगे। कुछ क्षण विचार करें: आप जो कहना चाहते हैं उसकी अभिव्यक्ति के

लिए यदि आपके पास भाषा न हो तो क्या होगा? भाषा के अभाव में अपने विचारों एवं अनुभूतियों को संप्रेषित करने में आप सक्षम नहीं होंगे और न ही आपके पास यह जानने का अवसर होगा कि दूसरे क्या सोचते या अनुभव करते हैं। एक बच्चे के रूप में आपने पहली बार जब 'माँ.. माँ... माँ' कहना प्रारंभ किया तो न केवल आपको इस क्रिया को अनवरत दोहराने के लिए अत्यधिक बढ़ावा दिया, बल्कि यह आपके माता-पिता तथा अन्य पालनकर्ताओं के लिए भी हर्ष एवं आनंद का एक अद्‍भुत क्षण था। धीरे-धीरे आपने 'माँ' और 'पापा' कहना सीख लिया और अपनी आवश्यकताओं, अनुभूतियों तथा विचारों को संप्रेषित करने के लिए कुछ समय बाद आपने दो या अधिक शब्दों को जोड़ा। परिस्थितियों के लिए उपयुक्त शब्दों को आपने सीखा और इन शब्दों से एक वाक्य बनाने के नियमों को भी आपने सीखा। आरंभ में आपने घर में प्रयुक्त होने वाली भाषा (प्राय: मातृभाषा) में संप्रेषण करना सीखा, स्कूल गए और शिक्षण की औपचारिक भाषा (अनेक स्थितियों में यह भाषा मातृभाषा से भिन्न होती है) को सीखा और ऊपर की कक्षाओं में प्रोन्नत किए गए तथा अन्य भाषाओं को सीखा। यदि आप पीछे मुड़ कर देखें तो आप यह अनुभव करेंगे कि रोना और 'माँ..माँ... माँ' कहने से लेकर एक नहीं बल्कि अनेक भाषाओं में दक्षता अर्जित करने तक की आपकी यात्रा मंत्र-मुग्ध करने वाली है। इस खंड में हम लोग भाषा अर्जन की प्रमुख विशेषताओं की परिचर्चा करेंगे।

आप भाषा का उपयोग जीवनपर्यंत करते रहे हैं। अब आप परिशुद्धता से परिभाषित करने का प्रयास कीजिए कि जिसका आप उपयोग करते रहे हैं वह क्या है। *भाषा कुछ नियमों के द्वारा संगठित प्रतीकों की एक व्यवस्था है जिसका उपयोग हम एक दूसरे से संप्रेषण करने में करते हैं।* आप देखेंगे कि भाषा की तीन मूलभूत विशेषताएँ हैं: (क) प्रतीकों की उपस्थिति, (ख) इन प्रतीकों को संगठित करने के लिए नियमों का एक समूह, और (ग) संप्रेषण। यहाँ हम भाषा की इन तीन विशेषताओं की परिचर्चा करेंगे।

भाषा की पहली विशेषता है कि इसमें प्रतीकों का उपयोग होता है। *प्रतीक* किसी अन्य वस्तु या व्यक्ति को निरूपित करते हैं, उदाहरणार्थ, वह स्थान जहाँ आप रहते हैं उसे 'घर' कहा जाता है, वह स्थान जहाँ आप पढ़ते हैं उसे 'विद्यालय' कहा जाता है, जो चीज़ आप खाते हैं उसे 'भोजन' कहा जाता है, और असंख्य अन्य शब्द हैं जो अपने आप में कोई अर्थ नहीं रखते। इन शब्दों को जब कुछ वस्तुओं/घटनाओं से जोड़ा जाता है तब वे अर्थ ग्रहण करते हैं तथा हम उन वस्तुओं/घटनाओं आदि को विशिष्ट शब्दों (प्रतीकों) से पहचानने लगते हैं। चिंतन करते समय हम प्रतीकों का उपयोग करते हैं।

भाषा की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें कुछ *नियम* होते हैं। दो या अधिक शब्दों को जोड़ते समय हम प्राय: शब्दों के प्रस्तुतीकरण के एक निश्चित एवं स्वीकृत क्रम का अनुसरण करते हैं। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति संभवत: यह कहेगा 'मैं विद्यालय जा रहा हूँ' न कि 'विद्यालय रहा जा मैं हूँ'।

भाषा की तीसरी विशेषता यह है कि इसका उपयोग *अपने विचारों, योजनाओं, अभिप्रायों तथा अनुभूतियों को दूसरे तक संप्रेषित करने के लिए* किया जाता है। अनेक अवसरों पर हम अपने शरीर के विभिन्न अंगों के माध्यम से संप्रेषण करते हैं, जिसे हाव-भाव या संस्थिति कहते हैं। इस प्रकार के संप्रेषण को अवाचिक संप्रेषण कहते हैं। कुछ लोग जो मौखिक भाषा का उपयोग नहीं कर सकते हैं, जैसे सुनने या बोलने संबंधी गंभीर अशक्तता वाले व्यक्ति, वे संकेतों के माध्यम से संप्रेषण करते हैं। संकेत भाषा भी भाषा का एक रूप है।

भाषा का विकास

भाषा एक जटिल व्यवस्था है जो केवल मनुष्यों में पाई जाती है। मनोवैज्ञानिकों ने संकेत भाषा पढ़ाने का प्रयास किया है; जैसे- चिम्पैंज़ी, डॉल्फिन, तोता आदि द्वारा प्रतीकों का उपयोग करना। परंतु यह देखा गया है कि वह संप्रेषण व्यवस्था जिसे अन्य पशु सीख सकते हैं, की तुलना में मानवीय भाषा कहीं अधिक जटिल, सर्जनात्मक तथा सहज है। संपूर्ण दुनिया के बच्चे जिस प्रकार उन भाषा या भाषाओं को सीखते दिखाई देते हैं, जिनके प्रभाव में वे रहते हैं, उनमें पर्याप्त *निरंतरता* भी पाई जाती है। जब आप एक-एक बच्चे की तुलना करते हैं, आप पाते हैं कि उसमें भाषा विकास की दर तथा उसके तरीके में अत्यधिक अंतर होता है। परंतु जब आप संपूर्ण विश्व के बच्चों के भाषा अर्जन के एक सामान्य दृष्टिकोण को लेते हैं तो भाषा के लगभग न के बराबर उपयोग से लेकर भाषा के दक्ष उपयोगकर्ता बनने तक बच्चे जिस प्रकार अग्रसर होते हैं उसमें आप कुछ *पूर्वकथनीय प्रारूप* पाते हैं। भाषा नीचे वर्णित कुछ अवस्थाओं से होते हुए विकसित होती है।

नवजात शिशु और छोटे बच्चे विविध प्रकार की ध्वनियाँ निकालते हैं, जो धीरे-धीरे परिमार्जित होकर शब्द की तरह हो जाती हैं। क्रंदन या रोना शिशुओं द्वारा उत्पन्न प्रथम ध्वनि है। आरंभ में क्रंदन अविभेदित रहता है (अर्थात *रोने* के तरीकों में अंतर नहीं होता है) और विभिन्न परिस्थितियों में एक जैसा ही

होता है। विभिन्न अवस्थाओं; जैसे- भूख, पीड़ा, निद्रालुता आदि को इंगित करने के लिए धीरे-धीरे क्रंदन के रूप (या तरीके) में स्वर के उतार-चढ़ाव एवं तीव्रता के आधार पर परिवर्तन होता है। प्राय: प्रसन्नता को अभिव्यक्त करने के लिए ये विभेदित क्रंदन ध्वनियाँ क्रमश: अधिक अर्थपूर्ण *किलकारने की ध्वनियाँ* (जैसे- 'आऽऽ' 'ऊऽऽ' आदि) बन जाती हैं।

लगभग छ: माह की आयु होने पर बच्चे *बलबलाने* की अवस्था में पहुँच जाते हैं। बलबलाने में विभिन्न प्रकार के स्वरों एवं व्यंजनों से संबंधित ध्वनियाँ लंबे समय तक बार-बार उत्पन्न की जाती हैं (जैसे- दा-, आ-, बा-)। लगभग नौ माह की उम्र तक ये ध्वनियाँ कुछ ध्वनि समूह की शृंखला के रूप में विस्तृत हो जाती हैं जैसे- दादादादादादा और फिर बार-बार दुहराने का प्रतिमान ग्रहण कर लेती हैं जिसे *शब्दानुकरण* कहा जाता है। जहाँ प्रारंभिक बलबलाहट आकस्मिक या यादृच्छिक होती है वहीं बाद की अवस्था वाली बलबलाहट वयस्कों की बोली की नकल या अनुकारी लगती है। जब बच्चे छ: माह की अवस्था के हो जाते हैं तो वे कुछ शब्दों की थोड़ी-बहुत समझ प्रदर्शित करते हैं। पहले जन्म-दिन तक (एक बच्चे से दूसरे बच्चे में वास्तविक आयु बदलती है) बच्चे *एक-शब्द की अवस्था* में पहुँच जाते हैं। प्रथम शब्द प्राय: एक अक्षर का होता है, उदाहरण के लिए माँ या दा। क्रमश: वे एक या अधिक शब्दों के उपयोग की ओर बढ़ते हैं जिन्हें जोड़ कर एक पूर्ण वाक्य या वाक्यांश बनाया जाता है। इसलिए इन्हें *वाक्यात्मक शब्द* कहा जाता है। जब वे 18-20 माह की आयु के होते हैं तो बच्चे *दो-शब्दों की अवस्था* में प्रवेश करते हैं और दो शब्दों का उपयोग एक साथ प्रारंभ कर देते हैं। दो शब्दों की अवस्था में *तार वाली भाषा* की विशेषता पाई जाती है। तार की तरह (प्रवेश मिला, रुपये भेजें) इसमें अधिकांशत: संज्ञाएँ एवं क्रियाएँ होती हैं। अपने तीसरे जन्म दिन के निकट, अर्थात ढाई साल के बाद, बच्चे का भाषा विकास सुनी जाने वाली भाषा के नियमों पर केंद्रित हो जाता है।

भाषा का अर्जन किस प्रकार होता है? आप सोचते होंगे: 'हम बोलना कैसे सीखते हैं?' भाषा के संदर्भ में भी मनोविज्ञान के अन्य विषयों की तरह यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या व्यवहार का विकास वंशानुगत विशेषताओं के कारण होता है (प्रकृति) अथवा अधिगम के प्रभाव के कारण (परिपोषण)। अधिकांश मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि भाषा अर्जन में प्रकृति एवं परिपोषण दोनों ही महत्वपूर्ण हैं।

व्यवहारवादी बी.एफ. स्किनर (B.F. Skinner) का मानना था कि हम भाषा को उसी प्रकार से सीखते हैं जैसे कि पशु कुंजी पर चोंच मारना या छड़ दबाना सीखते हैं (अध्याय-6 अधिगम में देखें)। व्यवहारवादियों के अनुसार भाषा का विकास अधिगम के सिद्धांतों; जैसे- साहचर्य (बोतल शब्द के साथ बोतल को देखना), अनुकरण (बोतल शब्द का वयस्कों द्वारा उपयोग) तथा पुनर्बलन (जब बच्चा कुछ उचित बोलता है तो मुसकुराना तथा उसको गले लगा लेना) पर आधारित है। इसका भी साक्ष्य है कि बच्चे माता-पिता या पालनकर्ता की भाषा के लिए समुचित ध्वनियाँ उत्पन्न करते हैं तथा ऐसा किए जाने के लिए पुनर्बलित किए जाते हैं। रूपायतन का सिद्धांत क्रमिक रूप से वांछित अनुक्रिया के समीप ले जाता है जिससे कि बच्चा अंततः उतना ही अच्छा बोलता है जितना की एक वयस्क। उच्चारण एवं भाषा-शैली में क्षेत्रीय भिन्नता यह प्रदर्शित करती है कि किस प्रकार भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रतिमान पुनर्बलित किए जाते हैं।

बॉक्स 8.3 द्विभाषिकता एवं बहुभाषिता

द्विभाषिकता किन्हीं दो भाषाओं में वार्तालाप करने में दक्षता अर्जित करना है। दो से अधिक भाषाओं को सीखना बहुभाषिता है। मातृभाषा को व्यक्ति की जन्मजात भाषा, व्यक्ति द्वारा बचपन से बोले जाने वाली भाषा, सामान्यतया घर में प्रयुक्त होने वाली भाषा, माँ के द्वारा बोले जाने वाली भाषा, आदि भिन्न-भिन्न रूपों में परिभाषित किया गया है। यद्यपि मातृभाषा से तात्पर्य उस भाषा से है जिससे व्यक्ति सांवेगिक स्तर पर अपना तादात्म्य स्थापित करता है। लोगों के लिए एक से अधिक मातृभाषा का होना संभव है। भारतीय सामाजिक संदर्भ की यह विशेषता है कि यहाँ जनसामान्य में बहुभाषिता पाई जाती है जो द्विभाषिकता/बहुभाषिता को व्यक्ति एवं समाज के स्तर पर एक महत्वपूर्ण विशेषता बना देती है। अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन की गतिविधियों में बहुसंख्यक भारतीय संप्रेषण के लिए एक से अधिक भाषाओं का प्रयोग करते हैं। इसलिए बहुभाषिता यहाँ एक जीवन शैली है। अध्ययनों से यह पता चलता है कि द्विभाषिकता/बहुभाषिता से बच्चों के संज्ञानात्मक, भाषिक तथा शैक्षिक दक्षता में वृद्धि होती है।

भाषाविद् नोआम चॉमस्की (Noam Chomsky) ने भाषा विकास की जन्मजात प्रतिज्ञप्ति का प्रतिपादन किया है। इनके अनुसार *बिना पढ़ाए गए बच्चे जिस दर से शब्दों तथा व्याकरण को अर्जित करते हैं,* उसकी व्याख्या मात्र अधिगम के सिद्धांतों के आधार पर नहीं की जा सकती है। बच्चे *ऐसे वाक्य भी बनाते हैं* जिन्हें उन्होंने कभी नहीं सुना है। अत: वे नकल नहीं कर सकते। संपूर्ण दुनिया के बच्चों में भाषा विकास के लिए एक विशेष अवधि, *क्रांतिक अवधि* होती है- वह अवधि जिसमें यदि सफल अधिगम होता है तो वह होगा ही। पूरे संसार के बच्चे भाषा विकास की एक जैसी संपूर्ण अवस्थाओं से गुजरते हैं। चॉमस्की का मानना है कि भाषा विकास शारीरिक परिपक्वता की तरह है जो उपयुक्त देख-भाल करने पर 'बच्चों में स्वत: होता है'। बच्चे 'सर्वभाषा व्याकरण' के साथ जन्म लेते हैं। वे जिस किसी भाषा को सुनते हैं उसके व्याकरण को सरलता से सीख लेते हैं।

स्किनर का अधिगम पर बल देना यह स्पष्ट करता है कि शिशु सुनी हुई भाषा को अर्जित क्यों कर लेते हैं और वे अपने शब्दकोश में नए शब्दों को कैसे जोड़ते हैं। चॉमस्की व्याकरण सीखने की अंतर्निहित तत्परता पर बल देते हैं। इससे यह समझने में सहायता मिलती है कि बच्चे बिना पढ़ाए इतनी सरलता से भाषा क्यों अर्जित कर लेते हैं।

भाषा का उपयोग

जैसा कि हम लोग पहले परिचर्चा कर चुके हैं, भाषा के उपयोग में संप्रेषण के सामाजिक रूप से उपयुक्त तरीकों की जानकारी रखना सम्मिलित है। एक भाषा के शब्दकोश तथा वाक्य विन्यास का ज्ञान विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में संप्रेषण के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भाषा के समुचित उपयोग को सुनिश्चित नहीं करता है। जब हम भाषा का उपयोग करते हैं तो हमारे विभिन्न प्रकार के व्यावहारिक आशय होते हैं; जैसे- अनुरोध करना, पूछना, धन्यवाद ज्ञापित करना, माँग करना, आदि। इन सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भाषा का उपयोग व्याकरण की दृष्टि से सही तथा अर्थपूर्ण होने के साथ-साथ व्यावहारिक रूप से सही तथा संदर्भानुसार उपयुक्त होना चाहिए। बच्चों को विनम्रता प्रदर्शित करने या अनुरोध करने के लिए उपयुक्त अभिव्यक्ति का चयन करने में प्राय: कठिनाई होती है और उनकी भाषा से विनम्रता या अनुरोध के स्थान पर माँग या निर्देश का संप्रेषण होता है। जब बच्चे बात-चीत में लगे रहते हैं तो उन्हें वयस्कों की तरह एक के बाद एक करके बोलने तथा सुनने में भी कठिनाई होती है।

प्रमुख पद

द्विभाषिकता, विचारावेश, संप्रत्यय, अभिसारी चिंतन, सर्जनात्मकता, निर्णयन, निगमनात्मक तर्कना, अपसारी चिंतन, प्रकार्यात्मक स्थिरता, प्रदीप्ति, प्रतिमा, उद्भवन, आगमनात्मक तर्कना, निर्णय, भाषा, मानस चित्रण, मानसिक विन्यास, बहुभाषिता, समस्या समाधान, तर्कना, दूरस्थ साहचर्य, वाक्यविन्यास, चिंतन

सारांश

- *चिंतन एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से हम सूचनाओं (अर्जित अथवा संचित) का प्रहस्तन करते हैं। चिंतन एक आंतरिक प्रक्रिया है जिसका अनुमान व्यवहार से किया जा सकता है। चिंतन में मानस चित्रण निहित है जो या तो मानसिक प्रतिमा अथवा संप्रत्यय हो सकता है।*
- *समस्या समाधान, तर्कना, निर्णयन, निर्णय करना, तथा सर्जनात्मक चिंतन जटिल विचार प्रक्रियाएँ हैं।*
- *समस्या समाधान विशिष्ट समस्याओं के समाधान की ओर निर्देशित चिंतन है।*
- *मानसिक विन्यास, कार्यात्मक स्थिरता, अभिप्रेरण का अभाव, तथा दृढ़ता प्रभावशाली समस्या समाधान के लिए कुछ बाधाएँ हैं।*
- *तर्कना भी समस्या समाधान की तरह लक्ष्य निर्देशित होती है, इसमें निष्कर्ष निकालना होता है और यह निगमनात्मक अथवा आगमनात्मक हो सकती है।*
- *निर्णय लेने में हम निष्कर्ष निकालते हैं, मत बनाते हैं, वस्तुओं या घटनाओं के संबंध में निर्णय लेते हैं।*
- *निर्णयन में व्यक्ति को उपलब्ध विकल्पों में से चयन करना होता है।*
- *निर्णय लेना तथा निर्णयन अंत:संबंधित प्रक्रियाएँ हैं।*

- *सर्जनात्मक चिंतन में कुछ नयी एवं मौलिक चीज़ों को उत्पन्न करना निहित है- चाहे वह एक विचार हो, वस्तु हो, अथवा किसी समस्या का समाधान हो।*
- *सर्जनात्मक चिंतन का विकास करने के लिए सर्जनात्मक अभिव्यक्ति की बाधाओं को दूर करने तथा सर्जनात्मक चिंतन कौशलों एवं योग्यताओं को बढ़ाने वाले उपायों के उपयोग करने की आवश्यकता होती है।*
- *भाषा स्पष्ट रूप से मानवीय विशेषता है। इसमें प्रतीक होते हैं जो मनुष्यों के बीच आशय, अनुभूतियों, अभिप्रेरकों, तथा इच्छाओं को संप्रेषित करने के लिए कुछ नियमों के आधार पर संगठित होते हैं।*
- *भाषा में प्रमुख विकास प्रथम दो से तीन साल की उम्र के दौरान होता है।*
- *भाषा एवं विचार जटिल रूप से संबंधित हैं।*

समीक्षात्मक प्रश्न

1. चिंतन के स्वरूप की व्याख्या कीजिए।
2. संप्रत्यय क्या है? चिंतन प्रक्रिया में संप्रत्यय की भूमिका की व्याख्या कीजिए।
3. समस्या समाधान की बाधाओं की पहचान कीजिए।
4. समस्या समाधान में तर्कना किस प्रकार सहायक होती है?
5. क्या निर्णय लेना एवं निर्णयन अंत:संबंधित प्रक्रियाएँ हैं? व्याख्या कीजिए।
6. सर्जनात्मक चिंतन प्रक्रिया में अपसारी चिंतन क्यों महत्वपूर्ण है?
7. सर्जनात्मक चिंतन में विभिन्न प्रकार के अवरोध क्या हैं?
8. सर्जनात्मक चिंतन को कैसे बढ़ाया जा सकता है?
9. क्या चिंतन भाषा के बिना होता है? परिचर्चा कीजिए।
10. मनुष्यों में भाषा का अर्जन किस प्रकार होता है?

परियोजना विचार

1. एक वर्ष, दो वर्ष, तथा तीन वर्ष के बच्चों का एक सप्ताह तक प्रेक्षण कीजिए। उनकी भाषा को अंकित कीजिए तथा देखिए कि बच्चा किस प्रकार शब्दों को सीख रहा है और इस अवधि में बच्चे ने कितने शब्दों को सीखा।
2. समाचार शीर्षकों, विज्ञापनों, कार्टूनों आदि का एक कोलॉज बनाइए तथा जिन संदर्भों में इनका उपयोग किया गया था उससे हट कर एक विशिष्ट कथ्य या संदर्भ को प्रदर्शित करने के लिए इन्हें अपने तरीके से व्यवस्थित कीजिए। इसका विवरण प्रस्तुत करने के लिए एक मौलिक संदेश या नारा लिखिए। मौलिक विचारों के बारे में चिंतन करने में आप जिन चरणों से गुजरते हैं तथा जिन बाधाओं का सामना करते हैं उनका मनन करें।

क्रियाकलाप 8.3 की समस्याओं का उत्तर

समस्या 1 : ANAGRAM, PROBLEM, SOLVE, INSIGHT, SOLUTION

समस्या 2 :

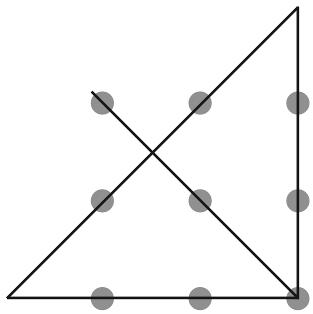

समस्या 3 :

इस समस्या का समाधान यह है कि ब (127 मि.ली.) को पूरा भरें, और इसके बाद अ (21 मि.ली.) को पूरी तरह भरने के लिए अ में पानी को उड़ेलें। अब ब में (106 मि.ली.) बच जाता है (127 मि.ली.-21 मि.ली.)। इसके बाद स (3 मि.ली.) को भरने के लिए ब से पर्याप्त जल उड़ेलें, और फिर स से पूरे जल को उड़ेलते हुए बोतल स को खाली कर दें। अब ब में 103 मि.ली. पानी है तथा स खाली है। इसके बाद फिर स को भरने के लिए ब से जल उड़ेलें। अब आपके पास ब में 100 मिलिलीटर (मि.ली.) जल बचा होगा।

प्रथम 5 समस्याओं में ब - अ - 2स अनुक्रम का उपयोग करके वांछित मात्रा प्राप्त की जा सकती है। छठी और सातवीं समस्या फिर भी अति महत्वपूर्ण है। छठी समस्या में वांछित मात्रा 20 मिलिलीटर (मि.ली.) है और तीनों बोतलों की क्षमता इस प्रकार है: अ मे 23 मि.ली. जल भरा जा सकता है, ब में 49 मि.ली. जल भरा जा सकता है, तथा स में 3 मि.ली. जल भरा जा सकता है। प्रेक्षण कीजिए कि प्रतिभागी किस प्रकार से समस्या का समाधान कर रहा है। बहुत सीमा तक संभव है कि वह अ से स में जल उड़ेलने की आसान और त्वरित विधि के बारे में चिंतन या उसके उपयोग का प्रयास किए बिना वह पहले से उपयोग में लाए गए अनुक्रम [49 – 23 – (2 × 3)] का अनुसरण करते हुए समस्या का सफल समाधान कर लेगा। यदि आपका मित्र इस प्रक्रिया का अनुसरण कर रहा है तो आप यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि 5 समस्याओं का समाधान करने से उसने अपने मन में एक मानसिक विन्यास विकसित कर लिया है। सातवीं समस्या के समाधान में अ से स में जल उड़ेलने की आवश्यकता है। परंतु मानसिक विन्यास इतना शक्तिशाली है कि बहुत से लोग पहले से उपयोग में लाई गई युक्ति के अतिरिक्त किसी अन्य युक्ति के बारे में सोचने में विफल होंगे।

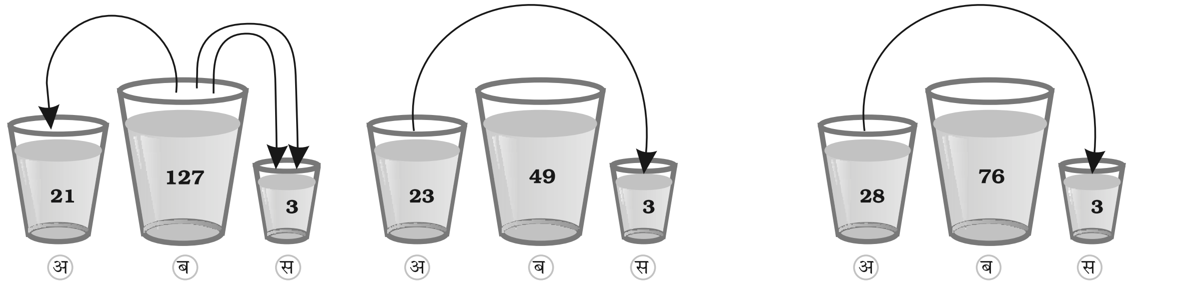

मानक विधि
समस्या 1-5

सरल विधि
समस्या 6

ऐसी दशा जहाँ मात्र सरल विधि ही कार्य करती है।
समस्या 7

अध्याय 9

अभिप्रेरणा एवं संवेग

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप

- मानव अभिप्रेरणा के स्वरूप को समझ सकेंगे,
- कुछ महत्वपूर्ण अभिप्रेरकों के स्वरूप के वर्णन को जान सकेंगे,
- संवेगात्मक अभिव्यक्ति के स्वरूप के वर्णन को जान सकेंगे,
- संवेग एवं संस्कृति के बीच के संबंध को समझ सकेंगे, तथा
- जानेंगे कि आप अपने संवेगों का प्रबंधन कैसे कर सकते हैं।

विषयवस्तु

परिचय
अभिप्रेरणा का स्वरूप
अभिप्रेरकों के प्रकार
जैविक अभिप्रेरक; मनोसामाजिक अभिप्रेरक
मैस्लो का आवश्यकता पदानुक्रम
स्व-अभिप्रेरणा (बॉक्स 9.1)
संवेगों का स्वरूप
संवेगों के शरीरक्रियात्मक आधार
संवेगों की शरीरक्रिया (बॉक्स 9.2)
असत्य खोज (बॉक्स 9.3)
संवेगों के संज्ञानात्मक आधार
संवेगों के सांस्कृतिक आधार
संवेगों की अभिव्यक्ति
संस्कृति एवं संवेगात्मक अभिव्यक्ति; संस्कृति एवं संवेगों का नामकरण
निषेधात्मक संवेगों का प्रबंधन
अभिघातज उत्तर दबाव विकार (बॉक्स 9.4)
परीक्षा-दुश्चिंता का प्रबंधन (बॉक्स 9.5)
विध्यात्मक संवेगों में वृद्धि
सांवेगिक बुद्धि (बॉक्स 9.6)

प्रमुख पद
सारांश
समीक्षात्मक प्रश्न
परियोजना विचार

परिचय

सुनीता एक बहुत कम जाने-माने शहर की लड़की है, इंजीनियरिंग की विभिन्न प्रवेश परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के लिए वह प्रतिदिन लगभग 10-12 घंटे तक कठिन परिश्रम करती है। शारीरिक रूप से चुनौतीग्रस्त हेमंत एक पर्वतारोहण अभियान में भाग लेना चाहता है तथा एक पर्वतारोही संस्थान में गहन प्रशिक्षण ले रहा है। अमन अपनी छात्रवृत्ति में से कुछ रुपये बचा रहा है जिससे वह अपनी माँ के लिए एक उपहार खरीद सके। यह केवल कुछ ऐसे उदाहरण हैं जो प्रदर्शित करते हैं कि मानव व्यवहार में अभिप्रेरणा की क्या भूमिका है। उपरोक्त में से प्रत्येक व्यवहार का कारण कोई अभिप्रेरक है। व्यवहार लक्ष्य-निर्धारित होता है। लक्ष्य-निर्धारित व्यवहार तब तक चलता रहता है जब तक कि लक्ष्य प्राप्त न हो जाए। अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए लोग विभिन्न कार्यों की योजना बनाते हैं और उनका क्रियान्वयन करते हैं। यदि सुनीता कड़ी मेहनत के बावजूद भी सफल नहीं होती है तो उसे कैसा लगेगा, अथवा यदि अमन के छात्रवृत्ति धन की चोरी हो जाए तो उसे कैसा लगेगा? संभव है कि सुनीता दुखी हो जाए और अमन क्रुद्ध हो जाए। यह अध्याय आपको अभिप्रेरणा एवं संवेग के मूल संप्रत्ययों तथा इन दोनों क्षेत्रों से संबंधित विकास को समझने में सहायता करेगा। आप कुंठा एवं द्वंद्व के संप्रत्यय को भी जानेंगे। मूल संवेगों, उनके जैविक आधारों, प्रकट अभिव्यक्ति, सांस्कृतिक प्रभावों, उनका अभिप्रेरणा के साथ संबंध और संवेगों के बेहतर प्रबंधन करने की प्रविधियों का भी यहाँ वर्णन किया जाएगा।

अभिप्रेरणा का स्वरूप

अभिप्रेरणा का संप्रत्यय इस बात पर फोकस करता है कि व्यवहार में 'गति' कैसे आती है। अंग्रेज़ी भाषा में 'Motivation' लैटिन शब्द 'movere' से बना है, जिसका संदर्भ क्रियाकलाप की गति से है। हमारे दैनिक जीवन में अधिकांश व्यवहारों की व्याख्या भी अभिप्रेरकों के आधार पर की जाती है। आप विद्यालय या महाविद्यालय क्यों जाते हैं? इस व्यवहार के कई कारण हो सकते हैं, जैसे कि आप ज्ञान अर्जित करना चाहते हैं या मित्र बनाना चाहते हैं, या फिर, आपको एक अच्छी नौकरी पाने के लिए एक डिप्लोमा या डिग्री की आवश्यकता है, या आप अपने माता-पिता को प्रसन्न करना चाहते हैं इत्यादि। इन कारणों की कोई संयुक्ति या अन्य कारण भी आपके उच्च शिक्षा लेने की व्याख्या कर सकते हैं। अभिप्रेरक व्यवहारों का पूर्वानुमान करने में भी सहायता करते हैं। यदि किसी व्यक्ति में तीव्र उपलब्धि अभिप्रेरक हो तो वह विद्यालय में, खेल में, व्यापार में, संगीत में, तथा अनेक अन्य परिस्थितियों में कड़ा परिश्रम करेगा। अत: अभिप्रेरक वे सामान्य स्थितियाँ हैं जिनके आधार पर हम भिन्न परिस्थितियों में व्यवहार के बारे में पूर्वानुमान लगा सकते हैं। दूसरे शब्दों में, अभिप्रेरणा व्यवहार के निर्धारकों में से एक है। मूल प्रवृत्तियाँ, अंतर्नोद, आवश्यकताएँ, लक्ष्य तथा उत्प्रेरक, अभिप्रेरणा के विस्तृत दायरे में आते हैं।

अभिप्रेरणात्मक चक्र

मनोवैज्ञानिक अब आवश्यकता के संप्रत्यय का उपयोग व्यवहार की अभिप्रेरणात्मक विशिष्टताओं का वर्णन करने के लिए करते हैं। *किसी आवश्यक वस्तु का अभाव या न्यूनता ही*

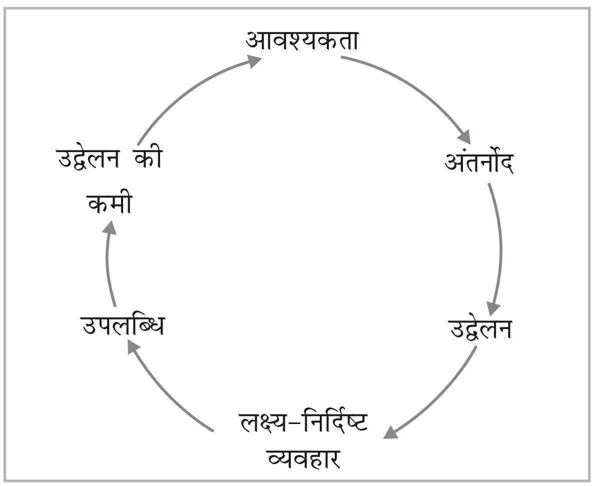

चित्र 9.1 : अभिप्रेरणात्मक चक्र

आवश्यकता है। आवश्यकता अंतर्नोद को जन्म देती है। किसी आवश्यकता के कारण जो तनाव या उद्वेलन उत्पन्न होता है, वही अंतर्नोद है। इसके कारण यादृच्छिक क्रियाकलाप को ऊर्जा मिलती है। जब किसी एक यादृच्छिक क्रियाकलाप के द्वारा लक्ष्य प्राप्त हो जाता है तो अंतर्नोद समाप्त हो जाता है तथा प्राणी भी क्रियाशील नहीं रहता है। प्राणी पुन: संतुलित दशा में लौट जाता है। इस प्रकार अभिप्रेरणात्मक घटनाओं के चक्र को चित्र 9.1 के द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

क्या अभिप्रेरक विभिन्न प्रकार के होते हैं? क्या विभिन्न अभिप्रेरकों को जैविक आधार पर समझाया जा सकता है? यदि आपके अभिप्रेरक की संतुष्टि न हो पाए तो क्या होता है? इस अध्याय के आगे के खंडों में हम उपरोक्त एवं अन्य प्रश्नों पर चर्चा करेंगे।

अभिप्रेरकों के प्रकार

मूल रूप से, अभिप्रेरक दो प्रकार के होते हैं- जैविक एवं मनोसामाजिक। जैविक अभिप्रेरकों को शरीरक्रियात्मक अभिप्रेरक भी कहते हैं, क्योंकि उनका संचालन मुख्यत: शरीर के शरीरक्रियात्मक तंत्र पर निर्भर करता है। इसके विपरीत, मनोसामाजिक अभिप्रेरक प्राथमिक रूप से विभिन्न पर्यावरणी कारकों के साथ व्यक्ति की अंत:क्रिया द्वारा सीखे गए होते हैं।

फिर भी, दोनों प्रकार के अभिप्रेरक परस्पर एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं। अर्थात कुछ परिस्थितियों में जैविक कारक कुछ अभिप्रेरकों को उत्पन्न करते हैं, जबकि कुछ अन्य परिस्थितियों में मनोसामाजिक कारक अभिप्रेरक को उत्पन्न कर सकते हैं। अत: आप यह याद रखें कि कोई भी अभिप्रेरक अपने आप में पूर्णत: जैविक अथवा मनोसामाजिक नहीं होता, बल्कि वे व्यक्ति में विभिन्न मिश्रणों में उद्दीप्त होते हैं।

जैविक अभिप्रेरक

अभिप्रेरणा को समझने के लिए जैविक अथवा शरीरक्रियात्मक उपागम सबसे पहले अपनाए गए। बाद में जो सिद्धांत विकसित हुए, उनमें भी जैविक उपागम के प्रभाव के शेष चिह्न दिखाई पड़ते हैं। अनुकूली क्रिया के संप्रत्यय पर दृढ़ रहने वाले उपागम भी मानते हैं कि प्राणी की आवश्यकताएँ (आंतरिक शरीरक्रियात्मक असंतुलन) अंतर्नोद उत्पन्न करती हैं तथा जो ऐसे व्यवहारों को उद्दीप्त करती हैं जिनके कारण वे कुछ विशेष लक्ष्यों को प्राप्त करने की क्रिया करते हैं, जिससे अंतर्नोद घट जाता है। अभिप्रेरणा की सबसे पुरानी व्याख्या मूल प्रवृत्ति के संप्रत्यय पर आधारित थी। मूल प्रवृत्ति उन सहज व्यवहारों के प्रतिरूप को सूचित करती है, जिनका निर्धारण जैविक कारकों से होता है न कि वे सीखे हुए होते हैं। कुछ सामान्य मानवीय मूल प्रवृत्तियाँ जिज्ञासा, पलायन, प्रतिकर्षण, प्रजनन, पैतृक देखभाल इत्यादि हैं। मूल प्रवृत्तियाँ ऐसी अंतर्जात प्रवृत्तियाँ हैं जो एक प्रजाति के सभी सदस्यों में पाई जाती हैं तथा जो व्यवहार को पूर्वकथनीय तरीकों से निर्दिष्ट करती हैं। मूल प्रवृत्ति बहुधा *कुछ कार्य करने के अंत:प्रेरण* को प्रदर्शित करती है। मूल प्रवृत्ति का *एक बल या आवेग* होता है जो प्राणी को कुछ ऐसी क्रिया करने के लिए चालित करता है जो उस बल या आवेग को कम कर सके। इस उपागम द्वारा जिन मूल

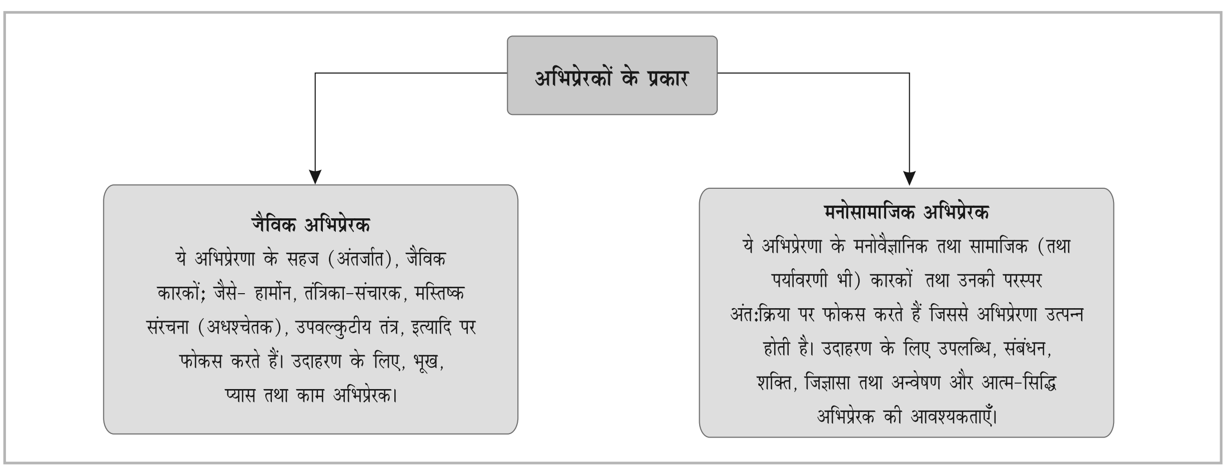

चित्र 9.2 : अभिप्रेरकों के प्रकार

जैविक आवश्यकताओं की व्याख्या की जाती है, वे हैं – भूख, प्यास तथा काम–वृत्ति जो कि व्यक्ति के जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक हैं।

भूख

जब किसी को भूख लगी हो तो भोजन की आवश्यकता सर्वोपरि हो जाती है। यह व्यक्ति को भोजन प्राप्त करने और उसे खाने के लिए अभिप्रेरित करती है। लेकिन आपको भूख की अनुभूति क्यों होती है? अनेक अध्ययन सूचित करते हैं कि शरीर के भीतर तथा बाहर घटित होने वाली अनेक घटनाएँ भूख को उद्दीप्त या निरुद्ध कर सकती हैं। भूख के उद्दीपकों में अन्तर्निहित हैं – अमाशय में संकुचन, जो यह इंगित करता है कि अमाशय रिक्त है; रक्त में ग्लूकोज़ की निम्न सांद्रता; प्रोटीन का निम्न स्तर तथा शरीर में वसा के भंडारण की मात्रा। शरीर में ईंधन की कमी के प्रति यकृत भी प्रतिक्रिया करता है तथा वह मस्तिष्क को तंत्रिका आवेग प्रेषित करता है। भोजन की सुगंध, स्वाद या दर्शन भी खाने की इच्छा उत्पन्न करते हैं। ज्ञातव्य है कि इनमें से कोई भी एक अपने आप में यह भाव नहीं जगाते कि आप भूखे हैं। ये सब बाह्य कारकों (जैसे– स्वाद, रंग, दूसरों को भोजन करते हुए देखना तथा भोजन की सुगंध इत्यादि) के साथ संयुक्त होकर, आपको यह समझने में सहायता करते हैं कि आप भूखे हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि हमारी भूख अधश्चेतक में स्थित पोषण–तृप्ति की जटिल व्यवस्था, यकृत और शरीर के अन्य अंगों तथा परिवेश में स्थित बाह्य संकेतों द्वारा नियंत्रित होती है।

कुछ शरीरक्रिया वैज्ञानिकों का मत है कि यकृत के उपापचयी क्रियाओं में होने वाले परिवर्तनों के कारण भूख की अनुभूति होती है। मस्तिष्क के उस भाग को जिसे अधश्चेतक कहते हैं, यकृत संकेत भेजता है। अधश्चेतक के दो क्षेत्र जिनका भूख से संबंध है, वे हैं पार्श्विक अधश्चेतक तथा अधर मध्य अधश्चेतक। पार्श्विक अधश्चेतक भूख संदीपन क्षेत्र समझा जाता है। पशुओं के इस क्षेत्र को उद्दीप्त करने पर वे भोजन करने लगते हैं। जब यह क्षतिग्रस्त हो जाता है तो पशु खाना छोड़ देते हैं तथा अनशन से उनकी मृत्यु भी हो जाती है। अधर मध्य अधश्चेतक अधश्चेतक के मध्य में स्थित होता है, इसे भूख नियंत्रण क्षेत्र कहते हैं तथा यह भूख के अंतर्नोद को निरुद्ध कर देता है। क्या अब आप उन लोगों के बारे में अनुमान लगा सकते हैं जो अत्यधिक भोजन करते हैं और अत्यंत मोटे हो जाते हैं तथा उन लोगों के बारे में भी जो बहुत कम भोजन करते हैं, या जो कम खाकर दुबले होने की चेष्टा करते हैं?

प्यास

यदि आपको लंबे समय तक पानी से वंचित रखा जाए तो आपको क्या होगा? आपको प्यास क्यों लगती है? जब हम कई घंटे तक पानी से वंचित रह जाते हैं तो हमारा मुँह तथा गला सूखने लगता है तथा शरीर के ऊतकों में निर्जलीकरण होने लगता है। सूखे मुँह को आर्द्र करने के लिए पानी पीना आवश्यक है। किंतु केवल मुँह का सूखना ही पानी पीने के व्यवहार में परिणत नहीं होता, बल्कि शरीर के भीतर घटित होने वाली प्रक्रियाएँ प्यास तथा पानी पीने को नियंत्रित करती हैं। निर्जलीकरण में शरीर के ऊतकों में पर्याप्त मात्रा में जल पहुँचने पर ही मुँह तथा गले का सूखना दूर हो पाता है।

शारीरिक स्थितियाँ पानी पीने के व्यवहार को प्रमुखत: उद्दीप्त करती हैं : कोशिकाओं से पानी का क्षय तथा रक्त के परिमाण का घटना। जब शरीर से तरल द्रव्यों का क्षय होता है तो कोशिकाओं के भीतर से भी जल का ह्रास होता है। अग्र अधश्चेतक में कुछ तंत्रिका कोशिकाएँ होती हैं, जिन्हें परासरणग्राही कहते हैं, जो कोशिकाओं के निर्जलीकरण की स्थिति में तंत्रिका–आवेग उत्पन्न करती हैं। यह तंत्रिका–आवेग प्यास तथा पानी पीने के लिए संकेत का कार्य करते हैं; जब प्यास का नियंत्रण परासरणग्राही द्वारा होता है तो उसे कोशिकीय–निर्जलीकरण प्यास कहते हैं। अभी कुछ शोधकर्ताओं की मान्यता है कि जो तंत्र पानी पीने की व्याख्या करता है, वही पानी पीने को रोकने के लिए भी उत्तरदायी है। दूसरे शोधकर्ता मानते हैं कि पानी पीने के परिणामस्वरूप, अमाशय में जो उद्दीपन होता है वह पानी पीने को रोकने में प्रभावी होता है। किंतु प्यास के अंतर्नोद के अंतर्निहित सुनिश्चित शरीरक्रियात्मक तंत्र को समझना अभी शेष है।

काम

मनुष्य तथा पशुओं दोनों में ही एक अत्यंत शक्तिशाली अंतर्नोद, काम अंतर्नोद है। काम–क्रिया की अभिप्रेरणा, मानव व्यवहार को प्रभावित करने वाला एक अत्यंत बलशाली कारक है। किंतु काम केवल एक जैविक अभिप्रेरक से कहीं अधिक है। यह अन्य प्राथमिक अभिप्रेरकों (भूख, प्यास) से अनेक प्रकार से भिन्न है, जैसे – (क) काम–क्रिया एक व्यक्ति के जीवन–निर्वाह के लिए आवश्यक नहीं है; (ख) काम–क्रिया

का लक्ष्य समस्थिति (प्राणी की एक समग्र के रूप में स्थिरता बनाए रखने की प्रवृत्ति, या स्थिरता के भंग हो जाने पर साम्यावस्था को पुन: स्थापित करना) नहीं है; तथा (ग) काम-अंतर्नोद आयु के साथ विकसित होता है इत्यादि। निम्न प्रजातियों के पशुओं में यह उनकी अनेक शरीरक्रियात्मक दशाओं पर निर्भर करता है; मानव में काम-अंतर्नोद जैविक कारकों द्वारा गहनता से नियंत्रित होता है, किंतु कभी-कभी काम को एक जैविक अंतर्नोद की श्रेणी में रखना अत्यंत कठिन प्रतीत होता है।

शरीरक्रिया वैज्ञानिकों का सुझाव है कि कामेच्छा की तीव्रता रक्त में प्रवाहित हो रहे उन रासायनिक तत्वों पर निर्भर करती है जिन्हें यौन हार्मोन कहते हैं। पशुओं तथा मनुष्यों पर किए गए अध्ययन बताते हैं कि जननग्रंथि अर्थात पुरुषों में शुक्रग्रंथि एवं स्त्रियों में डिंबग्रंथि, के द्वारा स्रावित होने वाले यौन हार्मोन ही काम अभिप्रेरणा के लिए उत्तरदायी हैं। काम अभिप्रेरणा पर अन्य अंत:स्रावी ग्रंथियों; जैसे- अधिवृक्क और पीयूष ग्रंथियों, का भी प्रभाव पड़ता है। मनुष्यों में काम अंतर्नोद का उद्दीपन, प्राथमिक रूप से बाह्य उद्दीपकों पर तथा उसकी अभिव्यक्ति संस्कृति पर आधारित अधिगम पर निर्भर करती है।

मनोसामाजिक अभिप्रेरक

सामाजिक अभिप्रेरक अधिकांशत: सीखे हुए या अर्जित होते हैं। सामाजिक अभिप्रेरकों को अर्जित करने में सामाजिक समूहों; जैसे- परिवार, पड़ोस, मित्रगण और संबंधियों का बहुत योगदान होता है। ये अभिप्रेरकों के जटिल रूप हैं जो व्यक्ति की उसके सामाजिक परिवेश के साथ अंत:क्रिया के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं।

संबंधन अभिप्रेरक

प्रतिदिन हमें दूसरों के साथ की या मित्रों की आवश्यकता होती है या हम दूसरों के साथ किसी प्रकार का संबंध बनाना चाहते हैं। कोई भी सदैव अकेले नहीं रहना चाहता। जैसे ही लोग परस्पर आपस में कुछ समानताएँ देखते हैं, वे एक समूह बना लेते हैं। समूह का निर्माण अथवा सामूहिकता मानव जीवन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। अक्सर लोग दूसरों के निकट पँहुचने, उनकी सहायता प्राप्त करने तथा उनके समूह का सदस्य बनने के लिए घोर प्रयास करते हैं। दूसरों को चाहना तथा भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप से उनके निकट आने की चाह को संबंधन कहते हैं। इसमें सामाजिक संपर्क की अभिप्रेरणा अंतर्निहित है। संबंधन की आवश्यकता उस समय उद्दीप्त होती है, जब लोग अपने को खतरे में या असहाय महसूस करते हैं और उस समय भी जब वे प्रसन्न होते हैं। जिन व्यक्तियों में यह आवश्यकता प्रबल होती है वे दूसरों का साथ खोजते हैं तथा दूसरों के साथ मित्रतापूर्ण संबंध बनाए रखते हैं।

शक्ति अभिप्रेरक

शक्ति की आवश्यकता व्यक्ति की वह योग्यता है जिसके कारण वह दूसरों के संवेगों तथा व्यवहारों पर अभिप्रेत प्रभाव डालता है। शक्ति अभिप्रेरक के विभिन्न लक्ष्य हैं: प्रभाव डालना, नियंत्रण करना, सम्मत कराना, नेतृत्व करना तथा दूसरों को मोहित कर लेना और सबसे अधिक महत्वपूर्ण, दूसरों की दृष्टि में अपनी प्रतिष्ठा को ऊँचा उठाना।

डेविड मैकक्लीलैंड (David McClelland, 1975) ने शक्ति अभिप्रेरक की अभिव्यक्ति के चार सामान्य तरीके बताएँ हैं। प्रथम, व्यक्ति शक्ति या सामर्थ्य का बोध प्राप्त करने के लिए अपने बाहर के स्रोतों का उपयोग करता है जैसे, खेल के सितारों के बारे में कहानियाँ पढ़ कर या, किसी लोकप्रिय व्यक्ति के साथ संलग्न होकर। द्वितीय, शक्ति का बोध अपने भीतर के स्रोतों द्वारा भी किया जा सकता है और उसकी अभिव्यक्ति शारीरिक सौष्ठव का निर्माण करके तथा अपने आवेगों एवं अंत:प्रेरणाओं पर नियंत्रण करके की जा सकती है। तृतीय, व्यक्ति कुछ कार्य व्यक्तिगत स्तर पर दूसरों पर प्रभाव डालने के लिए करता है। उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति बहस करता है, या किसी अन्य व्यक्ति के साथ इसलिए प्रतियोगिता करता है कि उसको प्रभावित कर सके या उससे प्रतिस्पर्द्धा कर सके। चतुर्थ, व्यक्ति किसी संगठन के सदस्य के रूप में दूसरों पर प्रभाव डालने के लिए भी कार्य करता है जैसे कि किसी राजनीतिक दल के नेता के रूप में; वह राजनीतिक दल के तंत्र का उपयोग दूसरों को प्रभावित करने के लिए कर सकता है। इनमें से कोई भी तरीका किसी व्यक्ति की शक्ति अभिप्रेरणा की अभिव्यक्ति में प्रमुख हो सकता है या उस पर छा सकता है किंतु इसमें आयु और जीवन अनुभवों के साथ परिवर्तन भी आता है।

उपलब्धि अभिप्रेरक

आपने देखा होगा कि कुछ विद्यार्थी परीक्षा में अच्छे अंक या श्रेणी पाने के लिए कड़ी मेहनत करते हैं या, दूसरे के साथ

स्पर्द्धा करते हैं क्योंकि अच्छे अंक या श्रेणी उनके लिए उच्च शिक्षा और बेहतर नौकरी का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। उत्कृष्टता के मापदंड को प्राप्त करने की यह आवश्यकता उपलब्धि अभिप्रेरक कहलाती है। उपलब्धि की आवश्यकता, जिसे n-Ach भी कहते हैं, व्यवहारों का ऊर्जन एवं निर्देशन करती है तथा परिस्थितियों के प्रत्यक्षण को प्रभावित करती है।

सामाजिक विकास के शुरू के वर्षों में बच्चे उपलब्धि अभिप्रेरक को अर्जित करते हैं। वे स्रोत, जिनसे वे यह अभिप्रेरक अर्जित करते हैं उनमें माता-पिता, दूसरे भूमिका प्रतिरूप तथा सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव शामिल हैं। वे व्यक्ति जिनमें उच्च उपलब्धि अभिप्रेरक होते हैं, ऐसे कृत्यों को वरीयता देते हैं जो मध्यम कठिनाई स्तर तथा चुनौती वाले हों। उनमें अपने निष्पादन के संबंध में जानकारी या पुनर्भरण प्राप्त करने की इच्छा सामान्य से अधिक होती है, अर्थात वे ज्ञात करना चाहते हैं कि वे कैसा निष्पादन कर रहे हैं, जिससे कि वे चुनौती से निपटने के लिए अपने लक्ष्यों में आवश्यक फेर-बदल कर सकें।

जिज्ञासा एवं अन्वेषण

कभी-कभी व्यक्ति ऐसे कार्य भी करते हैं जिनका कोई सुस्पष्ट लक्ष्य नहीं होता किंतु वे ऐसे कार्यों से भी कुछ आनंद प्राप्त करते हैं। किसी विशिष्ट पहचाने जाने वाले लक्ष्य के बिना भी कार्य करना एक अभिप्रेरणात्मक प्रवृत्ति है। नए अनुभव प्राप्त करने की इच्छा, सूचनाएँ प्राप्त करने से प्रसन्नता की अनुभूति, इत्यादि जिज्ञासा के संकेत हैं। अत:, जिज्ञासा उन व्यवहारों का वर्णन करती है जिनका मुख्य अभिप्रेरक अपने क्रियाकलापों में व्यस्त रहना प्रतीत होता है।

यदि आकाश हमारे ऊपर गिर जाए तो क्या होगा? इस प्रकार के प्रश्न (क्या होगा यदि----?) बुद्धिजीवियों को उत्तर खोजने के लिए उद्दीप्त करते हैं। अनेक अध्ययन प्रदर्शित करते हैं कि जिज्ञासापूर्ण व्यवहार केवल मानवों में ही परिलक्षित नहीं होते, बल्कि पशु भी इस तरह का व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। हम अपनी जिज्ञासा एवं संवेदी उद्दीपन की आवश्यकता के कारण परिवेश का अन्वेषण करने के लिए परिचालित होते हैं। विभिन्न प्रकार के संवेदी उद्दीपन की आवश्यकता जिज्ञासा से घनिष्ट रूप से संबद्ध होती है। यह मूल अभिप्रेरक है, तथा अन्वेषण एवं जिज्ञासा उसकी अभिव्यक्ति है।

हमारे आस-पास की वस्तुओं के प्रति हमारा अज्ञान, अपने आस-पास के संसार का अन्वेषण करने के लिए प्रबल अभिप्रेरक का कार्य करता है। बारम्बार होने वाले अनुभवों से हम ऊब जाते हैं, अत: हम कुछ नया ढूँढ़ने लगते हैं।

शिशुओं तथा छोटे बच्चों में यह अभिप्रेरक अत्यन्त प्रबल होता है। उन्हें अन्वेषण करने की स्वतंत्रता संतोष प्रदान करती है जो उनकी मुस्कराहट तथा बबलाने में प्रकट होता है। जैसा कि आप अध्याय 4 में पढ़ चुके हैं, जब बालकों में अन्वेषण के अभिप्रेरक को हतोत्साहित किया जाता है तो वे सरलता से दु:खी हो जाते हैं।

मैस्लो का आवश्यकता पदानुक्रम

मानव अभिप्रेरणा के संबंध में कई मत हैं। इनमें से सर्वाधिक लोकप्रिय सिद्धांत अब्राहम एच. मैस्लो (Abraham H. Maslow, 1968; 1970) के द्वारा दिया गया है। उन्होंने मानव व्यवहार को चित्रित करने के लिए आवश्यकताओं को एक पदानुक्रम में व्यवस्थित किया है। उनके सिद्धांत को ''आत्म-सिद्धि का सिद्धांत'' कहते हैं (चित्र 9.3 देखें) और यह सिद्धांत अपने सैद्धांतिक एवं अनुप्रयुक्त मूल्यों के कारण अत्यंत लोकप्रिय है।

मैस्लो का मॉडल एक पिरामिड के रूप में संप्रत्ययित किया जा सकता है, जिसमें पदानुक्रम के तल में मूल शरीरक्रियात्मक या जैविक आवश्यकताएँ हैं जो कि जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक हैं; जैसे- भूख, प्यास इत्यादि। जब इन

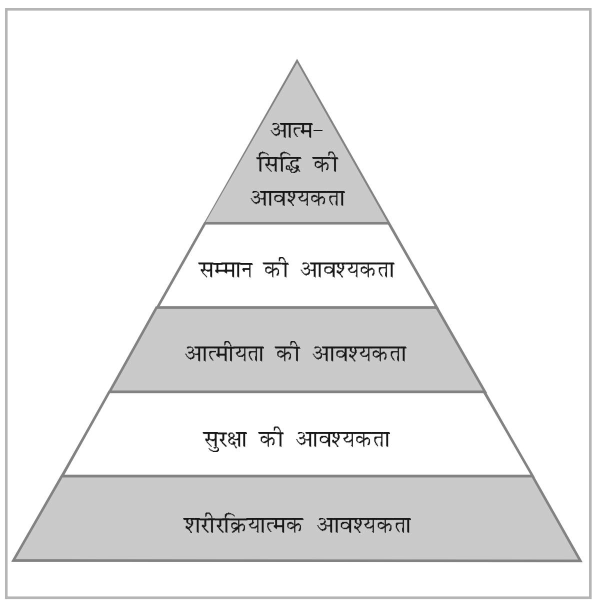

चित्र 9.3 : मैस्लो का आवश्यकता पदानुक्रम

आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है तभी व्यक्ति में खतरे से सुरक्षा की आवश्यकता उत्पन्न होती है। इसका तात्पर्य भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रकार के खतरों से सुरक्षा का है। इसके पश्चात दूसरों का उनसे प्रेम करना तथा उनका प्रेम प्राप्त करना आता है। यदि हम इस आवश्यकता को पूरा करने में सफल हो जाते हैं तब हम स्वयं आत्म-सम्मान तथा दूसरों से सम्मान प्राप्त करने की ओर बढ़ते हैं। पदानुक्रम में इससे ऊपर आत्म-सिद्धि की आवश्यकता है, जो एक व्यक्ति की अपनी सम्भाव्यताओं को पूर्ण रूप से विकसित करने के अभिप्रेरण में परिलक्षित होती है। आत्म-सिद्ध व्यक्ति आत्म-जागरूक, समाज के प्रति अनुक्रियाशील, सर्जनात्मक, स्वत: स्फूर्त तथा नवीनता एवं चुनौती के प्रति मुक्त होता है। ऐसे व्यक्ति में हास्य भावना होती है तथा गहरे अंतर्वैयक्तिक संबंध बनाने की क्षमता होती है।

पदानुक्रम में निम्न स्तर की आवश्यकताएँ (शरीरक्रियात्मक) जब तक संतुष्ट नहीं हो जातीं तब तक प्रभावी रहती हैं। एक बार जब वे पर्याप्त रूप से संतुष्ट हो जाती हैं तब उच्च स्तर की आवश्यकताएँ व्यक्ति के ध्यान एवं प्रयासों में केंद्रित हो जाती हैं। किंतु यह उल्लेखनीय है कि अधिकांश व्यक्ति निम्न स्तर की आवश्यकताओं के लिए अत्यधिक सरोकार होने के कारण सर्वोच्च स्तर तक पहुँच ही नहीं पाते।

क्रियाकलाप 9.1

वास्तविक क्रियाएँ कभी-कभी आवश्यकता पदानुक्रम के विपरीत होती हैं। सैनिक, पुलिस के अधिकारी और अग्निशमन के कर्मचारी कभी-कभी स्वयं को अत्यंत जोखिम में डाल कर दूसरों की रक्षा करते देखे गए हैं। प्रकट रूप से उनके ये व्यवहार सुरक्षा की आवश्यकता के विरुद्ध प्रतीत होते हैं।

ऐसा क्यों होता है? अपने समूह में इस पर चर्चा कीजिए तथा फिर अपने अध्यापक से इस पर चर्चा कीजिए।

कुंठा एवं द्वंद्व

अब तक हमने अभिप्रेरणा के विभिन्न सिद्धांतों पर दृष्टिपात किया है। ये सिद्धांत अभिप्रेरणा की प्रक्रिया को समझाते हैं कि अभिप्रेरित व्यवहार क्यों घटित होता है तथा विभिन्न प्रकार के अभिप्रेरित व्यवहारों के कारण क्या-क्या हैं? अब हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि जब अभिप्रेरित क्रिया अवरुद्ध हो जाती है अथवा जब वह कुछ कारणों से असफल हो जाती है तब क्या होता है? हम यह भी समझने का प्रयास करेंगे कि जब व्यक्ति में एक ही समय में एक से अधिक अभिप्रेरक अथवा आवश्यकताएँ जागृत हो जाती हैं तब क्या होता है। इन दोनों सरोकारों की व्याख्या अभिप्रेरणा से संबंधित दो महत्वपूर्ण संप्रत्यय, **कुंठा** (frustration) तथा **द्वंद्व** (conflict) द्वारा की जा सकती है।

कुंठा

अनेक अवसरों पर स्थितियाँ अप्रत्याशित मोड़ ले लेती हैं और हम अपने लक्ष्य तक पहुँचने में असफल हो जाते हैं। एक इष्ट लक्ष्य का अवरुद्ध हो जाना दु:खदायी होता है किंतु हम सभी ने उसका अनुभव जीवन में भिन्न-भिन्न स्तरों पर किया है। *कुंठा तब उत्पन्न होती है जब पूर्वापेक्षित इष्ट लक्ष्य प्राप्त नहीं होता तथा अभिप्रेरक अवरुद्ध हो जाता है।* यह एक विमुखी दशा है तथा कोई भी इसे पसंद नहीं करता। कुंठा के कारण विभिन्न व्यवहारात्मक तथा संवेगात्मक प्रतिक्रियाएँ होती हैं। इनके अंतर्गत आक्रामक व्यवहार, स्थिरण, पलायन, परिहार तथा रोना शामिल हैं। वस्तुत: डोलॉर्ड (Dollard) तथा मिलर (Miller) द्वारा दी गई **कुंठा-आक्रामकता** (frustration-aggression) की **परिकल्पना** (hypothesis) अत्यंत प्रसिद्ध है। यह परिकल्पना कहती है कि आक्रामकता कुंठा का ही उत्पादन है। आक्रामक क्रियाएँ या तो स्व, या अवरोध उत्पन्न करने वाले कारक या किसी प्रतिस्थानिक की दिशा में निर्दिष्ट होती हैं। प्रत्यक्ष आक्रामक व्यवहार दंड के भय से निरुद्ध हो सकते हैं। कुंठा के प्रमुख स्रोत या कारण निम्नलिखित में पाए जाते हैं : (1) *पर्यावरणी बल* जो कि भौतिक वस्तुएँ, निरुद्ध करने वाली परिस्थितियाँ या ऐसे दूसरे व्यक्ति हो सकते हैं जो किसी को एक विशेष लक्ष्य तक पहुँचने से रोकते है; (2) *वैयक्तिक कारक* जैसे अपर्याप्तताएँ, या संसाधनों का अभाव जिनके कारण लक्ष्य तक पहुँचना कठिन हो जाता है या संभव ही नहीं हो पाता है, तथा (3) विभिन्न अभिप्रेरकों के मध्य द्वंद्व।

द्वंद्व

जब कभी एक व्यक्ति को परस्पर विरोधी आवश्यकताओं, इच्छाओं, अभिप्रेरकों तथा माँगों के बीच चयन करना पड़ता है, तो द्वंद्व होता है। द्वंद्व तीन प्रकार के होते हैं, **उपागम-उपागम द्वंद्व** (approach-approach conflict), **परिहार-परिहार द्वंद्व** (avoidance-avoidance conflict) और **उपागम-परिहार द्वंद्व** (approach-avoidance conflict)।

जब दो विध्यात्मक तथा इष्ट विकल्पों में से एक का चयन करना पड़ता है तो उपागम-उपागम द्वंद्व होता है। किंतु

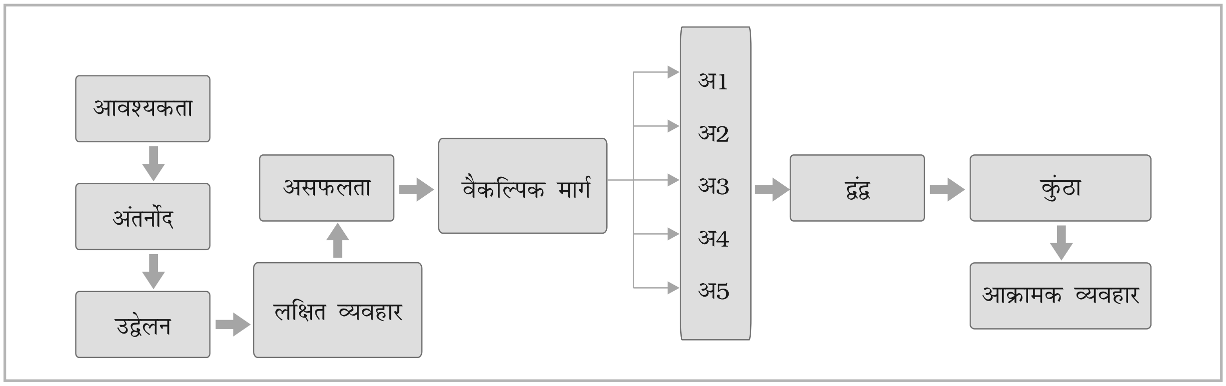

चित्र 9.4 : आवश्यकता-द्वंद्व-कुंठा पथ

जब दो निषेधात्मक एवं परस्पर अवांछनीय विकल्पों में से एक को चुनना पड़ता है तो परिहार-परिहार द्वंद्व होता है। वास्तविक जीवन में इस प्रकार के द्वि-परिहार द्वंद्व हो सकते हैं जब व्यक्ति के सामने ऐसी द्विविधा हो; जैसे- दाँत के डाक्टर के पास जाने या दाँत सड़ने, या सड़क के किनारे भोजन करने या भूखे रह जाने के विकल्पों में से चयन करना हो। उपागम-परिहार द्वंद्व तब उत्पन्न होता है जब एक ही लक्ष्य या क्रिया आकृष्ट भी करे और प्रतिकर्षित भी। उपागम-परिहार द्वंद्व का प्रमुख लक्षण उभयभाविता होता है, अर्थात विध्यात्मक तथा निषेधात्मक द्वंद्वों का मिश्रण। उपागम-परिहार द्वंद्व के कुछ उदाहरण हैं : एक व्यक्ति नयी मोटर साइकिल तो खरीदना चाहता है किंतु उसका मासिक भुगतान नहीं देना चाहता, मोटापा है किंतु भोजन करना चाहता है और किसी ऐसे व्यक्ति से विवाह करना चाहता/चाहती है जिसे उसके माता-पिता नापसंद करते हैं। जीवन के अनेक महत्वपूर्ण निर्णयों में इस प्रकार के उपागम-परिहार द्वंद्व के लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

कुंठा का एक प्रमुख स्रोत अभिप्रेरणात्मक द्वंद्व है। अपने जीवन में हम प्राय: अनेक परस्पर प्रतिस्पर्धी बलों से प्रभावित होते हैं, जो हमें भिन्न-भिन्न दिशाओं में खींचते हैं। ऐसी परिस्थितियों में द्वंद्व परिलक्षित होता है। अत:, *एक ही समय में अनेक इच्छाओं तथा आवश्यकताओं का अस्तित्व द्वंद्व की विशेषता है।*

द्वंद्व की सभी परिस्थितियों में, किसी एक विकल्प का चयन करना और दूसरे विकल्पों को छोड़ देना कई कारकों पर

बॉक्स 9.1 स्व-अभिप्रेरणा

स्वयं आपको तथा दूसरों को अभिप्रेरित करने के कुछ उपाय इस प्रकार हैं :

1. *आप जो भी करें योजनाबद्ध तथा व्यवस्थित ढंग से करें।*
2. *अपने लक्ष्यों का प्राथमिकता के आधार पर क्रम निर्धारण करना सीखिए (उनका 1, 2, 3 .... इस क्रम से निर्धारण कीजिए)।*
3. *अल्पकालिक लक्ष्य निर्धारित करें (कुछ दिनों में, एक सप्ताह, एक माह, इत्यादि)।*
4. *अपने लक्ष्य को पाने पर स्वयं को पुरस्कृत कीजिए (आप अपने आपको एक नयी कलम, चॉकलेट या किसी अन्य वस्तु जिसकी आपको चाह है, से पुरस्कृत कर सकते हैं, किंतु उसे किसी लक्ष्य के साथ जोड़ दीजिए)।*
5. *प्रत्येक बार लक्ष्य प्राप्त करने पर स्वयं अपनी प्रशंसा एक उपलब्धि करने वाले के रूप में कीजिए (कहिए 'वाह! मैंने यह कर लिया', 'मैं इस कार्य में वास्तव में अच्छा हूँ', 'मैं वास्तव में कार्य चतुराई से करता हूँ' इत्यादि)।*
6. *यदि लक्ष्य प्राप्त करना कठिन प्रतीत होने लगे तो उसे छोटे अंशों में विभाजित कर लीजिए और तब एक-एक अंश को पूर्ण कीजिए।*
7. *अपने अपेक्षित लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अपने कठिन परिश्रम के परिणाम का सदा मानसिक चित्रण या कल्पना करने का प्रयत्न करते रहिए।*

निर्भर करता है; जैसे- उनके एक-दूसरे की अपेक्षा अधिक या कम बल अथवा महत्त्व का होना और पर्यावरणी कारक। द्वंद्वात्मक परिस्थितियों का समाधान, प्रत्येक विकल्प के पक्ष तथा विपक्ष के तर्कों पर सोच विचार करने के बाद ही करना चाहिए। एक बात यहाँ नोट करने योग्य है कि द्वंद्व के कारण कुंठा होती है, जिसकी परिणति आक्रामकता में हो सकती है। उदाहरण के लिए, एक युवा जो कि एक संगीतज्ञ बनना चाहता है किंतु माता-पिता के दबाव में प्रबंधन की शिक्षा ग्रहण कर रहा है। वह अपने माता-पिता की अपेक्षाओं के अनुरूप निष्पादन नहीं कर पा रहा है, उससे यदि उसके खराब निष्पादन के बारे में पूछताछ की जाए तो वह आक्रामक हो सकता है।

क्रियाकलाप 9.2

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए तथा जिन क्षेत्रों में आप दुर्बल हैं उनमें कार्य कीजिए :

1. *उन योजनाओं/क्रियाओं को सूचीबद्ध कीजिए जिनका आप इस सप्ताह क्रियान्वयन करना चाहते हैं।*
2. *क्या आपने अगले माह के लिए लक्ष्य निर्धारित किए हैं? यदि हाँ, तो वे क्या हैं? उनकी सूची बनाने का प्रयास कीजिए।*
3. *क्या आपके पास दैनिक नेमी चार्ट है? यदि नहीं, तो अपने समय को विवेकपूर्ण तरीके से अध्ययन, विश्राम, मनोरंजन, तथा अन्य दूसरे कार्यों के लिए बाँटते हुए चार्ट तैयार कीजिए।*
4. *क्या आप अपने नेमी चार्ट का सफलता से अनुसरण कर पाते हैं? (यदि आपका नेमी चार्ट है तो)।*
5. *यदि आप चार्ट का अनुसरण नहीं कर पाते हैं तो उन उपायों को सोचिए जिनके द्वारा आप अपनी अनियमित आदतों पर विजय प्राप्त कर सकें। इन उपायों का अनुसरण करने का प्रयास करें।*

संवेगों का स्वरूप

''स्वाति बहुत प्रसन्न है। आज उसका परीक्षाफल घोषित हुआ है और उसने कक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया है। वह उल्लासोन्मादित है। किंतु उसका मित्र प्रणय दुखी है क्योंकि उसका प्रदर्शन अच्छा नहीं है। उनके मित्रों में कुछ स्वाति की उपलब्धि से ईर्ष्या का अनुभव कर रहे हैं। जीवन अपनी आशा के अनुरूप प्रदर्शन न कर पाने के कारण अपने आपसे क्रुद्ध है; वह दुखी है क्योंकि उसके माता-पिता काफ़ी निराश होंगे।''

हर्ष, दुख, आशा, प्रेम, उत्तेजना, क्रोध, घृणा तथा अनेक अन्य भावनाएँ हम सब दिन भर के दौरान अनुभव करते हैं। संवेग का पद अक्सर 'भावना' तथा 'मन:स्थिति' का पर्यायवाची समझा जाता है। भावना, संवेग के सुख-दुख की विमाओं को निर्दिष्ट करती है। इसमें अक्सर शारीरिक क्रियाएँ भी अंतर्निहित होती हैं। मन:स्थिति कुछ लंबे समय तक बनी रहने वाली भावावस्था है किंतु यह संवेग से कम तीव्र होती है। यह दोनों ही पद संवेग के संप्रत्यय की अपेक्षा अधिक संकुचित हैं। संवेग, उद्वेलन, आत्मनिष्ठ भावनाओं तथा संज्ञानात्मक व्याख्या का एक जटिल स्वरूप होता है। संवेग, जैसाकि हम अनुभव करते हैं, हमारे भीतर गति लाते हैं तथा इस प्रक्रिया में शरीरक्रियात्मक तथा मनोवैज्ञानिक दोनों ही प्रकार की प्रतिक्रियाएँ अंतर्निहित होती हैं।

संवेग एक आत्मनिष्ठ भावना है, अत: संवेग का अनुभव एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न होता है। आधुनिक मनोविज्ञान ने मूल संवेगों को पहचानने का प्रयास किया है। यह देखा गया है कि कम से कम छ: संवेग सब जगह अनुभव किए जाते हैं तथा पहचाने जाते हैं; ये हैं - क्रोध, विरुचि, भय, प्रसन्नता, दुख, तथा आश्चर्य। इजार्ड (Izard) ने दस मूल संवेगों का एक समुच्चय प्रस्तुत किया है; ये हैं - हर्ष, आश्चर्य, क्रोध, विरुचि, अवमान, भय, शर्म, अपराध, अभिरुचि तथा उत्तेजना। इनकी संयुक्तियाँ अन्य प्रकार के संवेग उत्पन्न करती हैं। प्लुचिक (Plutchik) के अनुसार, आठ मूल या प्राथमिक संवेग होते हैं। अन्य सभी संवेग इन्हीं मूल संवेगों के विभिन्न मिश्रणों के ही परिणाम होते हैं। उन्होंने इन संवेगों को चार विरोधी युग्मों के रूप में प्रस्तुत किया है; ये हैं- हर्ष-विषाद; स्वीकृति-विरुचि; भय-क्रोध; तथा आश्चर्य-पूर्वाभास।

संवेगों में तीव्रता (उच्च, निम्न) तथा गुणों (प्रसन्नता, दुख, भय) के आधार पर अंतर होता है। आत्मनिष्ठ कारक तथा स्थितिपरक संदर्भ संवेगों के अनुभव को प्रभावित करते हैं। ये कारक हैं - लिंग, व्यक्तित्व तथा कुछ प्रकार की मनोविकृतियाँ। साक्ष्य बताते हैं कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ क्रोध के अतिरिक्त अन्य संवेगों का अधिक तीव्रता से अनुभव करती हैं। पुरुषों में क्रोध को अधिक तीव्रता तथा अधिक आवृत्ति में अनुभव करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। इस लिंग-भेद को पुरुषों (स्पर्द्धात्मक) तथा महिलाओं (संबंधन एवं देखभाल) से जुड़ी सामाजिक भूमिकाओं पर आरोपित किया जाता है।

संवेगों के शरीरक्रियात्मक आधार

"दिव्या नौकरी पाने के लिए व्याकुल है। उसने साक्षात्कार के लिए अच्छी तैयारी की है और आत्म-विश्वास का अनुभव कर रही है। जैसे ही वह साक्षात्कार कक्ष में जाती है और साक्षात्कार प्रारंभ होता है, वह अत्यधिक तनाव में आ जाती है। उसके हाथ-पाँव ठंडे पड़ जाते हैं, उसका हृदय ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगता है, और वह उपयुक्त तरीके से उत्तर देने में असमर्थ हो जाती है।"

ऐसा क्यों हुआ? किसी ऐसी घटना के बारे में सोचने की कोशिश कीजिए जो इससे मिलती हुई हो और जिसका अनुभव स्वयं आपने किया हो। क्या आप उसका कोई संभाव्य कारण सोच सकते हैं। जैसाकि हम आगे देखेंगे, जब हम किसी संवेग का अनुभव करते हैं तो अनेक शरीरक्रियात्मक परिवर्तन होते हैं। जब हम उत्तेजित, भयभीत या क्रुद्ध होते हैं तो इन शारीरिक परिवर्तनों को चिह्नित करना अपेक्षाकृत सरल होता है। जब आप किसी चीज़ के बारे में उत्तेजित या क्रुद्ध होते हैं तो आपने अनुभव किया होगा कि आपकी हृदय गति बढ़ जाती है, सिर चकराने लगता है, पसीना आने लगता है तथा हाथ-पाँव में कंपन होने लगता है। परिष्कृत उपकरणों की सहायता से उन शरीरक्रियात्मक परिवर्तनों का यथार्थ मापन किया जा सकता है जो संवेग की अनुभूति के साथ उत्पन्न होते हैं। स्वायत्त तथा कायिक तंत्रिका-तंत्र दोनों ही संवेगात्मक प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। संवेग का अनुभव तंत्रिका-शरीरक्रियात्मक सक्रियकरण की शृंखला पर निर्भर करता है, जिसमें चेतक, अधश्चेतक, उपवल्कुटिय व्यवस्था तथा प्रमस्तिष्कीय वल्कुट महत्वपूर्ण रूप से अंतर्निहित होते हैं। वे व्यक्ति जिनके मस्तिष्क के इन क्षेत्रों में व्यापक क्षति हो जाती है, उनकी संवेगात्मक योग्यताएँ दोषपूर्ण होते हुए देखी गई हैं। प्रयोगों में शिशुओं तथा वयस्कों में भी विभिन्न मस्तिष्क के क्षेत्रों में चयनात्मक सक्रियकरण, भिन्न-भिन्न संवेगों का उद्वेलन प्रदर्शित करता है।

संवेग के शरीरक्रियात्मक सिद्धांतों में सबसे पुराने सिद्धांतों में से एक जेम्स (James, 1884) द्वारा दिया गया था और लैंगे (Lange) ने उसका समर्थन किया था, अतः इसे **जेम्स-लैंगे सिद्धांत** (James-Lange theory) के नाम से जाना जाता है (चित्र 9.5 देखें)। इस सिद्धांत के अनुसार, पर्यावरणी उद्दीपक विसेरा या अंतरांग (आंतरिक अंग जैसे - हृदय तथा फेफड़े) में शरीरक्रियात्मक अनुक्रियाएँ उत्पन्न करते हैं, जो कि पेशीय गति से संबद्ध होते हैं। उदाहरण के लिए, अप्रत्याशित अत्यंत तीव्र शोर के द्वारा चौंकना, आंतरांगी तथा पेशीय अंगों में सक्रियकरण को उत्पन्न करता है, जिसका अनुसरण करता है संवेगात्मक उद्वेलन। दूसरे शब्दों में, जेम्स-लैंगे सिद्धांत का तर्क यह है कि आपके शारीरिक परिवर्तनों का आपके द्वारा किया गया प्रत्यक्षण, जैसे- किसी घटना के बाद साँस का तेज़ चलना, हृदय की तेज़ धड़कन, टाँगों का दौड़ना, संवेगात्मक उद्वेलन को उत्पन्न करता है। इस सिद्धांत का निहितार्थ यह है कि विशिष्ट घटनाएँ या उद्दीपक विशिष्ट शरीरक्रियात्मक परिवर्तनों को उत्तेजित करती हैं तथा व्यक्ति

बॉक्स 9.2 संवेगों की शरीरक्रिया

केंद्रीय तथा परिधीय तंत्रिका तंत्र, संवेगों के नियमन में अत्यावश्यक भूमिका का निर्वाह करते हैं।

चेतक : *यह तंत्रिका कोशिकाओं के समूह से संगठित होता है तथा संवेदी तंत्रिकाओं के प्रसारण केंद्र का कार्य करता है। चेतक का उत्तेजन भय, दुश्चिंता तथा स्वायत्त प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करता है। कैनन तथा बार्ड (1931) का संवेग का सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि चेतक की भूमिका समस्त संवेगों को प्रारंभ करने तथा चलाए रखने में महत्वपूर्ण है।*

अधश्चेतक : *यह संवेगों के नियमन का प्राथमिक केंद्र समझा जाता है। यह समस्थिति संतुलन का भी नियमन करता है, स्वायत्त क्रियाओं तथा अंत:स्रावी ग्रंथियों के स्राव को नियंत्रित करता है, तथा संवेगात्मक व्यवहारों के कायिक स्वरूप को व्यवस्थित करता है।*

उपवल्कुटीय तंत्र : *चेतक तथा अधश्चेतक के साथ उपवल्कुटीय तंत्र भी संवेगों के नियमन में अत्यावश्यक भूमिका का निवार्ह करता है। गलतुंडिका उपवल्कुटीय व्यवस्था का एक भाग है जो संवेगात्मक नियंत्रण के लिए उत्तरदायी है तथा संवेगात्मक स्मृतियों के निर्माण में अंतर्निहित है।*

वल्कुट : *संवेगों में वल्कुट घनिष्ठ रूप से अंतर्निहित है। किंतु इसके गोलार्ध परस्पर विरुद्ध भूमिका निभाते हैं। वाम अग्र वल्कुट, विध्यात्मक भावनाओं से संबद्ध है, जबकि दाहिना अग्र वल्कुट निषेधात्मक भावनाओं से संबद्ध है।*

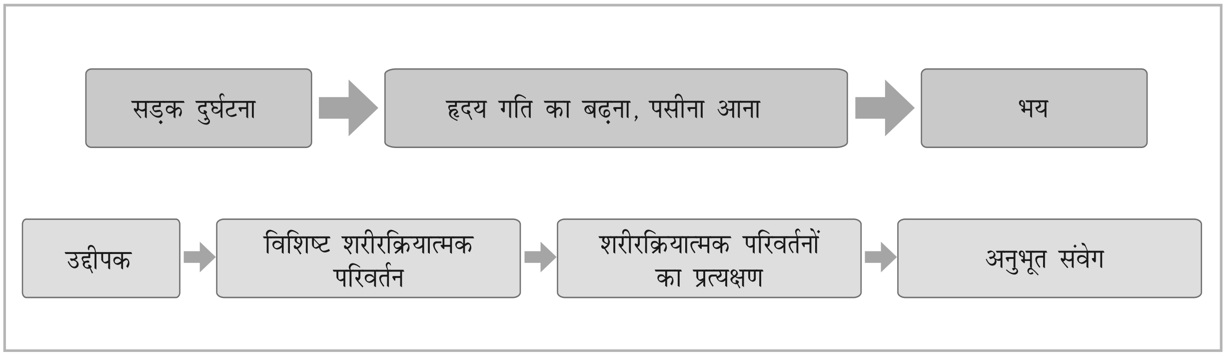

चित्र 9.5 : जेम्स-लैंगे का संवेग सिद्धांत

इन परिवर्तनों का जिस प्रकार से प्रत्यक्षण करता है, संवेगों की अनुभूति उसी का परिणाम होती है।

किंतु इस सिद्धांत को बहुत आलोचनाओं का सामना करना पड़ा और इसका उपयोग कम किया जाने लगा। एक अन्य सिद्धांत कैनन (Cannon, 1927) तथा बार्ड (Bard, 1934) के द्वारा प्रतिपादित किया गया। **कैनन-बार्ड सिद्धांत** (Cannon-Bard theory) का दावा है कि संवेगों की सारी प्रक्रिया की मध्यस्थता चेतक के द्वारा की जाती है जो कि संवेग उद्दीप्त करने वाले उद्दीपकों के प्रत्यक्षण के पश्चात यह सूचना सहकालिक रूप से प्रमस्तिष्कीय वल्कुट, कंकाल-पेशियों तथा अनुकंपी तंत्रिका-तंत्र को देता है। इसके बाद, प्रमस्तिष्कीय वल्कुट पूर्व अनुभवों के आधार पर प्रत्यक्षित उद्दीपक की प्रकृति का निर्धारण करता है। यह संवेग के आत्मनिष्ठ अनुभव का निर्धारण करता है। इसी समय अनुकंपी तंत्रिका-तंत्र तथा मांसपेशियाँ शरीरक्रियात्मक उद्वेलन उत्पन्न करते हैं जो व्यक्ति को क्रिया करने के लिए तैयार करते हैं (चित्र 9.6 देखें)।

स्वायत्त तंत्रिका तंत्र दो तंत्रों में विभक्त होता है – अनुकंपी तथा परानुकंपी। ये दोनों तंत्र परस्पर अन्योन्य तरीके से कार्य करते हैं। एक दबावमय स्थिति में अनुकंपी तंत्र शरीर को स्थिति का सामना करने के लिए तैयार करता है। यह व्यक्ति के आंतरिक परिवेश को सशक्त करता है और हृदय गति, रक्तचाप, रक्त में शर्करा की मात्रा इत्यादि में कमी न होने देने के लिए नियंत्रित करता है। यह व्यक्ति में शरीरक्रियात्मक उद्वेलन का उत्प्रेरण करता है जो व्यक्ति को दबावमय स्थिति का सामना करने के लिए 'संघर्ष अथवा पलायन अनुक्रिया' के लिए तैयार करता है। जब खतरा टल जाता है तब परानुकंपी तंत्र सक्रिय हो जाता है तथा संतुलन वापस लाने के लिए शरीर को शांत करता है। वह ऊर्जा संरक्षण तथा पुनर्नवीकरण करता है तथा व्यक्ति को सामान्य स्थिति में पुनः लौटाता है।

अनुकंपी एवं परानुकंपी तंत्र यद्यपि परस्पर विरोधी तरीके से कार्य करते हैं किंतु वे संवेगों के अनुभव तथा अभिव्यक्ति की प्रक्रिया को पूरा करने में परस्पर पूरक हैं।

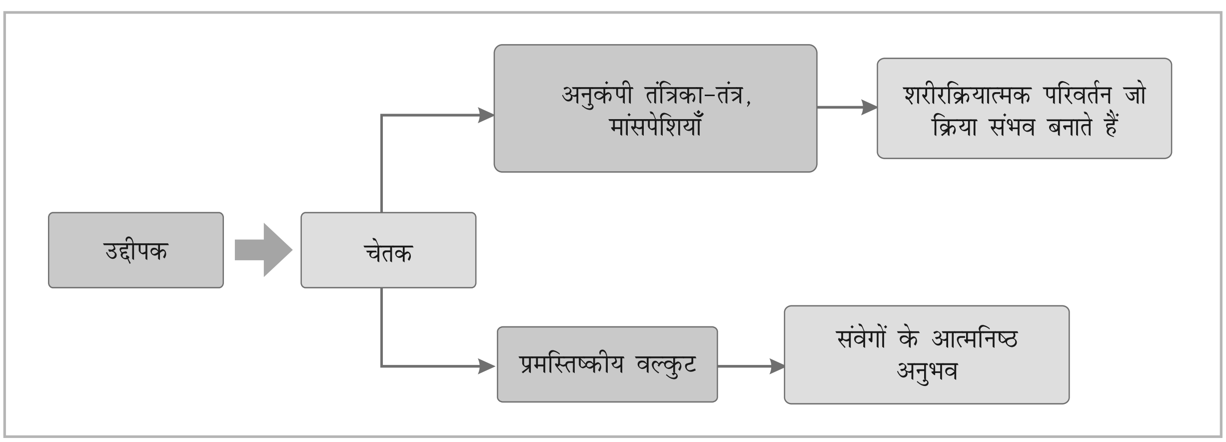

चित्र 9.6 : कैनन-बार्ड का संवेग सिद्धांत

बॉक्स 9.3 असत्य खोज

असत्य का संसूचन करने वाले यंत्र को पॉलीग्राफ भी कहते हैं, क्योंकि ये कई शारीरिक प्रतिक्रियाओं का एक ही समय आलेखित अभिलेख लेते हैं जो व्यक्ति के शारीरिक उद्वेलन का मापन करते हैं। विशिष्ट रूप से एक असत्य संसूचक रक्तचाप, हृदयगति, श्वास की गति और गहराई, तथा गैल्वेनिक त्वक् अनुक्रिया में होने वाले परिवर्तनों का मापन करता है।

जिस व्यक्ति का परीक्षण किया जाता है, उससे कुछ तटस्थ प्रश्न पूछे जाते हैं जिससे मूल रेखा का निर्धारण किया जा सके। सरल प्रश्नों के पश्चात ऐसे विशिष्ट प्रश्न पूछे जाते हैं जो इस प्रकार निर्मित होते हैं कि वे आपराधिक ज्ञान पर आधारित अनुक्रियाएँ दे सकें, जो कि जिस अपराध की जाँच की जा रही है उसमें अनुमानत: उस व्यक्ति के लिप्त रहने की जानकारी प्रदान करते हैं। असत्य संसूचक या पॉलीग्राफ तंत्रिका-शरीरक्रियात्मक क्रियाओं में होने वाले परिवर्तनों का अभिलेख तैयार करता है जो संदेहास्पद व्यक्ति में इन प्रश्नों का उत्तर देने के दौरान घटित होते हैं।

यद्यपि पॉलीग्राफ कई वस्तुपरक अभिलेख तैयार करता है, किंतु इन अभिलेखों की व्याख्या परीक्षक के आत्मनिष्ठ निर्णय पर बहुत अधिक निर्भर करती है। ऐसा भी संभव है कि परीक्षण के दौरान घटित होने वाले अनेक असंबद्ध कारक; जैसे- भय, दुश्चिंता या पीड़ा व्यक्ति के उद्वेलन स्तर को प्रभावित कर देते हैं। व्यक्ति के लिए इसके साथ भी झूठ बोलना संभव है। इसलिए, पॉलीग्राफ के परिणाम संदिग्ध होते हैं, किंतु फिर भी इसका उपयोग कानून-व्यवस्था वाली एजेंसी के द्वारा असत्य की खोज के लिए किया जाता है।

संवेगों के संज्ञानात्मक आधार

आज अधिकांश मनोवैज्ञानिक यह विश्वास करते हैं कि हमारे संज्ञान अर्थात हमारे प्रत्यक्षण, स्मृतियाँ एवं व्याख्याएँ, हमारे संवेगों के आवश्यक अवयव हैं। स्टैनली शैक्टर (Stanley Schachter) तथा जेरोम सिंगर (Jerome Singer) ने संवेगों के द्विकारक सिद्धांत का प्रतिपादन किया है जिसके अंतर्गत संवेगों के दो अवयव है : शारीरिक उद्वेलन तथा संज्ञानात्मक लेबल। उनका अनुमान है कि हमारे संवेगों की अनुभूति, हमारे तात्कालिक उद्वेलन के प्रति जागरूकता के द्वारा उत्पन्न होती है। उनका यह भी विश्वास है कि हमारे संवेगों में शरीरक्रियात्मक समानता होती है। उदाहण के लिए, आपका हृदय उस समय तेज़ी से धड़कता है जब आप उत्तेजित, भयभीत या क्रुद्ध होते हैं। आप शरीरक्रियात्मक रूप से उद्वेलित होते हैं तथा बाह्य वातावरण का इस आशा से अवलोकन करते हैं कि इस उद्वेलन की व्याख्या कर सकें। इस प्रकार, उनका मत है कि किसी संवेगात्मक अनुभव के लिए उद्वेलन की चेतन व्याख्या की आवश्यकता होती है।

यदि आप शारीरिक कसरत के कारण भी उद्वेलित हैं और कोई आपको चिढ़ाता है, तो वह उद्वेलन, जो कसरत के कारण पहले ही हो चुका है अब इस छेड़खानी पर झूठे ही आरोपित

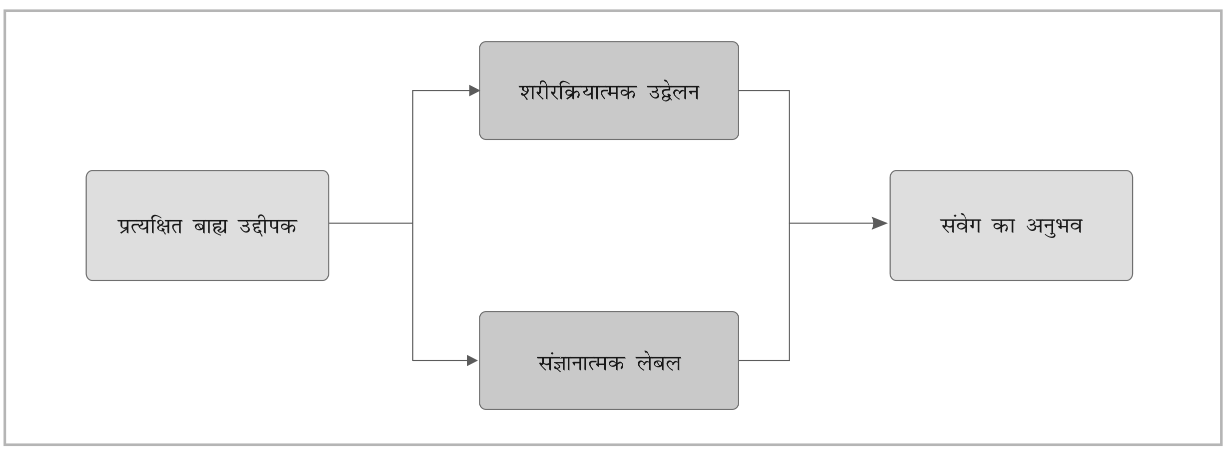

चित्र 9.7 : शैक्टर-सिंगर का संवेग सिद्धांत

कर दिया जाता है। शैक्टर तथा सिंगर (1962) ने प्रतिभागियों को एपाइनफ्राइन के इंजेक्शन दिए। यह एक उच्च स्तर का उद्वेलन उत्पन्न करने वाली औषधि है। इसके बाद इन प्रतिभागियों से दूसरों के व्यवहारों का प्रेक्षण करने को कहा गया, जो कि या तो उल्लासोन्माद (जैसे- रद्दी की टोकरी पर कागज़ फेंकना), या क्रोध (जैसे- पैर पटकते हुए कमरे के बाहर जाना) के द्योतक थे। जैसा कि पूर्वानुमान किया गया था, दूसरों के उल्लासोन्मादित एवं क्रोधित व्यवहार ने प्रतिभागी के स्वयं के उद्वेलन की व्याख्या को प्रभावित किया।

संवेगों के सांस्कृतिक आधार

अब तक हम संवेगों के शरीरक्रियात्मक तथा संज्ञानात्मक आधारों की ही चर्चा करते रहे हैं। इस खंड में, संवेगों में संस्कृति की भूमिका का परीक्षण किया जाएगा। अध्ययनों से यह पता लगा है कि अधिकांश मूल संवेग सहज या जन्मजात होते हैं और उन्हें सीखना नहीं पड़ता। अधिकांशत: मनोवैज्ञानिक यह विश्वास करते हैं कि संवेगों, विशेषकर चेहरे की अभिव्यक्तियों के प्रबल जैविक संबंध (बंधन) होते हैं। उदाहरण के लिए, वे बालक जो जन्म से दृष्टिहीन हैं तथा जिन्होंने दूसरों को मुस्कराते हुए, या दूसरों का चेहरा भी नहीं देखा है, वे भी उसी प्रकार मुस्कराते हैं या माथे पर बल डालते हैं जिस प्रकार कि सामान्य दृष्टि वाले बालक।

किंतु विभिन्न संस्कृतियों की तुलना करने पर यह स्पष्ट होता है कि संवेगों में अधिगम की प्रमुख भूमिका होती है। यह दो प्रकार से होता है। प्रथम, सांस्कृतिक अधिगम संवेगों के अनुभव की अपेक्षा संवेगों की अभिव्यक्ति को अधिक प्रभावित करता है, उदाहरण के लिए, कुछ संस्कृतियों में मुक्त सांवेगिक अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित किया जाता है, जबकि कुछ दूसरी संस्कृतियाँ, मॉडलिंग तथा प्रबलन के द्वारा व्यक्ति को सार्वजनिक रूप से अपने संवेगों को सीमित रूप से प्रकट करना सिखाती हैं।

द्वितीय, अधिगम उन उद्दीपकों पर बहुत निर्भर करता है जो सांवेगिक प्रतिक्रियाएँ जनित करते हैं। यह प्रदर्शित किया जा चुका है कि वे व्यक्ति जो लिफ्ट, मोटर गाड़ी इत्यादि के प्रति अत्यधिक भय (दुर्भीति) प्रदर्शित करते हैं, उन्होंने यह भय मॉडल, प्राचीन अनुबंधन या परिहार अनुबंधन के द्वारा सीखे होते हैं।

संवेगों की अभिव्यक्ति

क्या आपको यह ज्ञात हो जाता है कि कब आपका मित्र प्रसन्न होता है या दुखी या तटस्थ-सा होता है? क्या वह आपकी भावनाओं को समझ पाती/पाता है? संवेग एक आंतरिक अनुभूति होता है जिसका दूसरे सीधे प्रेक्षण नहीं कर सकते। संवेगों का अनुमान उनके वाचिक तथा अवाचिक अभिव्यक्तियों के द्वारा ही होता है। ये वाचिक तथा अवाचिक अभिव्यक्तियाँ संचार माध्यम का कार्य करती हैं तथा इनके द्वारा व्यक्ति अपने संवेगों की अभिव्यक्ति करने तथा दूसरों की अनुभूतियों को समझने में समर्थ होता है।

संस्कृति एवं संवेगात्मक अभिव्यक्ति

संचार के वाचिक माध्यम में वाचिक शब्द तथा बोलने की दूसरी विशेषताएँ; जैसे- स्वरमान या पिच, तथा बोली का

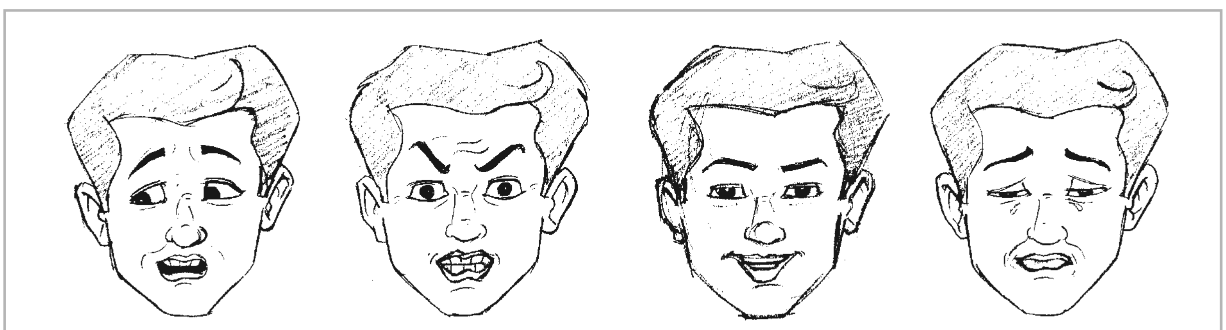

चित्र 9.8 : संवेगों की मुख द्वारा अभिव्यक्तियों के रेखाचित्र

ऊँचापन सन्निहित हैं। भाषा की ये दूसरी अवाचिक विशेषताएँ तथा कालिक विशेषताएँ पराभाषीय कहलाती हैं। दूसरे अवाचिक माध्यमों में, चेहरे के हाव-भाव, गतिक (मुद्रा, भंगिमा तथा शरीर की गति) तथा समीपस्थ (आमने-सामने की अंत:क्रिया में भौतिक दूरी) व्यवहार भी निहित हैं। चेहरे के हाव-भावों से होने वाली अभिव्यक्ति सांवेगिक संचार का सबसे अधिक प्रचलित माध्यम है। चेहरा क्योंकि सबके समक्ष पूरी तरह अनावृत रहता है (चित्र 9.8 देखें), अत: चेहरे से अभिव्यक्त होने वाली सूचना का प्रकार तथा मात्रा आसानी से समझ में आ जाती है। व्यक्ति के संवेगों का सुखद या दुखद होना तथा उनकी तीव्रता चेहरे के हाव-भाव से आसानी से प्रकट हो जाती है। मुख की अभिव्यक्ति हमारे दैनिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। डारविन (Darwin) के इस मत को पुष्ट करने वाले कुछ शोध प्रमाण प्राप्त होते हैं, जैसे कि **मूल संवेगों** (basic emotions) की मुख द्वारा अभिव्यक्ति (हर्ष, भय, क्रोध, विरुचि, दुख तथा आश्चर्य) जन्मजात तथा सार्वभौम होती है।

शारीरिक गति संवेगों के संचार को और भी सरल बना देती है। क्या आप अपनी शारीरिक गति में उस समय भिन्नता महसूस कर सकते हैं जब आप क्रुद्ध होते हैं या जब आप शर्मीलापन महसूस करते हैं। थियेटर तथा नाटक बहुत ही अच्छा अवसर, यह समझने के लिए प्रदान करते हैं कि संवेगों के संचार में शारीरिक गति का क्या प्रभाव होता है। चेष्टा तथा समीपस्थ व्यवहारों की भूमिका भी इस संबंध में महत्वपूर्ण है। आपने अवश्य देखा होगा कि भारतीय शास्त्रीय नृत्यों; जैसे- भरतनाट्यम, ओडिसी, कुचीपुडी, कत्थक तथा अन्य, में भी आँखों, टाँगों तथा उँगलियों की क्रिया द्वारा कैसे संवेग अभिव्यक्त होते हैं। नृत्यांगनाओं/नर्तकों को हर्ष, दुख, प्रेम, क्रोध तथा अन्य प्रकार के संवेगों की अभिव्यक्ति के लिए शरीर की गति तथा अवाचिक संचार के नियमों का कठिन प्रशिक्षण दिया जाता है।

यह ज्ञात है कि संवेगों में अंतर्निहित प्रक्रियाएँ संस्कृति द्वारा प्रभावित होती हैं। सम्प्रति शोध विशेष रूप से इस प्रश्न पर केंद्रीकृत है कि संवेगों में कितनी सर्वव्यापकता या सांस्कृतिक विशिष्टता पाई जाती है। इनमें से अधिकांश शोध मुख की अभिव्यक्तियों पर किए गए हैं क्योंकि मुख का प्रेक्षण सरलता से किया जा सकता है, वह जटिलताओं से अपेक्षाकृत मुक्त होता है तथा वह संवेग के आत्मनिष्ठ अनुभव तथा प्रकट अभिव्यक्ति के बीच एक कड़ी का कार्य करता है। किंतु फिर भी इस बात पर बल देना आवश्यक है कि संवेग केवल मुख द्वारा ही अभिव्यक्त नहीं होते। एक अनुभव किया हुआ संवेग अन्य अवाचिक माध्यमों; जैसे- टकटकी लगा कर देखने, चेष्टा, पराभाषा तथा समीपस्थ व्यवहार इत्यादि से भी अभिव्यक्त होता है। चेष्टा (शरीर भाषा) के द्वारा व्यक्त संवेगात्मक अर्थ एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में भिन्न होता है। उदाहरण के लिए, चीन में ताली बजाना आकुलता या निराशा का सूचक है तथा क्रोध को हँसी के द्वारा व्यक्त किया जाता है। मौन भी विभिन्न संस्कृतियों में भिन्न-भिन्न अर्थ व्यक्त करता है। उदाहरण के लिए, भारत में गहरे संवेग कभी-कभी मौन द्वारा अभिव्यक्त किए जाते हैं। जबकि पाश्चात्य देशों में यह व्याकुलता या लज्जा को व्यक्त कर सकता है। टकटकी लगा कर देखने में भी सांस्कृतिक भिन्नताएँ पाई जाती हैं। यह भी देखा गया है कि लैटिन अमरीकी तथा दक्षिण यूरोपीय लोग अंत:क्रिया कर रहे व्यक्ति की आँखों में टकटकी लगा कर देखते हैं। जबकि एशियाई लोग, विशेषकर भारतीय तथा पाकिस्तानी मूल के लोग, किसी अंत:क्रिया के दौरान दृष्टि को परिधि (अंत:क्रिया करने वाले से दूर से दृष्टिपात) पर केंद्रित करते हैं। संवेगात्मक आदान-प्रदान के दौरान, शारीरिक दूरी (सान्निध्य) विभिन्न प्रकार के संवेगात्मक अर्थों को व्यक्त करती है। उदाहरण के लिए, अमरीकी लोग अंत:क्रिया करते समय बहुत निकट नहीं आना चाहते; जबकि भारतीय लोग

क्रियाकलाप 9.3

सांवेगिक अभिव्यक्तियाँ अपनी तीव्रता तथा विविधता में भिन्न होती हैं। आप अपने खाली समय में अखबारों तथा पत्रिकाओं से जितने संभव हों, दूसरे व्यक्तियों के चित्रों, जिनमें विविध संवेग अभिव्यक्त हो रहे हों, को एकत्रित कीजिए। प्रत्येक चित्र को एक गत्ते पर चिपका कर चित्र-कार्ड बनाइए। आप विभिन्न संवेगों को अभिव्यक्त करने वाले चित्र-कार्डों का एक सेट तैयार कर सकते हैं। अपने कुछ मित्रों को भी इस क्रियाकलाप में लगाइए। अब अपने मित्रों को यह कार्ड एक-एक करके दिखाइए तथा उनसे प्रत्येक अभिव्यक्त हो रहे संवेग को पहचानने को कहिए। उनकी अनुक्रियाओं को लिखिए तथा देखिए कि वे परस्पर एक-दूसरे से एक ही संवेग को लेबल करने में कितने भिन्न हैं। आप इन चित्रों को श्रेणीबद्ध भी कर सकते हैं, इस प्रकार की श्रेणियाँ लेते हुए, जैसे- विध्यात्मक-निषेधात्मक, तीव्र एवं सूक्ष्म संवेग इत्यादि। यह देखिए कि लोग एक ही संवेग को अभिव्यक्त करने में परस्पर एक-दूसरे से कैसे भिन्न हैं। इन भिन्नताओं के क्या कारण हो सकते हैं? कक्षा में चर्चा कीजिए।

नज़दीकी का प्रत्यक्षण आरामदेह स्थिति के रूप में करते हैं। वास्तव में, कम दूरी में छूना या स्पर्श करना संवेगात्मक उष्णता या सहृदयता का परिचायक समझा जाता है। उदाहरण के लिए, यह पाया गया कि अरबी मूल के लोग उन उत्तर अमरीकी लोगों के प्रति विमुखता महसूस करते हैं जो अंत:क्रिया के दौरान सूँघने की दूरी (अत्यधिक निकट) के बाहर रह कर ही अंत:क्रिया करना पसंद करते हैं।

संस्कृति एवं संवेगों का नामकरण

मूल संवेग, श्रेणीगत नामों या लेबल तथा विस्तारण में भी परस्पर भिन्न होते हैं। टाहिटी भाषा में अंग्रेज़ी के शब्द 'क्रोध' के लिए 46 लेबल या नाम हैं। जब उत्तरी अमरीकियों से मुक्त रूप से लेबल लगाने को कहा गया तो क्रोध अभिव्यक्त करने वाले चेहरे के लिए उन्होंने 40 लेबल दिए, तथा अवमानना अभिव्यक्त करने वाले चेहरे को देख कर 81 लेबल दिए। जापानियों ने विभिन्न संवेग अभिव्यक्त करने वाले चेहरों को देखकर भिन्न-भिन्न लेबल प्रस्तुत किए। प्रसन्नता अभिव्यक्त करने वाले चेहरे को देखकर (10 लेबल), क्रोध (8 लेबल), तथा घृणा (6 लेबल) के लिए लेबल की मात्रा अलग-अलग थी। प्राचीन चीनी साहित्य में सात संवेगों का उल्लेख है, जिनके नाम हैं - हर्ष, क्रोध, दुख, भय, प्रेम, नापसंद तथा पसंद। प्राचीन भारतीय साहित्य में आठ प्रकार के संवेगों को चिह्नित किया गया है, जिनके नाम हैं - प्रेम, आमोद-प्रमोद, ऊर्जा, आश्चर्य, क्रोध, शोक, घृणा, तथा भय। पाश्चात्य साहित्य में कुछ संवेग; जैसे - प्रसन्नता, दुख, भय, क्रोध तथा घृणा को एकसमान रूप से मनुष्यों के लिए मूल समझा जाता है। जबकि कुछ अन्य संवेग; जैसे- आश्चर्य, अवमानना, शर्म तथा अपराध बोध को सबके लिए मूल नहीं समझा जाता है।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि कुछ मूल संवेग, सभी लोगों द्वारा अभिव्यक्त किए जाते और समझे जाते हैं चाहे उनमें नृजाति या संस्कृति के आधार पर कितने भी अंतर हों तथा कुछ संवेग किसी संस्कृति विशेष के लिए विशिष्ट होते हैं। यह याद रखना आवश्यक है कि संवेगों की सभी प्रक्रियाओं में संस्कृति की विशेष भूमिका है। संवेगों की अभिव्यक्ति तथा अनुभूति दोनों ही संस्कृति विशेष के 'प्रदर्शन नियमों' के द्वारा प्रभावित होती हैं जो कि उनकी मध्यस्थता एवं रूपांतरण दोनों करती हैं। अर्थात उन दशाओं की सीमा तय करती हैं जिनमें संवेगों की अभिव्यक्ति की जा सकती है तथा जितनी तीव्रता से वे प्रदर्शित किए जाते हैं।

निषेधात्मक संवेगों का प्रबंधन

कोई ऐसा दिन जीने का प्रयास कीजिए जब आपने किसी संवेग का अनुभव न किया हो। आप शीघ्र ही समझ जाएँगे कि ऐसे जीवन की कल्पना करना ही कठिन है जिसमें संवेग न हों। संवेग हमारे दैनिक जीवन तथा अस्तित्व के अंश हैं। वे हमारे जीवन के ताने-बाने तथा अंतर्वैयक्तिक संबंधों को बनाते हैं।

संवेग एक सांतत्यक के अंश हैं। किसी संवेग को अनेक तीव्रताओं पर अनुभव किया जा सकता है। आप थोड़ी-सी प्रसन्नता या उल्लास का, थोड़ा विचार-मग्नता या शोकाकुलता का अनुभव कर सकते हैं। यद्यपि हममें से अधिकांश लोग संवेगों में संतुलन बनाए रखने में सफल होते हैं।

जब द्वंद्वात्मक परिस्थिति होती है तो व्यक्ति उसके साथ समायोजन करने का प्रयास करते हैं तथा सामना करने के लिए या तो कार्योन्मुख या रक्षा-उन्मुख उपाय अपनाते हैं। ये समायोजी उपाय उन्हें कुछ असामान्य संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं; जैसे- दुश्चिंता, अवसाद इत्यादि को करने से रोकते हैं। **दुश्चिंता** (anxiety) वह दशा है जो व्यक्ति उपयुक्त अहं रक्षा को न अपनाने के कारण हुई असफलता की स्थिति में विकसित कर लेता है। उदाहरण के लिए, यदि व्यक्ति अपने किसी अनैतिक कार्य (जैसे- नकल या धोखाधड़ी या चोरी करना) को तर्कसंगत ठहराने के रक्षा उपाय में असफल हो जाता है, तो वह इस कार्य के परिणामों के बारे में तीव्र आशंका से ग्रस्त हो जाता है। दुश्चिंतित व्यक्तियों को ध्यान केंद्रित करने में तथा तुच्छ विषय पर भी निर्णय लेने में अत्यंत कठिनाई का अनुभव होता है।

अवसाद की स्थिति, व्यक्ति के तर्कसंगत सोचने की, वास्तविकता का अनुभव करने की तथा सक्षम रूप से कार्य करने की योग्यता पर विषम प्रभाव डालती है। वह व्यक्ति की मनोदशा को पूर्णत: अभिभूत कर देती है। अवसाद क्योंकि दीर्घकाल तक चलता है, अत: अवसादग्रस्त व्यक्ति में अनेक लक्षण विकसित हो जाते हैं; जैसे- नींद आने में कठिनाई, मन:चालित क्षोभ या मंदन में वृद्धि होना, सोचने या ध्यान केंद्रित करने में कठिनाई, तथा सामाजिक एवं वैयक्तिक क्रियाकलापों में नीरसता अनुभव करना, इत्यादि।

दैनिक जीवन में हम अक्सर द्वंद्वात्मक परिस्थितियों का सामना करते हैं। कठिन और दबावमय परिस्थितियों में किसी व्यक्ति में बहुत से निषेधात्मक संवेग; जैसे- भय, दुश्चिंता, विरुचि इत्यादि विकसित हो जाते हैं। यदि इस प्रकार के

बॉक्स 9.4 अभिघातज उत्तर दबाव विकार

कोई आपदा, मानव समाज की क्रियाओं में गंभीर व्यवधान उत्पन्न कर देती है जिससे विस्तृत भौतिक एवं पर्यावरणी नुकसान होता है, इसकी भरपाई उपलब्ध संसाधनों से तत्काल संभव नहीं होती। यह आपदा प्राकृतिक (जैसे- भूकंप/तूफान/सुनामी) हो सकती है, या मनुष्य-निर्मित (जैसे- युद्ध) हो सकती है। इन आपदाओं में व्यक्ति जो मानसिक अभिघात अनुभव करता है वह केवल उनके प्रत्यक्षण से लेकर उनका सामना करने तक कुछ भी हो सकता है, जो जीवन के अस्तित्व के लिए भी खतरा उत्पन्न कर सकता है। इनमें से कोई भी दशा अभिघातज उत्तर दबाव विकार उत्पन्न कर सकती है, जहाँ व्यक्ति उन अभिघात पहुँचाने वाले अनुभवों को बारंबार अनैच्छिक रूप से सोचता है, वे पूर्व दृश्य बार-बार उसके मन में कौंध जाते हैं तथा काफी समय बीत जाने पर भी उस घटना से संबंधित विचार उसे भयंकर रूप से ग्रस्त किए रहते हैं। यह स्थिति व्यक्ति को सांवेगिक रूप से व्याकुल करती रहती है तथा व्यक्ति दैनिक जीवन की नियमित क्रियाओं के लिए उपयुक्त साधक युक्तियाँ विकसित नहीं कर पाता। विशिष्ट एवं पहचाने जा सकने वाले कुसमायोजित व्यवहारों (जैसे- अवसाद) तथा स्वायत्त उद्वेलन के स्वरूप में संवेग प्रकट होते हैं।

निषेधात्मक संवेगों को लंबे समय तक चलते रहने दिया जाए, तो वे व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव डाल सकते हैं। यही कारण है कि अधिकांश दबाव प्रबंधन के कार्यक्रम, संवेगों के प्रबंधन को दबाव प्रबंधन के लिए आवश्यक मानते हैं। संवेग प्रबंधन का फोकस *निषेधात्मक संवेगों में कमी तथा विध्यात्मक संवेगों में वृद्धि करने पर होता है।*

यद्यपि अधिकांश शोधकर्ताओं का फोकस निषेधात्मक संवेगों; जैसे- क्रोध, भय, दुश्चिंता इत्यादि रहा है किंतु निकट समय में 'विध्यात्मक मनोविज्ञान' के क्षेत्र ने उत्कर्ष हासिल किया है। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, विध्यात्मक मनोविज्ञान का सरोकार उन विशेषताओं के अध्ययन से है जो जीवन को वैभवशाली बनाती हैं; जैसे- भरोसा, प्रसन्नता, सर्जनात्मकता, साहस, आशावादिता, उल्लास इत्यादि।

आधुनिक काल में सफल संवेग प्रबंधन ही प्रभावी सामाजिक प्रबंधन की कुंजी है। निम्नलिखित युक्तियाँ सम्भवत: संवेगों के वांछित संतुलन बनाए रखने के लिए उपयोगी सिद्ध होंगी।

- ***आत्म-जागरूकता को बढ़ाइए*** : अपने संवेगों और अनुभूतियों को जानिए, उनके प्रति जागरूक होइए। अपनी अनुभूतियों के 'क्यों' तथा 'कैसे' के बारे में अंतर्दृष्टि विकसित कीजिए।
- ***परिस्थिति का वास्तविकता पूर्ण आकलन कीजिए*** : यह मत प्रतिपादित किया गया है कि संवेग के पूर्व घटना का मूल्यांकन किया जाता है। यदि घटना का अनुभव बाधा पहुँचाने वाला होता है, तो आपका अनुकंपी तंत्रिका-तंत्र उद्वेलित हो जाता है तथा आप दबाव का अनुभव करने लगते हैं। यदि आप घटना का अनुभव बाधा पहुँचाने वाले के रूप में नहीं करते तो कोई दबाव भी नहीं होता। अत: वस्तुत: आप ही यह निर्णय करते हैं कि दुखी और दुश्चिंतित अनुभव करें या प्रसन्न और शांत।
- ***आत्म-परिवीक्षण कीजिए*** : इसके अंतर्गत, सतत या समय-समय पर अपनी पूर्व उपलब्धियों, संवेगात्मक और शारीरिक दशा, तथा वास्तविक एवं प्रतिस्थानिक अनुभवों का मूल्यांकन शामिल है। एक सकारात्मक मूल्यांकन आपके स्वयं पर विश्वास की वृद्धि करेगा तथा कल्याण एवं संतोष की भावना बढ़ाएगा।
- ***आत्म-प्रतिरूपण का निर्माण कीजिए*** : स्वयं अपना आदर्श बनिए। अपने पुराने अच्छे निष्पादन का बार-बार प्रेक्षण कीजिए तथा उनका उपयोग भविष्य के लिए प्रेरणा और अभिप्रेरणा के रूप में और भी बेहतर निष्पादन के लिए कीजिए।
- ***प्रात्यक्षिक पुनर्व्यवस्था तथा संज्ञानात्मक पुनर्रचना*** : घटनाओं के दूसरे पहलू का निरीक्षण कीजिए तथा सिक्के के दूसरे पहलू पर भी ध्यान दीजिए। अपने विचारों का पुनर्गठन, विध्यात्मक तथा संतोष प्रदान करने वाली अनुभूतियों में वृद्धि करने तथा निषेधात्मक विचारों का परिहार करने के लिए कीजिए।
- ***सर्जनात्मक बनिए*** : कोई रुचि या शौक विकसित कीजिए। किसी ऐसी क्रिया, जो आपकी रुचि की है तथा आपका मनोरंजन करती है, में भाग लीजिए।

- ***अच्छे संबंधों को विकसित कीजिए तथा पोषण कीजिए :*** अपने मित्रों का चयन संभाल कर कीजिए। यदि आपके मित्र प्रसन्न और हर्षित होंगे तो उनके साथ सामान्यत: आप भी प्रसन्न रहेंगे।
- ***तदनुभूति रखिए :*** दूसरों की भावनाओं को समझने का प्रयास कीजिए। अपने संबंधों को अर्थपूर्ण तथा मूल्यवान बनाइए। पारस्परिक रूप से सहायता माँग भी लीजिए और दीजिए भी।

बॉक्स 9.5 परीक्षा-दुश्चिंता का प्रबंधन

हममें से अधिकांश लोगों को परीक्षा के निकट आने पर पेट में मंथन तथा दुश्चिंता का अनुभव होने लगता है। वस्तुत: अधिकांश व्यक्तियों के लिए कोई भी वह परिस्थिति जहाँ उन्हें निष्पादन करना है तथा उन्हें ज्ञात है कि उनके निष्पादन का मूल्यांकन किया जाना है, एक दुश्चिंता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति होती है। एक स्तर तक तो दुश्चिंता का होना आवश्यक है क्योंकि वह हमें अभिप्रेरित करती है कि हम अपना सर्वोत्तम निष्पादन करें किंतु दुश्चिंता का उच्च स्तर इष्टतम निष्पादन तथा उपलब्धि में बाधक होता है। दुश्चिंतित व्यक्ति, शारीरिक एवं संवेगात्मक रूप से प्रबल रूप से उद्वेलित होता है और इसीलिए अपनी योग्यता के उच्चतम स्तर पर निष्पादन नहीं कर पाता।

परीक्षा एक दबाव जनित करने की संभावना वाली परिस्थिति है तथा दूसरी दबावमय परिस्थितियों की तरह उसका सामना दो प्रकार की युक्तियों द्वारा किया जा सकता है, परिवीक्षण अथवा प्रभावोत्पादक क्रिया तथा भोथरा या कुंद हो जाना या परिस्थिति से पलायन।

परिवीक्षण या मॉनीटरिंग के अंतर्गत दबावमय स्थिति से निपटारा करने के लिए सीधे तथा प्रभावी क्रिया की आवश्यकता होती है। निम्नलिखित युक्तियों के द्वारा परिवीक्षण किया जा सकता है :

- ***अच्छी तैयारी :*** *परीक्षा की अच्छी तैयारी कीजिए तथा समय से पूर्व तैयारी कीजिए। अपने आपको पर्याप्त समय दीजिए। अक्सर पूछे जाने वाले प्रश्नों तथा प्रश्न-पत्रों के स्वरूप से परिचित हो जाइए। इससे आपको नियंत्रण एवं पूर्वानुमान का बोध होगा तथा परीक्षा के कारण दबाव की संभाव्यता में कमी आएगी।*
- ***पूर्वाभ्यास कीजिए :*** *आप स्वयं एक बनावटी परीक्षा दीजिए। अपने मित्र से कहिए कि वह आपके ज्ञान की परीक्षा ले। आप मानसिक रूप से कल्पना में भी पूर्वाभ्यास कर सकते हैं। कल्पना में अपने आपको पूरी तरह शांत होकर एवं विश्वास से भर कर परीक्षा देते हुए देखिए तथा फिर कल्पना कीजिए कि आप उत्तम श्रेणी से सफल हुए हैं।*
- ***प्रतिरोधक टीका लगाना :*** *दबाव के लिए अपना टीकाकरण कीजिए। पूर्वाभ्यास तथा भूमिका निर्वहन के द्वारा आप परीक्षा की परिस्थिति का सामना करने के लिए शारीरिक तथा मानसिक रूप से अधिक तैयार हो सकते हैं तथा उसका सामना अधिक विश्वास के साथ कर सकते हैं।*
- ***सकारात्मक चिंतन :*** *अपने आप पर भरोसा कीजिए। अपने विचारों को व्यवस्थित कीजिए। उन विचारों को, जो आपको चिंतित करते हैं क्रमवार व्यवस्थित कीजिए और फिर एक-एक करके उनका समाधान कीजिए। अपनी प्रबलताओं और क्षमताओं पर अधिक ज़ोर दीजिए। अपने आपको विध्यात्मक सोच और उत्साह बनाए रखने के लिए प्रेरित कीजिए।*
- ***आलंब (सहारा) ढूँढ़िए :*** *अपने मित्रों, माता-पिता, शिक्षकों या अपने से वरिष्ठ जनों से सहायता माँगने में मत हिचकिचाइए। अपने किसी निकट व्यक्ति के साथ दबावमय परिस्थिति के विषय में बातचीत करने से बोझ हलका लगने लगता है तथा व्यक्ति को अंतर्दृष्टि विकसित करने में सहायता मिलती है। हो सकता है परिस्थिति उतनी खराब न हो जितनी प्रतीत हो रही थी।*

दूसरी ओर, भोथरी करने वाली युक्तियों में पलायन पर बल रहता है। यह सही है कि परीक्षा की स्थिति में न तो पलायन वांछनीय है, न संभव ही है, फिर भी निम्नलिखित युक्तियाँ उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं:

- ***विश्राम करिए :*** *शिथिल होकर विश्राम करना सीखिए। विश्राम की तकनीकें आपको शांत करती हैं तथा अपने विचारों को पुन:गठित करने का अवसर प्रदान करती हैं। विश्राम की कई तकनीकें हैं। सामान्यत:, इसके अंतर्गत किसी शांत जगह में आराम से बैठना या लेटना होता है, मांसपेशियों को ढीला छोड़ कर, बाह्य उत्तेजनाओं को कम करते हुए तथा विचार शृंखला को भी कम करते हुए फोकस करना होता है।*
- ***व्यायाम :*** *दबावमय स्थिति अनुकंपी तंत्रिका तंत्र को अति उत्तेजित कर देती है। इसके द्वारा उत्पन्न ऊर्जा को व्यायाम द्वारा दूसरे माध्यम की ओर मोड़ा जा सकता है। कुछ अवधि का हलका व्यायाम या खेल आपको अपना ध्यान अपनी पढ़ाई पर केंद्रित करने में सहायता देगा।*

- ***सामुदायिक सेवा में भागीदारी कीजिए :*** दूसरों की सहायता करके अपनी सहायता कीजिए। सामुदायिक सेवा (उदाहरण के लिए, किसी बौद्धिक रूप से चुनौतीपूर्ण बालक को कोई अनुकूली कौशल सीखने में सहायता कीजिए) करने से आपको अपनी कठिनाइयों के विषय में महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्राप्त होगी।

क्रियाकलाप 9.4

निकट समय में आपने जो तीव्र संवेगात्मक अनुभव किया हो उसके बारे में सोचिए तथा घटनाक्रम की व्याख्या कीजिए। आपने उसका निस्तारण कैसे किया? अपनी कक्षा में उसकी चर्चा कीजिए।

आपके क्रोध का प्रबंधन

क्रोध एक निषेधात्मक संवेग है। यह मन को कहीं और खींच ले जाता है, या दूसरे शब्दों में क्रोध की दशा में व्यक्ति का नियंत्रण अपने व्यवहारात्मक कार्यों पर नहीं रहता। क्रोध का प्रमुख स्रोत अभिप्रेरकों का कुंठित होना है। किंतु, क्रोध कोई प्रतिवर्त नहीं है, बल्कि यह हमारी सोच का परिणाम है। न तो यह स्वचालित है और न ही नियंत्रण के परे है, और न ही यह दूसरों के द्वारा उत्पन्न होता है। यह व्यक्ति के द्वारा चयनित विकल्प के द्वारा उत्पन्न होता है, क्योंकि क्रोध आपके अपने चिंतन के द्वारा उत्पन्न होता है इसलिए उसका नियंत्रण भी आपके विचारों के द्वारा ही किया जा सकता है। क्रोध प्रबंधन में कुछ महत्वपूर्ण बिंदु हैं :

- अपने विचारों की शक्ति को पहचानें।
- जान लीजिए कि आप, अकेले आप ही इसे नियंत्रित कर सकते हैं।
- ऐसा 'आत्म-संवाद' ना कीजिए जो आपको जला कर रख दे। निषेधात्मक भावनाओं को बढ़ा कर अतिरंजित मत कीजिए।
- दूसरों के व्यवहारों के पीछे इरादों तथा गुप्त अभिप्रेरकों का आरोपण मत कीजिए।
- दूसरे व्यक्तियों तथा घटनाओं के संबंध में अतार्किक विश्वासों को मत पनपने दीजिए।
- अपने क्रोध को व्यक्त करने के लिए रचनात्मक तरीके ढूँढ़िए। अपने क्रोध की अभिव्यक्ति की मात्रा तथा अवधि को नियंत्रित कीजिए।
- क्रोध के नियंत्रण के लिए अपने भीतर झाँकिए न कि बाहर।
- परिवर्तन लाने के लिए स्वयं को समय दीजिए। किसी आदत में परिवर्तन लाने में प्रयास और समय लगाना पड़ता है।

विध्यात्मक संवेगों में वृद्धि

हमारे संवेगों का एक उद्देश्य होता है। वे हमें निरंतर परिवर्तनशील पर्यावरण के साथ अनुकूलन करने में सहायता करते हैं तथा उनका महत्त्व हमारे अस्तित्व तथा कल्याण के लिए है। निषेधात्मक संवेग; जैसे- भय, क्रोध या विरुचि हमें मानसिक तथा शारीरिक रूप से ऐसे उद्दीपक जो चुनौतीपूर्ण हैं, के प्रति तत्काल क्रिया करने के लिए तैयार करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि भय न होता तो हम विषधारी सर्प को हाथ में पकड़ लेते। यद्यपि निषेधात्मक संवेग इस प्रकार की परिस्थितियों में हमें सुरक्षा प्रदान करते हैं, किंतु ऐसे संवेगों का अत्यधिक अथवा अनुप्रयुक्त उपयोग हमारे जीवन के लिए संकट उत्पन्न कर सकता है, क्योंकि यह हमारी प्रतिरोधक प्रणाली को क्षति पहुँचा सकता है तथा हमारे स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक हो सकता है।

विध्यात्मक संवेग; जैसे- भरोसा, हर्ष, आशावाद, संतोष, और आभार हमें ऊर्जा प्रदान करते हैं तथा हमारे भीतर संवेगात्मक कल्याण के भाव को जगाते हैं। जब हम विध्यात्मक संवेगों का अनुभव करते हैं तब हम विविध प्रकार के विचारों तथा संक्रियाओं के लिए स्वीकारोक्ति प्रदर्शित करते हैं। जो भी समस्याएँ हमारे समक्ष हों उनसे निपटने के लिए हम अधिक संभाव्यताओं तथा विकल्पों को सोच सकते हैं, इस प्रकार हम अग्रलक्षी हो जाते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने पाया है कि जिन लोगों को क्रोध तथा भय उत्पन्न करने वाली फिल्में दिखाई गईं, उनकी अपेक्षा उन व्यक्तियों ने, जिन्हें हर्ष एवं संतोष प्रदर्शित करने वाली फिल्में दिखाई गईं, ऐसे कार्यों के बारे में अधिक विचार अभिव्यक्त किए जिन्हें वे कार्यरूप देना चाहेंगे। विध्यात्मक संवेग हमें प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने तथा जल्दी से सामान्य स्थिति में लौटने के लिए अधिक योग्यता प्रदान करते हैं। वे हमारी दीर्घ-कालिक योजनाएँ तथा लक्ष्य निर्धारित करने में तथा नए संबंधों का निर्माण करने में सहायता करते हैं। विध्यात्मक संवेगों में वृद्धि के लिए कुछ उपाय आगे दिए गए हैं।

बॉक्स 9.6 सांवेगिक बुद्धि

संवेगों की अभिव्यक्ति, स्वयं अपने तथा दूसरों के लिए, उनके नियमन पर निर्भर करती है। वे व्यक्ति जो अपने तथा दूसरों के संवेगों के प्रति जागरूक होते हैं तथा तद्नुसार उनका नियमन कर लेते हैं, वे सांवेगिक रूप से बुद्धिमान कहे जाते हैं। जो लोग ऐसा नहीं कर पाते वे विसामान्य हो जाते हैं तथा अपसामान्य प्रतिक्रिया करते हैं, जिससे अनेक प्रकार की मनोविकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

सांवेगिक बुद्धि से हम समझते हैं, 'वह योग्यता जिसके द्वारा स्वयं अपने तथा दूसरों के संवेगों का परिवीक्षण किया जाए, उनमें विभेदन किया जा सके तथा उस सूचना का उपयोग अपने चिंतन तथा क्रियाओं को निर्देशित करने के लिए किया जा सके' (मेयर तथा सैलोवी, 1999)। सांवेगिक बुद्धि के संप्रत्यय में, व्यक्ति के भीतर तथा अंतर्वैयक्तिक दोनों प्रकार के तत्व अंतर्निहित हैं। व्यक्ति के भीतर के तत्वों में ऐसे कारक अंतर्निहित हैं; जैसे- आत्म-जागरूकता (अपनी निषेधात्मक संवेगों तथा आवेगों को नियंत्रित रखने की योग्यता) तथा स्व-अभिप्रेरणा (गतिरोध के बाद भी उपलब्धि अंतर्नोद, लक्ष्य प्राप्ति के लिए कौशलों को विकसित करना, तथा अवसर मिलने पर कार्य प्रारंभ करना)। सांवेगिक बुद्धि के अंतर्वैयक्तिक तत्वों में दो अंश अंतर्निहित हैं : सामाजिक जागरूकता (दूसरों की भावनाओं के प्रति जागरूकता तथा उनके महत्त्व को समझना) तथा सामाजिक सक्षमता (वे सामाजिक कौशल जिनके द्वारा दूसरों के साथ समायोजन किया जा सकता है, जैसे कि टीम या दल का निमार्ण, द्वंद्व प्रबंधन, संप्रेषण कौशल इत्यादि)।

- **व्यक्तित्व विशेष गुण;** जैसे- आशावाद, भरोसा करना, प्रसन्नता, तथा विध्यात्मक आत्ममान।
- भयंकर परिस्थितियों में भी **विध्यात्मक अर्थ** खोजना।
- दूसरों के साथ **उत्कृष्ट संबंध** तथा निकट संबंधों का समर्थक जाल या नेटवर्क रखना।
- काम-काज तथा प्रवीणता उपलब्ध करने में **व्यस्त रहना**।
- **विश्वास** जिसमें सामाजिक आलंब, उद्देश्य तथा आशा, और उद्देश्यपूर्ण जीवनयापन सम्मिलित हो।
- अधिकांश दैनिक घटनाओं की **विध्यात्मक व्याख्याएँ**।

प्रमुख पद

गलतुंडिका, दुश्चिंता, उद्वेलन, मूल संवेग, जैविक आवश्यकताएँ (भूख, प्यास, काम), केंद्रीय तथा स्वायत्त तंत्रिका तंत्र, द्वंद्व, सांवेगिक बुद्धि, सम्मान संबंधी आवश्यकताएँ, परीक्षा-दुश्चिंता, संवेगों की अभिव्यक्ति, कुंठा, आवश्यकताओं का पदानुक्रम, अभिप्रेरणा, अभिप्रेरक, आवश्यकता, शक्ति अभिप्रेरक, मनोसामाजिक अभिप्रेरक, आत्मसिद्धि, आत्म-सम्मान।

सारांश

- *किसी विशेष लक्ष्य की ओर निर्दिष्ट सतत व्यवहार की प्रक्रिया, जो किन्हीं अंतर्नोद शक्तियों का नतीजा होती है, को अभिप्रेरणा कहते हैं।*
- *अभिप्रेरणाएँ दो प्रकार की होती हैं - जैविक तथा मनोसामाजिक।*
- *जैविक अभिप्रेरणा में फोकस, अभिप्रेरणा के सहज या जन्मजात, जैविक कारकों; जैसे- हार्मोन, तंत्रिका-संचारक, मस्तिष्क संरचना अधश्चेतक, उपवल्कुटीय तंत्र इत्यादि पर केंद्रित होता है। जैविक अभिप्रेरणा के उदाहरण हैं, भूख, प्यास तथा काम।*
- *मनोसामाजिक अभिप्रेरणा उन अभिप्रेरकों की व्याख्या करती है जो प्रमुखत: व्यक्ति के उसके सामाजिक पर्यावरण के साथ अंत:क्रिया के परिणामस्वरूप विकसित होते हैं। मनोसामाजिक अभिप्रेरकों के उदाहरण, संबंधन की आवश्यकता, उपलब्धि की आवश्यकता, जिज्ञासा एवं अन्वेषण, तथा शक्ति की आवश्यकता हैं।*
- *मैस्लो ने विभिन्न मानव आवश्यकताओं को आरोही पदानुक्रम में व्यवस्थित किया है, जो मूल शरीरक्रियात्मक आवश्यकताओं से प्रारंभ होकर, फिर सुरक्षा की आवश्यकताएँ, प्रेम तथा आत्मीयता की आवश्यकताएँ, सम्मान की आवश्यकताएँ और अंत में सबसे ऊपर आत्म-सिद्धि की आवश्यकताओं तक विस्तृत हैं।*

- *अभिप्रेरणा से संबंधित अन्य संप्रत्यय कुंठा तथा द्वंद्व हैं।*
- *संवेग उद्वेलन का एक जटिल स्वरूप है जिसमें शरीरक्रियात्मक सक्रियकरण, अनुभूतियों के प्रति चेतन जागरूकता, तथा एक विशिष्ट संज्ञानात्मक लेबल जो इस प्रक्रिया की व्याख्या करते हैं, अंतर्निहित हैं।*
- *कुछ संवेग मूल होते हैं; जैसे- हर्ष, क्रोध, दु:ख, आश्चर्य, भय आदि। दूसरे संवेगों का अनुभव इन संवेगों के संयोजन के कारण होता है।*
- *संवेगों के नियमन में केंद्रीय तथा स्वायत्त तंत्रिका तंत्र महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।*
- *संवेगों की अभिव्यक्ति तथा व्याख्या में संस्कृति पूरी शक्ति से प्रभाव डालती है।*
- *संवेग वाचिक और अवाचिक माध्यमों से अभिव्यक्त होते हैं।*
- *शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक कल्याण के लिए संवेगों का सफल प्रबंधन महत्वपूर्ण है।*

समीक्षात्मक प्रश्न

1. अभिप्रेरणा के संप्रत्यय की व्याख्या कीजिए।
2. भूख तथा प्यास की आवश्यकताओं के जैविक आधार क्या हैं?
3. किशोरों के व्यवहारों को उपलब्धि, संबंधन तथा शक्ति की आवश्यकताएँ कैसे प्रभावित करती हैं? उदाहरणों के साथ समझाइए।
4. मैस्लो के आवश्यकता पदानुक्रम के पीछे प्राथमिक विचार क्या हैं? उपयुक्त उदाहरणों की सहायता से व्याख्या कीजिए।
5. क्या शरीरक्रियात्मक उद्वेलन सांवेगिक अनुभव के पूर्व या पश्चात घटित होता है? व्याख्या कीजिए।
6. क्या संवेगों की चेतन रूप से व्याख्या तथा नामकरण करना उनको समझने के लिए महत्वपूर्ण है? उपयुक्त उदाहरण देते हुए चर्चा कीजिए।
7. संस्कृति संवेगों की अभिव्यक्ति को कैसे प्रभावित करती है?
8. निषेधात्मक संवेगों का प्रबंधन क्यों महत्वपूर्ण है? निषेधात्मक संवेगों के प्रबंधन हेतु उपाय सुझाइए।

परियोजना विचार

1. मैस्लो के आवश्यकता पदानुक्रम का उपयोग करते हुए विश्लेषण कीजिए कि महान गणितज्ञ एस.ए. रामानुजन तथा महान संगीताचार्य शहनाई वादक उस्ताद बिसमिल्लाह खान (भारत रत्न) को अपने-अपने क्षेत्रों में अति विशिष्ट निष्पादन के लिए किस प्रकार की अभिप्रेरक शक्तियों ने अभिप्रेरित किया होगा। अब अपने आपको तथा पाँच अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियों को आवश्यकता संतुष्टि की परिस्थिति में रखिए। चिंतन और चर्चा कीजिए।
2. बहुत से घरों में लोग बिना नहाए भोजन नहीं करते तथा धार्मिक व्रत रखते हैं। आपकी भूख तथा प्यास की अभिव्यक्ति को विभिन्न सामाजिक रीतिरिवाजों ने कैसे प्रभावित किया है? विभिन्न पृष्ठभूमि के पाँच लोगों पर सर्वेक्षण करके एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।

शब्दावली

निरपेक्ष सीमा (Absolute threshold) : किसी उद्दीपक के पता लगने की आवश्यक न्यूनतम तीव्रता।

समंजन (Accommodation) : लेंस की आकृति को बदलने के लिए पक्ष्माभिकी पेशी की चाक्षुष क्रिया।

परसंस्कृतिग्रहण (Acculturation) : दो भिन्न सांस्कृतिक समूहों में प्रथम एवं सतत संपर्क के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तन।

उपलब्धि की आवश्यकता (Achievement need) : सफल होना, अग्रगण्य होना, दूसरों से अच्छा कार्य निष्पादन करने की आवश्यकता, ऐसे चुनौतीपूर्ण कार्यों को करना जो व्यक्ति की योग्यता का प्रदर्शन करें।

तीक्ष्णता (Acuity) : दृष्टि की तीक्ष्णता।

किशोरावस्था (Adolescence) : बाल्यावस्था से वयस्क होने के पहले की विकासात्मक अवधि, जो कि लगभग 10-12 वर्ष की उम्र से प्रारंभ होकर 18 से 22 वर्ष की उम्र तक विस्तृत है।

एड्रिनलीन (Adrenaline) : मानव शरीर का एक अत्यंत महत्वपूर्ण हार्मोन जो किसी को लड़ने, भागने या भयभीत होने की प्रतिक्रिया के लिए तैयार करता है।

एड्रीनोकॉर्टिकोट्रोफिक हार्मोन (Adrenocorticotrophic hormone - ACTH) : अग्रपीयूष ग्रंथि द्वारा स्रावित एक हार्मोन जो एड्रिनल को उद्दीप्त करता है कि वह अपना कॉर्टिकोयड हार्मोन स्रावित करे।

आकाशी परिप्रेक्ष्य (Aerial perspective) : गहराई के प्रत्यक्षीकरण के लिए एक एकनेत्री संकेत, जो विभिन्न वायुमंडलीय परिस्थितियों के अंतर्गत वस्तुओं की सापेक्षिक स्पष्टता को व्यक्त करता है। निकट की वस्तुएँ सामान्यत: सूक्ष्म विशेषताओं के साथ अधिक स्पष्ट होती हैं, जबकि दूर की वस्तुएँ कम स्पष्ट होती हैं।

अभिवाही तंत्रिका कोशिका (Afferent neuron) : सूचना भेजने की प्रक्रिया में लगी हुई तंत्रिका कोशिकाएँ।

उत्तर प्रतिमा (After image) : वह बिंब जो किसी उद्दीपन के खत्म हो जाने या दूर हो जाने के बाद भी बना रहता है।

पूर्ण या शून्य नियम (All-or-none law) : इस नियम के अनुसार एक तंत्रिका कोशिका किसी उद्दीपन के प्रति या तो अपनी पूरी शक्ति के साथ प्रतिक्रिया करेगी अथवा बिलकुल ही प्रतिक्रिया नहीं करेगी, भले ही उद्दीपन की मात्रा कितनी भी तीव्र क्यों न हो।

आयाम (Amplitude) : ध्वनि तरंगों में, आधार रेखा से प्रत्येक सिंसिसॉयडल तरंग के शीर्ष तक की दूरी। ई.ई.जी. मापन में, ई.ई.जी. अभिलेख (रिकॉर्ड) में अधिकतम और न्यूनतम वोल्टेज से दूरी। प्रत्येक मामले में सामान्यत: तीव्रता के माप के रूप में इसका उपयोग होता है।

गलतुंडिका (Amygdala) : बादाम के आकार के दो तंत्रिका गुच्छ जो उपवल्कुटीय तंत्र के घटक हैं तथा संवेगों से जुड़े होते हैं।

जीववाद (Animism) : पूर्व-संक्रियात्मक चिंतन का एक पक्ष या विश्वास कि निर्जीव वस्तुओं में 'जीवन जैसे' गुण होते हैं और वे कार्य करने में सक्षम हैं।

दुश्चिंता (Anxiety) : पूर्वकथनीय शरीरक्रियात्मक परिवर्तनों के साथ आशंका अथवा भय की सामान्य अनुभूति।

उपागम-उपागम द्वंद्व (Approach-approach conflict) : दो समान प्रिय या इच्छित लक्ष्यों के बीच चयन का द्वंद्व।

उपागम-परिहार द्वंद्व (Approach-avoidance conflict) : किसी स्थिति के कारण उत्पन्न द्वंद्व जिसके सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही पक्ष हैं। वह व्यक्ति, जो समान लक्ष्य द्वारा विकर्षित एवं आकर्षित है, दुविधा की अनुभूति का प्रदर्शन करता है।

भाव प्रबोधन या उद्वेलन (Arousal) : उद्वेलन शरीर की क्रियात्मक अवस्था है।

कृत्रिम बुद्धि (Artificial intelligence - AI) : यह क्षेत्र मशीनों की निर्मिति (जैसे- कंप्यूटर) से संबद्ध है, जो कि जटिल काम कर सकती हैं, जिसके लिए पहले मानव बुद्धि की आवश्यकता समझी जाती थी।

सहचारी अधिगम (Associative learning) : ऐसा अधिगम जिसमें कुछ घटनाएँ साथ-साथ घटित होती हैं। ये घटनाएँ दो उद्दीपक हो सकती हैं (जैसा कि प्राचीन अनुबंधन में) या एक अनुक्रिया और उसका परिणाम (जैसाकि क्रियाप्रसूत अनुबंधन में) हो सकती हैं।

आसक्ति (Attachment) : शिशु और माता-पिता अथवा परिचर्या करने वाले के बीच एक गहन संवेगात्मक बंधन।

गुणारोपण (Attribution) : बाह्य कारकों (संकेतों) के प्रत्यक्षण के आधार पर किसी व्यक्ति की आंतरिक स्थिति के बारे में अनुमान।

प्राधिकारिक संततिपालन (Authoritative parenting) : बच्चों के पालन-पोषण की एक शैली, जिसमें माता-पिता बच्चे को स्वतंत्र होने के लिए प्रोत्साहित करते हैं लेकिन उनके कार्यों की सीमा रेखा तय करते हैं एवं उन पर नियंत्रण रखते हैं।

स्वायत्त तंत्रिका तंत्र (Autonomic nervous system) : परिधीय तंत्रिका तंत्र का एक भाग जो कुछ चिकनी ग्रंथियों अर्थात अंगों एवं ग्रंथियों की क्रियाओं में मदद करता है; जिसमें अनुकंपी और परानुकंपी तंत्रिका तंत्र शामिल हैं जो संवेगात्मक व्यवहार के लिए महत्वपूर्ण हैं।

परिहार-परिहार द्वंद्व (Avoidance-avoidance conflict) : दो समान अवांछनीय अथवा भयोत्पादक लक्ष्यों के बीच द्वंद्व; प्राय: इसका समाधान नहीं हो पाता है।

अक्षतंतु (Axon) : तंत्रिका कोशिका का वह भाग जो काय कोशिका से दूसरी कोशिकाओं तक सूचनाएँ ले जाता है।

मूल संवेग (Basic emotions) : भाव अवस्थाएँ जो मनुष्य जाति में सामान्य हैं, जिनसे अन्य भाव अवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं।

व्यवहार आनुवंशिकी (Behaviour genetics) : व्यवहार पर आनुवंशिक और पारिस्थितिक प्रभावों की शक्ति और सीमाओं का अध्ययन।

व्यवहार (Behaviour) : कोई भी प्रकट क्रिया/प्रतिक्रिया जो मनुष्य या जानवर करता है तथा जिसका किसी प्रकार प्रेक्षण किया जा सकता हो।

व्यवहारवाद (Behaviourism): एक विचारधारा जो वस्तुनिष्ठता, प्रेक्षणीय व्यवहारात्मक अनुक्रियाओं, पर्यावरणी निर्धारकों और सीखने पर बल देती है।

द्विभाषिकता (Bilingualism) : दो भाषाओं को सीखना जिसमें भिन्न वाक्-स्वन, शब्दावली एवं व्याकरणिक नियम हों।

द्विनेत्री संकेत (Binocular cues) : गहराई के संकेत, जैसे कि दृष्टिपटलीय विषमता और अभिसरण, जो दो आँखों के उपयोग पर निर्भर करते हैं।

जैवप्रतिप्राप्ति (Biofeedback **)**: एक ऐसी प्रविधि जिससे व्यक्ति अपनी शरीरक्रियात्मक प्रक्रियाओं का जिनके प्रति वह सामान्यत: अनभिज्ञ रहता है परिवीक्षण कर सके (जैसे, हृदयगति, रक्तचाप इत्यादि) तथा उन्हें नियंत्रित करना सीख सके।

अंध बिंदु (Blind spot) : वह बिंदु, जहाँ दृष्टि स्नायु आँख से बाहर जाती है और एक 'अंध' बिंदु निर्मित करती है क्योंकि वहाँ कोई संग्राहक कोशिकाएँ नहीं होतीं।

ऊर्ध्वगामी प्रक्रमण (Bottom-up processing) : आकृति प्रत्यक्षण में अंश से पूर्ण की ओर प्रगति।

मस्तिष्क स्तंभ (Brainstem) : मस्तिष्क का सबसे पुराना भाग और केंद्रीय आंतरिक हिस्सा, यह वहाँ से प्रारंभ होता है जहाँ मेरुरज्जु खोपड़ी में प्रवेश करते समय फूल जाती है; यह स्वचालित जीवनरक्षक क्रियाओं के लिए उत्तरदायी है।

विचारावेश (Brainstorming) : समस्या समाधान युक्ति जिसमें व्यक्ति या समूह समस्त संभावित विचारों को एकत्र करते हैं और तभी मूल्यांकन करते हैं जब सारे विचार एकत्र कर लिए गए हों।

द्युति (Brightness) : प्रकाश की तीव्रता अथवा तरंग-आयाम के साथ संबंधित मनोवैज्ञानिक अनुभव।

कैनन-बार्ड सिद्धांत (Cannon-Bard theory) : संवेग का एक सिद्धांत जिसके अनुसार शारीरिक परिवर्तन तथा संवेग की अनुभूति एक साथ घटित होती है।

व्यक्ति अध्ययन (Case study) : एक तकनीक जिसमें एक व्यक्ति का गहन अध्ययन किया जाता है।

कोशिका (Cell) : किसी जीवित प्राणी की आधारभूत इकाई।

केंद्रीय तंत्रिका तंत्र (Central nervous system-CNS) : तंत्रिका तंत्र का उपतंत्र, जो मस्तिष्क और मेरुरज्जु से बना होता है।

केंद्रीकरण (Centration) :दूसरी सभी विशेषताओं को छोड़कर एक विशेषता पर ध्यान केंद्रित करना।

शिर:पदाभिमुख संरूप (Cephalocaudal pattern) : वह क्रम, जिसमें सबसे अधिक विकास शीर्ष पर होता है। आकार, वजन और रूप में शारीरिक वृद्धि के साथ विभेदन क्रमशः ऊपर से नीचे की ओर होता है।

अनुमस्तिष्क (Cerebellum) : खोपड़ी के निचले स्तर या आधार पर स्थित मस्तिष्क की संरचना, जो शारीरिक गति, स्थिति और संतुलन को व्यवस्थित करती है।

प्रमस्तिष्कीय वल्कुट (Cerebral cortex) : मस्तिष्क का वह हिस्सा जो मस्तिष्क के उच्चतर संज्ञानात्मक और संवेगात्मक कार्यों का नियमन करता है।

प्रमस्तिष्कीय गोलार्द्ध (Cerebral hemispheres) : प्रमस्तिष्कीय वल्कुट के दो लगभग समरूप आधे भाग।

गुणसूत्र (Chromosomes) : तंतुवत संरचनाएँ जो 23 जोड़ों में होती हैं, प्रत्येक जोड़े का एक सदस्य माता या पिता से आता है। गुणसूत्र में उल्लेखनीय आनुवंशिक पदार्थ डीऑक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड (डी.एन.ए.) होता है।

कालानुक्रमिक आयु (Chronological age) : उन वर्षों की संख्या जो किसी व्यक्ति के जन्म के बाद से लेकर गणना के समय तक गुजर गए; जिसका सामान्यत: 'उम्र' से तात्पर्य होता है।

खंडीयन (Chunking) : परिचित उद्दीपकों के समूह को एक इकाई के रूप में संचित करना।

प्राचीन अनुबंधन (Classical conditioning) : अधिगम का एक प्रकार जिसमें कोई जीव उद्दीपकों को संबद्ध करना सीखता है। इसमें मुख्य लक्षण यह है कि मूलभूत रूप से तटस्थ लेकिन अनुबंधित उद्दीपक (CS) अननुबंधित उद्दीपक (US) के साथ बार-बार युग्मित किए जाने पर वही अनुक्रिया अर्जित कर लेता है जो किसी भी अननुबंधित उद्दीपक के लिए की जाती है।

संवरण (Closure) : संगठनात्मक प्रक्रिया जो कि अपूर्ण आकृतियों का पूर्ण के रूप में प्रत्यक्षण कराती है।

कर्णावर्त (Cochlea) : अंतर्कर्ण में द्रव्य से भरी कुंडलित सुरंग जिसमें सुनने के ग्राहक होते हैं।

संज्ञान (Cognition) : जानने के साथ जुड़ी सभी मानसिक प्रक्रियाएँ, यथा-प्रत्यक्षण करना, चिंतन करना और याद करना इत्यादि। यह सूचना के प्रक्रमण, समझ एवं संप्रेषण से संबंधित है।

संज्ञानात्मक उपागम (Cognitive approach) : वह दृष्टिकोण जो कि मानव चिंतन और जानने की सभी प्रक्रियाओं को मनोविज्ञान के अध्ययन के केंद्र में रखने पर बल देता है।

संज्ञानात्मक लाघव (Cognitive economy) : संप्रत्ययों के श्रेणीबद्ध संगठन द्वारा दीर्घकालिक स्मृति का अधिकाधिक एवं प्रभावकारी उपयोग बताने के लिए एक पारिभाषिक शब्द।

संज्ञानात्मक अधिगम (Cognitive learning) : वैसा अधिगम जिसमें प्रत्यक्षण, ज्ञान एवं विचार की पुनर्व्यवस्था अंतर्निहित होती है।

संज्ञानात्मक मानचित्र (Cognitive map) : एक व्यक्ति के परिवेश की रूपरेखा का मानसिक प्रतिरूप। उदाहरणार्थ, एक भूल-भुलैया की खोजबीन के बाद चूहे इस तरह व्यवहार करते हैं मानो उन्होंने उसका संज्ञानात्मक मानचित्र सीख लिया हो।

संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ (Cognitive processes) : व्यक्ति के चिंतन, बुद्धि और भाषा को संलग्न करने वाली मानसिक प्रक्रियाएँ।

वर्णांधता (Colour blindness) : रंगों का प्रत्यक्षण कर पाने में कुछ मात्रा में अक्षमता।

वर्ण स्थैर्य (Colour constancy) : किसी सुपरिचित वस्तु को उसके उसी एक रंग में ही देख पाने की प्रवृत्ति, भले ही प्रकाश में परिवर्तन होने से उसका वास्तविक रंग बदल गया हो।

संप्रत्यय (Concept) : विचारों, वस्तुओं, व्यक्तियों अथवा अनुभवों की एक सामान्य श्रेणी जिसके सदस्यों में कुछ समान गुण विद्यमान होते हैं।

मूर्त संक्रियात्मक अवस्था (Concrete operational stage) : पियाजे की तीसरी अवस्था जो लगभग 7-11 वर्ष तक रहती है। इस अवस्था में बच्चे तार्किक संक्रियाएँ तथा मूर्त उदाहरणों में तर्कना कर सकते हैं किंतु अमूर्त वस्तुओं पर विचार नहीं कर पाते।

अनुबंधित अनुक्रिया (Conditioned response-CR) : प्राचीन अनुबंधन में एक अनुबंधित उद्दीपक के प्रति सीखी गई या अर्जित अनुक्रिया।

अनुबंधित उद्दीपक (Conditioned stimulus-CS) : एक तटस्थ उद्दीपक, अननुबंधित उद्दीपक के साथ बार-बार के साहचर्य से, अनुबंधित अनुक्रिया प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है।

अनुबंधन (Conditioning) : एक व्यवस्थित प्रक्रिया जिसके माध्यम से उद्दीपक के प्रति नयी अनुक्रियाएँ सीखी जाती हैं।

शंकु या कोन (Cones) : विशिष्ट चाक्षुष ग्राहक जो दिन के प्रकाश की दृष्टि एवं रंग दृष्टि में मुख्य भूमिका निभाते हैं।

गोपनीयता (Confidentiality) : शोधकर्ता जो भी प्रदत्त एकत्रित करते हैं उसे पूर्ण रूप से गोपनीय रखने के लिए उत्तरदायी होते हैं।

द्वंद्व (Conflict) : अभिप्रेरकों, अंतर्नोदों, आवश्यकताओं अथवा लक्ष्यों के परस्पर विरोध के फलस्वरूप पैदा हुई विक्षोभ या तनाव की स्थिति।

मिश्रण (Confounding) : किसी प्रयोग में परिवर्त्यों की उन क्रियाओं को व्यक्त करने के लिए एक पारिभाषिक शब्द, जो प्राप्त प्रदत्त की व्याख्या को एक दूसरे में मिला देते हैं या गड़बड़ कर देते हैं। यदि अनाश्रित परिवर्त्य किसी संबंधित किंतु अनियंत्रित परिवर्त्य से मिल जाता है तो प्रयोगकर्ता आश्रित परिवर्त्य के मापन में दोनों परिवर्त्यों के प्रभाव को अलग नहीं कर सकता।

चेतना (Consciousness) : अपने मानस की सामान्य स्थिति से अवगत रहना, विशेष मानसिक विषयवस्तु की जानकारी अथवा स्वयं अपने अस्तित्व के बारे में अवगत रहना।

संरक्षण (Conservation) : बाह्य परिवर्तनों के बावजूद स्थितियों अथवा वस्तुओं के कुछ गुणों में स्थायित्व या अपरिवर्तनीयता का विश्वास।

विषय विश्लेषण (Content analysis) : गुणात्मक प्रदत्त में आए हुए विशिष्ट विचारों, संप्रत्ययों और शब्दों तथा उनके संबंधों का विश्लेषण करने के लिए प्रयुक्त विधि।

नियंत्रित समूह (Control group) : किसी अध्ययन में वे प्रयोज्य जिन्हें वह विशिष्ट व्यवहार नहीं दिया जाता जो प्रायोगिक समूह को दिया जाता है।

नियंत्रित प्रक्रियाएँ (Control processes) : वे युक्तियाँ जो भंडारण के एक तंत्र से दूसरे तंत्र में सूचना के अंतरण को नियंत्रित करती हैं।

अभिसारी चिंतन (Convergent thinking) : ऐसा चिंतन जो समस्या के एक सही समाधान की ओर निर्देशित होता है।

महासंयोजक पिंड (Corpus callosum) : तंत्रिका तंतुओं का एक बंडल जो दो गोलार्द्धों को जोड़ता है और उनके मध्य संदेश का आदान-प्रदान करता है।

सहसंबंधात्मक अनुसंधान (Correlational research) : दो या दो से अधिक घटनाओं, विशेषताओं या परिवर्त्यों के मध्य संबंध की शक्ति बताने के उद्देश्य से किया गया शोध।

वल्कुट (Cortex) : प्रमस्तिष्क का धूसर, पतला, माइलिन आवरण।

सर्जनात्मकता (Creativity) : अभिनव और असाधारण तरीके से सोचने की योग्यता और समस्याओं को अनन्य ढंग से हल करना।

संस्कृति (Culture) : एक समुदाय में व्यापक रूप से सहभाजित रीति-रिवाज़, विश्वास, मूल्य, मानक, संगठन एवं अन्य उत्पाद जो पीढ़ियों में सामाजिक रूप से संचारित होते हैं।

तम-व्यनुकूलन (Dark adaptation) : वह प्रक्रिया जिसमें आँखें कम प्रकाश में रोशनी के लिए संवेदनशील हो जाती हैं।

प्रदत्त या आँकड़ा (Data) : मानसिक प्रक्रियाओं एवं व्यवहार से संबंधित तथा लोगों से प्राप्त गुणात्मक एवं मात्रात्मक सूचनाएँ।

स्पष्टीकरण या खुलासा करना (Debriefing) : प्रयोग के सफलतापूर्वक संपन्न हो जाने के पश्चात प्रतिभागी को वास्तविक प्रयोजन के बारे में बताने की विधि। इसकी विशेष रूप से तब ज़रूरत पड़ती है जब प्रतिभागी प्रयोग के दौरान बुरी तरह भ्रमित हो।

निर्णयन (Decision-making) : विकल्पों के मूल्यांकन एवं उनमें से चुनाव करने की प्रक्रिया।

निगमनात्मक तर्कना (Deductive reasoning) : किसी तर्क की आधारिका को स्वीकार कर एक निष्कर्ष तक पहुँचना और फिर औपचारिक तार्किक नियमों का अनुसरण करना।

डीऑक्सीराइबोन्यूक्लिक एसिड (Deoxyribonuclic acid - DNA) : कोशिका का आनुवंशिक पदार्थ, जो केंद्रक में स्थित होता है।

आश्रित परिवर्त्य (Dependent variable) : किसी प्रयोग में जिस कारक का मापन किया जाता है; जो अनाश्रित परिवर्त्य के परिचालन के कारण परिवर्तित हो जाता है।

गहनता प्रत्यक्षण (Depth perception) : प्रेक्षक से किसी वस्तु की दूरी का प्रत्यक्षण या किसी ठोस वस्तु के सामने से पीछे की दूरी।

विकास (Development) : प्रगामी, क्रमिक एवं पूर्वकथनीय परिवर्तन का संरूप जो गर्भधारण के साथ प्रारंभ होता है और पूरे जीवन-विस्तृति के दौरान जारी रहता है।

भेद सीमा (Difference threshold) : उद्दीपक के जोड़े में वह न्यूनतम अंतर जिसका प्रत्यक्षण हो सके।

विभेदन (Discrimination) : प्राचीन अनुबंधन में एक अनुबंधित और अन्य दूसरे उद्दीपक जो किसी अननुबंधित उद्दीपक का संकेत नहीं देते, इनके बीच विभेद करने की क्षमता। क्रियाप्रसूत अनुबंधन में उद्दीपकों के प्रति अलग ढंग से अनुक्रिया करना जो यह संकेत भेजता है कि कोई व्यवहार प्रबलित होगा या नहीं प्रबलित होगा।

अपसारी चिंतन (Divergent thinking) : ऐसा चिंतन जो मौलिक, आविष्कारशील और लचीला है। ऐसे प्रश्न जिनके कई उत्तर हो सकते हैं, उन सभी प्रकार के उत्तरों को खोजने के लिए विभिन्न दिशाओं में चिंतन उन्मुख होता है और जो सर्जनात्मकता की विशेषता है।

विभक्त अवधान (Divided attention) : ऐसी प्रक्रिया जिसमें अवधान दो या अधिक उद्दीपकों के समुच्चय के मध्य विभक्त होता है।

द्वि-संकेतन सिद्धांत (Dual-coding theory) : पैवियो के सिद्धांत के अनुसार आर्थी और चाक्षुष संकेतों से स्मृति बढ़ती है, क्योंकि इनमें से कोई भी प्रत्याह्वान करा सकता है।

पठनवैकल्य (Dyslexia) : पढ़ने में होने वाली कठिनाई को व्यक्त करने के लिए एक पारिभाषिक शब्द।

प्रतिध्वन्यात्मक स्मृति (Echoic memory) : ध्वन्यात्मक उद्दीपकों की क्षणिक संवेदी स्मृति; यदि अवधान कहीं और है तो भी 3 या 4 सेकंड के अंदर ध्वनि या शब्द का प्रत्याह्वान किया जा सकता है।

अपवाही तंत्रिका कोशिका (Efferent neurons) : यह तंत्रिका तंत्र के आवेग को केंद्रीय तंत्रिका तंत्र से दूर तक भेजते हैं तथा मांसपेशियों और ग्रंथियों की प्रभावक इकाई की ओर भेजते हैं।

अंहकेंद्रवाद (Egocentrism) : पूर्व-संक्रियात्मक चिंतन की एक प्रमुख विशेषता जो किसी व्यक्ति द्वारा अपने परिप्रेक्ष्य और किसी दूसरे के परिप्रेक्ष्य के बीच भेद न कर पाने की अयोग्यता की ओर संकेत करती है।

विस्तृत पूर्वाभ्यास (Elaborative rehearsals) : अल्पकालिक स्मृति में नयी सूचनाओं को दीर्घकालिक स्मृति में संचित परिचित सामग्री से जोड़ना।

संवेग (Emotion) : ऐसी स्थितियाँ जो व्यक्तिगत रूप से महत्वपूर्ण समझी जाती हैं, उनके प्रति अनुक्रियाओं में परिवर्तनों का एक जटिल प्रारूप, जिसमें शारीरिक उत्तेजन, अनुभूति, विचार और व्यवहार सम्मिलित होते हैं।

सांवेगिक बुद्धि (Emotional intelligence) : ऐसे कौशलों का समुच्चय जो संवेगों के सही आकलन, मूल्यांकन, अभिव्यक्ति और नियमन के आधार होते हैं।

मस्तिष्कीकरण (Encephalisation) : जैव उद्विकास संबंधी विकास के दौरान तंत्रिका तंत्र के व्यापक विस्तार की प्रवृत्ति जो जीव (प्राणी) के शीर्ष सिरे की ओर होती है।

कूट संकेतन (Encoding) : स्मृति तंत्र में पहली बार आने वाली सूचनाओं का अभिलेखन करने की प्रक्रिया।

अंत:स्रावी ग्रंथियाँ (Endocrine glands) : वे ग्रंथियाँ जो अपने हार्मोन सीधे रक्त प्रवाह में स्रावित करती हैं।

पर्यावरण या परिवेश (Environment) : भौतिक, जैविक, सामाजिक और सांस्कृतिक बाह्य स्थिति का कुल योग जो प्राणी के कार्यों को प्रभावित करता है।

घटनापरक स्मृति (Episodic memory) : एक प्रकार की दीर्घकालिक स्मृति जो आत्मगत या निजी सूचनाएँ धारण करती है और जिसे विगत घटनाओं के लिए विशेष कालावधि में संदर्भ हेतु कोड किया जाता है।

सम्मान संबंधी आवश्यकताएँ (Esteem needs) : मैस्लो के सिद्धांत में प्रतिष्ठा, सफलता और आत्म-सम्मान की आवश्यकताएँ। आत्मीयता और प्रेम संबंधी आवश्यकताओं के तुष्ट होने के बाद इन्हें पूरा किया जा सकता है।

क्रमविकास (Evolution) : चार्ल्स डार्विन द्वारा प्रस्तुत सिद्धांत जिसके अनुसार समय क्रम में प्राणी उत्पन्न होते हैं और अपने विशिष्ट पर्यावरण की अनुकूलन आवश्यकताओं के अनुसार ढल जाते हैं।

प्रयोग (Experiment) : चुने हुए परिवर्त्यों के मध्य कारण संबंध की जाँच के लिए नियंत्रित परिस्थितियों के अंतर्गत किए गए प्रेक्षणों की एक शृंखला।

प्रायोगिक समूह (Experimental group) : किसी प्रयोग में प्रयोज्यों का वह समूह जो अनाश्रित परिवर्त्य के संदर्भ में कोई विशेष व्यवहार प्राप्त करता है।

सुव्यक्त स्मृति (Explicit memory) : तथ्यों और अनुभवों की स्मृति जिसे कोई चेतन रूप से जानता है और उसे घोषित कर सकता है (इसे घोषणात्मक स्मृति भी कह सकते हैं)।

विलोप (Extinction) : किसी अनुबंधित अनुक्रिया का ह्रास; यह प्राचीन अनुबंधन में होता है, जब कोई अननुबंधित उद्दीपक किसी अनुबंधित उद्दीपक का अनुसरण नहीं करता; क्रियाप्रसूत अनुबंधन में तब होता है जब कोई अनुक्रिया प्रबलित नहीं रहती है।

प्रतिप्राप्ति (Feedback) : किसी सीखने के काम के निष्पादन सबंधी सूचना, इसे परिणामों का ज्ञान भी कहते हैं।

क्षेत्र प्रयोग (Field experiment) : वास्तविक दुनिया के वातावरण में किया गया प्रयोग जिसमें परिवर्त्यों को किसी तरह संचालित किया जाता है और उनके प्रति प्रतिक्रियाओं का निरीक्षण किया जाता है।

संघर्ष अथवा पलायन संलक्षण (Fight or flight syndrome) : यह किसी दबाव के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया है जिसमें कोई व्यक्ति दबाव के विरुद्ध लड़कर अथवा दबावमय उद्दीपक से पलायन कर उद्दीपक के प्रति प्रतिक्रिया करता है।

सूक्ष्म पेशीय कौशल (Fine motor skills) : पेशीय कौशल वे हैं जो अधिक सूक्ष्म गतियों से संबंधित हैं, जैसे – अंगुलियों का कौशल।

औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था (Formal operational stage) : पियाजे की चौथी अवस्था जिसमें व्यक्ति वास्तविक कार्य के स्तर पर अनुभवों के संसार से परे जाता है और सूक्ष्म तथा अधिक तार्किक ढंग से सोचता है।

मुक्त पुनःस्मरण (Free recall) : स्मृति के प्रयोगों में प्रतिभागी द्वारा संचित पदों का किसी भी क्रम में पुनरुद्धार।

ललाट पालि (Frontal lobe) : अग्रमस्तिष्क के ठीक पीछे का प्रमस्तिष्कीय वल्कुट का भाग जो बोलने और मांसपेशी की गतियों और योजना बनाने तथा निर्णय करने के कार्यों को नियंत्रित करता है।

कुंठा (Frustration) : जब लक्ष्य की पूर्ति के लिए की जाने वाली क्रिया किसी तरह बाधित हो जाती है तो ऐसी स्थिति उत्पन्न होने की संभावना होती है।

फ़्यूग अवस्था (Fugue state) : स्मृतिलोप के साथ वास्तविक भौतिक पलायन की स्थिति, व्यक्ति घंटों तक घूमता रह सकता है अथवा किसी दूसरे क्षेत्र में जा सकता है और एक नया जीवन शुरू कर सकता है।

प्रकार्यात्मक स्थिरता (Functional fixedness) : किसी भी चीज़ के बारे में केवल उनके सामान्य प्रकार्यों के संदर्भ में सोचना, जो समस्या समाधान के लिए एक बाधा होती है।

प्रकार्यवाद (Functionalism) : मनोविज्ञान की वह विचारधारा जो मानव मन अथवा चेतना के उपयोगितावादी, अनुकूलनपरक कार्यों पर बल देती है।

गैल्वनिक त्वक् अनुक्रिया (Galvanic skin response-GSR) : त्वचा की, विद्युतीय संवाहकता या क्रिया में होने वाले परिवर्तन जो एक संवेदनशील गैल्वनोमीटर के द्वारा पता लगाए जाते हैं।

लिंग (Gender) : पुरुष अथवा महिला होने का सामाजिक आयाम।

लिंग पहचान (Gender identity) : पुरुष या महिला होने की समझ, जो 3 वर्ष की उम्र होने तक बच्चों में आती है।

लिंग भूमिका (Gender role) : प्रत्याशाओं का एक समुच्चय जो यह निर्धारित करता है कि किस प्रकार महिलाओं और पुरुषों को विचार करना चाहिए, कार्य करना चाहिए और अनुभव करना चाहिए।

सामान्यीकरण (Generalisation) : ऐसी प्रवृत्ति जिसमें यदि कोई अनुक्रिया अनुबंधित हो गई हो तो ऐसा उद्दीपक जो अनुबंधित उद्दीपक के समान हो, समान अनुक्रियाएँ उत्पन्न करेगा।

जीन (Genes) : आनुवंशिक सूचना की इकाइयाँ, डी.एन.ए. निर्मित गुणसूत्र खंड। जीन अपने को पुनः उत्पादित करने के लिए और जीवन को बनाए रखने वाले प्रोटीन के उत्पादन के लिए कोशिका के लिए ब्लूप्रिंट का काम करता है।

गेस्टाल्ट (Gestalt) : एक संगठित समग्र पूर्ण, सूचनाओं के अंश को एक अर्थपूर्ण समग्र में संगठित करने की हमारी प्रवृत्ति जिस पर गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिक ज़ोर देते हैं।

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान (Gestalt psychology) : मनोविज्ञान की एक शाखा जिसमें व्यवहार को, इसके अपने भागों के कुल योग की अपेक्षा, अधिक व्यापक और एकीकृत साकल्य माना जाता है।

व्याकरण (Grammar) : नियमों का समुच्चय जो यह बताता है कि भाषा के तत्वों को किस प्रकार मिश्रित किया जाए, जिससे बोधगम्य वाक्य बन सके।

स्थूल पेशीय कौशल (Gross motor skills) : पेशीय कौशल जिसमें मांसपेशियों के व्यापक रूप से क्रियाकलाप की आवश्यकता होती है, जैसे- टहलना।

समूह परीक्षण (Group test) : एक परीक्षण, जो कई लोगों पर एक ही परीक्षणकर्ता द्वारा एक ही समय में किया जाए।

गोलार्द्ध (Hemispheres) : प्रमस्तिष्क और अनुमस्तिष्क के दो समरूप अर्द्धभाग।

गोलार्द्ध प्रभाविता (Hemispheric dominance) : एक गोलार्द्ध, सामान्यतः बाएँ गोलार्द्ध, द्वारा प्रमुख पेशीय और संज्ञानात्मक कार्यो का नियंत्रण।

आनुवंशिकता (Heredity) : माता-पिता से संतान को गुणों का जैविकीय संचरण।

आवश्यकताओं का पदानुक्रम (Hierarchy of needs) : मैस्लो का पिरामिड आवश्यकताओं को एक पदानुक्रम में प्रस्तुत करता है। अधिक मूल आवश्यकताएँ जैसे शरीरक्रियात्मक एवं सुरक्षा आवश्यकता सबसे नीचे, उसके ऊपर उच्चस्तरीय आवश्यकताएँ जैसे प्रेम एवं सम्मान तथा आत्मसिद्धि आवश्यकता सबसे ऊपर होती है। इस पदानुक्रम में ऊपर जाने के लिए व्यक्ति की मूल शरीरक्रियात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति आवश्यक है।

समस्थिति (Homeostasis) : भोजन, जल, वायु, निद्रा और तापमान के परिप्रेक्ष्य में आंतरिक, दैहिक अवस्था में संतुलन को बनाए रखने की शरीरक्रियात्मक प्रवृत्ति।

प्राज्ञ मानव (Homo sapiens) : आधुनिक मानव प्राणी का वैज्ञानिक नाम।

हार्मोन या अंतःस्राव (Hormones) : ग्रंथियों द्वारा रक्त प्रवाह में स्रावित किए जाने वाले रासायनिक पदार्थ।

वर्ण (Hue) : रंग।

मानवतावादी मनोविज्ञान (Humanistic psychology) : मनोविज्ञान का वह उपागम जो व्यक्ति, अथवा स्व और व्यक्तिगत संवृद्धि और विकास पर बल देता है।

अधश्चेतक (Hypothalamus) : थैलेमस के नीचे स्थित एक तंत्रिका संरचना। यह पानी पीने, शरीर के तापमान और रख-रखाव के क्रियाकलापों को निर्देशित करता है, पीयूष ग्रंथि में अंतःस्राव को नियंत्रित करता है और संवेगों तथा अभिप्रेरणा से संबंध रखता है।

परिकल्पना या प्राक्कल्पना (Hypothesis) : किसी शोध प्रश्न के उत्तर में दो परिवर्त्यों के बीच संबंध का एक अस्थायी कथन।

तदात्मीकरण/तादात्म्य (Identification) : किसी व्यक्ति द्वारा अपने 'स्व' को दूसरे व्यक्तियों के साथ संबद्ध करने और उनकी विशेषताओं या दृष्टिकोण को स्वीकार करने की प्रक्रिया।

पहचान बनाम भूमिका संभ्रम (Identity vs. role confusion) : इरिक्सन की विकासात्मक अवस्था जिसमें किशोर इस तरह के द्वंद्वों का सामना करते हैं कि वे कौन हैं, वे क्या हैं और जीवन में वे कहाँ जा रहे हैं।

प्रदीप्ति (Illumination) : सर्जनात्मक प्रक्रिया की एक अवस्था। विचार, समाधान और नए संबंध उभरते हैं और समस्या से संबंधित सारे तथ्य यथास्थान आ जाते हैं।

प्रासंगिक अधिगम (Incidental learning) : ऐसा अधिगम जो सुचिंतित, अथवा ऐच्छिक न हो और जो संभवतः अन्य असंबद्ध क्रियाकलाप के फलस्वरूप प्राप्त किया गया हो।

उद्भवन (Incubation) : सर्जनात्मक प्रक्रिया में एक अवस्था जिसमें सचेतन स्तर पर प्रगति प्रकट नहीं होती, जबकि अचेतन मन किसी विचार या समाधान पर कार्य कर सकता है।

अनाश्रित परिवर्त्य (Independent variable) : प्रयोगकर्ता द्वारा यह देखने के लिए कि प्रहस्तित घटना या स्थिति का किसी दूसरी घटना या स्थिति पर कोई पूर्वकथनीय प्रभाव होगा या नहीं।

वैयक्तिक परीक्षण (Individual test) : कोई परीक्षण जो एक समय में केवल एक व्यक्ति पर ही किया जा सके। स्टैनफोर्ड-बिने तथा वैशलर बुद्धि परीक्षण, वैयक्तिक परीक्षण के उदाहरण हैं।

आगमनात्मक तर्कना (Inductive reasoning) : वह तार्किक प्रक्रिया जिसके द्वारा विशेष घटनाओं से सामान्य सिद्धांतों तक पहुँचा जाता है।

शैशवावस्था (Infancy) : जन्म से लेकर 24 माह तक की विस्तृत विकासात्मक अवधि।

सूचना-प्रक्रमण उपागम (Information-processing approach) : एक उपागम जिसका इन बातों से संबंध है : व्यक्ति अपने जीवन-संसार के बारे में सूचनाएँ किस तरह प्रक्रमित करता है, किस प्रकार सूचनाएँ हमारे मन में प्रवेश करती हैं, किस प्रकार ये सूचनाएँ संचित की जाती हैं और रूपांतरित होती हैं, तथा किसी कार्य को करने, किसी समस्या का हल ढूँढ़ने और तर्कना के लिए इन्हें पुन: कैसे प्राप्त किया जाता है।

सुविज्ञ सहमति (Informed consent) : व्यक्ति या रोगी की प्रयोगात्मक अथवा चिकित्सीय प्रक्रिया की प्रकृति और संभावित खतरों की समझ के आधार पर उसके साथ अनुबंध।

उपक्रम बनाम ग्लानि (Initiative vs. guilt) : इरिक्सन की विकासात्मक अवस्था जिसमें विद्यालय जाना शुरू करने वाले बच्चे के सामने एक विस्तृत सामाजिक दुनिया होती है और उसके समक्ष यह चुनौती होती है कि क्रियाशील, प्रयोजनयुक्त व्यवहार विकसित करे ताकि इन चुनौतियों से निपटा जा सके। इसमें असफल होने से ग्लानि एवं शर्म की भावना विकसित होती है।

अंतर्दृष्टि (Insight) : नयी परिस्थितियों का प्रभावशाली ढंग से सामना कर सकने की योग्यता।

मूल प्रवृत्ति (Instinct) : एक जटिल सार्वभौम व्यवहार है जो एक प्रजाति के सभी सदस्यों में पाया जाता है और अधिगत नहीं होता है।

समग्रता बनाम भग्नाशा (Integrity vs. despair) : इरिक्सन की आठवीं तथा अंतिम विकासात्मक अवस्था जिसके दौरान व्यक्ति यह मूल्यांकन करने के लिए पीछे की ओर देखता है कि उसने अपने जीवन के साथ क्या किया। संतोष की अनुभूति समग्रता उत्पन्न करती है और असंतोष भग्नाशा उत्पन्न करता है।

अवरोध या व्यतिकरण (Interference) : अधिगम के सिद्धांत में, सीखने से पहले या सीखने के बाद या सीखने की क्रिया के दौरान, अधिगमकर्ता के वे क्रियाकलाप सीखे जाने वाली सामग्री में अवरोध पैदा करते हैं, जिनसे विस्मरण होता है।

अंत:स्थिति या आच्छादन (Interposition) : गहनता प्रत्यक्षण का एक संकेत जो इस सिद्धांत पर आधारित है कि यदि एक वस्तु दूसरी को आच्छादित करती प्रतीत हो तो वह निकटतर होगी।

साक्षात्कार (Interview) : सूचना प्राप्त करने, निदान ढूँढ़ने, अंतर्वैयक्तिक व्यवहार और व्यक्तित्व के गुणों का मूल्यांकन करने अथवा व्यक्ति को परामर्श देने के लिए आमने-सामने का संवाद।

अंतर्भूत अभिप्रेरणा (Intrinsic motivation) : स्वयं अपने लिए किसी व्यवहार का प्रवर्तन करने और प्रभावशाली होने की अंतर्भूत इच्छा।

अंतर्निरीक्षण (Introspection) : अपने सचेतन अनुभवों और अनुभूतियों के अंदर देखने की प्रक्रिया।

जेम्स-लैंगे सिद्धांत (James-Lange theory) : संवेग का सिद्धांत, जिसके अनुसार किसी उद्दीपक के प्रति शरीर की प्रतिक्रिया संवेगात्मक प्रत्यक्षण पैदा करती है; संवेग का यह स्पष्ट अनुभव शारीरिक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप होता है।

निर्णय (Judgement) : उपलब्ध सामग्री के आधार पर मत-निर्माण करने, निष्कर्ष पर पहुँचने और मूल्यांकन करने की प्रक्रिया; मूल्यांकन की प्रक्रिया का उत्पाद।

किशोर अपराध-वृत्ति (Juvenile delinquency) : विविध प्रकार के किशोर व्यवहार जिसमें सामाजिक रूप से अस्वीकार्य व्यवहार से लेकर प्रतिष्ठा से संबंधित दोष (जैसे- भाग जाना)से लेकर आपराधिक दोष (जैसे- चोरी) सम्मिलित हैं।

भाषा (Language) : प्रतीकों का एक व्यवस्थित समुच्चय जो अर्थ प्रदान करता है तथा इन प्रतीकों को जोड़ने के कुछ नियम, जिनका उपयोग असंख्य प्रकार के संदेश उत्पन्न करने में किया जाता है।

निकटता का नियम (Law of proximity) : समूहीकरण नियम जो यह बताता है कि निकटतम उद्दीपक एक साथ समूहीकृत होते हैं।

समानता का नियम (Law of similarity) : समूहीकरण नियम जो यह बताता है कि समान उद्दीपक एक साथ समूहीकृत होते हैं।

अधिगम अशक्तताएँ (Learning disabilities) : सीखने की अशक्तता वाले बच्चे (i) सामान्य या सामान्य से अधिक बुद्धि वाले होते हैं, (ii) कई शैक्षिक क्षेत्रों में कठिनाई का अनुभव करते हैं किन्तु अन्य दूसरे क्षेत्रों

में कोई कमी नहीं प्रदर्शित करते, तथा (iii) किन्हीं अन्य दशाओं या विकारों से ग्रस्त नहीं होते जो उनकी सीखने की समस्याओं की व्याख्या कर सकें।

अधिगम (Learning) : अनुभव के कारण प्राणी के व्यवहार में होने वाला अपेक्षाकृत स्थायी परिवर्तन।

असत्य संसूचक (Lie detector) : एक उपकरण जिसका उपयोग इस विचार पर आधारित है कि झूठ बोलने के साथ प्राय: भय अथवा उत्तेजना के आंतरांगी घटक भी साथ होते हैं; जब किसी व्यक्ति के उत्तर सांवेगिक उत्तेजना के साथ होते हैं तो यह उपकरण उसे इंगित कर देता है।

प्रकाश अनुकूलन (Light adaptation) : प्रकाश (दीप्ति) में परिवर्तनों के साथ शलाकाओं और शंकुओं का समायोजन।

उपवल्कुटीय तंत्र (Limbic system) : मस्तिष्क तंत्र जो अभिप्रेरित व्यवहार, संवेगात्मक स्थितियों और स्मृति के कुछ प्रकारों को प्रक्रमित करता है।

रेखीय परिप्रेक्ष्य (Linear perspective) : दूरी का प्रत्यक्षण करने के लिए एक एकनेत्री संकेत; जिसे हम समांतर रेखाओं के रूप में जानते हैं, उनकी अभिबिंदुता का हम प्रत्यक्षण करते हैं जो कि बढ़ती हुई दूरी को बताता है।

तीव्रता (Loudness) : ध्वनि तरंगों के आयाम का प्रत्यक्षण।

अनुरक्षण पूर्वाभ्यास (Maintenance rehearsal) : किसी सूचना का सक्रियता से दुहराया जाना जो उसके अभिगमन को बढ़ा सके।

परिपक्वता (Maturation) : परिवर्तनों की क्रमबद्ध शृंखला जो प्रत्येक व्यक्ति के आनुवंशिक 'ब्लूप्रिंट' (रूपरेखा) से निर्धारित होती है।

मेडुला (Medulla) : मस्तिष्क स्तंभ का आधार; यह दिल की धड़कन और साँस लेने, टहलने, सोने को नियंत्रित करता है; मस्तिष्क और शरीर को जोड़ने वाले तंत्रिका तंतु मध्यांश पर एक-दूसरे को पार करते हैं।

मीम्स (Memes) : मानव समाज के डी.एन.ए. होते हैं जो मन, व्यवहार और संस्कृति के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करते हैं।

मासिक धर्म प्रारंभ (Menarche): मासिक धर्म का प्रथम बार घटित होना।

मानस चित्रण (Mental representation): किसी उद्दीपक या उद्दीपकों के वर्ग का मानसिक प्रतिरूप होना।

मानसिक विन्यास (Mental set): किसी नयी समस्या/स्थिति के लिए पूर्व प्रयुक्त पद्धति से अनुक्रिया करने की प्रवृत्ति।

अधिसंज्ञान (Metacognition) : अपनी मानसिक प्रक्रियाओं का ज्ञान और समझ।

मन (Mind) : मन एक संप्रत्यय है जो व्यक्ति की संवेदनाओं, प्रत्यक्षणों, स्मृतियों, विचारों, सपनों, अभिप्रेरणाओं और संवेगात्मक अनुभूतियों के अनूठे समुच्चय से संबंधित है।

स्मृति-सहायक संकेत (Mnemonics) : वे युक्तियाँ या तकनीकें जो नयी सूचनाओं के भंडारण में परिचित साहचर्यों का उपयोग करती हैं ताकि उन्हें सहजता से याद रखा जा सके।

मॉडलिंग (Modeling) : सामाजिक अधिगम में वह प्रक्रिया जिसके द्वारा बच्चा दूसरों का प्रेक्षण तथा अनुकरण करके सामाजिक एवं संज्ञानात्मक व्यवहार सीखता है।

एकनेत्री संकेत (Monocular cues) : केवल एक आँख से प्राप्त दृष्टि संकेत।

नैतिक विकास (Moral development) : ऐसे नियमों और परंपराओं के परिप्रेक्ष्य में विकास कि एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों के साथ परस्पर किस तरह का व्यवहार करना चाहिए।

रूपिम (Morphemes): किसी भाषा में सबसे छोटी अर्थपूर्ण इकाई।

अभिप्रेरणा (Motivation) : एक आवश्यकता अथवा इच्छा जो व्यवहार को शक्ति देती है और उसे निर्देशित करती है।

अभिप्रेरक (Motives) : व्यवहार को शक्ति देने वाले और निर्देशित करने वाले कारक।

पेशीय या गत्यात्मक विकास (Motor development) : शारीरिक क्रियाओं के लिए आवश्यक मांसपेशियों के समन्वयन की प्रगति।

प्रेरक तंत्रिका कोशिका (Motor neurons) : तंत्रिका कोशिकाएँ जो आवेगों को केंद्रीय तंत्रिका तंत्र से मांसपेशियों और ग्रंथियों की ओर ले जाती हैं।

प्राकृतिक वरण या चयन (Natural selection) : जीव विकासवादी प्रक्रिया जो किसी प्रजाति के उन व्यक्तियों का पक्ष लेती है जो जीवित रहने और पुनरुत्पादन के लिए सबसे अधिक अनुकूलित होते हैं।

आवश्यकता (Need) : शरीरक्रियात्मक (आंतरिक) अथवा पर्यावरणी (बाह्य) संबंधी असंतुलन जो किसी अंतर्नोद को जन्म देता है।

ऋणात्मक सहसंबंध (Negative correlation) : दो परिवर्त्यों के मध्य संबंध जिसमें एक परिवर्त्य जैसे ऊपर की ओर जाता है, दूसरा परिवर्त्य नीचे आ जाता है।

निषेधात्मक प्रबलक (Negative reinforcer) : एक अप्रिय उद्दीपक जिसको हटा देने से उसके बाद घटित होने वाली अनुक्रिया के भविष्य में घटने की संभावना बढ़ जाती है।

तंत्रिका आवेग (Nerve impulse) : यह तंत्रिका संवेदन का, तंत्रिका में संवहन के विद्युत-रासायनिक प्रक्रिया के माध्यम से, एक स्थान से दूसरे स्थान में गमन है।

तंत्रिका तंत्र (Nervous system) : तंत्रिका कोशिकाओं का व्यापक नेटवर्क जो मस्तिष्क को तथा मस्तिष्क से शरीर के अन्य भागों को संदेश प्रेषित करता है।

तंत्रिका मनोविज्ञान (Neuropsychology) : यह मस्तिष्क क्रिया एवं तंत्रिका तंत्र के प्रकार्य के रूप में व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।

तंत्रिका कोशिका (Neuron) : तंत्रिका कोशिका जो सूचना ग्रहण करने, प्रक्रमित करने और उसे दूसरी कोशिकाओं को प्रेषित करने के लिए विशेषीकृत होती है।

तंत्रिकातापी विकार (Neurotic disorder) : एक मनोवैज्ञानिक विकार जो सामान्यत: दुखद होता है लेकिन इसमें व्यक्ति तार्किक ढंग से सोच पाता है और सामाजिक रूप से व्यवहार कर पाता है। फ्रायड ने तंत्रिकातापी विकारों को दुश्चिंता से मुक्त होने के उपायों के रूप में देखा है।

तंत्रिका-संचारक या न्यूरोट्रांसमीटर (Neurotransmitters) : रासायनिक संदेशवाहक जो मस्तिष्क से और मस्तिष्क को संदेश प्रेषित करते हैं।

मानक (Norm) : एक बड़े समूह के मापन के आधार पर प्राप्त मूल्य जिनका उपयोग मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्राप्तांकों की व्याख्या के लिए किया जाता है; सामाजिक मनोविज्ञान में स्वीकृत व्यवहारों के लिए समूह मानक।

केंद्रक (Nucleus) : केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में एक गुच्छिका अथवा तंत्रिका कोशिकाओं का पिण्ड।

शून्य परिकल्पना (Null hypothesis) : एक भविष्य कथन कि किसी प्रयोग में स्थितियों के मध्य कोई अंतर नहीं होगा अथवा परिवर्त्यों के मध्य कोई संबंध नहीं होगा।

वस्तु स्थायित्व (Object permanence) : यह समझ कि वस्तु और घटनाएँ तब भी अस्तित्ववान होती हैं जब वे प्रत्यक्ष रूप से दिखाई-सुनाई नहीं पड़तीं और न ही स्पर्श के अनुभव में आती हैं।

प्रेक्षण (Observation) : किसी वस्तु या घटना की साभिप्राय जाँच एवं उसका अभिलेखन, ताकि उसके बारे में तथ्य प्राप्त किए जा सकें अथवा जो भी देखा गया उसके बारे में व्यक्ति का अपना निष्कर्ष।

क्रियाप्रसूत अनुबंधन (Operant conditioning) : ऐसा अधिगम जिसमें ऐच्छिक अनुक्रियाएँ उनके परिणामों द्वारा नियंत्रित होती हैं।

संक्रियावाद (Operationism) : यह दृष्टिकोण कि किसी संप्रत्यय का अर्थ और उसकी वैधता उन कार्य प्रणालियों पर निर्भर करती है जो इसे परिभाषित करने या इसे स्थापित करने के लिए उपयोग में लाए जाते हैं।

संक्रियाएँ (Operations) : क्रियाओं का वह आत्मीकृत रूप जो बालक को भौतिक रूप से घटित घटनाओं को मानसिक रूप से करने में सहायता करता है।

कोर्ती अंग (Organ of corti) : आधार झिल्ली की सतह पर स्थित संरचना जिसमें सुनने के ग्राहक होते हैं।

अग्न्याशय (Pancreas) : एक महत्वपूर्ण ग्रंथि जो कि हार्मोन स्रावित करती है तथा पाचन क्रिया और उपापचयन की क्रिया से संबद्ध है। इससे निकलने वाले स्रावों में इन्सुलिन एक है।

प्रतिमान (Paradigm) : घटनाओं के एक समुच्चय को देखने या अध्ययन करने का एक तरीका।

परानुकंपी भाग (Parasympathetic division) : स्वायत्त तंत्रिका तंत्र का भाग जो शरीर की आंतरिक प्रक्रियाओं के दिन-प्रतिदिन के कार्य को मॉनीटर करता है, अनुकंपी उत्तेजना के बाद इसे शांत प्रकार्य की ओर लौटाता है।

समकक्षी (Peers) : एक ही उम्र अथवा परिपक्वता स्तर के बालक।

प्रत्यक्षण (Perception) : वे प्रक्रियाएँ जो संवेदी सूचना को संगठित करती हैं और इसको पर्यावरणी स्रोत के रूप में परिभाषित करती हैं।

प्रात्यक्षिक स्थैर्य (Perceptual constancy) : संवेदी क्रिया के विभिन्न प्रतिमानों से संसार के बारे में समान निष्कर्ष निकाल पाने की योग्यता (यथा, कोई व्यक्ति विभिन्न कोणों से देखे जाने पर भी उसी व्यक्ति के रूप में पहचाना जाता है)।

निष्पादन परीक्षण (Performance tests) : ऐसे परीक्षण जिनमें भाषा की आवश्यकता नहीं पड़ती।

दृश्य प्ररूप या समलक्षणी (Phenotype) : प्रेक्षणीय नाक-नक्शा जिसके द्वारा व्यक्तियों को पहचाना जाता है।

फ़ाई घटना (Phi phenomenon) : गति संबंधी एक भ्रम जो चाक्षुष उद्दीपक को एक के बाद एक तीव्र गति से प्रस्तुत करने से उत्पन्न होता है।

स्वनिम (Phonemes) : किसी भाषा में ध्वनि की सबसे छोटी इकाई।

प्रकाश संग्राहक (Photoreceptor) : दृष्टि-अभिग्राहक; शलाका और शंकु कोशिकाएँ।

शरीरक्रिया मनोविज्ञान (Physiological psychology) : मानव और पशु व्यवहार का एक वैज्ञानिक अध्ययन जो शारीरिक प्रक्रियाओं के संबंध पर आधारित होता है; यथा-तंत्रिका तंत्र, हार्मोन, संवेदी अंग और व्यवहार-संबंधी गोचर।

तारत्व (Pitch) : ध्वनि की आवृत्ति की प्रत्यक्षपरक व्याख्या।

पीयूष ग्रंथि (Pituitary gland) : वह ग्रंथि जो ऐसे हार्मोन स्रावित करती है जो दूसरी अंत:स्रावी ग्रंथियों के स्रावों को नियमित करते हैं, साथ ही एक हार्मोन को स्रावित करती है जो संवृद्धि को प्रभावित करता है।

सेतु या पोन्स (Pons) : मस्तिष्क का वह भाग जो स्वप्न देखने और नींद से जागने की क्रिया से संबद्ध होता है।

धनात्मक प्रबलन (Positive reinforcement) : कोई उद्दीपक अथवा घटना, जब इसके प्रारंभ को एक विशेष अनुक्रिया पर निर्भर बनाया जाता है, तो वह उस अनुक्रिया के घटित होने की संभावना में वृद्धि करती है।

शक्ति अभिप्रेरक (Power motive) : नियंत्रण करने, पद तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करने और दूसरों को प्रभावित करने की इच्छा।

पूर्वकथन या भविष्यकथन (Prediction) : पूर्ववर्ती परिवर्त्यों और अनुवर्ती घटनाओं के मध्य संबंध का वर्णन करने की वैज्ञानिक प्रक्रिया। भविष्यकथन समय में आगे की ओर क्रियाशील होता है जो पूर्ववर्ती परिवर्त्यों के मापन से शुरू होता है और तत्पश्चात् अनुवर्ती घटनाओं के मापन का पूर्वानुमान किया जाता है।

प्रसवपूर्व अवधि (Prenatal period) : गर्भधारण से जन्म तक का समय।

पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था (Pre-operational stage) : पियाजे का दूसरा चरण जिसमें बच्चे संसार को शब्दों, प्रतिमाओं और रेखांकन से प्रस्तुत करते हैं किंतु तार्किक रूप से संक्रिया नहीं कर सकते।

मूल रंग (Primary colours) : तीन रंगों का समुच्चय, अर्थात लाल, हरा और नीला; असमान मात्रा में मिलाए जाने पर कोई भी रंग उत्पन्न कर सकता है।

मूल लैंगिक लक्षण (Primary sex characteristics) : प्रजनन के लिए आवश्यक लैंगिक संरचना।

समस्या समाधान (Problem solving) : चिंतन के उच्चतर स्तर पर घटित होने वाला व्यवहार; समस्या समाधान को चार चरणों में विभाजित किया जाता है: उद्भवन, प्रबोधन, तैयारी और सत्यापन।

निकटता सिद्धांत (Proximity principle) : गेस्टाल्ट सिद्धांत, जिसके अनुसार वस्तु या उद्दीपक जो निकट हैं, उन्हें एक इकाई के रूप में देखा जाता है। इसे निकटता का नियम भी कहते हैं।

समीप-दूराभिमुख प्रवृत्ति (Proximodistal trend) : केंद्र से बाहर की दिशा का पेशीय विकास।

मनोविश्लेषण (Psychoanalysis) : मनोचिकित्सा की एक विधि जिसमें मनोचिकित्सक दमित अचेतन सामग्री को सचेतन स्तर पर लाने का प्रयास करता है।

मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरक (Psychological motives) : वैयक्तिक एवं अंतर्वैयक्तिक अभिप्रेरक जो शक्ति, आत्म-सम्मान, संबंधन और दूसरे लोगों से घनिष्ठता बढ़ाने के लिए व्यक्तियों को प्रेरित करता है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Psychological test) : व्यक्ति के व्यवहार के प्रतिदर्श को मापन करने का एक मानकीकृत तरीका।

मनोभौतिकी (Psychophysics) : मानसिक प्रक्रियाओं एवं भौतिक जगत के बीच संबंध का अध्ययन।

यौवनारंभ (Puberty) : तीव्र रूप से घटित होने वाली कंकालीय एवं लैंगिक परिपक्वता जो मुख्यत: किशोरावस्था में घटित होती है।

दंड (Punishment) : व्यवहार के दमन के लिए एक अप्रिय अथवा हानिकर उद्दीपक का अनुप्रयोग।

यादृच्छिकीकरण (Randomisation) : एक प्रक्रिया जिसके द्वारा किसी परिवर्त्य को पक्षपातरहित ढंग से चुना जाता है या उसे किसी दशा में रखा जाता है। यादृच्छिकीकरण में यादृच्छिक संख्याओं की तालिका का उपयोग किया जाता है ताकि कोई अनुमेय क्रम स्थापित न किया जा सके ।

तर्कना (Reasoning) : यथार्थवादी चिंतन प्रक्रिया जो तथ्यों के एक समुच्चय (सेट) से निष्कर्ष निकालती है।

प्रतिवर्त चाप (Reflex arc) : एक ग्राहक तंत्रिका कोशिका तथा एक अपवाही तंत्रिका कोशिका जो उद्दीपक-अनुक्रिया क्रम के बीच मध्यस्थता कर सकती है।

प्रबलन (Reinforcement) : एक अनुक्रिया का अनुसरण करती घटना जो अनुक्रिया के घटित होने की प्रवृत्ति को शक्ति देती है।

विश्वसनीयता (Reliability) : किसी मापन तकनीक की स्थिरता के परिमाण के बारे में एक कथन। विश्वसनीय तकनीक से समान स्थितियों के अंतर्गत बार-बार मापन से समान माप प्राप्त होते हैं।

रेटिक्युलर एक्टिवेटिंग सिस्टम (Reticular activating system) : तंतुओं का एक संजाल जो मेरुरज्जु से शुरू होता है और मध्य मस्तिष्क से होता हुआ उच्चतर केंद्रों में जाता है। इसकी भूमिका अवधान और उद्वेलन में होती है।

दृष्टिपटल या रेटिना (Retina) : आँख के पीछे की ओर कोशिका की परत जिनमें प्रकाश संग्राहक स्थित होते हैं।

पुनरुद्धार संकेत (Retrieval cues) : उपलब्ध आंतरिक अथवा बाह्य उद्दीपक जो स्मृति भंडार से सूचनाएँ प्राप्त करने में सहायता करते हैं।

पूर्वलक्षी अवरोध (Retroactive interference) : एक स्मृति प्रक्रिया जिसमें नयी सीखी गई जानकारियाँ पूर्वभंडारित समान सामग्री की पुन:प्राप्ति रोकती हैं।

दंड या शलाका (Rods) : विशिष्ट चाक्षुष संग्राहक जो रात की दृष्टि और परिधीय दृष्टि में मुख्य भूमिका निभाते हैं।

समाकृति या स्कीमा (Schema) : एक संज्ञानात्मक संरचना; संयोजनों का एक संजाल जो किसी व्यक्ति के प्रत्यक्षण को संगठित और निर्देशित करता है।

स्क्रिप्ट (Script) : प्रक्रियात्मक ज्ञान की स्मृति-प्रस्तुति (यथा-एक रेस्तराँ में भोजन करना)।

गौण लैंगिक लक्षण (Secondary sex characteristics) : शारीरिक गुण जो लिंग से संबंधित हैं किंतु प्रजनन में प्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित नहीं होते।

चयनात्मक अवधान (Selective attention) : किसी विशेष उद्दीपक पर सचेतन रूप से अभिज्ञता केंद्रित करना।

आत्म या स्व (Self) : व्यक्ति का स्वयं या अपने शरीर, योग्यताओं, व्यक्तित्व विशेषकों और चीज़ों को करने की विधि के प्रति प्रत्यक्षण या जागरूकता।

आत्मसिद्धि (Self-actualisation) : यह स्व-पूर्ति की एक अवस्था है जिसमें व्यक्ति अपनी उच्चतम क्षमताओं को विशिष्ट प्रकार से अनुभव करते हैं।

आत्म-सम्मान (Self-esteem) : आत्म या स्व का व्यापक मूल्यांकन आयाम।

आर्थी स्मृति (Semantic memory) : दीर्घकालिक स्मृति का घटक जो शब्दों और संप्रत्ययों के मूलभूत अर्थों का संग्रह करता है।

संवेदना (Sensation) : किसी भौतिक उद्दीपन की अनुभूति।

संवेदी प्रेरक अवस्था (Sensorimotor stage) : पियाजे का पहला चरण जिसमें नवजात शिशु शारीरिक और पेशीय क्रियाओं के साथ संवेदी अनुभवों का संयोजन कर संसार की एक समझ विकसित करता है।

संवेदी अनुकूलन (Sensory adaptation) : उद्दीपन के अपरिवर्तित रहने के पश्चात संग्राहक कोशिकाओं में अनुक्रियाशीलता की क्षति।

संवेदी स्मृति (Sensory memory) : प्रारंभिक प्रक्रिया जो उद्दीपक के संक्षिप्त प्रभावों को संरक्षित रखती है, इसे संवेदी पंजिका भी कहा जाता है।

संवेदी तंत्रिका कोशिका (Sensory neurons) : इन्हें अभिवाही तंत्रिका कोशिका भी कहते हैं। ये संवेदी ग्राहक कोशिकाओं से संदेशों को केंद्रीय तंत्रिका तंत्र तक ले जाती हैं।

क्रमिक अधिगम (Serial learning) : अनुक्रियाओं की एक शृंखला को उनकी प्रस्तुति के सुनिश्चित क्रम में सीखना।

यौन हार्मोन (Sex hormones) : जनन प्रकार्यों और गौण यौन लक्षणों के निर्धारण के लिए जननग्रंथियों द्वारा स्रावित पदार्थ, यथा-स्त्री में एस्ट्रोजन और पुरुष में टेस्टोस्ट्रोन।

आकृति स्थैर्य (Shape constancy) : इसमें ज्ञान कि किसी वस्तु को भिन्न कोण से देखे जाने पर भी उसका रूप स्थिर रहता है।

समानता (Similarity) : गेस्टाल्ट सिद्धांत, जिसके अनुसार वस्तु या उद्दीपक जो आकृति, आकार, अथवा तीव्रता आदि में समान होते हैं, एक इकाई के रूप में देखे जाते हैं।

आकार स्थैर्य (Size constancy) : परिचित वस्तुओं को उसी आकार में देखने की प्रवृत्ति जबकि वस्तु की रेटिना पर पड़ने वाली प्रतिमा भिन्न-भिन्न होती है।

कंकालीय पेशियाँ (Skeletal muscles) : अस्थियों से जुड़ी हुई मांसपेशियाँ, जिनके कारण विभिन्न प्रकार की शारीरिक गतियाँ संभव होती हैं, जैसे कि अंगों की गति।

समाजीकरण (Socialisation) : सामाजिक अधिगम की क्रिया जिसके द्वारा एक बच्चा उन आदर्शों, अभिवृत्तियों, विश्वासों और व्यवहारों को ग्रहण करता है जो उसकी संस्कृति में स्वीकार्य हैं; परिवार, विद्यालय और समसमूह सामाजीकरण के मुख्य कारक (एजेंट) हैं।

समाज जैविकी (Sociobiology) : सामाजिक व्यवहार के जैविक आधार का व्यवस्थित अध्ययन।

समाजशास्त्र (Sociology) : समूहों में लोगों का अध्ययन; व्यक्ति की जगह समूह अध्ययन की इकाई है।

काय (Soma) : सभी प्रकार की काय कोशिका अथवा सामान्य रूप से मनुष्यों एवं अन्य पशुओं जैसा किसी भी तरह का शरीर-रूप।

कायिक तंत्रिका तंत्र (Somatic nervous system) : परिधीय तंत्रिका तंत्र का वह भाग जो ऐच्छिक पेशियों को नियंत्रित करता है।

प्रजाति (Species) : विभिन्न जीवित प्राणियों का जैविक वर्गीकरण।

स्वतः पुनःप्राप्ति (Spontaneous recovery) : प्राचीन अनुबंधन में एक समाप्त हुई अनुबंधित अनुक्रिया का एक विश्राम अवधि के बाद पुनः प्रकटीकरण।

मानकीकरण (Standardisation) : प्रतिनिधि व्यक्तियों के एक बड़े समूह पर लागू करने के बाद किसी परीक्षण के लिए मानक तथा समान प्रणाली स्थापित करने की विधि।

उद्दीपक (Stimulus) : पर्यावरण में स्थित कोई सुपरिभाषित तत्व जो प्राणी को प्रभावित करता हो तथा जो प्रकट अथवा अप्रकट अनुक्रिया को जन्म देता हो।

संरचनावाद (Structuralism) : विल्हेम वुंट के साथ संबद्ध मनोविज्ञान का वह उपागम जो चेतना की संरचना और उसकी संक्रिया को अथवा मानव मन को समझना चाहता है।

सर्वेक्षण (Survey) : किसी दी हुई जनसंख्या में प्रदत्त प्राप्त करने के लिए लिखित प्रश्नावली अथवा वैयक्तिक साक्षात्कार का उपयोग करने वाली अनुसंधान विधि।

अनुकंपी तंत्रिका तंत्र (Sympathetic nervous system) : स्वायत्त तंत्रिका तंत्र का वह भाग जो शरीर को सचेत करता है, तथा दबावमय स्थितियों में इसकी ऊर्जा को गतिशील बनाता है।

तंत्रिका-कोष संधि (Synapse) : प्रेषित करने वाली तंत्रिका कोशिका के अक्षतंतु के अग्रभाग और प्राप्त करने वाली तंत्रिका कोशिका के पार्श्वतंतु अथवा काय कोशिका के मध्य का संधिस्थल। इस संधि स्थान के छोटे से अंतराल को संधिस्थलीय खंड कहा जाता है।

संधिस्थलीय पुटिका (Synaptic vesicle) : संधिस्थल की घुंडियों में पाई जाने वाली संरचनाएँ जो संधिस्थलीय खंड में तंत्रिका-संचारक के मुक्त होने से पहले उन्हें संचित करती हैं।

वाक्यविन्यास (Syntax) : स्वीकार्य वाक्यांश या वाक्य बनाने के लिए शब्दों को संयोजित करने के नियमों से संबंधित।

स्वभाव (Temperament) : किसी व्यक्ति की व्यवहार शैली और अनुक्रिया करने का विशिष्ट तरीका।

शंख पालि (Temporal lobe) : प्रमस्तिष्कीय वल्कुट का वह भाग जो कानों के ऊपर पड़ा रहता है; इसके अंतर्गत श्रवण क्षेत्र भी शामिल है, इनमें से प्रत्येक श्रवण सूचनाएँ प्राथमिक रूप से सामने के कान से प्राप्त करता है।

रचनागुण प्रवणता (Texture gradient) : दूरी का एक संकेत जो इस बात पर आधारित है कि वस्तुएँ जितनी अधिक दूर होती हैं वे अपने लक्षणों और विवरणों को खो बैठती हैं।

चेतक या थैलेमस (Thalamus) : मस्तिष्क का संवेदी स्विचबोर्ड जो मस्तिष्क स्तंभ के ऊपर स्थित है; यह संदेशों को वल्कुट में संवेदी ग्रहण क्षेत्रों में भेजता है और जवाबों को अनुमस्तिष्क और मेडुला में प्रेषित करता है।

चिंतन (Thinking) : पर्यावरण से प्राप्त सूचनाओं और दीर्घकालिक स्मृति में संचित प्रतीकों, दोनों की मानसिक अथवा संज्ञानात्मक पुनर्व्यवस्था या प्रहस्तन। भाषा, प्रतीकों, संप्रत्ययों और प्रतिमाओं का उपयोग होता है तथा उद्दीपक और अनुक्रिया के बीच चिंतन घटित होता है या मध्यस्थता करता है।

ध्वनिगुण (Timbre) : अधिस्वर के सम्मिलन द्वारा उत्पन्न स्वर की विशिष्ट गुणवत्ता जो शुद्ध स्वर के साथ सुनी जाती है।

अधोगामी प्रक्रमण (Top-down processing): आकार प्रत्यक्षण में पूर्ण से अंशों की ओर क्रमिक प्रगति।

चिह्न के धूमिल पड़ने का सिद्धांत (Trace decay theory) : यह विचार कि सीखी हुई सामग्री मस्तिष्क में संकेत या प्रभाव के रूप में होती है और अगर उसका अभ्यास और उपयोग न किया जाए तो यह लुप्त हो जाती है।

अधिगम अंतरण (Transfer of learning) : किसी भिन्न स्थिति में पहले के सीखने के कारण एक नयी स्थिति में अधिक त्वरित रूप से सीखना (सकारात्मक अंतरण) अथवा पहले के सीखने के कारण एक नयी स्थिति में धीरे-धीरे सीखना (निषेधात्मक अंतरण)।

अभिघातज अनुभव (Traumatic experience) : शारीरिक या मनोवैज्ञानिक चोट; मनोवैज्ञानिक अभिघात में संवेगात्मक सदमे आते हैं जिनका व्यक्तित्व पर कमोवेश स्थायी प्रभाव होता है, जैसे कि अस्वीकृति, संबंध-विच्छेद, लड़ाई का अनुभव, विध्वंस आदि।

विश्वास बनाम अविश्वास (Trust vs. mistrust) : इरिक्सन की पहली मनोसामाजिक अवस्था; विश्वास के विकास के लिए शारीरिक सुख और भविष्य के प्रति भय और चिंता की एक न्यूनतम मात्रा का अनुभव आवश्यक है।

अननुबंधित अनुक्रिया (Unconditioned response) : किसी अननुबंधित उद्दीपक के प्रति बगैर सीखी हुई या अनैच्छिक अनुक्रिया।

अननुबंधित उद्दीपक (Unconditioned stimulus) : एक उद्दीपक जो सामान्यत: एक अनैच्छिक, मापनयोग्य अनुक्रिया उत्पन्न करता है।

परोक्ष मापक (Unobtrusive measures) : प्रेक्षण और मापन की प्रक्रियाएँ जिनका चयन इस तरह किया गया हो कि वे सामान्य व्यवहार में हस्तक्षेप न करें अथवा व्यक्ति की सचेतन जागरूकता में दाखिल न हों।

वैधता (Validity) : किसी मापक द्वारा की गई परिशुद्धता का द्योतक जो यह बताता है कि मापन वास्तविकता के निकट है।

परिवर्त्य या चर (Variable) : कोई भी मापनयोग्य दशा, घटना, लक्षण या व्यवहार जिसका अध्ययन में नियंत्रण या प्रेक्षण किया जाता है।

वाचिक अधिगम (Verbal learning) : वाचिक उद्दीपक के प्रति वाचिक रूप से अनुक्रिया करने की अधिगम की प्रक्रिया। इसमें प्रतीक, निरर्थक पद, शब्दों की सूचियाँ आदि होते हैं।

शाब्दिक परीक्षण (Verbal test) : ऐसे परीक्षण जिनमें अपेक्षित अनुक्रियाओं को करने में व्यक्ति की शब्दों एवं संप्रत्ययों को समझने तथा उसका उपयोग करने की योग्यता महत्वपूर्ण होती है।

चाक्षुष भ्रम (Visual illusions) : भौतिक उद्दीपक जो प्रत्यक्षण में लगातार त्रुटि उत्पन्न करते हैं।

तरंगदैर्ध्य (Wavelength) : प्रकाश या ध्वनि तरंग के एक शिखर से दूसरे के शिखर की दूरी।

शब्द साहचर्य (Word associations) : व्यक्तित्व मूल्यांकन तकनीक, जिसमें आम शब्दों द्वारा प्रभावित होकर व्यक्ति अनुक्रियाएँ करता है।

कार्यकारी स्मृति (Working memory) : स्मृति की प्रक्रिया जो प्रत्यक्षण की गई नवीन घटनाओं और अनुभवों को परिरक्षित रखती है, इसे अल्पकालिक स्मृति भी कहा जाता है।

पठनीय पुस्तकें

विषयवस्तु की और अधिक जानकारी के लिए, आप निम्नलिखित पुस्तकों को पढ़ सकते हैं :

- **बैरन, आर.ए.** (2001/भारतीय पुनर्मुद्रण 2002), *साइकोलॉजी* (पाँचवाँ संस्करण), एलिन एंड बेकॅन।
- **दास, जे.पी.** (1998), द *वर्किंग माइंड : एन इंट्रोडक्शन टू साइकोलॉजी*, सेज पब्लिकेशंस।
- **डेविस, एस.एफ.** तथा **पलाडिनो, जे.एच.** (1997), *साइकोलॉजी*, प्रेंटिस हॉल।
- **जेरो, जे.आर.** (1997), *साइकोलॉजी : एन इंट्रोडक्शन*, एडिसन वेस्ली लांगमैन।
- **ग्लाइटमैन, एच.** (1996), *बेसिक साइकोलॉजी*, डब्ल्यू.डब्ल्यू. नॉर्टन एंड कंपनी।
- **खांडवाला, पी.एन.** (1984), *फोर्थ आई : एक्सेलेंस थ्रू क्रिएटिविटी*, ए.एच. व्हीलर एंड कंपनी।
- **मैलिम, टी.** तथा **बर्च, ए.** (1998), *इंट्रोडक्टरी साइकोलॉजी*, मैकमिलन प्रेस लिमिटेड।
- **मॉर्गन, सी.टी., किंग, आर.ए., विज़, जे.आर.** तथा **शॉपलर, जे.** (1986), *इंट्रोडक्शन टू साइकोलॉजी* (सातवाँ संस्करण), मैकग्रा-हिल बुक कंपनी।
- **विटेन, डब्ल्यू.** (2001), *साइकोलॉजी : थीम्स एंड वेरिएशंस*, वैडसवर्थ।
- **जिंबार्डो, पी.जी.** तथा **वेबर, ए.एल.** (1997), *साइकोलॉजी*, न्यूयार्क : लांगमैन।
- **जिंबार्डो, पी.जी.** (1985), *साइकोलॉजी एंड लाइफ*, हार्पर कॉलिंस पब्लिशर्स।

स्त्रोत पुस्तकें

- **दास, यू.एन., मोहंती, पी.के, मोहंती, एस.सी., पटनायक, एल.के., नंदा, जी.के., मिश्र, जी.** तथा **कर, सी.** (2004), *साइकोलॉजी - पार्ट I*, उड़ीसा स्टेट ब्यूरो ऑफ टेक्स्टबुक प्रिपरेशन एंड प्रोडक्शन, पुस्तक भवन, भुवनेश्वर।
- **ग्लाइटमैन, एच., फ्रिडलुड, ए.जे.** तथा **रिसबर्ग, डी.** (2004), *बेसिक साइकोलॉजी* (पाँचवाँ संस्करण), डब्ल्यू. डब्ल्यू. नॉर्टन एंड कंपनी।
- **मंडल, एम.के.** (2004), *इमोशन : बेसिक इशूज़ एंड करेंट ट्रेंड्स*, एफिलिएटेड इस्ट-वेस्ट प्रेस।
- **सैंट्रॉक, जे.डब्ल्यू.** (1999), *लाइफ-स्पैन डेवलपमेंट* (सातवाँ संस्करण), बॉस्टन : मैकग्रा-हिल कॉलेज।